VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

विश्व इतिहास

2019

VISIONIAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

18वीं शताब्दी से पूर्व का विश्व 6

1. सामंतवाद (Feudalism) 6

1.1. भूमिका 6

1.2. सामंतवाद का विकास क्यों हुआ? 6

1.3. सामंतवाद की विशेषताएं 6

1.3.1. मैनर 7

1.3.2. किसान 8

1.3.3. राजा और सामंत 8

1.4. निष्कर्ष 8

2. चर्च (The Church) 9

2.1. चर्च की बुराईयां 9

3. परिवर्तनशील समय 10

3.1. व्यापार, कस्बों और शहरों का उद्भव 10

3.2. उत्पादन विधि में परिवर्तन: गिल्ड (संघ) 10

3.3. व्यापारी वर्ग के प्रभाव में वृद्धि 10

3.4. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की दिशा में संक्रमण 11

3.5. राजा व्यापारी सांठ-गांठ और किसान विद्रोह 11

4. आधुनिक युग (Modern Era) 11

4.1. पुनर्जागरण और सुधार 11

4.1.1. पुनर्जागरण 11

4.1.2. सुधार आन्दोलन (Reformation) 14

4.2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आरंभ 14

4.3. निरंकुश राजतंत्रों का उदय 15

4.4. इंग्लिश रिवोल्युशन (अंग्रेजी क्रांति) 16

5. वैश्विक सप्त वर्षीय युद्ध (1756-63) 16

5.1. भूमिका 16

5.2. युद्ध के कारण 17

5.3. परिणाम: 1763 की पेरिस संधि 17

6. अमेरिकी क्रांति (1765-1783) 17

6.1. भूमिका 17

6.2. अंग्रेजों के प्रति अमेरिका वासियों के आक्रोश के कारण 17

VISION IAS

6.2.1. वाणिज्यिक पूंजीवाद 18
6.2.2. 1763 की घोषणा 18
6.2.3. प्रबुद्ध विचारकों की भूमिका 19
6.2.4. युद्ध (सप्त वर्षीय) व्यय की पुनर्प्राप्ति 20
6.2.5. ब्रिटिश संसद में कोई प्रतिनिधित्व नहीं 20
6.2.6. 1774 का कोएर्सिव एक्ट और फिलाडेल्फिया कांग्रेस 21
6.3. अमेरिकी क्रांति युद्ध या अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (1775) 22
6.3.1. 1783 की द्वितीय पेरिस संधि 22
6.3.2. अमेरिकी क्रांति की समालोचना 23
7. फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के युद्ध 24
7.1. फ्रांसीसी क्रांति के पीछे निहित कारण 24
7.1.1. तीन एस्टेट्स 24
7.1.2. अलोकप्रिय राजतंत्र और वित्तीय कठिनाइयाँ 25
7.1.3. प्रबुद्ध विचारकों की भूमिका 25
7.2. 1789 की फ्रांसीसी क्रांति की घटनाएँ 26
7.2.1. जैकोबियन और नेपोलियन 28
7.3. फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव/रचनात्मक आलोचना 29
7.3.1. पक्ष 29
7.3.2. विपक्ष 30
8. राष्ट्रवाद - उदय और प्रभाव 30
8.1. राष्ट्र की संकल्पना 30
8.2. निरंकुश राजाओं द्वारा दुरुपयोग 31
8.3. क्रांतिकारी विचारकों की भूमिका 31
8.4. औद्योगिक क्रांति और राष्ट्रवाद 31
9. जर्मनी और इटली का एकीकरण 31
9.1. जर्मनी का एकीकरण 32
9.1.1. सामाजिक और आर्थिक स्थिति 32
9.1.2. नेपोलियन के युद्धों और फ्रांसीसी क्रांति की भूमिका 32
9.1.3. लोकतंत्र के अधीन एकजुट करने में विफलता 33
9.1.4. बिस्मार्क के नेतृत्व में एकीकरण: रक्त और लौह की नीति 33
9.2. इटली का एकीकरण 34
9.2.1. 1848 के विद्रोहों की भूमिका 34
9.2.2. प्रधान मंत्री कावूर की बिस्मार्क सदृश नीति के माध्यम से एकीकरण 34
10. औद्योगिक क्रांति 36
10.1. औद्योगिक क्रांति से पहले वस्तुओं के उत्पादन की विधि 36

VISION IAS

10.1.1. पुटिंग-आउट प्रणाली 36
10.1.2. कारखाना प्रणाली 36
10.2. औद्योगिक क्रांति क्या है? 36
10.3. इंग्लैंड में ही सर्वप्रथम औद्योगिक क्रांति क्यों? 36
10.4. औद्योगिक क्रांति के घटक 37
10.4.1. वस्त्र क्षेत्रक में क्रांति 37
10.4.2. वाष्प शक्ति/स्टीम पावर 38
10.4.3. लोहे के उत्पादन में क्रांति 39
10.4.4. परिवहन एवं संचार में क्रांति 39
10.4.5. कृषि क्रांति 40
10.5. औद्योगिक क्रांति का प्रभाव 40
10.6. इंग्लैंड के बाहर औद्योगिक क्रांति का प्रसार 42
11. उपनिवेशवाद की परिभाषा 43
12. उपनिवेशवाद का इतिहास 43
12.1 भौगोलिक खोज या अन्वेषण की भूमिका 43
12.2. तकनीकी नवोन्मेष 45
13. औपनिवेशीकरण (Colonization) 46
14. उपनिवेशवाद का प्रभाव 47
15. उपनिवेशवाद और वाणिज्यिक पूंजीवाद में संबंध 48
16. उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बीच अंतर 48
17. नव साम्राज्यवाद (New Imperialism) की परिभाषा 49
18. नव साम्राज्यवाद का इतिहास 50
19. अफ्रीका में उपनिवेशवाद 52
19.1. अफ्रीका के लिए फ़्रांसीसी संघर्ष 54
19.2. अफ्रीका के लिए ब्रिटिश संघर्ष 55
19.3. अफ्रीका के लिए जर्मनी का संघर्ष 55
19.4. अफ्रीका के लिए इटली का संघर्ष 55
19.5. अफ्रीका पर उपनिवेशवाद के प्रभाव 56
19.5.1. औपनिवेशिक श्वेत लोग कुलीन बन गए और उन्होंने देशी अश्वेतों का शोषण किया 56
19.5.2. दासप्रथा 56
19.5.3. औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा जनसंहार 57
19.5.4. बांटो और राज करो की नीति से स्वतंत्रता पश्चात् समस्याएं 57
19.5.5. शिक्षा और स्वास्थ्य की अत्यधिक उपेक्षा 57
VISION IAS

19.5.6. आर्थिक विकास की क्षति 58

20. प्रशांत महासागर क्षेत्र में उपनिवेशवाद 58

21. मध्य और पश्चिमी एशिया में उपनिवेशवाद 59

22. चीन में साम्राज्यवाद 60

22.1. चीन की घटनाओं का विवरण 61

22.2. प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध (1840-42 और 1858) 61

22.2.1. 1858 में अमूर नदी के उत्तर का क्षेत्र रूस को सौंपना पड़ा 62

22.2.2. मांचू राजवंश और वॉरलॉर्ड युग 62

22.2.3. पांच प्रमुख घटनाएँ 63

22.2.4. प्रथम विश्व युद्ध (1914-19) 64

22.2.5. वॉरलॉर्डस युग (1916-28) 64

22.2.6. 4 मई का आंदोलन (1919) 64

22.2.7. कोमिन्तांग और सन यात सेन 65

22.2.8. च्यांग काई शेक 65

22.2.9. चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (1921 के बाद) 65

23. साम्राज्यवादी जापान 67

24. साम्राज्यवादी संयुक्त राज्य अमेरिका 70

VISION IAS

18वीं शताब्दी से पूर्व का विश्व

18वीं एवं 19वीं शताब्दी की घटनाओं को समझने के लिए 18वीं शताब्दी से पूर्व की घटनाओं को समझना आवश्यक है। 18वीं शताब्दी के प्रारंभ की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार थीं:

- इंग्लैंड में सामंतवाद का अंत (यूरोप के शेष भागों में सामंतवाद का अंत बहुत बाद में हुआ)।
- शहरों और कस्बों की संख्या में वृद्धि।
- व्यापार में वृद्धि।
- भूमि आधारित अर्थव्यवस्था (सामंतवाद) का मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था में संक्रमण।
- व्यापारी वर्ग और निरंकुश सम्राटों का उदय (*इंग्लैंड में आंशिक लोकतंत्र था और 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति के बाद, राजशाही की बजाय संसद की सर्वोच्चता थी)। कैथोलिक चर्च की शक्ति में ह्रास हुआ।
- वाणिज्यिक पूंजीवाद का उदय।
- इंग्लैंड और फ़्रांस की प्रतिद्वंद्विता चरम पर।

1. सामंतवाद (Feudalism)

1.1. भूमिका

- 600 ई. से 1500 ई. तक की अवधि को यूरोपीय इतिहास में मध्य युग या मध्यकाल की संज्ञा दी गयी है। विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप में इस अवधि के दौरान कई सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। मध्यकाल के दौरान पश्चिमी यूरोप में ऐसी सामाजिक व्यवस्था विकसित हुई जो शेष विश्व से बहुत भिन्न थी। इसे 'सामंतवाद' के नाम से जाना जाता है।
- सामंतवाद शब्द 'feud' शब्द से निकला है, जिसका अर्थ 'भूमि का सशर्त स्वामित्व' होता है। सामंतवाद ऐसी नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था थी जो मध्यकाल (600-1500 ईस्वी) में पश्चिमी यूरोप में तथा आगे चलकर यूरोप के अन्य भागों में प्रचलित हुई।
- इसके अंतर्गत, समाज में वर्गों का विभाजन कठोर था, राजनीतिक रूप से देखें तो यहाँ कोई केंद्रीय शक्ति नहीं थी और ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था का प्रचलन था। इस प्रकार ग्राम आधारित अर्थव्यवस्था वस्तुतः आत्मनिर्भर थी और अधिशेष उत्पादन बहुत कम था जिससे व्यापार की संभावना न्यून हो गयी थी। अतः व्यापार एवं शहरों के पतन को इसकी एक विशेषता के रूप में देखा गया है।
- सामंतवाद के अंतर्गत केंद्रीय राजनीतिक शक्ति के अभाव के कारण बहुत सारे सामंतों का राजनीतिक वर्चस्व कायम था जो राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक मामलों को नियंत्रित करते थे। इस समय राजा बहुत शक्तिशाली नहीं था। सामंत किसानों का शोषण करते थे और 'सर्फडम' सामंतवाद की महत्वपूर्ण विशेषता बन गई थी। इसके अतिरिक्त, यूरोप में चर्च का प्रभाव धार्मिक मामलों से परे भी विस्तृत था।

1.2. सामंतवाद का विकास क्यों हुआ?

- पश्चिमी यूरोप में केंद्रीय राजनीतिक शक्ति के अभाव के कारण सामंतवाद का विकास हुआ क्योंकि इस समय पश्चिमी यूरोप कई छोटे और बड़े राज्यों में बिखर गया था। ऐसी व्यवस्था में स्थानीय सामंत राजा की तुलना में अधिक शक्तिशाली हो गए और सामाजिक मामलों को नियंत्रित करने लगे।

1.3. सामंतवाद की विशेषताएं

- सामंती व्यवस्था में अर्थव्यवस्था ग्राम आधारित थी और ये ग्राम आत्मनिर्भर थे। इस अवधि के दौरान कस्बों के साथ व्यापार में गिरावट आई। शक्ति का मुख्य स्रोत भूमि थी, न कि मुद्रा।

VISION IAS

1.3.1. मैनर

- किसान सामंत की भूमि पर काम करते थे, जिसे कई जागीरों या मैनरों में संगठित किया गया था। प्रत्येक मैनर में एक गढ़ (सामंत का घर), किसानों के लिए काम करने हेतु खेत, किसानों के रहने के लिए घर, किसानों के लिए गैर-कृषि वस्तुओं का उत्पादन करने हेतु कार्यशालाएं और लकड़हारों हेतु लकड़ी काटने के लिए साझा जंगल होते थे। मैनर में जो भी उत्पादन होता था, उसका सामंत और निवासियों द्वारा उपभोग किया जाता था, जबकि इसमें से बहुत कम वस्तुओं का व्यापार किया जाता था।
- मैनर के श्रमिकों में **सर्फ** और **काश्तकार किसान** सम्मिलित थे। खेत छोटे छोटे भू-खंडों में विभाजित थे। हालांकि भूमि का कुछ भाग काश्तकारों को दिया गया था, जो सामंत को कर के रूप में उपज के एक हिस्से का भुगतान करते थे, शेष भूमि सामंत के अधीन होती थी।

सामाजिक और आर्थिक प्रणाली:

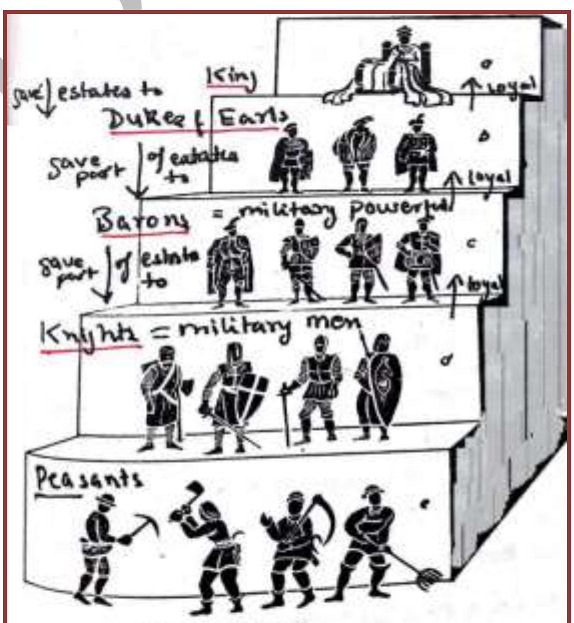

Feudal Hierarchy

1.3.2. किसान

इस काल में किसान निम्नलिखित में वर्गीकृत थे:

- **सर्फ (Serfs):** सर्फ सामन्त की भूमि पर नि:शुल्क काम करते थे और उसकी इच्छानुसार इन्हें सभी कार्य करने पड़ते थे। वे स्वतंत्र नहीं थे और भूमि से बंधे थे। इसका अर्थ यह था कि भूमि स्वामित्व में परिवर्तन होने के साथ ही सर्फ़ का स्वामी भी परिवर्तित होकर एक सामंत से दूसरा सामंत हो जाता था। इस प्रणाली को **सर्फडम** के नाम से जाना जाता था।
- **स्वतंत्र भू-धारक (Freeholders):** इन्हें सामंत से अपनी भूमि मिलती थी। ये स्वतंत्र होते थे और केवल सामंत द्वारा निर्धारित कर का भुगतान करते थे।
- **कृषिदास या छोटे पट्टेदार (Villeins):** इन्हें भी अपनी भूमि सामंत से मिलती थी। कुछ निश्चित दिन ये सामंत के लिए काम करते थे, अन्यथा ये स्वतंत्र होते थे और अपनी कृषि उपज के एक भाग के रूप में कर का भुगतान करते थे।
- **स्वतंत्र व्यक्ति (Freemen):** ये ऐसे सर्फ थे जिन्हें उनके सामंत द्वारा अपने विवेकाधिकार से मुक्त किया गया होता था।

1.3.3. राजा और सामंत

- सामंती पदानुक्रम में शीर्ष पर राजा होता था। राजा के नीचे सामंत लोग भी अधिपति सामंत और अधीनस्थ सामंतों के पदानुक्रम में व्यवस्थित होते थे। प्रत्येक सामंत केवल अपने अधिपति के मातहत भूमिधर होता था। मातहत होने का अर्थ निष्ठा रखना या निष्ठावान होना होता था, जिसके बदले में उसे कुछ औपचारिक अधिकार मिलते थे। यह पदानुक्रमित प्रणाली अलंघनीय थी क्योंकि अधीनस्थ सामंत केवल अपने तात्कालिक अधिपति के आदेशों का पालन करता था, न कि पदानुक्रम में और ऊँचे सामंतों का। इस प्रकार दोहरे कमान की एक ऐसी व्यवस्था विकसित हुई जिसमें केवल दो क्रमागत स्तरों के मध्य ही विभिन्न प्रकार के संबंध विकसित हुए। राजा केवल ड्यूक और अर्ल को आदेश दे सकता था, जो अपने अधीनस्थ सामंतों को आदेश देते थे। ड्यूक और अर्ल को बैरन से सैन्य सहायता मिलती थी, जो सैन्य जनरलों की भांति होते थे, जो आगे नाइट्स पर निर्भर होते थे जो वास्तविक योद्धा होते थे।
- इसके अतिरिक्त, स्वयं कोई भी सामंत अपने अधीन भूमि का प्रत्यक्ष स्वामी नहीं होता था। वह अपने अधिपति के नाम पर भूमि रखता था। इस प्रकार कानूनी रूप से, सभी प्रदेश राजा के अधीन थे। केवल राजा को सामंत के बेटे को नाइट की पदवी देने का अधिकार होता था, जो तब अपने नाम के साथ 'सर' जोड़ सकता था।
- प्रत्येक सामंत के पास अपने सैनिक होते थे और वह अपनी जागीर का एकमात्र अधिकारी होता था। इस प्रकार कार्यात्मक शब्दों में कोई केंद्रीय शक्ति नहीं थी और राजा केवल कानूनी अर्थों में केंद्रीय शक्ति था। परिणामस्वरूप इस समय राजनीतिक एकता की बहुत कमी थी।
- धीरे-धीरे, यह पदानुक्रम वंशानुगत हो गया। सामंत के पुत्र अगले सामंत बन जाते थे और उनके पिता की जागीर उनकी जागीर बन जाती थी।

1.4. निष्कर्ष

- यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सामंती समाज में वर्गों का विभाजन कठोर था जिसमें सामाजिक गतिशीलता के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी। राजा के पास कोई वास्तविक अधिकार नहीं था और शक्तिशाली सामंत जनता (जिनमें से अधिकांश लोग किसान थे) के कल्याण के लिए नहीं सोचते थे। अधिकांश उपज सामंतों द्वारा विलासितापूर्ण जीवन जीने में बर्बाद कर दी जाती थी, इस कारण समाज में आर्थिक जड़ता आ गई थी। किसानों के लिए गतिविधियों की कोई स्वतंत्रता नहीं थी क्योंकि वे भूमि से बंधे थे और व्यक्तिगत उद्यमिता की तो कोई सम्भावना ही नहीं थी।

VISION IAS

2. चर्च (The Church)

- रोमन कैथोलिक चर्च भी सामंतवादी संस्था जितना ही शक्तिशाली था। जब यूरोप के शासकों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया तो चर्च का नेतृत्व करने वाला पोप, पश्चिमी यूरोप के ईसाई जगत का प्रमुख बन बैठा। छठी सदी से पोप प्राय: राजा की तुलना में अधिक शक्ति रखता था और उससे अपने आदेशों का पालन करवा सकता था। प्रारंभ में, ईसाई चर्च (वह स्थान जहां पादरी रहते थे) उच्च शिक्षा संस्थान थे। पादरी लोगों के नैतिक जीवन और गरीबों के कल्याण के लिए काम करते थे। लेकिन शीघ्र ही चर्च में भ्रष्टाचार फैल गया।

2.1. चर्च की बुराईयां

- शासनकला पर चीनी नियम पुस्तिका, *ताओ ते चिंग* में दो हज़ार चार सौ वर्ष पहले उपदेश दिया गया था: *"प्राचीन लोगों की परिपाटी ऐसी थी जिससे लोगों का ज्ञानवर्धन नहीं हुआ; इससे घृणा करने की बजाय वे इसका उपयोग करते थे; क्योंकि जनता पर शासन करना तब कठिन होता है जब उनके पास बहुत अधिक ज्ञान होता है। इसलिए, ज्ञान के माध्यम से राज्य पर शासन करना राज्य को दृढ़ बना देना है। अज्ञानता के माध्यम से राज्य पर शासन करने से राज्य में स्थिरता आती है।"* चर्च ने अपना शिकंजा बनाए रखने में इसी सिद्धांत का उपयोग किया। इसके साथ ही, जैसा कि हम बाद में देखेंगे, लोगों के प्रबोधन या ज्ञानवर्धन की यह शक्ति, अमेरिका और फ़्रांस की क्रांतियों को विचारों की क्रांति बनाने में बहुत अधिक महत्वपूर्ण थी।

मध्य युग में (600 ईस्वी से 1500 ईस्वी) चर्च में निम्नलिखित बुराईयों का समावेश हुआ :

- चर्च के पदों के लिए धन।
- प्रत्येक अनुष्ठान के लिए धन।
- पाप धुलने के लिए धन। उदाहरण के लिए, चर्च ने "क्षमा पत्र" बेचना आरंभ कर दिया, जिसे खरीदने पर पाप धुलने के लिए तीर्थयात्रा करने की आवश्यकता नहीं रह जाती थी।
- पोप, नन, बिशप इत्यादि भ्रष्ट हो गए और राजाओं की तरह जीवन जीने लगे।
- चर्च के पास विशाल संपत्ति का स्वामित्व था।
- स्थिति में सुधार करने के लिए, चर्च से जुड़े कुछ लोगों ने घुमन्तू पादरियों को प्रचलित किया। इन पादरियों का घर-बार नहीं होता था और ये आत्म-त्याग और शुद्धता का उदाहरण स्थापित करते हुए आम जनता के बीच यात्रा करते थे। लेकिन शीघ्र ही, वे भी भ्रष्ट हो गए। उदाहरण के लिए, वे किसी भी विवाह को प्रमाणित कर देते थे और धन के लिए सभी पाप धो देते थे।
- मध्यकाल में शिक्षा प्रदान करने वाला एकमात्र संस्थान चर्च था। भविष्य में पादरी बनकर ही इस शिक्षा का उपयोग किया जा सकता था। शिक्षा का माध्यम लैटिन होता था जो आम-जन की भाषा नहीं थी।
- चर्च ने "वर्ष में एक बार" पादरी के सामने पापों की स्वीकृति को अनिवार्य बना दिया था और इस नियम के उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान था।
- तर्क, विवेक और विज्ञान को हतोत्साहित किया जाता था। विज्ञान और इतिहास के विषयों की कोई शिक्षा उपलब्ध नहीं थी। यही कारण है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आगे चलकर होने वाला विकास वैज्ञानिक क्रांति के रूप में संदर्भित किया जाता है।
- अंधविश्वास और जादू-टोने पर लोग बहुत अधिक विश्वास करते थे। चर्च हिंसक हो गया था। इसने उन लोगों को जलाने का आदेश दिया, जो परमेश्वर, धर्म और यहां तक कि भौतिक घटनाओं के संबंध में उसके विचारों का विरोध करते थे। ऐसा "अपधर्म" के आरोप पर किया जाता था। चर्च द्वारा प्रचारित परमेश्वर का महिमामंडन करने वाले सिद्धांतों (जैसे पृथ्वी सपाट है, या सम्पूर्ण ब्रह्मांड पृथ्वी के चारों ओर घूमता है) का खंडन करने वाले वैज्ञानिक सिद्धांतों को प्रतिपादित करने वाले कई वैज्ञानिकों को चर्च के कोप का शिकार होना पड़ा। डायन के रूप में और बुरी आत्माओं से ग्रस्त होने के रूप में पहचाने जाने के बाद उनमें से कइयों को जला दिया जाता था।

VISION IAS

3. परिवर्तनशील समय

3.1. व्यापार, कस्बों और शहरों का उद्भव

- 7वीं सदी में हुए धर्मयुद्धों से यूरोप अरब देशों के संपर्क में आया। इससे यूरोप का परिचय समृद्ध अरब सभ्यता और उसकी विलासितापूर्ण सामाग्रियों से हुआ। परिणामस्वरूप सामंत स्वामियों के मध्य पूर्व की विलासितापूर्ण वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। इसके साथ ही उत्पादन के तरीकों में सुधार के कारण कृषि उत्पादकता में वृद्धि से भी किसानों के लिए गैर-कृषि वस्तुओं का खरीदार बनना संभव हुआ। इन कारकों से पूर्व के साथ व्यापार में वृद्धि हुई है। शिल्प और कस्बों (जहां शिल्प सामाग्रियाँ तैयार की जाती थीं) का भी महत्व बढ़ने लगा। विशेषकर 11वीं शताब्दी के बाद की अवधि में शहरों, व्यापार और शिल्प का तेजी से उदय हुआ।
- धीरे-धीरे, किसानों ने कारीगरों (अर्थात शिल्पकारों) के रूप में काम करना आरंभ कर दिया और इन नए शहरों में व्यापारी आकर बसने लगे। जैसे-जैसे कस्बों में कारीगरों की संख्या में वृद्धि हुई वैसे-वैसे ये कस्बे विस्तृत होकर शहर बनने लगे। सम्पूर्ण यूरोप में, मुख्य रूप से भूमि आधारित व्यापारिक मार्गों या समुद्री बंदरगाहों के आसपास इन शहरों का विकास हुआ। बंदरगाहों से, एशिया से आयातित वस्तुएं भू-मार्गों के द्वारा यूरोप की मुख्य भूमि तक पहुँचाई जाने लगीं। अपनी अवस्थिति और अच्छे प्राकृतिक बंदरगाह होने के भौगोलिक लाभ के कारण इटली में शहरों का अधिकतम विकास हुआ (जैसे कि वेनिस और जेनोवा जैसे समुद्री-बंदरगाह शहर), जो पूर्व के साथ व्यापार की सुविधा देते थे। यूरोप में इस समय विकसित होने वाले समुद्री-बंदरगाह तथा व्यापार और वाणिज्य के अंतर्देशीय केंद्र अभी भी यहाँ के समृद्ध शहर हैं।

3.2. उत्पादन विधि में परिवर्तन: गिल्ड (संघ)

- बढ़ते व्यापार और कस्बों के साथ-साथ शिल्प में विशेषीकरण के कारण पैदा हुई मांग को पूरा करने के लिए, वस्तुओं के उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई। कस्बों के व्यापारियों और कारीगरों ने स्वयं को गिल्डों में संगठित करना आरंभ कर दिया, जो उत्पादित की जा रही वस्तुओं के लिए विशिष्ट होते थे, उदाहरण के लिए सुनार, नाई, चमड़ा श्रमिकों के गिल्ड आदि। गिल्ड प्रणाली के अंतर्गत एक प्रमुख शिल्पकार होता था, जिसके अंतर्गत तीन से चार कर्मचारी या प्रशिक्षु काम करते थे।

3.3. व्यापारी वर्ग के प्रभाव में वृद्धि

- व्यापार के पुनरुद्धार और शहरों के उद्भव के परिणामस्वरूप मध्यम वर्ग नामक एक नए वर्ग का उदय हुआ, जिसमें मुख्य रूप से व्यापारी सम्मिलित थे। धीरे-धीरे शहरों ने सामंती नियंत्रण से स्वयं को मुक्त कर लिया। उनकी अपनी सरकार, जनसेना और न्यायालय थे। ये लोग भूमि से नहीं बंधे थे, उनके पास व्यवसाय की स्वतंत्रता थी और ये स्वतंत्रतापूर्वक चारों ओर आ-जा सकते थे। इन शहरों द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक गतिशीलता ने गांवों से किसानों को भी आकर्षित किया।
- **सर्फ** शहरों में स्वतंत्र थे और वे व्यापारियों के लिए आवश्यक श्रमबल प्रदान करते थे। अधिक संख्या में किसानों के आगमन ने शहरों में उत्पादित वस्तुओं के लिए घरेलू बाजार प्रदान किया। शहरों की अर्थव्यवस्था मुद्रा-आधारित थी और भूमि सत्ता का मुख्य स्रोत नहीं थी। स्वामी सामंत को अब श्रम के बजाय नकद में भुगतान किया जाता था। व्यापार से होने वाले लाभ में वृद्धि के कारण व्यापारियों के प्रभाव में वृद्धि हुई। पूर्व के साथ व्यापार से ऐसी वस्तुएँ आईं, जो पूरी तरह से यूरोप के लोगों के लिए नई थीं। इसके अतिरिक्त, ऐसी वस्तुओं की मांग बढ़ी, क्योंकि वे जनता के बीच लोकप्रिय होने लगी थीं। धीरे-धीरे, व्यापारियों ने शहरों में न केवल सामाजिक और आर्थिक, बल्कि राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करना आरंभ कर दिया।

VISION IAS

3.4. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की दिशा में संक्रमण

- शहरों में नकदी आधारित आर्थिक प्रणाली प्रचलित हुई। यहां जीवन भूमि की बजाय धन के चारों ओर घूमता था। भूमि का उपयोग नकदी फसलों के उत्पादन के लिए किया जाता था, जो गैर-कृषि वस्तुओं के निर्माण के लिए कच्चे माल के रूप में काम करती थी और कस्बों के किसानों को नकद में भुगतान मिलता था। सोने और चांदी के बजाय मुद्रा धनसंपत्ति का प्रतीक हो गई। सोने और चांदी के रूप में बेकार पड़ी धनसंपत्ति के विपरीत मुद्रा के रूप में मुनाफे का व्यापार होता था और इसे उद्योग में पुन: निवेश किया जा सकता था। ऐसी धनसंपत्ति या मुद्रा को 'पूँजी' कहा जाता है। गांवों के स्थान पर शहर उत्पादन का केंद्र बन गए।

3.5. राजा व्यापारी सांठ-गांठ और किसान विद्रोह

- राजा और व्यापारियों के बीच गठजोड़ में वृद्धि हुई क्योंकि दोनों ही राजनीतिक और आर्थिक शक्ति की आकांक्षा करते थे। जहां राजा सामंती स्वामियों पर निर्भरता से छुटकारा पाना चाहते थे और चर्च के कम हस्तक्षेप की आकांक्षा रखते थे, वहीं व्यापारी व्यापार और वाणिज्य के माध्यम से प्राप्त मौद्रिक लाभ द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति की स्वतंत्रता का उपभोग करना चाहते थे।
- मध्य युग (600 ईस्वी से 1500 ईस्वी) के दौरान 14वीं शताब्दी में सामंती संस्थाओं के साथ ही चर्च के विरुद्ध भी कई किसान विद्रोह हुए। कई बार विद्रोही किसान नेताओं ने ऐसे धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार किया, जो चर्च से भिन्न था। इस प्रकार, इन सभी घटनाक्रमों के कारण सामंती व्यवस्था का पतन होने लगा, हालांकि यह पूरी तरह से 19वीं शताब्दी तक ही समाप्त हो पाया।

4. आधुनिक युग (Modern Era)

- मध्य युग के अंत तक सामंतवादी व्यवस्था बिखरने लगी थी और आधुनिक युग में यह बिखराव और तीव्र हो गया। 14वीं से 17वीं शताब्दी तक पुनर्जागरण और सुधार जैसी कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं, जिसके परिणामस्वरूप सामंती व्यवस्था का अंत हो गया।

4.1. पुनर्जागरण और सुधार

4.1.1. पुनर्जागरण

पुनर्जागरण शब्द का अर्थ है 'फिर से जागना'। पुनर्जागरण लगभग 14वीं शताब्दी से आरंभ होकर 17वीं शताब्दी तक चला। इसका आरंभ इटली में हुआ क्योंकि व्यापार ने इटली के शहरों में समृद्धि लाई थी, जोकि सामंती नियंत्रण से स्वतंत्र थी (अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण इटली विदेशी व्यापार का केंद्र था। 15वीं शताब्दी के अंत में खोजी समुद्री यात्राओं के बाद पुर्तगाल और स्पेन और बाद में हॉलैंड, फ्रांस और ब्रिटेन ने व्यापार पर हावी होना आरंभ किया)। बाद में, पुनर्जागरण का विचार इटली से बाकी यूरोप तक फैल गया।

- यह प्राचीन साहित्य के पुनः अध्ययन और प्राचीन ग्रीस और रोम के बारे में जानने के लिए एक आंदोलन के रूप में आरंभ हुआ। लेकिन जल्द ही यह कला, धर्म, साहित्य, दर्शन, विज्ञान और राजनीति में नए विचारों के आन्दोलन में बदल गया। इसके परिणामस्वरूप यूरोप के बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन में चर्च के प्रभाव में गिरावट आई। चर्च मृत्योपरांत जीवन में शांति के बारे में बात करता था, जबकि पुनर्जागरण के विचारकों ने इस धरती पर प्रसन्नता की बात की और चर्च के विचारों पर हमला किया।
- मानववाद पुनर्जागरण की प्रमुख विशेषता थी। मानववाद का अर्थ है - मानव जीवन में रूचि लेना, मानव की समस्याओं का अध्ययन करना, मानव का आदर करना, मानव जीवन के महत्त्व को स्वीकार करना तथा उसके जीवन को सुधारने और समृद्ध एवं उन्नत बनाने का प्रयास करना। इसका अर्थ है ईश्वरत्व के बजाय मानवता पर ध्यान केंद्रित करना। पुनर्जागरण ने धर्मशास्त्र के बजाय मनुष्य और प्रकृति को अध्ययन का केन्द्र बनाया। पार-लौकिक मामलों की चिंता का परित्याग कर दिया गया और उनका ध्यान जीवित व्यक्ति, उनके सुख-दुःख पर था। पुनर्जागरण एक नई मानवतावादी और तर्कसंगत सोच वाले विचार के रूप में आया जिसमें अंधविश्वास का कोई स्थान नहीं था। मनुष्य की क्षमता,

VISION IAS

उसकी गरिमा और उसके अधिकारों पर बल दिया गया। धीरे-धीरे, कला और संस्कृति की विषयवस्तु भी मनुष्य और प्रकृति से संबंधित हो गई। जैसे मेरी और यीशु को धार्मिक प्रतीकों के बजाय मनुष्य के रूप में चित्रित किया गया। दा विंसी, माइकल एंजेलो और राफेल जैसे कलाकार पुनर्जागरण आंदोलन के प्रमुख कलाकार थे। चर्चों में चित्रों का विषय स्वर्ग और नरक से मानवीय रूपों में स्थानांतरित हो गया।

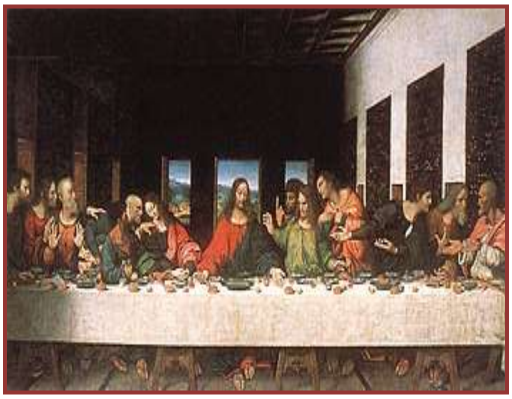

चित्र: द लास्ट सपर- विंची

- इस प्रकार, मानवतावाद नियतिवाद के विरुद्ध था। पुनर्जागरण के प्रभाव का पता पश्चिम के वर्तमान व्यक्तिवादी समाजों को देखकर लगाया जा सकता है, जिसके अंतर्गत अपने जीवन को स्वयं बदलने की क्षमता में विश्वास अभी भी किसी व्यक्ति के मूल्य प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है।
- पुनर्जागरण के कारण साहित्य में, लैटिन और यूनानी भाषाओं के स्थान पर स्थानीय यूरोपीय भाषाओं की प्रगति हुई। इस प्रकार पुनर्जागरण ने भाषाई विकास और इसके माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायता की। ***द प्रिंस*** में, **मैक्यावली** ने राज्य की एक नई अवधारणा दी जिसके अनुसार राज्य धर्म से ऊपर था और इसमें राजनीतिक मामलों के सर्वोच्च अधिकार निहित थे। राजनीतिक मामलों को धर्म से अलग माना जाने लगा। इस प्रकार **धर्मनिरपेक्षता को पुनर्जागरण से जोड़ा जा सकता है।**
- 15वीं शताब्दी के पहले 50 वर्षों में प्रिंटिंग प्रेस (छपाई खाना) के आविष्कार ने शिक्षा और नए विचारों का प्रसार किया। हालांकि, इसने अशिक्षित गरीबों को कम प्रभावित किया।

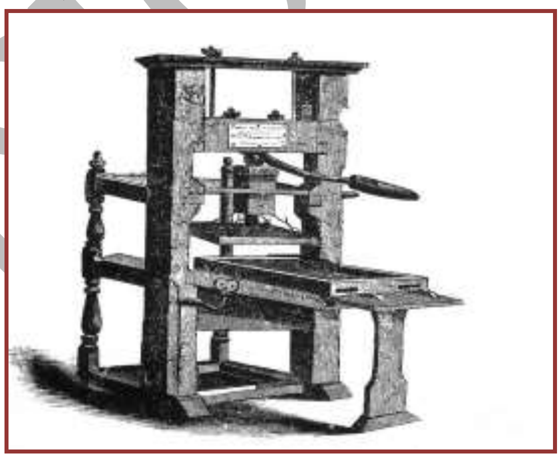

चित्र: प्रिंटिंग प्रेस - जोहांस गुटेनबर्ग

- वैज्ञानिक क्रांति भी इस परिवर्तन का एक उत्पाद था। इसका आरंभ पुनर्जागरण काल के अंत (यानी लगभग 17वीं सदी) में हुआ और 18वीं शताब्दी के अंत तक जारी रहा। भौतिक घटनाओं पर चर्च के दृष्टिकोण को त्याग दिया गया। केवल उन परिघटनाओं को स्वीकार किया गया जिन्हें वैज्ञानिक अवलोकन के तरीकों से समझाया और सत्यापित किया जा सकता था। इस प्रकार प्रयोगों के माध्यम से किसी परिकल्पना के परीक्षण पर ध्यान केंद्रित किया जाने लगा। कॉपरनिकस ने पाया कि पृथ्वी अपनी अक्ष पर घूमती है और साथ ही उसने पृथ्वी के परिक्रमण का हेलीओ-सेंट्रिक (सूर्य-केंद्रित) सिद्धांत प्रस्तुत किया अर्थात् पृथ्वी सूरज के चारों ओर घूमती है {यह चर्च के विचार कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र थी, जिसे जियो-सेंट्रिक (पृथ्वी-केन्द्रित) सिद्धांत भी कहा जाता है, उसके विरुद्ध था}। चर्च ने उसे विधर्मी या धर्म विरुद्ध होने के लिए दंडित किया। उसका साथ देने वाले ब्रूनो को जला कर मार दिया गया। गैलीलियो

ने सन् 1554 में टेलीस्कोप का आविष्कार किया और आकाशीय पिंडों का अध्ययन करने के लिए इसका उपयोग किया। उसने कॉपरनिकस के अवलोकन की पुष्टि की और सिद्ध किया कि ब्रह्मांड एक खुली प्रणाली या व्यवस्था है (चर्च का कहना था कि ब्रह्मांड एक बंद प्रणाली है और इसे भगवान द्वारा गतिमान रखा गया है) और पृथ्वी इसका एक छोटा-सा हिस्सा है। गैलीलियो पर भी विधर्मी होने का आरोप लगाया गया और उसे आगे खगोल विज्ञान पर काम करने की अनुमति नहीं दी गई। जर्मनी के केप्लर ने गणित की मदद से यह समझाया कि ग्रह कैसे सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। न्यूटन ने केप्लर के काम को जारी रखा और सिद्ध किया कि सभी आकाशीय पिंड गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार गति करते हैं।

मानव शरीर के विच्छेदन के अध्ययन के माध्यम से वेसेलियस ने मानव शरीर की शारीरिक रचना का पूरा विवरण प्रदान किया। 1628 में हार्वे ने रक्त परिसंचरण समझाया। इसने चिकित्सा विज्ञान में मदद की। यंत्रों एवं नए प्रकार के कम्पास के आविष्कार और उन्नत जहाजों के विकास ने 15वीं शताब्दी के अंत में नई भूमियों की खोज में सहायता की। ये जहाज चाहे हवा की दिशा कुछ भी हो, किसी भी दिशा में चल सकते थे। वैज्ञानिक क्रांति ने 17वीं शताब्दी के मध्य में आरंभ हुए एक नये आंदोलन "प्रबोधन" के लिए मार्ग प्रशस्त किया जोकि 18वीं शताब्दी के मध्य में अपने चरम पर पहुंच गया।

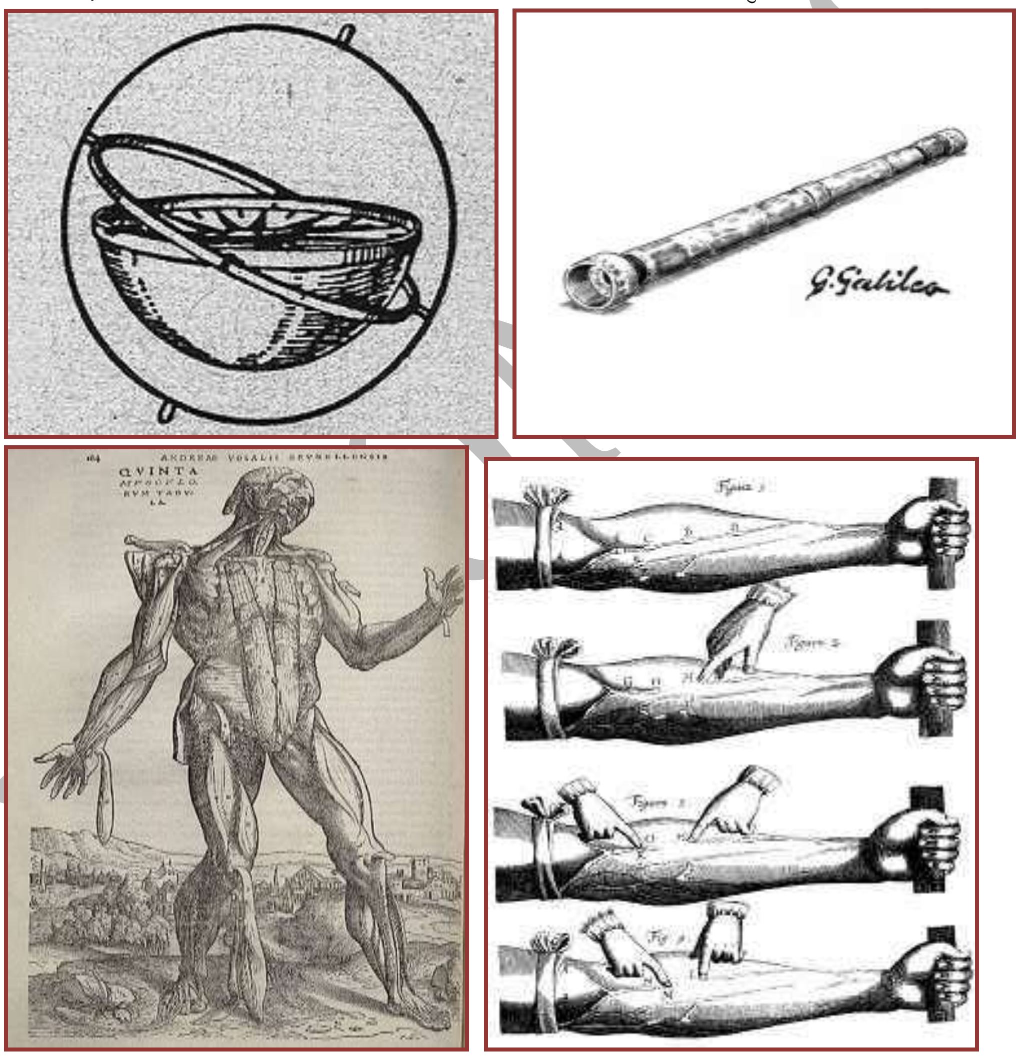

चित्र : 1- कम्पास, 2- गैलीलियो का टेलीस्कोप, 3- वेसेलियस द्वारा मानव शरीर की शारीरिक रचना एवं 4- हार्वे द्वारा रक्त परिसंचरण का प्रयोग

प्रबोधन ने आत्म-नियम, आधारभूत मानव अधिकार और लोकतांत्रिक विचारों पर बल दिया। यूरोप और अन्य स्थानों पर स्वशासन और लोकतंत्र की स्थापना के लिए आंदोलनों के पीछे प्रबोधन प्रेरणा शक्ति था। इस प्रकार, हम देखेंगे कि प्रबोधन ने अमेरिकी क्रांति (1776), फ्रांसीसी क्रांति (1789) और रूसी क्रांति (1905, 1917) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4.1.2. सुधार आन्दोलन (Reformation)

- 16वीं शताब्दी धार्मिक सुधारों की भी साक्षी रही, जिसे प्रोटेस्टेंट सुधार और कैथोलिक सुधार में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- प्रोटेस्टेंट सुधार (आरंभिक 16वीं शताब्दी) कट्टरपंथी कैथोलिक चर्च की प्रथाओं और अधिकारों के विरुद्ध एक आंदोलन था। इसके परिणामस्वरूप प्रोटेस्टेंटिज़्म का उदय हुआ और कैथोलिक चर्च के विरोध में, प्रोटेस्टेंट नेताओं ने यूरोप के विभिन्न देशों में प्रोटेस्टेंट चर्च स्थापित करना आरंभ कर दिया। क्षमा पत्र और चर्च की अन्य बुराइयों का विरोध करने वाले एक पादरी मार्टिन लूथर के नेतृत्व में पहला प्रोटेस्टेंट चर्च राजा के समर्थन से जर्मनी में (1520-1545 से) स्थापित किया गया।
- राजनीतिक कारणों से भी जर्मन शासकों ने लूथर का समर्थन किया। वे पोप के अधिकार से स्वतंत्रता चाहते थे और चर्च के धन पर नियंत्रण रखना चाहते थे। इसके तुरंत बाद, प्रोटेस्टेंट सुधार यूरोप के बाकी भागों में फैल गया।
- यूरोप के विभिन्न भागों में राष्ट्रवाद के विकास के कारण रोम स्थित कैथोलिक चर्च और पोप के प्राधिकार के विरुद्ध लोगों के मन में घृणा की भावना विकसित हुई। इंग्लैंड में, राजा *हेनरी VIII* ने खुद को चर्च का प्रमुख घोषित कर दिया। इसके पश्चात् रानी एलिज़ाबेथ ने रोमन चर्च से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर और कुछ सुधारवादी सिद्धांतों को अपना कर इंग्लैंड के चर्च को आधिकारिक चर्च बनाया।
- प्रोटेस्टेंट चर्चों ने संभ्रात लैटिन के बजाय लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को अंगीकार किया। बाइबल का स्थानीय भाषाओं में अनुवाद किया गया (यह भारतीय पुनर्जागरण के दौरान संस्कृत के स्थान पर स्थानीय भाषाओं के प्रयोग के समान था)। स्थानीय भाषाओं के उपयोग ने राष्ट्रीय चेतना को और बढ़ा दिया और इस प्रकार पुनर्जागरण और सुधार आंदोलनों को यूरोप में राष्ट्रवाद का प्रणेता कहा जा सकता है।
- तर्कशक्ति को धर्म की तुलना में अधिक महत्व दिया गया।
- 17वीं शताब्दी तक, आधे यूरोप ने अपने प्रोटेस्टेंट चर्चों की स्थापना कर ली थी।
- **कैथोलिक सुधार या प्रति सुधार (काउंटर रिफॉर्मेशन- 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में)**
    - यह प्रोटेस्टेंट चर्चों की बढ़ती हुई लोकप्रियता की प्रतिक्रिया में कैथोलिक चर्च द्वारा आरंभ की गई एक सुधार प्रक्रिया थी। स्पेन में, सुधारवादियों ने "यीशु के सैनिक" के रूप में काम करने के लिए पादरियों का एक संगठन बनाया। इस संगठन के सदस्यों को 'ईसाई' नाम से जाना जाने लगा और वे अनुयायियों की वापसी हेतु फ्रांस और जर्मनी गए। उन्होंने भारत, चीन, अफ्रीका और अमेरिका में भी मिशन स्थापित किया।
    - इन सुधारों के पश्चात्, दोनों संप्रदायों के अनुयायियों के बीच धार्मिक युद्ध आरंभ हुए, और दोनों पक्षों के कई अनुयायी मारे गए। इंग्लैंड में प्रोटेस्टेंट के विरुद्ध हिंसा के परिणामस्वरूप उत्तरी अमेरिका में उनका प्रवास हुआ, जहां उनके द्वारा स्थापित उपनिवेशों ने बाद में यू.एस.ए. की स्थापना की नींव रखी। इंग्लैंड में, *राजा चार्ल्स प्रथम* की कैथोलिक समर्थक धार्मिक नीतियों के कारण, यह धार्मिक हिंसा ब्रिटिश गृह युद्ध (1642-51) में परिवर्तित हो गई, जो संसद समर्थकों और राजशाही समर्थकों के मध्य सरकार के प्रारूप को लेकर लड़ा गया था।

4.2. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आरंभ

- खोजी यात्राओं (15वीं शताब्दी के अंत में) ने यूरोप में आधुनिक युग के आरंभ को विशिष्ट बनाया था। इसके परिणामस्वरूप यूरोपीय लोगों ने एशिया और अमेरिका में नए देशों की खोज की।
- इटली दुनिया के शेष हिस्सों के साथ व्यापार में आभासी एकाधिकार स्थापित करने वाला प्रथम देश था। बाद में 15वीं शताब्दी के अंत में अमेरिका, एशिया और अफ्रीका के नए क्षेत्रों की खोज के कारण

VISION IAS

व्यापार को बढ़ावा मिला। इससे कई यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आया। इसके अतिरिक्त, इन नए क्षेत्रों की खोज के साथ, उपनिवेशवाद का आरम्भ हुआ। प्रारंभिक औपनिवेशिक शक्तियाँ पुर्तगाल और स्पेन थीं। ब्रिटेन, डच और फ्रांस शीघ्र ही इस होड़ में सम्मिलित हो गए, तथा पुर्तगाल और स्पेन को कई स्थानों पर उनके उपनिवेशों से प्रतिस्थापित कर दिया।

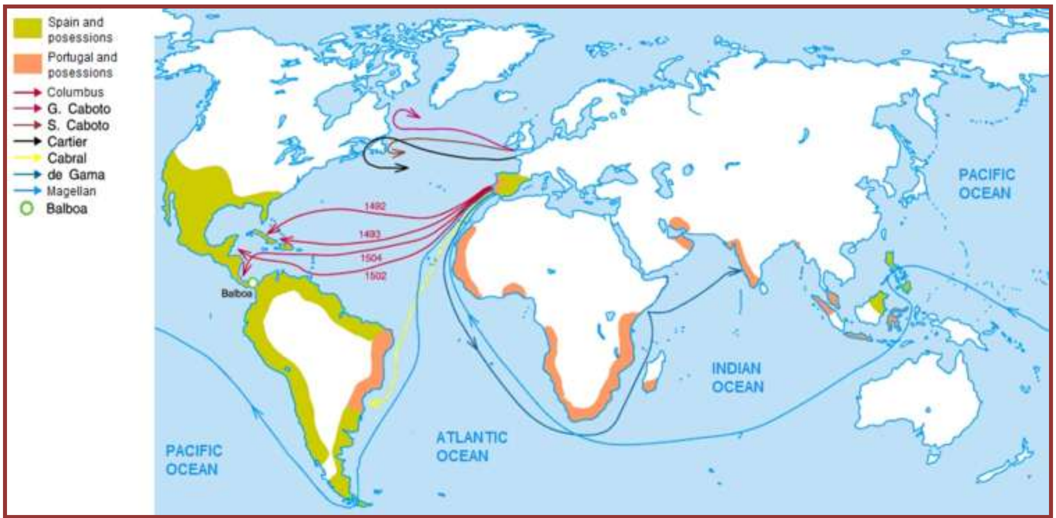

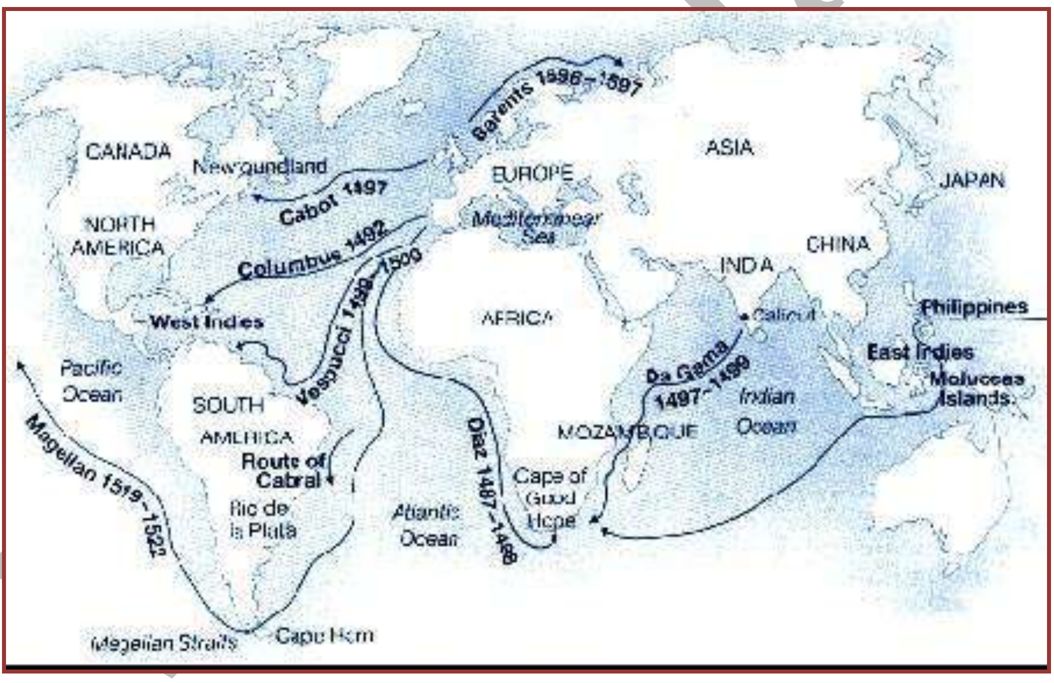

4.3. निरंकुश राजतंत्रों का उदय

- राजा और मध्य वर्ग (अधिकांशतः व्यापारी) के गठजोड़ और मध्य युग (600 ईस्वी से 1500 ईस्वी) के अंत तक सामंतवाद के पतन ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने में राजा की सहायता की। निरंकुश राजतंत्र के रूप में शक्तिशाली शासकों ने सामंतों को अपने अधीन कर लिया और चर्च के राजनीतिक हस्तक्षेप को खारिज कर दिया।
- सन् 1665 में निरंकुशता को एक लिखित संविधान में सम्मिलित करने वाला डेनमार्क प्रथम राष्ट्र बना। इसके अतिरिक्त, प्रशा (वर्तमान जर्मनी), इंग्लैंड, हॉलैंड, ऑस्ट्रिया, फ्रांस आदि में शक्तिशाली राजतंत्र थे। उदाहरण के लिए, लुई चौदहवें ने 17वीं शताब्दी में फ्रांसीसी साम्राज्य को संगठित किया और 18वीं सदी के पहले दशक तक फ्रांस की गणना एक शक्तिशाली देश के रूप में की जाने लगी।

4.4. इंग्लिश रिवोल्युशन (अंग्रेजी क्रांति)

- इंग्लैंड में निरंकुश राजतंत्र के स्थान पर लोकतांत्रिक शासन के लिए संघर्ष हुआ। अंग्रेजी गृह-युद्ध (1642-51) संसद समर्थकों और राजशाही समर्थक के मध्य लड़ा गया था। संसद समर्थक किंग चार्ल्स प्रथम के निरंकुश शासन के विरुद्ध थे। चार्ल्स प्रथम शासन करने के राजा के दैवीय अधिकार में विश्वास करता था। संसद समर्थकों ने राजा द्वारा संसद की सहमति के बिना करारोपण का विरोध किया। इस गृह-युद्ध के परिणाम स्वरुप:
    - राजा को प्राणदंड दे दिया गया,
    - इंग्लैंड में ईसाई पूजा (Christian worship) पर इंग्लैंड के चर्च (इंग्लैंड का चर्च कैथोलिक समर्थक था, इसने तलाक की इजाज़त जैसे कुछ ही सुधारवादी सिद्धांतों को अपनाया था) के एकाधिकार का अंत हो गया।
    - इस सिद्धांत की स्थापना हुई कि राजा संसद की सहमति के बिना शासन नहीं कर सकता है।
- इंग्लैंड में 1688 की गौरवपूर्ण क्रांति ने कानूनी रूप से संसद की सर्वोच्चता स्थापित की। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि शासन-शक्ति की सर्वोच्च अधिकारिणी संसद है, न कि सम्राट। इस क्रांति के दौरान संसद ने पहली बार राजा को नियुक्त किया। राजा को हटा दिया गया और उसके दामाद, हॉलैंड से **विलियम ऑफ ऑरेंज** को राजा बनाया गया। विलियम और उसकी पत्नी मेरी दोनों को अधिकारों की घोषणा की रक्षा की शपथ लेनी पड़ी और अधिकारों की इस घोषणा को बिल ऑफ़ राइट्स (1689) के रूप में परिवर्तित किया गया। इस प्रकार, अंग्रेजी गृह युद्ध (1642-1651) द्वारा स्थापित एक सीमित संवैधानिक राजशाही के साथ, इंग्लैंड संसद के वर्चस्व वाला एक लोकतंत्र बन गया।

5. वैश्विक सप्त वर्षीय युद्ध (1756-63)

(Seven Year Global War)

5.1. भूमिका

- वैश्विक सप्त वर्षीय युद्ध 1756 से 1763 तक लड़ा गया था। वास्तव में यह फ्रांस और ब्रिटेन के बीच नौ वर्षों (1754-63) तक लड़ा गया एक युद्ध था। स्पेन, प्रशा और ऑस्ट्रिया जैसी अन्य यूरोपीय शक्तियाँ भी युद्ध में सम्मिलित थीं। इसे वैश्विक युद्ध कहा जाता है क्योंकि यह उत्तरी अमेरिका, कैरेबियाई देशों, भारत, अफ्रीका के पश्चिमी तट और यूरोप में विभिन्न युद्ध-क्षेत्रों में लड़ा गया था।

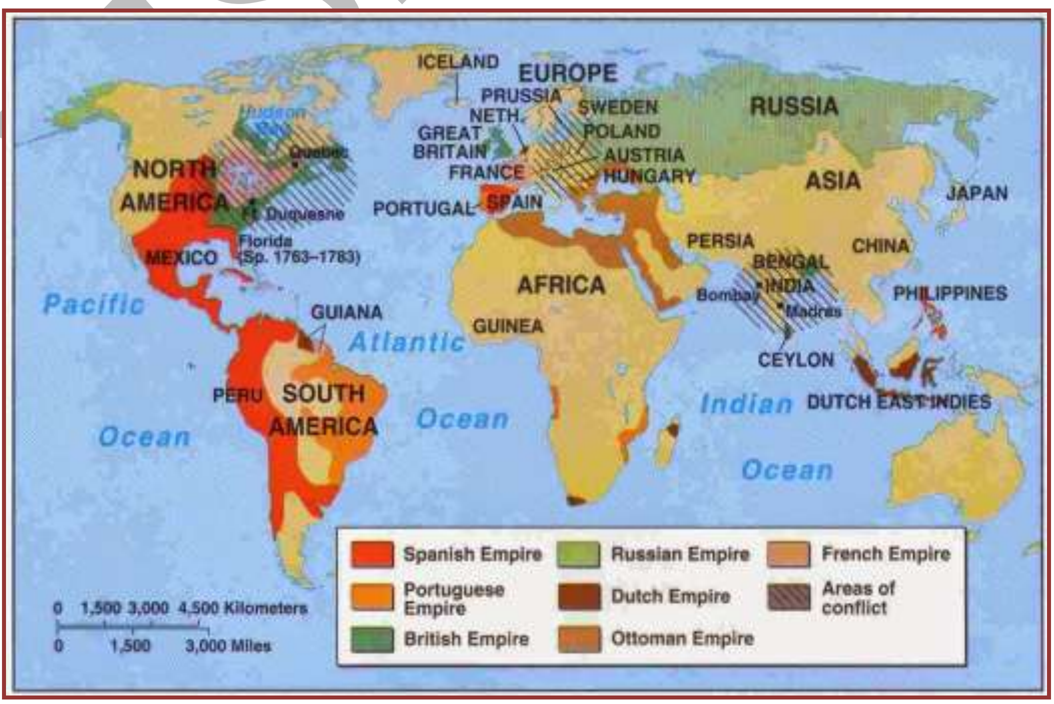

VISION IAS

5.2. युद्ध के कारण

- युद्ध के पीछे का मुख्य कारण ब्रिटेन और फ्रांस के बीच उपनिवेशों पर आधिपत्य के लिए होड़ थी।
- उत्तरी अमेरिका में, अटलांटिक महासागर के पश्चिमी तट पर अंग्रेजों की 13 कॉलोनियाँ थीं। वे अधिक कच्चे माल की चाह में पश्चिम की ओर विस्तार करना चाहते थे और उत्तरी अमेरिका में निर्यात का बाजार बढ़ाना चाहते थे। परन्तु पश्चिमी हिस्सा फ्रांस के प्रभुत्व में था। राजनीतिक और आर्थिक मामलों में ब्रिटिश वर्चस्व को रोकने हेतु फ्रांसीसी उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी हिस्से पर अपना प्रभुत्व बनाए रखना चाहते थे।
- ब्रिटेन उस समय औद्योगिक क्रांति (1750 के बाद) के दौर से गुजर रहा था। यह विश्व के बाजारों में ब्रिटिश माल को और अधिक प्रतिस्पर्धी बना रहा था। इसके अतिरिक्त, ब्रिटेन एक प्रभावी समुद्री शक्ति के रूप में उभर रहा था और इसके समुद्री व्यापार से होने वाला लाभ भी बढ़ रहा था। इस प्रकार, फ्रांस को डर था कि उत्तरी अमेरिका में मजबूत ब्रिटेन जल्द ही कैरेबियाई देशों में स्थापित फ्रांसीसी उपनिवेशों को चुनौती देगा। हालांकि उनका डर सही साबित हुआ और गन्ने की लाभदायक कृषि वाले उनके कैरेबियाई उपनिवेशों में अंग्रेजों ने स्पेन और फ्रांस के विरुद्ध युद्ध किया।
- पश्चिम अफ़्रीकी देश सेनेगल गोंद के प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध था और यहां के फ्रांसीसी व्यापारिक बंदरगाह भी ब्रिटिश हमलों की चपेट में आए थे।
- भारत में 1757 में प्लासी का युद्ध बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच लड़ा गया था। इस युद्ध के परिणामस्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल में विशेष व्यापारिक अधिकार प्राप्त हुआ और इस क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा सम्पूर्ण व्यापार पर नियंत्रण ने भारत में फ्रांसीसियों के प्रभाव को कम कर दिया। इसके अतिरिक्त, 1760-61 में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच वांडिवाश की लड़ाई ने दक्षिण एशिया में ब्रिटिश वर्चस्व स्थापित किया, जबकि फ्रांस पांडिचेरी तक ही सीमित हो गया।

5.3. परिणाम: 1763 की पेरिस संधि

- सप्त वर्षीय युद्ध के पश्चात् 1763 में पेरिस की संधि पर हस्ताक्षर किये गये थे जिसके परिणाम स्वरुप:
  - ब्रिटेन को फ़्रांस से कनाडा और स्पेन से फ्लोरिडा प्राप्त हुए।
  - फ़्रांस को कैरेबियन सुगर आइलैंड्स (गन्ने की कृषि से संपन्न क्षेत्र) अपने पास रखने की अनुमति मिली।
  - क्यूबा और फिलिपींस पर स्पेन के नियंत्रण को मान्यता मिल गई।
- विश्व राजनीति पर सप्त वर्षीय युद्ध का प्रभाव यह रहा कि फ़्रांस का प्रभुत्व घट गया, वहीं ब्रिटेन ने अपनी औपनिवेशिक शक्ति को संगठित कर लिया। इसने अमेरिकी क्रांति (1765-83) और फ़्रांसीसी क्रांति (1789) के लिए भूमि भी तैयार कर दी थी।

6. अमेरिकी क्रांति (1765-1783)

6.1. भूमिका

- उत्तरी अमेरिका में, अटलांटिक महासागर के पश्चिमी तट पर अंग्रेजों ने 13 उपनिवेश स्थापित कर लिए थे। सप्त वर्षीय युद्ध के पश्चात्, शेष उत्तरी अमेरिका में फ़्रांस का प्रभुत्व समाप्त हो गया।

6.2. अंग्रेजों के प्रति अमेरिका वासियों के आक्रोश के कारण

- एक ओर जहाँ अंग्रेजों के वाणिज्यिक पूंजीवाद ने श्वेत अमेरिकियों में आक्रोश उत्पन्न किया, वहीं सप्त वर्षीय युद्ध से ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिन्होंने अमेरिकी क्रांति के लिए तत्काल चिंगारी का कार्य किया।

VISION IAS

6.2.1. वाणिज्यिक पूंजीवाद

- 18वीं शताब्दी में वाणिज्यिक पूंजीवाद अंग्रेजों की औपनिवेशिक नीति का एक प्रमुख हिस्सा था। यह इस विचार पर आधारित था कि सरकार को घरेलू अर्थव्यवस्था और उपनिवेशों को नियंत्रित करना चाहिए, ताकि राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि हो और एक सकारात्मक व्यापार संतुलन स्थापित किया जा सके। एक सकारात्मक व्यापार संतुलन तब प्राप्त होता है जब कोई देश वस्तुओं का शुद्ध निर्यातक (मूल्य के सन्दर्भ में) होता है। यह नीति उपनिवेशों पर व्यापार प्रतिबंध लगाने और इन उपनिवेशों में होने वाले व्यापार में अंग्रेजी कम्पनियों के एकाधिकार की स्थापना के रूप में प्रकट हुई। ये प्रतिबन्ध, अंग्रेजी औपनिवेशिक नीति के वाणिज्यिक पूंजीवाद के अंग थे और अमेरिकियों द्वारा अपने घरेलू उद्योग विकसित करने की राह में बाधक थे। अंग्रेजी कानून के अंतर्गत इन उपनिवेशों पर अपने व्यापार हेतु गैर-ब्रिटिश पोतों का उपयोग प्रतिबंधित था। अमेरिकी उपनिवेशों से कुछ कच्चे माल का निर्यात केवल ब्रिटेन को ही किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त गैर-ब्रिटिश वस्तुओं के अमेरिका में आयात पर बहुत भारी शुल्क लगाया गया था। इस प्रकार के व्यापार प्रतिबन्ध वाणिज्यक पूंजीवाद के विशिष्ट लक्षण हैं।
- इसके अतिरिक्त, अमेरिकियों के ऊपर लौह और वस्त्र उद्योग की स्थापना पर कानूनी प्रतिबंध था। क्योंकि लौह और वस्त्र के तैयार माल का निर्यात अंग्रेज व्यवसायियों के लिए एक बहुत ही लाभप्रद व्यवसाय था।

चित्र: अमेरिकी क्रांति का एक दृश्य

6.2.2. 1763 की घोषणा

- अमेरिकी क्रांति का उद्देश्य उत्तरी अमेरिका में अंग्रेजी उपनिवेशवाद को समाप्त करना था। अंग्रेजी संसद ने सप्त वर्षीय के युद्ध की समाप्ति पर सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ करने वाले अमेरिकी मूल निवासियों अर्थात रेड इंडियंस, के साथ युद्धविराम के रूप में "**1763 की घोषणा**" (Proclamation of 1763) जारी की जिसमें अमेरिकी अधिवासियों पर अप्लेशियन पर्वत की ओर विस्तार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया क्योंकि यह क्षेत्र अब रेड इंडियंस के लिए आरक्षित था।

- इस घोषणा के पीछे का एक और कारण कुलीन अंग्रेजों द्वारा की गई पैरवी भी थी, जो पश्चिम की ओर विस्तार नहीं चाहते थे क्योंकि उन्होंने अमेरिकी उपनिवेशों में जो भूमि खरीदी थी उस पर बसने वाले श्वेत निवासियों से प्राप्त होने वाले किराये से लाभान्वित हो रहे थे। श्वेत अमेरिकी निवासी जिन्होंने पश्चिम की ओर विस्तार के लिए अंग्रेजों के साथ मिल कर सप्त वर्षीय युद्ध लड़ा था, अब अपने आप को ठगा अनुभव कर रहे थे, इसलिए उन्होंने इस घोषणा की अवहेलना की। उनकी स्थानीय सेनाओं ने पश्चिमी क्षेत्र को अपने नियंत्रण में लाना जारी रखा।

6.2.3. प्रबुद्ध विचारकों की भूमिका

- प्रबोधन या "तर्क का युग" एक आन्दोलन था। इसे 17वीं शताब्दी में **हॉब्स** और **लॉक** जैसे विचारकों ने सरकार के प्रारूप और लोगों के अधिकारों को लेकर प्रस्तुत किया था। 18वीं सदी के मध्य में यह अपने चरम पर था।
- **हॉब्स** निरपेक्ष राजशाही का समर्थक था और उसने सामाजिक अनुबंध की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसका अर्थ यह था कि चूंकि सभी लोग स्व-हित में व्यवहार करते हैं अतः लोगों को अपने कुछ अधिकार सरकार के लिए छोड़ देने चाहिए, जिसके बदले में सरकार द्वारा समाज को कानून और व्यवस्था प्रदान करनी चाहिए।
- दूसरी ओर, **लॉक** ने मनुष्य के संबंध में सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और उसका मानना था कि मनुष्य अपने अनुभव से सीख सकता है। वह स्व-शासन की अवधारणा का समर्थक था। लॉक के अनुसार जन्म से सभी लोग स्वतंत्र और समान हैं और उनके पास **तीन प्राकृतिक अधिकार हैं – जीवन, स्वतंत्रता और सम्पत्ति**। लॉक का कथन था कि सरकार का कर्तव्य है कि वह इन अधिकारों की रक्षा करे। यदि सरकार ऐसा करने में विफल रहती है तो, नागरिकों को उसे उखाड़ फेंकने का अधिकार है। **(विद्रोह का यह अधिकार, फ़्रांसिसी क्रांति में जैकोबियन संविधान का भाग भी था।)**
- इन आधुनिक विचारकों और दार्शनिकों ने अमेरिकी और फ़्रांसीसी क्रांतियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1750 के आसपास, कई विचारक यथास्थिति को चुनौती दे रहे थे और लोगों के लिए स्वतंत्रता (freedom) और स्वाधीनता (liberty) की मांग कर रहे थे। इन आधुनिक विचारकों और दार्शनिकों ने लोगों के समक्ष शासन के लोकतान्त्रिक स्वरूप का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने गणतंत्रवाद और उदारवाद के विचारों को विकसित होने में सहायता की, जो उपनिवेशवाद के विरुद्ध प्रभावी थे। लॉक, हैरिंगटन और मिल्टन जैसे अंग्रेज दार्शनिकों की यह मान्यता थी कि मनुष्यों के कुछ मौलिक अधिकार होते हैं, जिनका कोई भी सरकार उल्लंघन नहीं कर सकती। 1690 में लॉक ने मनुष्यों के तीन प्राकृतिक अधिकारों को परिभाषित किया। मॉन्टेस्क्यू ने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का वर्णन किया। फ़्रांस के **टॉमस पेन** ने यह तर्क दिया कि यह हास्यापद है कि एक महाद्वीप (उत्तरी अमेरिका) पर एक द्वीप (ब्रिटेन) का शासन है।
- फ़्रांस में 18वीं शताब्दी के मध्य में प्रबुद्ध विचारकों ने निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए, जिन्होंने, अमेरिकी क्रांति और फ़्रांसीसी क्रांति दोनों ही को प्रभावित किया था:
    - **तर्क:** प्रबुद्ध विचारकों का विश्वास था कि सत्य की खोज तर्क या तर्कसंगत सोच के माध्यम से की जा सकती है। उन्होंने कहा, कि तर्क का अर्थ है किसी की विचारधारा में असहिष्णुता और पूर्वाग्रह का अभाव।
    - **प्रकृति:** उनके लिए जो भी प्राकृतिक था वह अच्छा और उचित था। उनका विश्वास था कि जैसे गति के प्राकृतिक नियम हैं, उसी प्रकार से अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र के भी प्राकृतिक नियम हैं।
    - **प्रसन्नता:** प्रकृति के नियमों के अनुसार जीने वाला व्यक्ति प्रसन्नता प्राप्त कर ही लेगा। ये दार्शनिक चर्च की इस मध्ययुगीन धारणा को लेकर क्षुब्ध थे कि लोगों को मृत्यु के पश्चात् प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए इस संसार में व्याप्त दुःखों को स्वीकार कर लेना चाहिए। ये पृथ्वी पर सबका कल्याण चाहते थे और उनका विश्वास था कि यह सम्भव है।

VISION IAS

- **प्रगति:** समाज की प्रगति में इन यूरोपीय दार्शनिकों ने सर्वप्रथम विश्वास किया। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ उनका यह मानना था कि, समाज और मानवता को पूर्ण बनाया जा सकता है।
- **स्वाधीनता:** इन दार्शनिकों को उन स्वतंत्रताओं से ईर्ष्या थी जिसे ब्रिटिश जनता ने अपनी गौरवपूर्ण क्रांति (1688) में प्राप्त किया था। फ़्रांस में भाषण, धर्म, व्यापार और व्यक्तिगत यात्रा पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध थे। उनका मानना था की तर्क के द्वारा समाज को मुक्त किया जा सकता है।

6.2.4. युद्ध (सप्त वर्षीय) व्यय की पुनर्प्राप्ति

- सप्त वर्षीय युद्ध में ब्रिटेन का बहुत धन व्यय हुआ था। जब उसने युद्ध के व्यय को उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों पर टैक्स थोप कर वसूलने का निर्णय किया तो वहाँ के निवासियों ने इसका विरोध किया।

6.2.5. ब्रिटिश संसद में कोई प्रतिनिधित्व नहीं

- ब्रिटिश संसद ने 1765 में स्टाम्प अधिनियम पारित किया, जिसमें अमेरिका के सभी ब्रिटिश उपनिवेशों में सभी प्रकार के व्यवसायिक लेन-देन पर **स्टाम्प कर** लगा दिया गया। उदाहरण के लिए कुछ राशि की टिकट सभी कानून दस्तावेजों किए लिए अनिवार्य बनाई गयी। अमेरिकियों ने इसके प्रतिक्रिया स्वरूप ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार किया और जल्द ही कई शहरों में विद्रोह शुरू हो गए जहाँ से कर अधिकारियों को भगा दिया गया।
- चूंकि, ब्रिटिश संसद में कोई अमेरिकी प्रतिनिधित्व नहीं था, इसलिए अमेरिकी नेताओं ने ब्रिटेन द्वारा उन पर किसी भी प्रकार का कर लगाने के अधिकार का विरोध किया। इसके अतिरिक्त अमेरिकियों ने यह अनुभव किया कि इस प्रकार एकत्र किये गये धन को अंग्रेजों के हितों के लिए उपयोग किया गया था, न कि अमेरिकी लोगों के विकास के लिए। **मैसाचुसेट्स सभा** में सभी 13 उपनिवेशों के नेता एकत्र हुए और उन्होंने, **प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं (No Taxation without Representation)** के नारे को अपनाया।
- अमेरिकी नेताओं द्वारा ब्रिटिश वस्तुओं के आयात को रोकने की धमकी ने अंग्रेजों को स्टाम्प अधिनियम निरस्त करने के लिए विवश कर दिया।
- पुनः, अमेरिकियों ने उपनिवेशों में उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पर शुल्क के विरोधस्वरूप ब्रिटिश वस्तुओं के आयात को घटा कर आधा कर दिया, जिसने अंग्रेजों को चाय पर कर के अतिरिक्त सभी करों को वापस लेने के लिए विवश कर दिया। चाय पर कर बहुत अधिक नहीं था, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने इसे वापस नहीं लिया, क्योंकि वे अमेरिकी उपनिवेशों पर अपने कराधान के अधिकार को बनाए रखना चाहते थे। ***1773 की बोस्टन टी पार्टी*** वस्तुतः चाय पर कर लगाए जाने के विरोधस्वरुप घटित हुई थी। बोस्टन बन्दरगाह पर चाय से भरे एक पोत ने लंगर डाला था। प्रारम्भ में तो अमेरिकियों ने पोत को खाली करने की अनुमति नहीं दी, परिणामस्वरूप कई दिन तक अनिश्चय की स्थिति बनी रही। अंत में जब बोस्टन के ब्रिटेन समर्थक गवर्नर ने पोत को खाली करने का आदेश दिया तो श्वेत प्रवासियों ने अमेरिकी इंडियंस जैसे परिधान पहन कर चाय के सभी डिब्बों को समुद्र में फेंक कर नष्ट कर दिया। कुपित ब्रिटिश सरकार ने इसके प्रतिक्रिया स्वरूप बोस्टन के सभी बन्दरगाहों को व्यापार के लिए बंद कर दिया और **1774 का कोएर्सिव एक्ट (Coercive Acts)** पारित कर दिया। (अमेरिकियों ने इन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित **इनटॉलरेबल एक्ट** का नाम दिया था।)

VISION IAS

चित्र: बोस्टन टी पार्टी

6.2.6. 1774 का कोएर्सिव एक्ट और फिलाडेल्फिया कांग्रेस

- बोस्टन टी पार्टी की घटना के लिए ब्रिटेन ने मैसाचुसेट्स को दंडित करने एवं उसके स्वशासन के अधिकार को समाप्त करने के लिए **कोएर्सिव एक्ट** पारित किया था, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरुप 12 उपनिवेशों (जार्जिया ने इसमें भाग नहीं लिया था क्योंकि यह अमेरिकी इंडियन्स के आतंक से निबटने में अंग्रेजों की सहायता पाना चाहता था) ने मिलकर पहले **महाद्वीपीय कांग्रेस या फिलाडेल्फिया कांग्रेस (1774)** का आयोजन किया था। अमेरिकियों ने सम्राट जार्ज तृतीय से घरेलू उद्योगों पर से प्रतिबन्ध हटाने, सभी देशों के साथ कम दरों पर व्यापार करने और अमेरिकी उपनिवेशों पर उनकी सहमति के बिना कर न लगाने की अपील भी की थी। ब्रिटेन ने इन मांगों का अर्थ एक विद्रोह के रूप में लिया और उपनिवेशों पर 1775 में हमला कर दिया। इसके कारण अमेरिकी प्रतिनिधियों ने **1776 में स्वतंत्रता का घोषणापत्र** बनाया (जिसका प्रारूप **थॉमस जेफरसन** द्वारा बनाया गया था), इसके निम्नलिखित बिंदु थे:
    - ईश्वर ने सभी मनुष्यों को समान बनाया है।
    - ईश्वर ने उन्हें कुछ ऐसे अधिकार दिए हैं, जिन्हें उनसे कोई छीन नहीं सकता। इन अधिकारों में जीवन, स्वतंत्रता और सुख के लिए प्रयत्न शामिल हैं।
    - गणतंत्रवाद, अर्थात सत्ता का स्रोत जनता है और दृढ़तापूर्वक यह कहा गया कि जनता को अपनी सरकार बनाने का पूर्ण अधिकार है।
    - स्वतंत्रता अर्थात अमेरिकी उपनिवेशों का ब्रिटिश सरकार ने दमन किया था और इन उपनिवेशों को मुक्त और स्वतंत्र राज्य होना चाहिए (*ध्यान दें यहाँ उपनिवेशों ने स्वयं को "स्वतंत्र राज्य" घोषित किया था। संयुक्त राज्य संघ बनाने के लिए राज्यों के साथ आने का सिद्धांत इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है)।
- स्वतंत्रता के घोषणापत्र ने दो कार्य किए – इसने "स्व-प्रमाणित सत्य (self evident truths)" के रूप में लॉक जैसे प्रबुद्ध विचारकों के राजनीतिक दर्शन का सार उपलब्ध कराया और उपनिवेशों और मातृ-देश से संबंध विच्छेद के औचित्य को सिद्ध करने के लिए शिकायतों को सूचीबद्ध किया।

VISION IAS

चित्र: महाद्वीपीय कांग्रेस या फिलाडेल्फिया कांग्रेस (1774)

6.3. अमेरिकी क्रांति युद्ध या अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम (1775)

- इसके पश्चात् की घटना को अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम कहा गया। राजभक्त ऐसे ब्रिटिश प्रवासी थे जो ब्रिटेन के प्रति निष्ठावान रहे और उनकी ओर से लड़े। फ्रांस, स्पेन और डच गणराज्य ने गुप्त रूप से अमेरिकियों की सहायता की। 1777 में ब्रिटेन ने कनाडा की ओर से हमला कर के अमेरिका को घेरने का प्रयास किया। इस युद्ध में उनकी विफलता अमेरिकियों के पक्ष में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई। स्पेन की सेना ने ब्रिटिश सेना को फ्लोरिडा से खदेड़ दिया। (फ्लोरिडा सप्त वर्षीय युद्ध से अंग्रेजों के पास था। बाद में फ्लोरिडा को अमेरिका ने स्पेन से खरीद लिया था)।
- 1783 में ब्रिटिश कमांडर कार्नवालिस ने जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व वाली सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।

6.3.1. 1783 की द्वितीय पेरिस संधि

- अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम इस संधि के साथ समाप्त हुआ। इस संधि के कुछ महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद इस प्रकार थे:
  - संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन के मध्य सतत शांति।
  - सभी अमेरिकी उपनिवेशों को स्वतंत्र, सार्वभौम और स्वतंत्र राज्यों के रूप में मान्यता दी गई, इसके साथ ही ब्रिटेन ने सरकार, सम्पत्ति और क्षेत्र पर सभी दावों को छोड़ दिया।
  - अमेरिका ने सभी राजभक्त लोगों की जब्त की गई भूमियों को वापस कर दिया।
  - स्पेन ने ब्रिटेन के साथ एक अलग संधि पर हस्ताक्षर किए और फ्लोरिडा को वापस ले लिया (जिसे 1763 की पेरिस की संधि के पश्चात् ब्रिटेन को दे दिया था)।

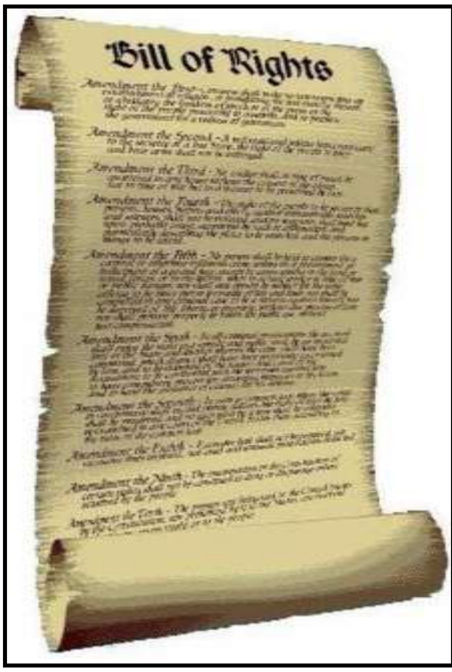

6.3.2. अमेरिकी क्रांति की समालोचना

- 1789 में संयुक्त राज्य का संविधान प्रभावी हो गया। यह पहला लिखित गणराज्यिक संविधान था। **बिल ऑफ़ राइट्स** संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के पहले दस संशोधनों का समूह है और इसमें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, प्रेस, धर्म और न्याय की स्वतंत्रता सम्मिलित है।
- अमेरिकी क्रांति ने विश्व के पहले लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना की। जल्द ही अमेरिका औद्योगिक क्रांति के युग में प्रवेश कर गया। इसके साथ ही इसने उत्तरी अमेरिका में पश्चिमी की ओर अपने क्षेत्र का विस्तार किया और फ़्रांस से लुइसियाना जैसे क्षेत्र को 1803 में और स्पेन से फ्लोरिडा को 1819 में खरीद लिया।
- संयुक्त राज्य अमेरिका का गणतन्त्र भी पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं था। गणराज्य वास्तव में लोकतान्त्रिक नहीं था, क्योंकि महिलाओं, अश्वेतों और रेड इंडियन्स को मतदान का अधिकार नहीं था। समानता के सिद्धांत पर **दासता** एक धब्बा थी और अंततः दासता का उन्मूलन अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी राज्यों के बीच 1861-65 के गृहयुद्ध के पश्चात् ही किया जा सका। दक्षिणी राज्य दासता उन्मूलन के विरुद्ध थे, क्योंकि उनकी अर्थव्यस्था कृषि आधारित थी और उसके लिए उन्हें सस्ते अश्वेत श्रमिकों की आवश्यकता थी। उन्होंने दास व्यापार से लाभ भी अर्जित किया था और वे चाहते थे कि दास प्रथा का विस्तार नए अधिग्रहीत क्षेत्रों में भी किया जाए।
- यह तर्क दिया जा सकता है कि अमेरिकी संविधान में जिस मनुष्य को संदर्भित किया गया है वह सम्पत्तिवान मनुष्य है, क्योंकि अधिकार केवल उन्हीं लोगों को दिए गये थे जिनके पास सम्पत्ति थी।
- फिर भी, अमेरिकी क्रांति का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान यह रहा कि इसने स्वाधीनता, समानता, मौलिक अधिकार, राष्ट्रवाद और उपनिवेशवाद विरोधी विचारों को आगे बढ़ाया। उस समय में कुलीन वर्ग को बिना किसी विशेषाधिकार के सभी के लिए समानता एक क्रन्तिकारी विचार था, जबकि समूचा विश्व सामन्तवाद के अधीन था, जहाँ कुलीन वर्ग प्रमुख वर्ग था। सम्पत्ति पर कोई भी कर न लगाने का विचार, जो सम्पत्ति के अधिकार से प्रभावी हुआ था अपने समय में एक अनूठा विचार था। इस प्रकार से अमेरिकी क्रांति विचारों और राजनीतिक व्यवस्था की क्रांति थी और भविष्य की घटनाओं पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा, उनमें सबसे प्रमुख 1789 की फ़्रांस की क्रांति थी।

VISION IAS

7. फ्रांसीसी क्रांति और नेपोलियन के युद्ध

- क्रान्ति से पूर्व फ्रांस में जो राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ मौजूद थीं उनके लिए 'पुरातन व्यवस्था' शब्द का प्रयोग किया जाता है। फ्रांसीसी क्रांति निरंकुश शासन, विशेषाधिकार प्राप्त समाज एवं संकटग्रस्त अर्थव्यवस्था का उत्पाद थी।

7.1. फ्रांसीसी क्रांति के पीछे निहित कारण

7.1.1. तीन एस्टेट्स

- 18वीं सदी के फ्रांस का समाज विशेषाधिकार एवं विशेषाधिकार विहीन वर्गों में विभक्त था। फ़्रांसीसी समाज तीन वर्गों या एस्टेट्स में विभाजित था। **पादरी** लोग प्रथम स्टेट्स में आते थे, **कुलीन वर्ग** द्वितीय एस्टेट्स में और तृतीय एस्टेट्स के लोग **जनसाधारण** वर्ग से सम्बंधित थे, जिसमें मध्यम वर्ग, कृषक, दस्तकार, शहरी श्रमिक, व्यापारी और बुद्धिजीवी लोग सम्मिलित थे। इस वर्ग में ही अधिकांश आबादी सम्मिलित थी।

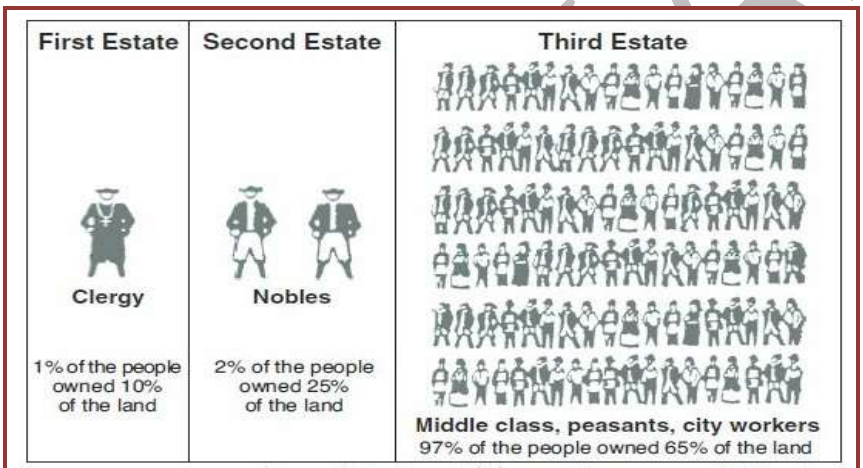

चित्र: थ्री एस्टेट्स

- पादरी लोग भी दो वर्गों में विभाजित थे- उच्च एवं निम्न। उच्च पादरी वर्ग के पास अपार धन था तथा ये सबसे बड़े भूस्वामी थे तो दूसरी ओर निम्न वर्ग के पादरी चर्च के सभी धार्मिक कार्यों को संपादित करते थे तथा सामान्य जीवन जीते थे। यह वर्ग जनसाधारण से सहानुभूति रखता था तथा क्रान्ति के समय इन लोगों ने क्रांतिकारियों का साथ दिया। कुलीन वर्ग का सरकारी सेवा, सेना और अन्य सार्वजनिक पदों के सभी महत्वपूर्ण आधिकारिक पदों पर एकाधिकार था। हालांकि, पादरी और कुलीन वर्ग के लोग किसी कर का भुगतान नहीं करते थे और कोई उत्पादक काम नहीं करते थे।
- किसान आबादी का 80 प्रतिशत थे। किसानों में भी, भू-स्वामी किसान, काश्तकार और भूमिहीन श्रमिक आदि रूपों में कई स्तरों पर उप-विभाजन था। भू-स्वामी किसानों का प्रतिशत बहुत कम था। काश्तकारों को अपनी उपज का 2/3 भाग लगान के रूप में भुगतान करना पड़ता था। वहीं दूसरी ओर, भूमिहीन श्रमिक, बहुत ही तुच्छ मजदूरी पर जीवन निर्वाह करते थे। हालांकि, तकनीकी रूप से कोई भी सर्फ नहीं था, लेकिन अभी भी सामंत के सामंती विशेषाधिकार के रूप में बेगार अस्तित्व में था और प्रायः यह सार्वजनिक कार्यों के लिए लिया जाता था।
- मध्यम वर्ग में लेखक, चिकित्सक, सिविल सेवक जैसे शिक्षित लोग और व्यापारियों जैसे संपन्न लोग थे। हालांकि आर्थिक रूप से मध्यम वर्ग महत्वपूर्ण था, लेकिन उन्हें समाज में बहुत कम सामाजिक प्रतिष्ठा

 ©Vision IAS

और राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। दस्तकार और शहरी श्रमिक भी गरीबी में दुःखमय जीवन जी रहे थे। उन्हें कार्यस्थल पर कोई अधिकार नहीं प्राप्त था और नियोक्ता द्वारा अच्छे आचरण के प्रमाण पत्र के बिना वे नौकरी नहीं बदल सकते थे। मध्य वर्ग की कुछ आर्थिक शिकायतें भी थीं। इस वर्ग ने व्यापार-वाणिज्य से संपत्ति तो अर्जित कर ली थी, परन्तु उनके व्यापार पर कई तरह के प्रतिबन्ध लगे थे और इन्हें जगह-जगह चुंगी देनी पड़ती थी। व्यापार के लिए उन्मुक्त वातावरण की चाह में ही इन लोगों ने क्रान्ति को नेतृत्व प्रदान किया।

- तृतीय एस्टेट्स के पास मताधिकार नहीं था। वहीं दूसरी ओर, पादरी लोग और कुलीन वर्ग के लोग किसी भी तरह के कर का भुगतान नहीं करते थे और कर का बोझ पूरी तरह से तृतीय एस्टेट्स द्वारा वहन किया जाता था। यही लोगों की शिकायतों का प्रमुख कारण था। इस प्रकार 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रान्ति कई मायनों में फ्रांसीसी समाज में व्याप्त असमानता के विरुद्ध संघर्ष थी।

7.1.2. अलोकप्रिय राजतंत्र और वित्तीय कठिनाइयाँ

- राजा लुई XIVवें (1643-1715) ने 'मैं ही राज्य हूँ' (I am the state) की संकल्पना के आधार पर निरंकुश राज्य की स्थापना की और शक्ति का अतिशय केन्द्रीकरण राजतंत्र के पक्ष में कर दिया। इसके उत्तराधिकारी राजा लुई XVवां (1715-1774) व लुई XVIवां (1774-1793) विलासी, अदूरदर्शी और निष्क्रिय शासक थे। लुई XVIवां निकृष्ट बुद्धिमत्ता वाला अकुशल, अयोग्य तथा अकर्मण्य शासक था। लोग उसकी पत्नी मैरी एंटोनिएट से घृणा करते थे। वह अधिकारियों की नियुक्ति में हस्तक्षेप किया करती थी। राजा भी अधिकारियों को नियुक्त करने में पक्षपात (भाई-भतीजावाद) करता था। देश की शासन पद्धति पूरी तरह नौकरशाही पर निर्भर थी, जो वंशानुगत थी।
- औद्योगिक क्रान्ति के उभरते लक्षणों का लाभ ये राजा अपने उद्योग-धंधों के लिए नहीं ले पाए और इसे मात्र अपने व्यक्तिगत हितों के लिए ही प्रयोग करते रहे। उद्योगों पर राज्य के कड़े नियंत्रण के कारण बेरोजगारी बढ़ी और इसने तस्करी और लूट-पाट की घटनाओं को भी बढ़ाया। राजा लुई XVवें के अधीन, आस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध एवं सप्तवर्षीय युद्ध जैसे महंगे युद्धों के कारण फ्रांस में वित्तीय संकट व्याप्त था। अमेरिकी क्रांति में ब्रिटेन के विरूद्ध फ्रांस द्वारा किये गए अमरीकियों की सहायता ने फ्रांस को दिवालिएपन के कगार पर पहुँचा दिया था। जहां एक ओर फ्रांस अमेरिकी क्रांति का समर्थक था (जिसका उद्देश्य लोगों के लिए स्वशासन, स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र था), वहीं दूसरी ओर फ्रांस में निरंकुश राजतंत्र था। इस प्रकार यहाँ की शासन व्यवस्था अमेरिकी क्रांति की नींव रखने वाले विचारों के साथ फिट नहीं बैठती थी।

7.1.3. प्रबुद्ध विचारकों की भूमिका

- फ्रांस के मध्यवर्ग में परिवर्तन की संभावना और उसके लिए आकांक्षा पैदा करने में फ्रांसीसी विचारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 18वीं शताब्दी में यूरोप में वैचारिक स्तर पर एक नया दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था। उनका नारा **'तर्क, सहिष्णुता और मानवता'** था। इस प्रकार क्रांतिकारी प्रबुद्ध विचारकों ने फ्रांसीसी क्रांति को सिर्फ हिंसात्मक होने से बचाया ही नहीं अपितु इसे एक बौद्धिक स्तर भी प्रदान किया। इन विचारकों में वाल्टेयर, मॉन्टेस्क्यू, रूसो आदि का नाम लिया जा सकता है। तार्किकता के आधार पर इन विचारकों ने तर्क दिया कि मनुष्य प्रसन्न रहने के लिए पैदा हुआ है, न कि पीड़ा भोगने के लिए; जैसा कि चर्च का कहना है। समाज में प्रचलित पूर्वाग्रहों को समाप्त करके यह प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है।
- इसके अतिरिक्त, उन्होंने धर्मनिरपेक्षता पर ध्यान केंद्रित किया क्योंकि या तो वे ईश्वर को मानते ही नहीं थे या फिर अपनी चर्चाओं में उसकी उपेक्षा करते थे। प्रकृति के सिद्धांत ने पादरियों को विचारकों के हमले के दायरे में ला दिया। उन्होंने बल दिया कि प्रकृति के नियमों का अध्ययन करने की आवश्यकता है और धर्म इसमें कोई सहायता नहीं कर सकता है बल्कि तर्क की शक्ति प्रकृति की समझ की कुंजी है।

VISION IAS

- **वाल्टेयर** ने अपनी पुस्तक के माध्यम से ब्रिटेन की उदार राजनीति, धर्म और विचार की स्वतंत्रता का वर्णन कर फ्रांस की पुरातन व्यवस्था में व्याप्त बुराईयों को उजागर किया। उसका मानना था कि सभी धर्म व्यर्थ हैं क्योंकि वे विवेक व तर्क के विरूद्ध थे। नास्तिक और भौतिकवादी लोकप्रियता प्राप्त कर रहे थे क्योंकि इसमें दिखाया जाता था कि मनुष्य की नियति उसके अपने हाथों में है।
- **मॉन्टेस्क्यू** ने 'दैवीय अधिकारों के सिद्धांतों' का खण्डन करते हुए **'शक्ति के पृथक्करण'** का सिद्धांत प्रतिपादित कर मात्र फ्रांसीसी राजनीतिक संस्थाओं की आलोचना ही नहीं की अपितु एक विकल्प भी प्रस्तुत किया। उसने न तो क्रान्ति की बात की और न ही राजतंत्र को समाप्त करने की वकालत की बल्कि उसने केवल निरंकुश राजतंत्र के दोषों को उजागर किया और संवैधानिक राजतंत्र की बात की।
- **रूसो** ने भी क्रान्ति की बात नहीं की लेकिन उसने मनुष्य की स्वतंत्रता और समानता का पक्ष लिया। उसने घोषित किया कि जनता की इच्छा ही किसी सरकार को वैध बनाती है। फ्रांसीसी क्रान्ति के नारे स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व उसी के विचारों से प्रभावित थे। **नेपोलियन** ने उसके महत्व को स्वीकार करते हुए कहा कि **यदि रूसो नहीं होता तो फ्रांस में क्रान्ति नहीं होती**।
- **दिदरो** ने विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) के माध्यम से धार्मिक असहिष्णुता, दोषपूर्ण कर व्यवस्था, गुलामों के व्यापार और निर्मम फौज़दारी कानून जैसी व्यवस्थाओं पर प्रहार किया। विचारकों का एक वर्ग इस समय फ्रांस की आर्थिक अव्यवस्था और उसके विश्लेषण पर भी केन्द्रित था। इनमें **तूर्जो, क्वेसने और मिराबों** प्रमुख हैं। क्वेसने मुक्त व्यापार, व्यापारिक उत्पादन एवं वितरण की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक था तथा चुंगी कर एवं अन्य करों का विरोधी था। इस प्रकार स्पष्ट रूप से दार्शनिकों और विचारकों ने फ्रांसीसी क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार की।

7.2. 1789 की फ्रांसीसी क्रांति की घटनाएँ

- 1789 में, राजा लुई XVIवें ने अतिरिक्त कोष के लिए सहमति प्राप्त करने हेतु एस्टेट्स जनरल की बैठक बुलाई। एस्टेट्स जनरल तीनों एस्टेट्स की पुरानी सामंती सभा थी। तृतीय एस्टेट्स के प्रतिनिधियों ने अतिरिक्त कोष का विरोध किया क्योंकि वही एकमात्र करदाता थे और ऐसे किसी भी अतिरिक्त वित्त से पड़ने वाले कर का बोझ उन्हें ही उठाना पड़ता। हालांकि उन्होंने सभा के लिए दोगुने प्रतिनिधित्व की मांग की थी और प्राप्त भी कर लिया था, लेकिन जब उन्हें पता चला कि प्रतिनिधियों की संख्या से निरपेक्ष सभी तीनों एस्टेट्स को बराबर मत प्राप्त होगा तो वे क्रुद्ध हो गए। जब वाद-विवाद में गतिरोध पैदा हो गया, तो तृतीय एस्टेट्स के प्रतिनिधियों ने अपने आपको **नेशनल असेंबली** घोषित कर दिया, जो एस्टेट्स की सभा (जैसे एस्टेट्स जनरल) की बजाय लोगों की सभा थी। शीघ्र ही वे अपनी बैठक निकट के शाही टेनिस कोर्ट में लेकर चले गए। उन्होंने घोषणा की कि वे केवल तृतीय वर्ग के नहीं सारे राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं। उनका लक्ष्य फ्रांस के लिए संविधान तैयार करना था जिसमें तृतीय एस्टेट्स का भी मताधिकार होता। द्वितीय एस्टेट्स ने इसे पुरातन व्यवस्था समाप्त करने के प्रयास के रूप में देखा और राजा को नेशनल असेंबली को कुचलने के लिए विवश किया। जब राजा ने तृतीय एस्टेट्स के नेताओं को तितर-बितर करने के लिए सैनिकों को भेजा, तो लोग क्रुद्ध हो गए और बास्तील किले (यहां प्रायः राजनीतिक बन्दी रखे जाते थे) को तोड़ने चल पड़े (14 जुलाई 1789)। उन्होंने कैदियों को मुक्त करा लिया और जेल में संग्रहीत हथियारों और गोला-बारूद पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया। यह राजा के विरूद्ध प्रतीकात्मक विद्रोह था और वस्तुत: इसने उसके अधिकार के अंत को प्रदर्शित किया। बास्तील की घटना के बाद, नेशनल असेंबली ने कानून बनाना आरंभ किया और **मनुष्य और नागरिकों के अधिकार (Rights of Man and Citizen)** नामक फ्रांसीसी क्रांति के प्रसिद्ध प्रलेख को अंगीकृत किया। नेशनल असेंबली ने सामंतवाद का उन्मूलन कर दिया, फ्रांसीसी चर्च पर से रोमन नियंत्रण को समाप्त कर दिया और राजव्यवस्था में चर्च का प्रभाव कम करने के लिए चर्च की शक्तियाँ कम कर दीं।

VISION IAS

चित्र: बास्तील किले का पतन

- मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा (27 अगस्त 1789) में निम्नलिखित बिंदु निहित थे:
  - सभी मनुष्य स्वतंत्र और समान हैं।
  - कानून के समक्ष समानता।
  - दोषसिद्धि तक निर्दोषता का सिद्धांत।
  - सभी लोग सार्वजनिक पदों के लिए योग्य हैं।
  - भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता।
  - निजी संपत्ति का अधिकार, जब तक कि सार्वजनिक कल्याण इस अधिकार का उल्लंघन करना आवश्यक न बनाए।
  - समाज के पास प्रत्येक सिविल सेवक से उत्तरदायित्व की मांग करने का अधिकार है।
- इस प्रलेख ने राष्ट्र शब्द को उसका आधुनिक अर्थ दिया, अर्थात् राष्ट्र एक प्रदेश में रहने वाले लोगों का कुल योग है, न कि स्वयं प्रदेश। राष्ट्र के विचार के बाद लोगों की संप्रभुता का विचार आया। इस प्रकार लोग सभी शक्तियों और प्राधिकारों का स्रोत थे और लोगों से ऊपर कोई भी शासक नहीं हो सकता था, सिवाय गणतंत्र के।
- फ्रांसीसी क्रांतिकारी युद्ध (The French Revolutionary War) 1792 से 1802 तक लड़े गए कई युद्धों की एक श्रृंखला थी। फ्रांस ने ये युद्ध ऑस्ट्रिया, प्रशा और सेवाय (इटालियन राज्य) के निरंकुश राजतंत्रों के विरूद्ध लड़े। इसके पीछे प्रमुख कारण यह था कि ये निरंकुश राजतंत्र क्रांति से व्युत्पन्न स्वतंत्रता और समानता के विचारों के विरुद्ध सत्ता पर अपनी पकड़ ढ़ीली होने से खुद को बचाने की इच्छा रखते थे। इन्हें क्रांतिकारी युद्धों के रूप में जाना जाता है क्योंकि फ्रांस 1789 की क्रांति की रक्षा करने का प्रयास कर रहा था, जिसे पड़ोसी राजतंत्रों से खतरा था। पड़ोसी राजतंत्रों को अपने देशों में फ्रांसीसी क्रांति फैलने का डर था। इसलिए वे फ्रांस में राजतंत्र पुनर्स्थापित करना चाहते थे। फ्रांसीसी बलों ने सहायता प्रदान करके और स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व के विचारों का प्रसार करके उन क्षेत्रों के लोगों का भी समर्थन जुटाने का प्रयास किया जो उनके नियंत्रण में आए। 1793 में राजा और फ्रांस की रानी को मृत्यु के घाट उतार दिया गया और फिर फ्रांस ने ब्रिटेन, हॉलैंड, स्पेन और हंगरी के विरूद्ध पूर्व-रक्षात्मक (pre-emptive) युद्ध घोषित कर दिया।

VISION IAS

7.2.1. जैकोबियन और नेपोलियन

- मतदाता के रूप में योग्य होने के लिए, व्यक्ति की एक निश्चित सीमा से अधिक आय होनी चाहिए थी। इस सशर्त मताधिकार के कारण तृतीय एस्टेट्स का बहुमत अभी भी मतदाता नहीं बन सका था। अभिजात्य वर्ग का स्थान बुर्जुआ वर्ग ने ले लिया था और किसानों और शहरी श्रमिकों की स्थिति में उस तरह का सुधार नहीं आया था जैसी उन्होंने आशा की थी। इसके तुरंत बाद, 1793 में कट्टरपंथी, उग्र और संगठित जैकोबियन फ्रांस में सत्ता में आए। उन्होंने आय खंड हटाकर मताधिकार को शर्तरहित बना दिया।
- जैकोबियन के अधीन, फ्रांसीसी क्रांति क्रांतिकारी चरण में पहुंच गया। **जैकोबियन दल का नेता रॉब्सपीयर** था, इसे **आतंक के शासन** (Reign of Terror) के प्रतीक रूप में जाना गया। यह **गिलोटिन** के माध्यम से उन सभी को मृत्यु के घाट उतार देना चाहता था जो क्रांति के विरोधी थे। राजा और रानी को 1793 में मृत्यु के घाट उतार दिया गया। सीधा सा विचार यह था कि सभी आलोचकों के विरूद्ध गिलोटिन का प्रयोग करके एक नई शुरुआत की जा सकती थी। शीघ्र ही असहमति व्यक्त करने वाले किसी भी व्यक्ति को दण्डित करने के लिए गिलोटिन का उपयोग किया जाने लगा। जैकोबियन के अधीन फ्रांस ने अराजकता के दौर में प्रवेश किया जहां कानून के शासन के लिए बहुत कम गुंजाइश थी।

चित्र: गिलोटिन

- कई जैकोबियन्स को भी मृत्यु के घाट उतार दिया गया। शीघ्र ही स्वयं जैकोबियन दल भी **रॉब्सपीयर** के विरूद्ध खड़े हो गए और गिलोटिन के माध्यम से उसका अंत कर दिया और इस प्रकार **आतंक का शासन** समाप्त हो गया। बुर्जुआ वर्ग फिर सत्ता में आ गया और उनकी सरकार को **डाइरेक्टरी** कहा गया। 1795 में उन्होंने सशर्त मताधिकार पुनर्स्थापित करते हुए फिर से संविधान तैयार किया। इसके साथ ही फ्रांसीसी सेना की शक्ति और प्रतिष्ठा भी बढ़ रही थी। 1799 में, तख्तापलट के माध्यम से नेपोलियन फ्रांस को सैन्य शासन के अधीन लाया। कुछ वर्ष बाद उसने स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया और फ्रांस में राजतंत्र पुन: स्थापित हो गया।

रॉब्सपीयर

नेपोलियन

- 1803 और 1815 के बीच के वर्ष नेपोलियन के युद्धों के लिए जाने जाते हैं। इस काल में फ्रांस शेष यूरोप के विरूद्ध लड़ा और फ्रांस की क्रांति के विचारों को इसने अपने विजित क्षेत्रों तक फैलाया। नेपोलियन की सेना ने सर्फडम को समाप्त कर दिया और यूरोप में विजित क्षेत्रों के प्रशासन का आधुनिकीकरण किया। 1815 में वाटरलू (यूनाइटेड किंगडम ऑफ़ नीदरलैंड-वर्तमान बेल्जियम) में नेपोलियन की पराजय के बाद, शेष यूरोप के राजतंत्रों ने पुराने राजवंश की सत्ता में आने में सहायता की। लेकिन फ्रांस का यह राजतंत्र कभी भी 1789 की क्रांति से पूर्व के स्तर पर अपना नियंत्रण पुनर्स्थापित नहीं कर पाया और शीघ्र ही फ्रांस क्रांतियों की चार लहरों का साक्षी बना और अंततः 1871 में गणराज्य बन गया।

7.3. फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव/रचनात्मक आलोचना

7.3.1. पक्ष

- फ्रांसीसी क्रांति का न केवल फ्रांस पर बल्कि शेष विश्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। फ्रांस के साथ युद्धों ने स्पेन और पुर्तगाल जैसी यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों को दुर्बल बना दिया और दक्षिण और मध्य अमेरिका में उनके उपनिवेशों ने अपने आप को स्वतंत्र गणराज्य घोषित कर दिया। मध्य अमेरिका में फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरित होकर हैती ने सशस्त्र विद्रोह के माध्यम से 1804 में स्वयं फ्रांस से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। यह विद्रोह 1792 में आरंभ हुआ था। 1813 से लेकर 1824 के दौरान **साइमन बोलीवर** ने कई दक्षिण अमेरिकी देशों को स्वतंत्र कराया और आगे चलकर उन्हें कोलंबिया (Gran Columbia) के नेतृत्व में संयुक्त राज्य अमेरिका के जैसे एक संघ के रूप में संगठित करने का प्रयास किया। उसने सशस्त्र विद्रोह के माध्यम से स्पेनिश शासन से वेनेजुएला, कोलंबिया, इक्वाडोर, पेरू और बोलीविया को मुक्त कराया।
- फ्रांसीसी क्रांति के बाद दासता का उन्मूलन इस दमनकारी व्यवस्था के विरूद्ध पहला कदम था। ब्रिटेन ने 1833 में इस ओर कदम बढ़ाया जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1865 में इस पर प्रतिबंध लगाया।
- इसके चलते फ्रांस में सामंतवाद का विनाश हो गया क्योंकि पुरातन सामंती व्यवस्था के सभी कानूनों को निरस्त कर दिया गया था और चर्च की भूमि जब्त कर ली गई थी और उसका पुनर्वितरण कर दिया गया था। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग, अर्थात् प्रथम और द्वितीय एस्टेट्स का उन्मूलन कर दिया गया। 19वीं सदी में यूरोप में फैलने वाली सामंतवाद विरोधी लहर अपनी उत्पत्ति के लिए फ्रांस में होने वाली घटनाओं की ऋणी थी। इसके साथ ही, फ्रांसीसी क्रांति ने प्रचलित सामंतवाद के विरूद्ध पूंजीवाद की नवीन आर्थिक व्यवस्था में प्रवेशक का कार्य किया।

- जैकोबियन संविधान पहला वास्तविक लोकतांत्रिक संविधान था, हालाँकि यह कभी भी प्रभावी नहीं हो पाया था। इसने सभी को मत देने का अधिकार और यहां तक कि विद्रोह करने का अधिकार दिया, जिसका तात्पर्य सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने या उठ खड़े होने का अधिकार है। जैकोबियन संविधान के अधीन सरकार पर सभी को काम देने का भी उत्तरदायित्व था और लोगों की 'प्रसन्नता' राज्य की अति महत्वूपर्ण नीति बनने वाली थी।
- नेपोलियन के शासन के अधीन, फ्रांस के लिए नागरिक संहिता के रूप में नेपोलियन संहिता प्रचलित की गई। सरकारी नौकरियों के लिए योग्यता आधारित भर्ती और स्पष्ट रूप से लिखित कानून जैसे इसके कुछ प्रावधान फ्रांस और अन्य राष्ट्रों की वर्तमान कानूनी प्रणाली पर अभी भी अपना प्रभाव डाल रहे हैं।
- फ्रांसीसी क्रांति ने पूरे विश्व के उपनिवेशों में उपनिवेशवाद के विरूद्ध आंदोलनों को प्रेरित किया, जबकि लोकतंत्र और स्वशासन का आंदोलन पूरे यूरोप में उठ खड़ा हुआ। फ्रांसीसी क्रांति में, श्रमिक वर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। क्रांति लाने के लिए उन्होंने गुप्त समाजों का गठन किया था। आगे चलकर पूरे यूरोप, विशेषकर औद्योगिक ब्रिटेन में श्रमिकों की एकता में वृद्धि देखी गई (जैसा कि 1830 और 1840 के दशक के चार्टिस्ट आंदोलन में परिलक्षित हुआ)। इसने श्रमिकों को मताधिकार और अन्य कल्याणकारी उपाय प्राप्त करने में सहायता की। फ्रांसीसी क्रांति के समानता और स्वतंत्रता के विचारों ने 19वीं सदी में ब्रिटेन को और अधिक लोकतांत्रिक देश बनाने में सहायता की।

7.3.2. विपक्ष

- इन सब के बावजूद अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में **फ्रांसीसी क्रांति को सीमित सफलता मिली**। वास्तव में, क्रांति के बाद आने वाला शासन श्रमिकों की शिकायतें दूर करने में विफल रहा जो कि 1789 के विद्रोह के दौरान महत्वपूर्ण थे। इससे केवल किसानों को लाभ पहुँचा था (क्योंकि वे विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों से जब्त भूमि के स्वामी बन बैठे थे)। क्रांति लोकतांत्रिक शासन लाने में विफल रही थी और जैकोबियन के अधीन **आतंक के शासन** के दौरान बड़े पैमाने पर आम लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया था।
- अपने निरंतर युद्धों के कारण **नेपोलियन** मुक्तिदाता के रूप में नहीं, बल्कि एक विजेता के रूप में देखा गया जिसकी परिणति आक्रांत क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के उदय के रूप में हुई। यह राष्ट्रवाद 1870 के दशक में जर्मनी और इटली के एकीकरण के लिए लाभप्रद सिद्ध होने वाला था।

8. राष्ट्रवाद - उदय और प्रभाव

- फ्रांसीसी क्रांति से राष्ट्रीयता का उदय हुआ और राष्ट्रीय सीमाओं के पुनर्निर्माण सहित विश्व पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।
- ब्रिटेन और फ्रांस पहले राष्ट्र-राज्य थे जहाँ राष्ट्रवाद उदित हुआ।

8.1. राष्ट्र की संकल्पना

- फ्रांसीसी क्रांति तक ब्रिटेन के अतिरिक्त समस्त यूरोप सामंती व्यवस्था के अधीन था और राष्ट्र की कोई अवधारणा नहीं थी। लगभग पूरे यूरोप में राजाओं द्वारा शासित बिखरे हुए प्रदेशों वाले साम्राज्य थे, जहां सामंत अपनी जागीर के स्वामी थे और कस्बे और शहर शासन की इकाई थे। इस प्रकार राष्ट्र-राज्य जैसी कोई अवधारणा विद्यमान नहीं थी, जैसा कि इसे आज हम समझते हैं। फ्रांसीसी क्रांति ने राष्ट्र की अवधारणा प्रदान की जिसमें सम्पूर्ण जनता सम्मिलित थी और इसी में संप्रभुता निहित थी। इस प्रकार, फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांतियों के कारण राष्ट्रवाद का निरूपण स्वशासन के रूप में किया जाने लगा।

VISION IAS

8.2. निरंकुश राजाओं द्वारा दुरुपयोग

- इसके अतिरिक्त, जब नेपोलियन ने यूरोप के कुछ क्षेत्रों पर आक्रमण किया तो वहां के निरंकुश राजाओं ने इस आक्रमण का विरोध किया और इस आक्रमण के विरूद्ध अपने प्रदेश की रक्षा करने की इच्छा के रूप में राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इस प्रकार, राजाओं ने सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए राष्ट्रवाद का उपयोग किया और 19वीं सदी का यूरोप आक्रामक निरंकुश राज्यों का साक्षी बना जिनका उद्देश्य क्षेत्रीय और औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार था। नेपोलियन के युद्धों के बाद, यूरोप लोकतांत्रिक क्रांति की लहरों का साक्षी बना, लेकिन यूरोप के राजतंत्र फ्रांसीसी क्रांति के लोकतांत्रिक विचारों के विरूद्ध थे और उन्होंने राष्ट्रवाद का उपयोग अपने साम्राज्य की रक्षा करने हेतु ही नहीं अपितु साम्राज्य विस्तार करने के लिए ढाल के रूप में किया। युद्ध में विजयों (उदाहरण के लिए, बिस्मार्क ने फ्रांसीसी-प्रशा युद्ध के माध्यम से 1870 में जर्मनी पर अपनी पकड़ मजबूत की) और अधिक उपनिवेशों के अधिग्रहण (उदाहरण के लिए, गृहदेश में राजनीतिक लाभ के लिए इटली ने अफ्रीका में औपनिवेशिक दौड़ में प्रवेश किया) का उपयोग सत्ता पर पकड़ बनाए रखने के लिए किया गया।

8.3. क्रांतिकारी विचारकों की भूमिका

- आधुनिक विचारकों ने राष्ट्रवाद की अवधारणा में बहुत योगदान दिया। स्व-शासन और राष्ट्रवाद का विचार राष्ट्रीय सीमाओं में भी परिवर्तन ला रहा था। 1832 में यूनान ऑटोमन साम्राज्य से स्वतंत्र हो गया जबकि 1839 में अपनी लोकतांत्रिक क्रांति की सहायता से बेल्जियम, यूनाइटेड किंगडम ऑफ़ नीदरलैंड से स्वतंत्र हो गया।
- जर्मनी और इटली के एकीकरण आंदोलनों ने अपनी काफी ऊर्जा इन विचारकों के विचारों से प्राप्त की थी। उदाहरण के लिए, गैरीबाल्डी और मैज़िनी ने इटली के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जबकि अंग्रेज कवि बैरन ने ग्रीक (यूनान) की स्वतंत्रता के पक्ष में लिखा और इसके संघर्ष में भाग लिया।
- इन विचारकों ने उस समय की साहित्यिक सामग्रियों में रोमांसवाद (Romanticism) डाला, जिसने लोगों को राष्ट्र की महिमा के निमित्त अपनी सेनाओं, स्वतंत्रता सेनानियों और राजशाहियों को अपना समर्थन देने के लिए उत्साहित किया।

8.4. औद्योगिक क्रांति और राष्ट्रवाद

- 19वीं सदी के दौरान यूरोप में औद्योगिक क्रांति ने आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में वृद्धि की और उपनिवेशों के अधिग्रहण के लिए राष्ट्र-राज्यों को एक दूसरे के साथ संघर्ष में उलझा दिया।

9. जर्मनी और इटली का एकीकरण

- 19वीं सदी के यूरोप की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीय एकीकरण और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष था। यूनान और बेल्जियम इस सदी में स्वतंत्र हो गए और जर्मनी और इटली का संगठित स्वतंत्र राज्यों के रूप में उदय हुआ।

VISION IAS

9.1. जर्मनी का एकीकरण

9.1.1. सामाजिक और आर्थिक स्थिति

- जर्मनी की सामाजिक स्थिति किसी भी सामंती समाज में दिखाई देने वाली सामाजिक स्थिति की भांति ही थी। जर्मनी में जमींदारों को **जंकर** (Junkers) कहा जाता था। उनका राज्य के मामलों पर प्रभुत्व था। जर्मनी के विभाजन के परिणामस्वरूप कई राज्यों में आर्थिक विकास निम्नतम स्तर पर था क्योंकि ये राज्य वस्तुओं के मुक्त आवागमन पर प्रतिबंध आरोपित करते थे। पिछड़ी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था ने भी निम्न आर्थिक स्थिति में योगदान दिया।

9.1.2. नेपोलियन के युद्धों और फ्रांसीसी क्रांति की भूमिका

- 18वीं सदी में, जर्मनी कई राज्यों में विभाजित था। नेपोलियन के युद्धों ने कई राज्यों की कृत्रिम सीमाएं समाप्त कर दी और उन्हें संयुक्त कर दिया लेकिन अभी भी 39 राज्य बने रहे। प्रशा इनमें सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली था। फ्रांसीसी क्रांति के बाद, जर्मन लोग सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप और आर्थिक सुधारों की मांग करने लगे। राष्ट्रवाद की लहर ने जर्मनों को इन राज्यों के एकीकरण के लिए उत्साहित किया। इन सभी वैचारिक अंतर्प्रवाहों का परिणाम 1815 में जर्मन परिसंघ के गठन के रूप में सामने आया। इसमें ऑस्ट्रिया और प्रशा साम्राज्य के कुछ हिस्से तथा कुछ जर्मन राज्य सम्मिलित थे। प्रशा और ऑस्ट्रिया का बड़ा हिस्सा इस परिसंघ में सम्मिलित नहीं था। परिसंघ का उद्देश्य संघटक सदस्यों की आर्थिक नीतियों का समन्वय करना था। लेकिन निम्नलिखित कारणों से यह विफल हो गया:
  - प्रत्येक घटक राज्य ने अपनी स्वतंत्रता का दावा किया और लोगों की सामंतवाद विरोधी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कुछ नहीं किया।
  - एकीकृत जर्मनी में लोकतंत्र की स्थापना के लिए 1848 का विद्रोह।
  - जर्मन परिसंघ के मामलों पर वर्चस्व के लिए ऑस्ट्रिया और प्रशा के बीच प्रतिद्वंद्विता।

9.1.3. लोकतंत्र के अधीन एकजुट करने में विफलता

- 1848 में लोकतंत्र की स्थापना के लिए अधिकांश यूरोप में विद्रोह हुए। इनमें से अधिकांश विद्रोहों का नेतृत्व श्रमिकों ने किया। 1848 में, सभी जर्मन राज्यों में राजतंत्रात्मक शासन की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए विद्रोह आरंभ हो गए और शासकों को शासन का लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान करने के लिए विवश होना पड़ा। तत्पश्चात संविधान सभा का गठन किया गया और इसकी बैठक सभी जर्मन राज्यों को एकजुट करने और नए संविधान का प्रारूप तैयार करने के लक्ष्य के साथ फ्रैंकफर्ट में हुई। प्रशा के राजा ने संयुक्त जर्मनी के लिए संवैधानिक राजशाही का प्रस्ताव ठुकरा दिया। इसी बीच, शासकों की स्थिति में सुधार हुआ और उन्होंने राष्ट्रवादियों का दमन आरंभ कर दिया। फलस्वरूप राष्ट्रवादियों को संतुष्ट करने के लिए अभी तक दिए गए अधिकार वापस ले लिए गए और प्रशा की राजशाही सबसे मजबूत बनकर उभरी।

9.1.4. बिस्मार्क के नेतृत्व में एकीकरण: रक्त और लौह की नीति

- जर्मनी का एकीकरण होना अभी भी बाकी था, लेकिन लोकतांत्रिक सरकार के अधीन नहीं बल्कि प्रशा के सैन्य कमांडर बिस्मार्क के अधीन सैन्य शक्ति के माध्यम से अर्थात् बिस्मार्क की **रक्त और लौह की नीति** के अधीन। उसकी नीति राज्य के मामलों में भूस्वामी अभिजात्य वर्ग के हितों और सेना का वर्चस्व सुरक्षित करने की थी। बिस्मार्क ने रक्त और लौह की नीति का अनुसरण किया। इसके अंतर्गत उसने राज्यों को बल प्रयोग द्वारा एकजुट किया। यह नीति द्रुत गति से और महान रणनीतिक विशेषज्ञता के साथ कार्यान्वित की गई। इस नीति का उद्देश्य प्रशा की राजशाही के अधीन जर्मनी का एकीकरण करना था और इसके लिए जर्मन परिसंघ को नष्ट करना आवश्यक था।

चित्र: बिस्मार्क

- अपनी नीति कार्यान्वित करने के लिए बिस्मार्क एवं उसके नेतृत्व में प्रशा ने निम्नलिखित कदम उठाए:
    - जर्मन परिसंघ के अधिकांश प्रदेशों पर कब्जा करने के लिए बिस्मार्क के नेतृत्व में प्रशा ने सर्वप्रथम 1864 में डेनमार्क के विरूद्ध ऑस्ट्रिया के साथ गठजोड़ बनाकर युद्ध किया।
    - फिर उसने ऑस्ट्रिया को हराने के लिए 1866 में इटली के साथ गठजोड़ किया और उसे जर्मन परिसंघ से बाहर निकाल फेंका। फलस्वरूप परिसंघ स्वतः समाप्त हो गया।
    - 1867 में, बिस्मार्क ने उत्तरी जर्मन परिसंघ का गठन किया। उसने 22 जर्मन राज्यों को संयुक्त किया लेकिन बवेरिया जैसे दक्षिणी जर्मन राज्यों को छोड़ दिया, जो स्वतंत्र बने रहे। इस परिसंघ के संविधान ने प्रशा के राजा को राज्य का वंशानुगत प्रमुख बनाया। दक्षिणी राज्यों ने ऑस्ट्रिया समर्थक नीति का अनुसरण किया लेकिन 1870 के फ्रांसीसी-प्रशियाई युद्ध में जर्मन विजय के बाद उन्हें संयुक्त होने के लिए विवश किया गया।

 ©Vision IAS

- 1870 में हुए फ्रांसीसी-प्रशियाई युद्ध ने जर्मनी के अंतिम एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया। 1870 में, फ्रांसीसी राजशाही लड़खड़ा रही थी और लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना के लिए एक और क्रांति की परिस्थितियाँ तैयार हो गईं थी। फ्रांसीसी राजा लुई बोनापार्ट ने 1870 में जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। वह आतंरिक समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए युद्ध-विजय का उपयोग करना चाहता था और अपने शासन के प्रति विश्वसनीयता बढ़ाने के लिए युद्ध के लाभों का उपयोग करना चाहता था। वहीं दूसरी ओर, युद्ध के लिए फ्रांसीसियों को उत्तेजित करने के लिए बिस्मार्क भी आंशिक रूप से उत्तरदायी था। परिणाम यह निकला कि फ्रांस हार गया और उसने 1871 में स्वयं को गणतंत्र घोषित कर दिया। इस युद्ध में जर्मनी की जीत ने बिस्मार्क को जर्मनी के बाकी हिस्सों को संयुक्त जर्मनी (1871) में मिलाने का सुअवसर प्रदान किया।

9.2. इटली का एकीकरण

- इटली का एकीकरण दो-चरणों की प्रक्रिया थी। पहले चरण में, उसे ऑस्ट्रिया से स्वतंत्रता प्राप्त करनी पड़ी और दूसरे चरण में, इटली के स्वतंत्र राज्यों को एक इकाई में एकजुट करना पड़ा। मैज़िनी और गैरीबाल्डी क्रांतिकारी थे जिन्होंने इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मैज़िनी ने इटली के एकीकरण के लिए 1831 में यंग इटली नामक संगठन का गठन किया। 1831 के बाद से, यंग इटली ने बार-बार राजशाही के विरूद्ध विद्रोह का प्रयास किया लेकिन ये सभी प्रयास लोकतांत्रिक और संयुक्त इटली की स्थापना करने में विफल रहे। फिर भी, यंग इटली ने लोगों को उदार सरकार के अधीन संयुक्त इटली के लिए प्रोत्साहित किया।

9.2.1. 1848 के विद्रोहों की भूमिका

- 1848 के विद्रोहों का नेतृत्व बुद्धिजीवियों और उदारवादियों ने किया। वे प्रतिक्रियावादी ऑस्ट्रियाई नियंत्रण के विरूद्ध थे और उदार शासन चाहते थे। इन विद्रोहों ने भी लोकतांत्रिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया, लेकिन इनके परिणामस्वरुप न तो ऑस्ट्रिया से स्वतंत्रता प्राप्त हुयी और न ही संयुक्त इटली के रूप में इन राज्यों का समेकन हो सका।

9.2.2. प्रधान मंत्री कावूर की बिस्मार्क सदृश नीति के माध्यम से एकीकरण

चित्र: कावूर

VISION IAS

- 1848 के विद्रोह के बाद, सार्डीनिया के प्रधान मंत्री कावूर ने इटली के एकीकरण का प्रयास किया। उसकी नीति बिस्मार्क की नीति जैसी ही थी। 1859 में, सार्डीनिया ने ऑस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध में फ्रांस के साथ गठजोड़ बनाया, जिससे इटली के कई राज्य ऑस्ट्रियाई शासन से मुक्त हो गए और उनमें से अधिकांश को सार्डीनिया के राजा के अधीन संयुक्त कर दिया गया, सिवाय:
  - वेनेशिया के जो अभी भी ऑस्ट्रियाई शासन के अधीन था,
  - दो सिसलियों का राज्य (The Kingdom of two Sicilies) (दक्षिणी इटली में), जो सिसली के राज्य और नेपल्स के राज्य का सामूहिक नाम था; और
  - रोम में अपनी राजधानी सहित पोप के अधीन राज्य, जो सीधे पोप के शासन के अधीन था, जिसे फ्रांसीसी सेनाओं की सहायता प्राप्त थी।

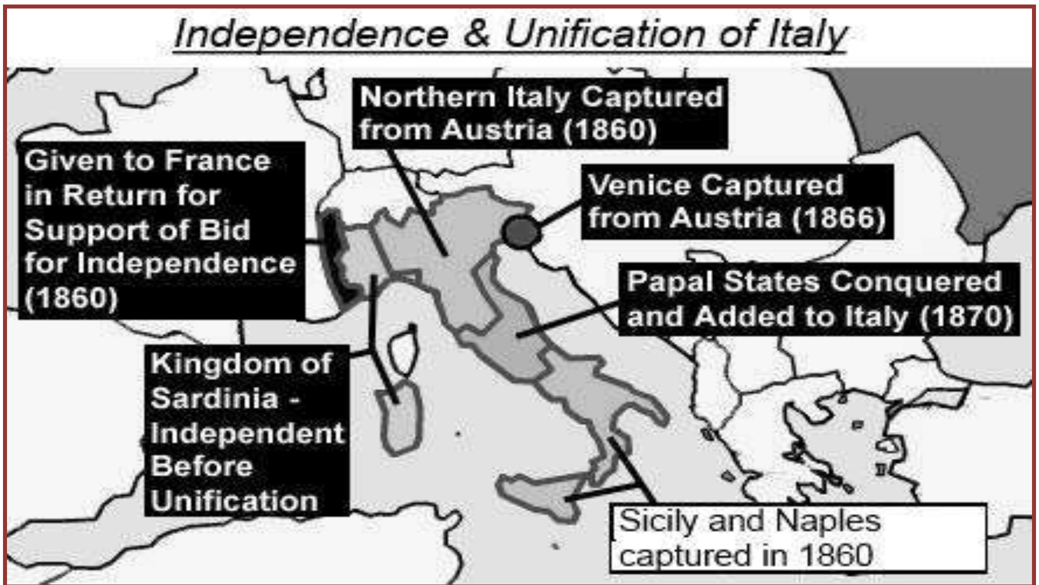

- गैरिबाल्डी के नेतृत्व में क्रांतिकारी सेनानियों ने फर्डिनेंड द्वितीय के निरंकुश शासन से सिसली और नेपल्स को मुक्त करा लिया और परिणामस्वरूप 1860 में ये राज्य सार्डीनिया के राजतंत्र के अधीन हो गए और इटली का साम्राज्य स्थापित हो गया। 1866 के ऑस्ट्रियाई-प्रशियाई युद्ध का लाभ उठाते हुए वेनिस पर भी इटली ने कब्जा कर लिया। अब केवल रोम बचा था। पोप को फ्रांसीसी सेनाओं की सुरक्षा मिली थी। 1870 के फ्रांसीसी-प्रशियाई युद्ध के चलते कमजोर हो जाने के कारण, फ्रांस अब पोप की सहायता नहीं कर सकता था परिणामस्वरूप 1871 में रोम पर कब्जा कर लिया गया और इसे इटली की राजधानी बना दिया गया। इस प्रकार एकीकरण की प्रक्रिया पूरी हो गई। एकीकरण के बाद, इटली और जर्मनी का औद्योगिकीकरण आरंभ हुआ और इन राज्यों में भी औद्योगिक क्रांति का आगमन हुआ।

चित्र: गैरिबाल्डी

10. औद्योगिक क्रांति

10.1. औद्योगिक क्रांति से पहले वस्तुओं के उत्पादन की विधि

- वस्तुओं के उत्पादन की विधि का विकास क्रम इस प्रकार रहा है- गिल्ड प्रणाली से लेकर पुटिंग आउट प्रणाली या घरेलू पद्धति से लेकर कारखाना प्रणाली तक। जब व्यापार की मात्रा में और वृद्धि हुई और गिल्ड मांग का मुकाबला नहीं कर पाए तो गिल्ड प्रणाली में गिरावट आई क्योंकि वे बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए अनुपयुक्त थे।

10.1.1. पुटिंग-आउट प्रणाली

- गिल्ड प्रणाली में गिरावट के परिणामस्वरुप पुटिंग-आउट प्रणाली का आगमन हुआ। इस प्रणाली के अंतर्गत पूंजीपति व्यापारी, कारीगरों को कच्चा माल उपलब्ध करवाता था तथा कारीगर अपने निवास पर ही अपने औजारों से निर्माण करते थे। इस प्रकार कच्चे माल और अंतिम उत्पाद का स्वामी व्यापारी होता था और श्रमिक केवल मजदूरी कमाने वाले होते थे। मशीनों के आविष्कार ने सब कुछ बदलकर रख दिया और इस प्रणाली का स्थान कारखाना प्रणाली ने ग्रहण कर लिया।

10.1.2. कारखाना प्रणाली

- इस प्रणाली के अंतर्गत, उत्पादन का केंद्र घर से कारखाने में स्थानांतरित हो गया। पहली बार, श्रमिक दैनंदिन आधार पर घर से कार्यस्थल तक यात्रा करने लगे। पहली बार वे मशीनों पर काम करते हुए एक छत के नीचे बड़ी संख्या में एकत्रित हुए। पूँजी पर पूँजीपति का स्वामित्व होता था और कामगार मात्र उत्पादन का एक और पहलू थे और उत्पादन का स्वामी पूँजीपति होता था।

10.2. औद्योगिक क्रांति क्या है?

- इंग्लैंड के आर्थिक इतिहासकार **टायनबी** ने सर्वप्रथम 'औद्योगिक क्रांति' शब्द का प्रयोग किया। यह सर्वप्रथम **18वीं सदी के मध्य** में इंग्लैंड में घटित हुई।
- वस्तुतः औद्योगिक क्रांति उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन थी, जिसमें शिल्प के स्थान पर मशीनों का भारी मात्रा में प्रयोग प्रारम्भ हुआ। यह मूलतः तकनीकी नवोन्मेषों की सहायता और उनके प्रसार से अर्थव्यवस्था में वस्तुओं के उत्पादन की आर्थिक प्रक्रियाओं में क्रांति है, जिसने वस्तुओं के उत्पादन की गति को बढ़ावा दिया। मशीनीकृत उत्पादन में परिणत होने वाले नवाचार, इन मशीनों को शक्ति देने के नए स्रोतों का विकास, संचार और परिवहन के क्षेत्र में तकनीकी प्रयत्न वे कुछ प्रक्रियाएं हैं, जिन्हें एक साथ मिलाकर **'औद्योगिक क्रांति'** कहा जाता है। यह क्रांति इसलिए थी क्योंकि इसने न केवल पूरी तरह से आर्थिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी सुधार किया।

10.3. इंग्लैंड में ही सर्वप्रथम औद्योगिक क्रांति क्यों?

1750 से पहले इंग्लैंड में होने वाली घटनाओं ने ऐसी स्थिति तैयार की, जो औद्योगिक क्रांति के अनुकूल थी।

- सामंतवाद के अंत के बाद पूंजीवाद का उदय औद्योगिक क्रांति के लिए महत्वपूर्ण था। ऐसा इसलिए था क्योंकि पूंजीवाद के साथ अधिक मौद्रिक लाभ कमाने की इच्छा पैदा हुई, जिसे कम लागत पर अधिक वस्तुएँ उत्पादित करने के नए तरीकों का विकास करके प्राप्त किया जा सकता था।
- विकासशील कस्बों और शहरों में जीवन के नए तरीकों के कारण निर्मित वस्तुओं की भारी मांग थी।
- गांव के लोग औद्योगिक उत्पादन के लिए श्रमिकों के रूप में शहरों में पलायन कर रहे थे। इससे ऐसे नए विचारों की खोज को बल मिला जिनसे औद्योगिक दक्षता में वृद्धि की जा सकती थी। तर्क पर आधारित पुनर्जागरण और रिफॉर्मेशन (सुधार आन्दोलन) ने पहले ही लोगों पर नए विचारों की खोज का बीड़ा उठाने का मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला था।

VISION IAS

- इसके अतिरिक्त इंग्लैंड का समाज लोकतंत्र (**गौरवपूर्ण क्रांति, 1688**) की दिशा में बढ़ चला था, जिससे विचारों की अधिक स्वतंत्रता की गुंजाइश पैदा हुई और इसके बाद ब्रिटेन में संसदीय प्रजातंत्र मजबूती के साथ स्थापित हुआ।
- शेष विश्व के साथ व्यापार से होने वाले आर्थिक लाभ ने पूंजी निर्माण के लिए, पुनर्निवेश के लिए और नवाचारी गतिविधियों के वित्तपोषण के लिए धन की उपलब्धता सुनिश्चित की।
- इंग्लैंड की भौगोलिक अवस्थिति ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक द्वीपीय देश होने के नाते इंग्लैंड बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित था। फ्रांस और जर्मनी के विपरीत इंग्लैंड की प्राकृतिक सीमाएँ उसे सुरक्षित बनाती थीं, जिसने उसके लिए शांति पूर्ण परिस्थितियों में रहना संभव बनाया। इसने शासकों को अधिक लोकतंत्र समर्थक बनाया क्योंकि उन्होंने बल प्रयोग की कम आवश्यकता महसूस की क्योंकि वे बाह्य आक्रमण के खतरों से सुरक्षित थे।
- ब्रिटेन में बहुत अच्छे प्राकृतिक बंदरगाह थे। इससे उसके लिए समुद्री पत्तनों का विकास करना संभव हुआ। इस प्रकार इंग्लैंड समुद्री व्यापार से होने वाले मुनाफे से लाभान्वित हुआ।
- इंग्लैंड कोयला और लोहे जैसे प्राकृतिक संसाधनों में भी समृद्ध था।
- इंग्लैंड में सहायक नदियों का बहुत अच्छा प्राकृतिक नेटवर्क था। ये नदियाँ आसानी से नौवहनयोग्य थीं, जिससे वस्तुओं और कच्चे माल का सस्ता परिवहन संभव हुआ।

10.4. औद्योगिक क्रांति के घटक

10.4.1. वस्त्र क्षेत्रक में क्रांति

- औद्योगिक क्रांति वस्त्र उद्योग में हुई क्रान्ति के साथ आरंभ हुई। 17वीं शताब्दी में, ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में तैयार सूती कपड़े ब्रिटेन को निर्यात करके बहुत लाभ कमा रही थी और इससे ब्रिटिश व्यापारियों को ईर्ष्या हो रही थी। इसने अंग्रेज व्यापारियों को भारत से कच्चा कपास आयात करने और ब्रिटेन में कपास के कपड़े बनाने के लिए प्रेरित किया ताकि वे कपास की तेज मांग से कुछ लाभ कमा सकें। जब कताई के पहिए और हथकरघा जैसी पुरानी मशीनरी मांग को पूरा नहीं कर सकी तो कई नवोन्मेष हुए। वस्त्र उद्योग में नई मशीनें कच्चे कपास की तेज कताई कर धागा बनाने में सहायता करने लगीं।
- **हर्ग्रीव्स** ऐसी मशीन विकसित करने वाले पहले शख्स थे, जिन्होंने **'स्पिनिंग जेनी'** नामक चरखे का आविष्कार किया।

चित्र: स्पिनिंग जेनी

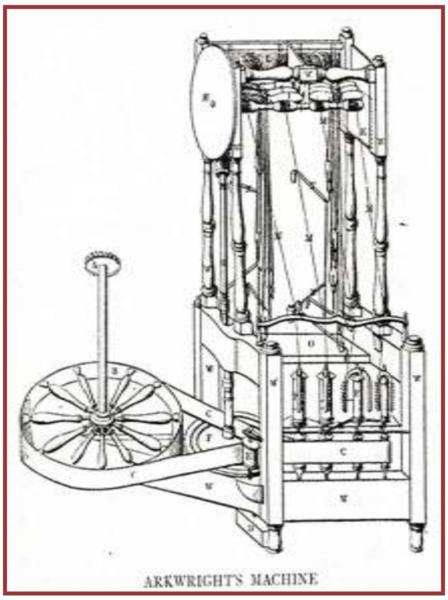

वाटरफ्रेम

VISION IAS

- **आर्कराइट** ने **'वाटरफ्रेम'** का आविष्कार किया जिसका संचालन जलशक्ति से किया जाता था। शीघ्र ही, **क्रॉम्प्टन** ने दोनों मशीनों की विशेषताओं को मिलाकर अपनी अलग मशीन विकसित कर ली। तेज कताई वाली मशीनों का प्रभाव यह था कि उन्होंने वस्त्र कारखानों को वैसे धागे का उत्पादन करने में सक्षम कर दिया जो महीन और सस्ते थे। उत्पादन लागत में हुई कमी ने लाभ को बढ़ा दिया और शीघ्र ही मशीनें इंग्लैंड में बहुत लोकप्रिय हो गईं।
- इसके अतिरिक्त 1785 में, **कार्टराइट** ने **'पावरलूम'** विकसित किया जिसने वास्तव में धागे से कपड़ा उत्पादन में क्रांति ला दी।

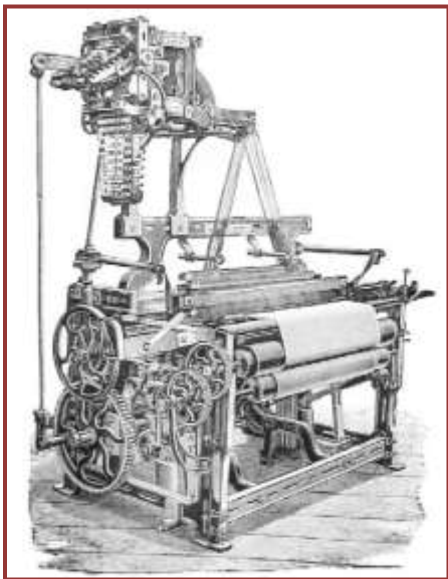

चित्र: पावरलूम **कॉटन जिन**

- **हॉर्स पावर** शब्द का उद्गम कार्टराईट के पावरलूम से ही हुआ है क्योंकि यह मशीन गोलाकार या वृतीय पथ पर दौड़ने वाले घोड़ों द्वारा संचालित होती थी। बाद में, पावरलूम को पानी की शक्ति से चलने हेतु संशोधित किया गया। जल विद्युत के उपयोग के लिए कारखानों को नदियों और नहरों के पास स्थापित किया गया था। **कॉटन जिन** एक अन्य आविष्कार था, जिसने हाथों की तुलना में 300 गुना तेजी से कपास के बीज और फाइबर या धागे को अलग करने की प्रक्रिया विकसित की। 1793 में **एली व्हिटनी** द्वारा इस मशीन का आविष्कार किया गया था। इसने कपास की गांठों से कपास के तंतु (फाइबर) को अलग करने की हाथ-आधारित धीमी प्रक्रिया के कारण कच्चे कपास के तंतु की आपूर्ति की कमी की समस्या को हल कर दिया।

10.4.2. वाष्प शक्ति/स्टीम पावर

- दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार 1769 में **जेम्स वाट** द्वारा स्टीम या **भाप के इंजन** का विकास रहा। स्टीम इंजन ने माल के उत्पादन को बढ़ावा दिया और परिणामस्वरूप कच्चे माल की मांग में भारी वृद्धि हुई। ये वास्तविक चीजें थीं, जिससे बड़े पैमाने पर उत्पादन हो सका क्योंकि मानवीय श्रम आधारित या पनबिजली आधारित मशीनें कम कुशल थीं। शीघ्र ही, कताई मशीन और पावरलूम चलाने के लिए भाप इंजन उपयोग किए गए। इसके परिणामस्वरूप इंग्लैंड ने 1840 तक पांच गुना अधिक कच्चे कपास आयात किए। स्टीम इंजन को कोयला खानों से पानी निकालने लायक बनाया गया, जिससे कोयले की आपूर्ति में वृद्धि हुई।

VISION IAS

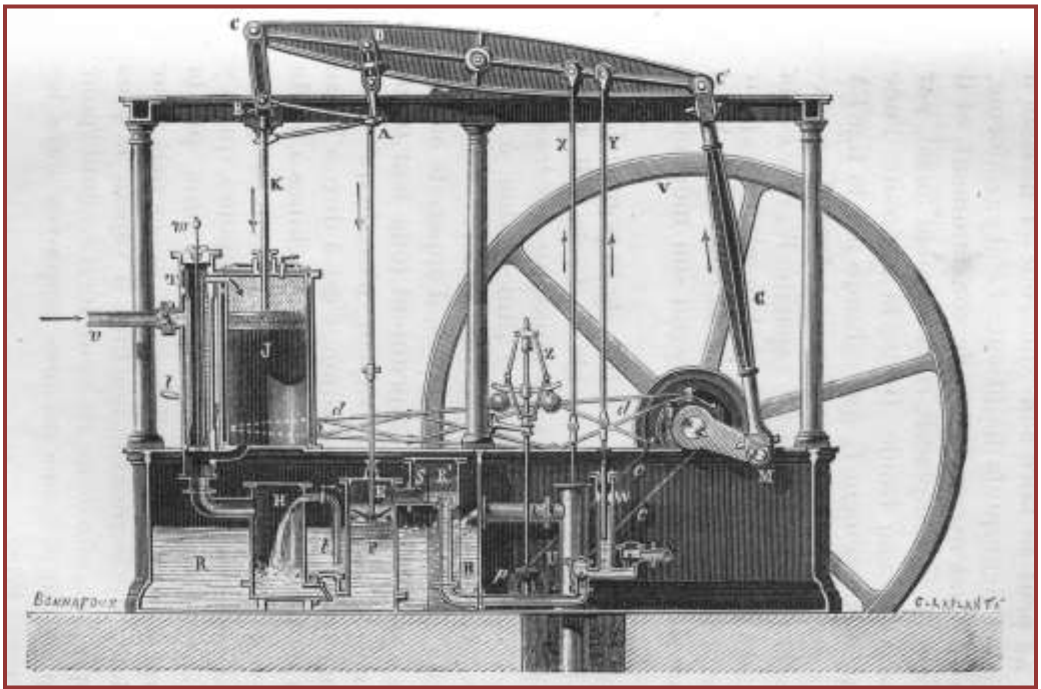

चित्र: जेम्स वाट का भाप-इंजन

10.4.3. लोहे के उत्पादन में क्रांति

- एक अन्य क्रांति लोहे के उत्पादन में हुई, जिसके परिणामस्वरूप अंततः सभी औद्योगिक प्रक्रियाओं में वृद्धि हुई और मशीनीकरण सस्ता एवं सुलभ हुआ। स्टीम पावर ने अधिक मशीनरी की मांग की थी और इस्पात (स्टील) बनाने के लिए इंग्लैंड में लौह अयस्क और कोयले के भारी भंडार थे। लेकिन जहां इंग्लैंड पीछे था वह था **कच्चे लोहे का सस्ता प्रसंस्करण** कर पाने की क्षमता। इस समस्या को **'ब्लास्ट फर्नेस'** के विकास से हल किया गया, जिसमें **चारकोल** (काठकोयला) के स्थान पर **कोक** (पत्थर कोयला) का उपयोग किया जाता था। इसने ब्रिटिश स्टील उद्योग को केवल ***पिग आयरन*** के स्थान पर उच्च-श्रेणी वाले ***कास्ट आयरन*** (ढलवा लोहा) का उत्पादन करने में भी सक्षम बनाया।

10.4.4. परिवहन एवं संचार में क्रांति

- अर्थव्यवस्था न केवल उत्पादन की प्रक्रियाओं से सम्बंधित है, बल्कि भूगोल भी इसका एक महत्वपूर्ण भाग है। सम्पूर्ण इंग्लैंड और साथ ही साथ इसके उपनिवेशों में रेल-सड़क नेटवर्क के रूप में परिवहन गलियारों के विकास ने ब्रिटिश उद्योगों को कच्चे माल और तैयार माल की आपूर्ति को तीव्र करने की अनुमति दी। 1814 में जॉर्ज स्टीफेन्सन द्वारा रेलवे में उपयोग के लिए स्टीम इंजन को संशोधित किया गया। अब कोयले को रेलवे के माध्यम से खानों से बंदरगाहों तक पहुंचाया जा सकता था। 1830 में, स्टीम पावर पर चलने वाली पहली यात्री ट्रेन ने अपनी यात्रा आरंभ की। इस आविष्कार ने व्यापारियों और भीतरी प्रदेशों से शहरों तक श्रमिकों के बेहतर आवागमन और वास्तव में एक जुड़ी हुई अर्थव्यवस्था का विकास करने में मदद की। भारत में रेलवे की शुरुआत 1853 में हुई। मैकएडमाइज्ड रोड या पक्की सड़कें मैकएडम के इंजीनियरिंग कौशल का परिणाम थीं। बेहतर सड़कों ने माल की तेज ढुलाई संभव की। रेल-सड़क अवसंरचना को कैनाल नेटवर्क बिल्डिंग द्वारा पूरित किया गया था। भाप चालित जहाजों के उपयोग के कारण जल परिवहन, भू-परिवहन की तुलना में बहुत सस्ता था। डाक सेवाओं के आगमन ने दूर-दराज के स्थानों से व्यापारिक लेन-देन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया।

VISION IAS

10.4.5. कृषि क्रांति

- औद्योगिक क्रांति का एक अन्य पहलू भी है जिसे आम तौर पर भुला दिया जाता है, वह है कृषि क्रांति जो औद्योगिक क्रांति के पहले आरंभ हुई थी। इसमें ब्रिटिश उद्योगों की मांगों को पूरा करने के लिए नगदी फसलों का अधिक उत्पादन सम्मिलित था। जमीन की जुताई के लिए इस्पात के हल और हैरो (पटेले) जैसी नई मशीनरी, मशीनीकृत सीड ड्रिल, घोड़े द्वारा खींचे जाने वाले कल्टिवेटर (जमीन जोतने वाले यंत्र) जिसने **हो** (फावड़ा या कुदाली) तथा कटाई और मंजाई के लिए प्रयुक्त हो रही मशीनों का स्थान ले लिया और कृषि क्षेत्र में मानव श्रम की आवश्यकता को कम कर दिया। **बाड़बंदी आंदोलन** (The Encloser Movement) का नेतृत्व बड़े जमींदारों ने किया था, जिन्होंने संसद में सांसदों के साथ मिलकर सीमांत किसानों और गांवों के छोटे-छोटे भूखंडों पर कब्जा कर अपने कृषि क्षेत्र के दायरे में वृद्धि की। इस प्रकार कस्बों में स्थित उद्योगों के लिए श्रम की उपलब्धता में वृद्धि हुई और श्रम अधिशेष ने श्रम लागत को सस्ता बना दिया जिससे व्यापारियों का लाभ बढ़ गया। इसी प्रकार उर्वरकों का गहन उपयोग और सस्य आवर्तन जैसी खेती की नई परिपाटियों ने मिट्टी की उर्वरता बढ़ा कर ब्रिटेन की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की।

10.5. औद्योगिक क्रांति का प्रभाव

"कहा जाता है कि पहली क्रांति वह थी जब पाषाण काल में मनुष्य ने शिकार के स्थान पर कृषि और पशुपालन को अपनाया था और यह दूसरी क्रांति है जब कृषि के स्थान पर व्यवसाय को प्रधानता दी गई है।"'

- औद्योगिक क्रांति का विभिन्न क्षेत्रों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था पर कृषि क्षेत्र की बजाय औद्योगिक क्षेत्रक का वर्चस्व रहा, जिससे सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के हिस्से में कमी आई। उच्च सकल घरेलू उत्पाद ने ब्रिटिश व्यवसायों द्वारा वस्त्र के निर्यात और कच्चे माल के आयात को बढ़ाया। अब ब्रिटेन ने स्व-उपभोग और निर्यात के लिए पर्याप्त कोयला और पिग आयरन का उत्पादन किया। औद्योगिक क्रांति ने शीर्ष स्तर की औद्योगिक अर्थव्यवस्था के रूप में ब्रिटेन के उदय का नेतृत्व किया। परंतु लोगों पर इसका प्रभाव बहुत सकारात्मक नहीं था। रोजगार की तलाश में गांवों से शहरों की ओर प्रवास में वृद्धि हुई। अब शहरी क्षेत्र उत्पादन के केंद्र बन गए, वे व्यापार तथा प्रशासन के केंद्र बनने तक सीमित नहीं रहे।
- इस प्रक्रिया के परिणामस्वरुप शहरी भीड़भाड़ में वृद्धि हुई, जिससे आवास और स्वच्छता की समस्याएं बढ़ गईं। शहरी क्षेत्र अब दो असमान हिस्सों में बंट गए थे। एक ओर व्यापारियों और मैनेजर वर्ग के लोगों के शानदार आवास थे तो दूसरी ओर स्लम (मलिन बस्तियां)। प्रवास ने सामाजिक जुड़ाव और नैतिक संयम के विघटन के रूप में सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न की। इसके कारण गरीबी के साथ-साथ शहरों में अपराधों में भी वृद्धि हुई। उद्योगपतियों ने मजदूरों को मशीनों के कलपुर्जे और उत्पादन के एक अन्य पहलू के रूप में देखा। उनका उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना था और इसलिए मजदूरों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी। श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा और कारखानों में काम करने की स्थिति को बेहतर बनाने हेतु बहुत कम काम किया गया। असुरक्षित मशीनों से बहुत-से लोग घायल हुए। सस्ते वेतन पर उपलब्ध होने के कारण श्रम बल में बाल श्रम और महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि हुई। काम के घंटे प्रति दिन लगभग 15 से 18 घंटे थे।

VISION IAS

चित्र: ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति के दौरान बाल मज़दूर

- पर्यावरण प्रदूषण के स्तर में भी वृद्धि हो रही थी परिणामस्वरूप श्रमिकों को कई स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ा। औद्योगिक लॉबी ने लंबे समय तक यह सुनिश्चित किया कि मजदूरों के कल्याण के लिए संसद सदस्य कुछ न करें, जिसके कारण मजदूरों में असंतोष उत्पन्न हुआ और इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के बाद विकसित हुए लुडिट्स और चार्टिस्ट जैसे कई कामगार आंदोलन अस्तित्व में आए। यहाँ यह याद रखना उचित है कि यह औद्योगिक क्रांति के बाद आए पूंजीवाद का एक नकारात्मक पक्ष था, जिसने समाजवाद के आगमन को गति प्रदान की। इंग्लैंड में श्रमिकों की दयनीय स्थितियों ने **कार्ल मार्क्स** के विचारों को प्रभावित किया। मजदूर वर्ग के बीच व्यापारिक संघवाद में वृद्धि हुई और एकता में वृद्धि हुई।
- एक प्रकार से औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैंड में लोकतंत्र के विकास को तीव्र किया। श्रमिकों के बीच बढ़ते असंतोष और परिणामी आंदोलनों ने सरकार को सचेत किया कि लेसेज़ फेयर (अहस्तक्षेप की नीति) का सिद्धांत सही नहीं है और यदि पूंजीवादी व्यवस्था को श्रमिक क्रांति से सुरक्षित रखना है तो राज्य को कमजोर वर्गों की रक्षा करने की जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी।
- धीरे-धीरे, चार अधिनियमों के पारित होने के साथ, मतदान का अधिकार कामगारों सहित समाज के कई वर्गों तक बढ़ा दिया गया और 1929 तक ब्रिटेन ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार को अपना लिया। व्यापार संघों को 1824 में वैध कर दिया गया और कारखाना अधिनियमों की एक श्रृंखला पारित की गई, जैसे 1802 और 1819 में, जिसने आयु और काम के घंटे पर प्रतिबंध लगाया और रोजगार की स्थिति (विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की) को विनियमित किया।
- औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औद्योगिक और गैर-औद्योगिकीकृत दुनिया के बीच संपर्क बढ़ा। लेकिन यह संपर्क समानता पर आधारित नहीं था। कच्चे माल की आवश्यकता तथा तैयार माल के निर्यात हेतु बाजार की खोज ने कई यूरोपीय देशों को औपनिवेशिक देश बनने के लिए प्रेरित किया।

19वीं सदी में जब शेष यूरोप में औद्योगिक क्रांति का आरम्भ हुआ, तो वहीं दूसरी ओर अन्य कई यूरोपीय राष्ट्रों के बीच उपनिवेशों के लिए होड़ लगी थी। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति ने साम्राज्यवाद के उभरने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसके कारण औपनिवेशिक शक्तियों ने मध्यस्थों द्वारा सैन्य शक्ति, प्रत्यक्ष नियम और शासन के उपयोग से उपनिवेशों पर अधिक मजबूत नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की। कई उपनिवेशों को औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा अपने क्षेत्र का विस्तार माना जाता था।

10.6. इंग्लैंड के बाहर औद्योगिक क्रांति का प्रसार

- 1815 में नेपोलियन के युद्धों के अंत के पश्चात् यूरोप में एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हुआ जिसमें राष्ट्र औद्योगिक विकास पर ध्यान केंद्रित कर सकते थे। 1815 के बाद कई यूरोपीय राष्ट्रों में मशीनों का आगमन हुआ, लेकिन लोकतंत्र, स्वतंत्रता और प्रदेशों के एकीकरण के लिए आंदोलन ने 1871 तक औद्योगिक क्रांति को जड़ जमाने की इज़ाजत नहीं दी। फ्रांस में 1850 तक लौह-इस्पात के उद्योग विकसित होना आरंभ हो चुके थे, लेकिन कोयला और लौह अयस्क के रूप में कच्चे माल की कमी ने इसकी प्रगति को बाधित किया।
- जर्मनी, इस्पात के उत्पादन में ब्रिटेन के बाद दूसरे स्थान पर था, लेकिन अब भी ब्रिटेन से काफी पीछे था। बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मन एकीकरण के बाद, जर्मन उद्योग कई गुना विकसित हुए और शीघ्र ही पिग आयरन और कोयले के उत्पादन में अंग्रेजों के प्रतिद्वंद्वी बन गए। 1871 में इटली के एकीकरण के उपरांत इटली में औद्योगिक क्रांति का आरंभ हुआ। रूस में औद्योगिकीकरण सबसे अंत में हुआ।
- रूस प्राकृतिक संसाधनों में समृद्ध था, लेकिन पूंजी की कमी और दासता एवं निःशुल्क श्रम के कारण इसके औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया धीमी थी। जब दासता को 1861 में समाप्त कर दिया गया तब रूसी औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा मिला। इसने विदेश से पूंजी उधार ली, लेकिन 1917 की अक्टूबर क्रांति के बाद ही रूस में वास्तविक औद्योगिक क्रांति आ पाई।
- यूरोप के बाहर, 1783 में ब्रिटेन से स्वतंत्रता के बाद अमेरिका में उद्योग विकसित हो रहे थे। लेकिन वणिकवाद या वाणिज्यवाद (मर्केंटलिज़्म) की ब्रिटिश नीति ने स्वदेशी उद्योग के विकास को बाधित किया था और अमेरिका क्षेत्रीय विस्तार की अपनी राजनीतिक उथल-पुथल के साथ-साथ राष्ट्रपति लिंकन द्वारा दासता पर प्रतिबंध लगाने के कारण गृह युद्ध में फंसा हुआ था। अतः यहां 1870 के पश्चात् ही औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा मिला। अमेरिका तब एक औद्योगिक शक्ति के रूप में उभरा और द्वितीय विश्व युद्ध तक शेष विश्व के लिए तैयार वस्तुओं का एक प्रमुख आपूर्तिकर्ता बना रहा।
- **जापान** एशिया का पहला देश था जहां सर्वप्रथम औद्योगिकीकरण हुआ। यहां औद्योगिक क्रांति बहुत देर से लगभग 19वीं शताब्दी में हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसने 'Little is the Best' को अपना मूलमंत्र बना लिया। यह रेशम, खिलौने और चीनी मिट्टी के बर्तन के पारंपरिक निर्यातक से इस्पात मशीनरी, धातु की वस्तुएं और रसायनों का प्रमुख निर्यातक बन गया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक स्वतंत्रता, आक्रमण से सुरक्षा, श्रम और कानून व्यवस्था के साथ पूंजी की उपलब्धता आदि औद्योगिक क्रांति के प्रमुख निर्धारक थे। ब्रिटेन में सबसे पहले औद्योगिकीकरण इसलिए नहीं हुआ कि इसके पास बेहतर बुद्धिजीवी थे बल्कि उपर्युक्त तथ्यों के अनुकूल परिस्थितियों के विद्यमान होने के कारण ऐसा संभव हुआ। जब ये परिस्थितियां अन्य देशों में भी आईं तो उन्होंने भी शीघ्र ही औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ कर दी।

VISION IAS

11. उपनिवेशवाद की परिभाषा

- किसी एक क्षेत्र के लोगों द्वारा किसी अन्य क्षेत्र में उपनिवेशों की स्थापना, उनका शोषण, रख-रखाव, दूसरे क्षेत्रों का अधिग्रहण और विस्तार उपनिवेशवाद कहलाता है। यह सामान्यतः औपनिवेशिकों एवं मूलनिवासियों तथा उपनिवेश एवं औपनिवेशिक शक्ति के मध्य असमान संबंधों का एक समुच्चय है।

12. उपनिवेशवाद का इतिहास

12.1 भौगोलिक खोज या अन्वेषण की भूमिका

- सामंतवाद की समाप्ति के साथ-साथ 15वीं सदी के अंत में हुए अन्वेषणों या खोजी यात्राओं ने उपनिवेशवाद के उदय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 13वीं सदी के आरंभ में इटली के मार्को पोलो ने चीन की यात्रा की।

- व्यापारिक लाभ ने यूरोपीय बंदरगाहों के महत्त्व को बढ़ा दिया और व्यापारियों ने इसे अपनी गतिविधियों का केंद्र बनाया। शीघ्र ही भू-मध्य सागर के तटीय इलाकों में नए शहरों का विकास हुआ और वेनिस तथा जेनोवा जैसे शहरों की समृद्धि में वृद्धि हुई। ये तटीय शहर सामंतवाद आधारित ग्रामीण प्रणाली से स्वतंत्र थे। इन कस्बों में कृषिदास स्वतंत्र थे और इसलिए गांवों से शहरों की तरफ़ प्रवास तीव्र हो गया। इन तटीय शहरों का आधार पैसा था न कि भूमि। राजा, जो सामंत प्रणाली में अधीनस्थ सामंतों या सरदारों पर सैन्य सहायता के लिए निर्भर थे, उन्होंने सामंतों और चर्च की शक्तियों का तिरस्कार किया और व्यापारियों की यात्राओं का वित्त पोषण कर उन्हें संरक्षण प्रदान किया। इसके बदले सामंती नियंत्रण से बचने हेतु व्यापारियों ने राजा को सहायता प्रदान की और व्यापारियों की स्थिति (दर्जा) समाज में थोड़ी बेहतर हुई और इन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए।
- मौद्रिक लाभ अन्वेषण का सबसे महत्वपूर्ण कारण बन गया क्योंकि खोजी यात्री अपने शहर/देश में बहुत अधिक लाभ पर बेची जा सकने वाली वस्तुएँ लेकर लौटते थे। उदाहरण के लिए **वास्को-डी-गामा** (1498) ने वेनिस की अपेक्षा भारत में काली मिर्च का मूल्य 1/20 गुना तक कम पाया। मसालों का व्यापार सबसे आकर्षक था। 13वीं शताब्दी के मध्य तक मसालों के प्राथमिक व्यापारिक बंदरगाह के रूप में वेनिस का उदय हुआ। मसालों को वेनिस से पश्चिमी और उत्तरी यूरोप में ले जाया गया। वेनिस (*उल्लेखनीय है कि 14वीं सदी का पुनर्जागरण सर्वप्रथम इटली में ही आरंभ हुआ) उच्च प्रशुल्क लेकर अत्यंत समृद्ध बन गया।

- मध्य-पूर्व तक प्रत्यक्ष पहुंच न होने के कारण यूरोपियों को वेनिस द्वारा आरोपित उच्च मुल्य का भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया। यहां तक कि अमीरों को भी मसालों के उच्च मूल्य का भुगतान करने में परेशानी होती थी। पूर्व के मार्गों को ***सिल्क रूट्स*** के नाम से जाना जाता था। वेनिस के अतिरिक्त बैजेन्टाइन साम्राज्य की राजधानी कांस्टेंटिनोपल (कुस्तुन्तुनिया) ने भी पूर्व के साथ व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका निभाई। ये दोनों शहर व्यापार मार्गों पर स्थित थे और अपनी इच्छानुसार इस व्यापार को रोकने की शक्ति इनमें थी। 1453 में ऑटोमन साम्राज्य ने बैजेन्टाइन साम्राज्य को हरा दिया और समुद्री मार्गों को अवरुद्ध कर दिया।

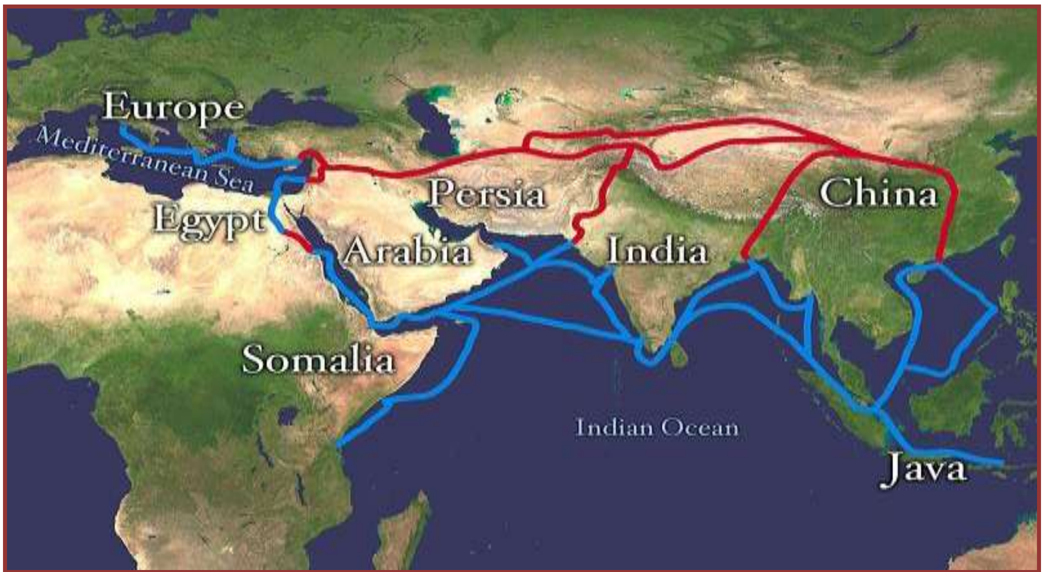

अन्वेषण युग से पूर्व के मार्ग: वर्ष 1453 में बैजेन्टाइन साम्राज्य के पतन के बाद ऑटोमन साम्राज्य द्वारा आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण सिल्क रोड (भू-मार्ग) और मसाला मार्ग (जल-मार्ग) बंद किए जाने के पश्चात् अफ्रीका के आस-पास से हो कर जाने वाले समुद्री मार्गों का अन्वेषण प्रोत्साहित हुआ और इसने अन्वेषण युग को सक्रिय किया।

अन्वेषण युग से पश्चात् के मार्ग: 16वीं शताब्दी में अन्वेषण युग के दौरान की जाने वाली खोजों के कारण पुर्तगाल (गहरा) और स्पेन (ग्रे) समुद्री व्यापारिक मार्गों को दर्शाता मानचित्र।

- इसने 15वीं सदी के अंत में यूरोपीय यात्रियों की खोजी यात्राओं का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार 16वीं सदी से पहले ही इटली ने वैश्विक व्यापार पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इसका कारण उसकी

भौगोलिक अवस्थिति और वाणिज्यिक समुद्री मार्गों के संबंध में ज्ञान पर एकाधिकार था। लेकिन शीघ्र ही समृद्ध इतालवी व्यापारिक शहरों के प्रति ईर्ष्या और ऑटोमन साम्राज्य द्वारा की गईं नाकेबंदी के कारण नाविकों ने पूर्व के लिए एक वैकल्पिक मार्ग खोजने के उद्देश्य से यात्राएँ आरंभ कीं। **उत्तर-पश्चिम में मार्ग** खोजने के लिए की गई एक यात्रा से कनाडा की खोज हुई। यह खोज ब्रिटेन के **जॉन काबोट** द्वारा की गई थी। अन्वेषण के साथ धीरे-धीरे दुनिया का भौगोलिक मानचित्र उभरा।

12.2. तकनीकी नवोन्मेष

- तकनीकी नवाचारों ने नई भूमि की ख़ोज करने में खोजकर्ताओं की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 15वीं सदी के अंत तक कम्पास, एस्ट्रेलेब (एक यंत्र जो जहाज के स्थान का निर्धारण करने में मदद करता है), **मानचित्रण की कला** और लंबे समय तक यात्रा कर सकने में सक्षम **बेहतर जहाज आदि** का विकास हुआ। इन नवोन्मेषों ने किसी भी अन्वेषक के समुद्र संबंधी भौगोलिक ज्ञान को बढ़ाया। वे समुद्री मार्गों के सटीक मानचित्रों को विकसित करने में सक्षम थे और मौसम प्रणाली से परिचित थे जिसने उन्हें नई भूमि तक सुरक्षित रूप से पहुंचने में सक्षम बनाया।
- इस प्रकार 15वीं सदी के अंत के आसपास की अवधि को अन्वेषण युग के रूप में जाना जाने लगा। स्पेन द्वारा वित्त पोषित क्रिस्टोफर कोलंबस भारत की खोज में निकला था, लेकिन 1492 में वह मध्य अमरीका में हैती के तट पर उतरा। उसने इसे भारत समझ लिया और यही कारण है कि उसने यहाँ के निवासियों को इंडियन और इस द्वीप को इंडीज नाम दिया।

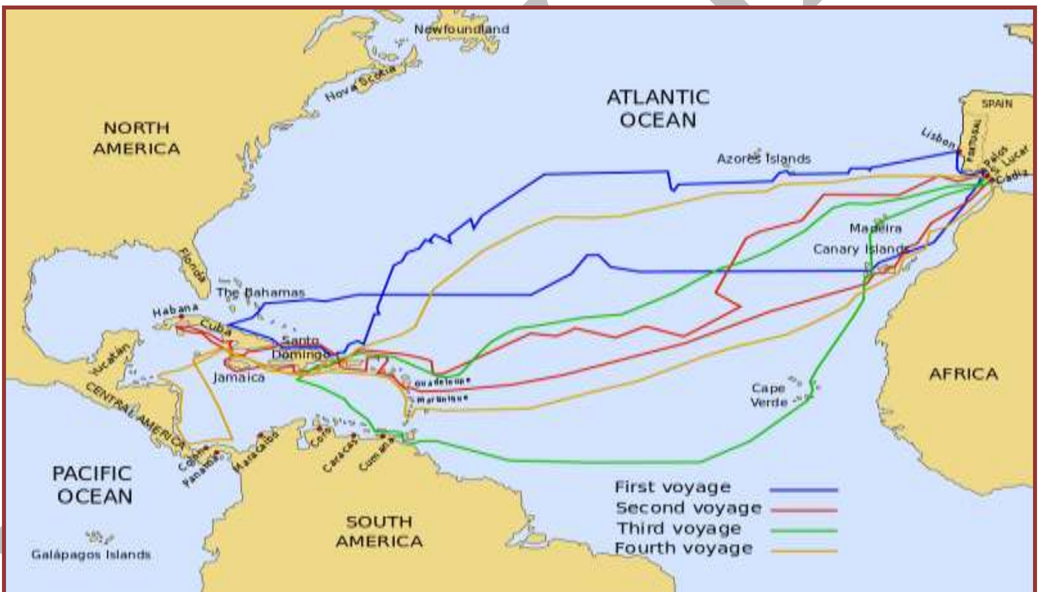

1498 में **पुर्तगाल द्वारा वित्तपोषित वास्को डी गामा ने भारत की खोज की।** वह *केप ऑफ गुड होप* (दक्षिण अफ्रीका) के रास्ते यूरोप से भारत आया।

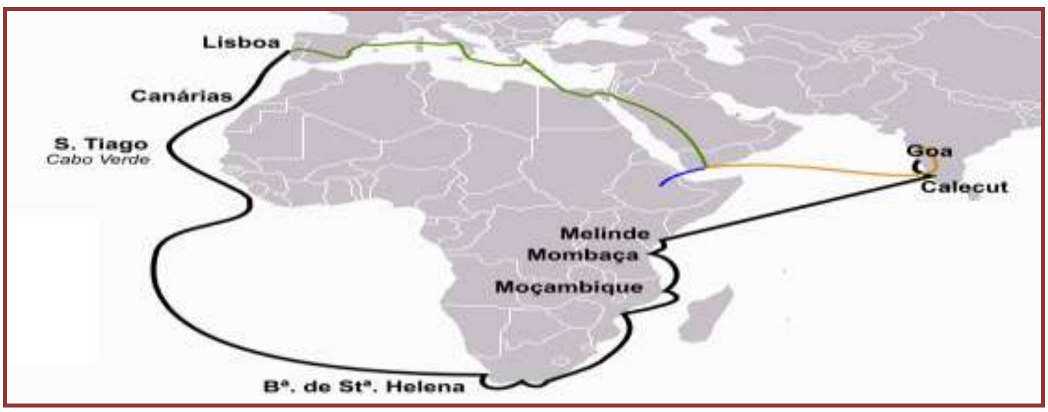

- 1500 ई. के आसपास **अमेरिगो** वेस्पुसी (कोलंबस नहीं) ने अमेरिका की खोज की थी। पुर्तगालियों ने भी दक्षिण-पूर्व एशिया में **फिलीपींस** की खोज की।
- **इन खोजों से औपनिवेशीकरण का आरंभ हुआ।** खोजी गई नई भूमियाँ खनिज संसाधनों से समृद्ध थीं और यहाँ कई उत्कृष्ट प्राकृतिक बंदरगाह थे, जिन्हें पत्तनों के रूप में विकसित किया जा सकता था। इस प्रकार ये व्यापार के नोडल बिंदु के रूप में कार्य कर सकते थे। यूरोपीय व्यापारियों ने यहाँ अपने प्रतिष्ठानों की स्थापना का प्रयास किया और इन खोजी गई नई भूमियों में उपनिवेश बनाने लगे।
- अमेरिका, एशिया और अफ्रीका की नई भूमियों से आयात की गई वस्तुओं से प्राप्त लाभ ने अन्वेषण हेतु एक होड़ आरम्भ की और शीघ्र ही डच, फ्रेंच और ब्रिटिश भी स्पेन और पुर्तगाल के साथ इस होड़ में शामिल हो गए।

13. औपनिवेशीकरण (Colonization)

- एशिया, अफ्रीका और अमेरिका का औपनिवेशीकरण तीन बातों को ध्यान में रख कर आरंभ हुआ- **गोल्ड**, **ग्लोरी** और **गॉड** (3G)। **गोल्ड** अर्थात सोना व्यापार से होने वाला लाभ ग्लोरी अर्थात प्रतिष्ठा जो उस मान्यता की प्रतिनिधि थी जो एक यूरोपीय शक्ति विश्व की सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्राप्त करती थी। किंगडम के झंडे के साथ मिशनरी भी आए जिनका कार्य ईसाई धर्म (गॉड) को बढ़ावा देना था।
- यहां यह ध्यातव्य है कि जिस देश का प्रभुत्व समुद्र पर था उसी ने औपनिवेशिक युग में सर्वाधिक लाभ प्राप्त किया। व्यापारिक जहाजों का बड़ा बेड़ा व्यापार की मात्रा और बाहरी बाजारों में फैलाव का परिचायक था, जबकि एक मजबूत नौसेना उसकी रक्षा कर सकती थी, प्रतियोगियों के जहाजों पर हमला कर सकती थी और वाणिज्यिक समुद्री मार्गों को अवरुद्ध कर सकती थी। वे देश जो *पोर्ट्स ऑफ कॉल* के रूप में मैत्रीपूर्ण बंदरगाह पाने में समर्थ थे वे व्यापारिक प्रतियोगिता में लाभपूर्ण स्थिति में होते थे। यहां उनके जहाज ईंधन भर सकते थे और चालक दल आराम कर सकते थे। इस प्रकार वाणिज्यिक पूँजीवाद, उपनिवेशवाद के साथ-साथ बढ़ा और उपनिवेशवाद ने वाणिज्यिक पूंजीवाद को फलने-फूलने हेतु एक सुरक्षित क्षेत्र प्रदान किया। उल्लेखनीय है कि उपनिवेशवाद के साथ कई नई वस्तुएँ व्यापार टोकरी (ट्रेड बास्केट) में आईं। आलू, तम्बाकू, मक्का तथा मसाले जैसे उत्पादों का व्यापार शुरू हुआ जिनके बारे में यूरोपीय अभी तक अनभिज्ञ थे। यूरोपीय कारखानों के लिए उपनिवेशों ने कच्चे माल के स्रोत के रूप में कार्य किया। उदाहरण के लिए अमेरिका में गन्ने के बागानों की स्थापना ने चीनी उद्योग को बढ़ावा दिया। इसी प्रकार चावल, कॉफी और कपास जैसे संसाधनों का भी दोहन किया गया।
- यूरोपीय देशों ने नई खोजी गई भूमि के तटीय क्षेत्रों में व्यापारिक पोस्ट्स की स्थापना की। वाणिज्यिक पूंजीवाद की नीति में अन्य राज्यों के व्यापारिक जहाजों पर हमला, व्यापारिक मार्गों में अवरोध, उपनिवेशों की स्थापना, व्यापारिक बाधाएं पैदा करना, उपनिवेशों के साथ व्यापार एकाधिकार शामिल था। यदि उपनिवेश स्थापित करने में असमर्थ हों तो नई खोजी गई भूमि के साथ विशेष व्यापार अधिकारों को सुरक्षित करना था ताकि व्यापारिक एकाधिकार पाया जा सके। पुर्तगालियों ने 1498 में केप ऑफ़ गुड होप के माध्यम से भारत के लिए व्यापार मार्ग की खोज के बाद एशिया के साथ व्यापारिक एकाधिकार स्थापित कर लिया और इसने पूर्व के व्यापार पर इतालवी एकाधिकार को प्रतिस्थापित कर दिया। बाद में, पुर्तगालियों को इंडोनेशिया में डच और भारत में अंग्रेजों ने प्रतिस्थापित किया। इसके बाद, सैन्य शक्ति और समुद्री शक्ति में वृद्धि ने फ्रांस और ब्रिटेन को बड़ी औपनिवेशिक शक्तियों के रूप में उभरने में सहायता की।

VISION IAS

14. उपनिवेशवाद का प्रभाव

- एक तरफ यूरोपीय देशों ने व्यापार की मात्रा और विविधता में बहुत तीव्र वृद्धि देखी तो वहीं दूसरी ओर उपनिवेशों को उनके संसाधनों से दूर कर दिया गया। यूरोप ने मसालों जैसे उत्पादों का आयात करना आरंभ कर दिया, जो कि इसके बाजार के लिए नए थे और बहुत ही शीघ्र ये लोकप्रिय हो गए। इसी प्रकार पूर्व से सूती कपड़े आयातित किये गये।
- स्पेन ने मध्य अमेरिकी उपनिवेशों में गन्ने के बागान स्थापित किए जबकि पुर्तगाल ने ब्राजील में बागानी प्रणाली को स्थापित किया। हॉलैंड जैसा देश जिसकी आतंरिक भूमि बंजर थी, उसने ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय देशों को व्यापार के लिए जहाज प्रदान कर उपनिवेशों से भारी लाभ कमाया। दूसरी ओर उपनिवेशों पर उपनिवेशवाद का प्रभाव भयावह था। अमेरिगो की यात्रा के बाद दक्षिण अमेरिका को स्पेन ने उपनिवेश बना लिया, जिसने इस यात्रा को वित्त पोषित किया था। एज़्टेक और इंका सभ्यता को नष्ट कर दिया गया और उनके सोने-चांदी को लूट लिया गया। वहां के मूल निवासियों को उपनिवेशवादियों के हित में खानों और खेतों में काम करने के लिए मजबूर किया गया। पेरू, बोलिविया और मैक्सिको की खानों का दोहन किया गया और प्राप्त सारा धन स्पेन भेज दिया गया।
- बाद में डच, ब्रिटिश और फ्रेंच भी अमेरिका के कुछ हिस्सों को नियंत्रित करने आए। एशिया में उपनिवेशवाद का उद्देश्य व्यापारिक लाभ कमाना था, जबकि अफ्रीका के मामले में दास व्यापार उपनिवेशवाद का मुख्य कारण था। **अफ्रीका में,** औपनिवेशीकरण जल्द आरंभ हुआ लेकिन भौगोलिक बाधाओं के कारण यह तटीय क्षेत्रों तक ही सीमित रहा और इसका विस्तार अफ्रीका की मुख्य भूमि तक नहीं हो सका।
- **दास व्यापार पुर्तगाल द्वारा आरंभ किया गया था** क्योंकि बागानों में लगे इसके कामगार ब्राजील की गर्म और आर्द्र जलवायु सहन करने में सक्षम नहीं थे। इसने काले अफ्रीकियों को ढूंढा जो शारीरिक रूप से मजबूत और भूमध्यरेखीय जलवायु में रहने के अभ्यस्त थे। उन्हें बागानों में काम करने के लिए लाया जाता था। अफ्रीकी, गुलामों के रूप में बागानों में काम करते थे तथा मूल अमेरिकी उपनिवेशवादियों के कृषि क्षेत्रों पर कृषि दासों की भांति कार्य करते थे। औपनिवेशीकरण के बाद शीघ्र ही उत्तरी अमेरिका, वेस्टइंडीज और अमेरिका के अन्य भागों में यूरोपीय शक्तियों द्वारा दास व्यापार आरंभ हो गया। स्पेन ने सर्वप्रथम कैरेबियाई क्षेत्र के हैती में दास व्यापार आरंभ किया और फिर फ्लोरिडा, मैक्सिको, चिली और तटीय दक्षिण अमेरिका के अन्य भागों में बागानी प्रणाली का उपयोग मुख्य रूप से गन्ना, तम्बाकू और कपास के उत्पादन के लिए किया गया। दास व्यापार को ट्रांस-अटलांटिक दास व्यापार के रूप में जाना गया। अमेरिका, अफ्रीका, और यूरोप के त्रिकोण के रूप में त्रिभुजीय दास व्यापार की शुरुआत हुई और अफ्रीकियों को अटलांटिक पार अमेरिका भेजा गया। 15वीं सदी के अंत में जब दास व्यापार की शुरुआत हुई तब यह व्यापार मुख्यतः निजी व्यापारियों, नाविकों और समुद्री डाकुओं द्वारा किया जाता था। परन्तु 16वीं सदी के अंत तक इस व्यापार के लिए दास व्यापार कंपनियों की स्थापना हो गई। आरंभ में काले अफ्रीकियों को तटीय अफ्रीका से पकड़ा जाता था क्योंकि अंदरूनी भाग पहुंच से बाहर थे, लेकिन 19वीं सदी में मुख्य भूमि के अन्वेषणों के पश्चात् सम्पूर्ण अफ्रीका से दास पकड़े जाने लगे। अटलांटिक पार करने की यात्रा काफी अमानवीय थी। भीड़ और स्वच्छता की कमी के कारण इन यात्राओं के दौरान कई अफ्रीकियों की मृत्यु हो जाती थी।
- 1750 के बाद औद्योगिक क्रांति ने इंग्लैंड में कच्चे माल की मांग में वृद्धि की। उपनिवेशों से कच्चे माल की आपूर्ति बढ़ाने और ब्रिटेन के बढ़ते औपनिवेशिक साम्राज्य के कारण दास व्यापार में खरीद-फरोख्त किए जाने वाले अफ्रीकियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। ब्रिटेन के उपनिवेश वेस्टइंडीज़ में 100 वर्षों में लगभग 2 मिलियन गुलाम आयात किए गए। अमेरिका का वर्तमान जनसांख्यिकीय संघटन 16वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य किए गए अत्यधिक दास व्यापार का सूचक है।

VISION IAS

- 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के बाद फ्रांस में दास प्रथा समाप्त हो गई क्योंकि क्रांति मुख्यतः स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के विचारों पर आधारित थी। ब्रिटेन ने 1833 में अपने सभी उपनिवेशों में दासता समाप्त करने के लिए दासता उन्मूलन अधिनियम पारित किया। संयुक्त राज्य अमेरिका में गृह युद्ध (1861-65) के बाद इसे प्रतिबंधित कर दिया गया। दासता पर प्रतिबंध का कई धड़ों द्वारा विरोध किया गया। दक्षिण अफ्रीका के डच औपनिवेशकों ने प्रतिबंध का विरोध किया। इसके अतिरिक दासता के मुद्दे पर संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय सरकार और दक्षिणी राज्यों के बीच अमेरिका में भी गृहयुद्ध लड़ा गया। दक्षिणी राज्यों ने दासता पर प्रतिबंध का विरोध ही नहीं किया अपितु USA द्वारा अधिग्रहीत नए क्षेत्रों में भी दासता के विस्तार का प्रयास किया।

15. उपनिवेशवाद और वाणिज्यिक पूंजीवाद में संबंध

(Relation between Colonialism and Mercantile Capitalism)

- वाणिज्यिक पूंजीवाद 18वीं सदी में ब्रिटेन की एक प्रमुख नीति थी। इसके पीछे विचार यह था कि राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि के लिए सरकार को घरेलू अर्थव्यवस्था और उपनिवेशों को विनियमित करना चाहिए। इस विनियमन का उद्देश्य व्यापार अवरोध उत्पन्न करना एवं उपनिवेशों पर व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करना था ताकि भुगतान संतुलन को सकारात्मक बनाए रखा जा सके। व्यापारी यूरोप के बाहर के देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौता और व्यापारिक एकाधिकार चाहते थे। वहां के स्थानीय प्रमुखों और शासकों द्वारा विरोध करने पर इन देशों को उपनिवेश बना लिया गया।
- 19वीं सदी में, एक नया विकास हुआ। एडम स्मिथ जैसे विचारकों के कारण, ***लेसेज़ फेयर*** नीति का कार्यान्वयन आरंभ कर दिया गया। इस नीति के अंतर्गत आर्थिक क्षेत्र में राज्य का हस्तक्षेप कम करने और एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था का निर्माण करने की संकल्पना निहित थी। यह केवल घरेलू अर्थव्यवस्था में मुक्त बाज़ार के लिए थी। संपूर्ण विश्व को मुक्त बाजार में परिवर्तित नहीं किया जा रहा था (जैसा कि आज, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और वैश्वीकरण के युग में है)। साम्राज्यिक शक्तियों को उनके अधिकांश उपनिवेशों पर व्यापार और निवेश के क्षेत्रों में विशेषाधिकार प्राप्त थे। अन्य देशों की कंपनियों को इन उपनिवेशों में समान अधिकार नहीं प्राप्त थे और साम्राज्यिक देश से संबंधित कंपनियों के लिए आर्थिक परियोजनाओं के अनुबंध सुरक्षित थे। 19वीं सदी के अंत तक *लेसेज़ फेयर* को अस्वीकार कर दिया गया। ब्रिटिश अर्थशास्त्री **कीन्स** ने 1929 में ***द एंड ऑफ़ लेसेज़ फेयर*** प्रकाशित किया। *लेसेज़ फेयर* की समाप्ति इसकी कमियों के कारण ही हुई, जैसे कर्मचारियों का अत्यधिक शोषण और अकाल जैसी विभत्स आपदाओं में भी सरकार द्वारा कोई हस्तक्षेप न किया जाना (भारत में 1880 के अकाल में भी सरकार ने हस्तक्षेप नहीं किया था)। यह अनुभव किया गया कि *लेसेज़ फेयर* का पालन आंख बंद कर नहीं किया जा सकता है और राज्य को बुनियादी मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए हस्तक्षेप करना होगा।

16. उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बीच अंतर

(Difference between Colonialism and Imperialism)

- उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद का ही एक अंग है। औद्योगिक क्रांति के युग में साम्राज्यवाद वस्तुतः उपनिवेशवाद का एक स्वाभाविक विस्तार था। विदेशी क्षेत्र का राजनीतिक अधिग्रहण साम्राज्यवाद की एक आधारभूत विशेषता थी। कुछ लेखकों के अनुसार, सैन्यवाद (जिसका तात्पर्य एक क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए आक्रमण करना है) साम्राज्यवाद के लिए आवश्यक है या यह साम्राज्यवाद का ही एक रूप है (क्योंकि राजनीतिक अधिग्रहण एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त करने या किसी पर हमले के बिना हो सकता है, लेकिन क्षेत्र पर कब्ज़ा करने के लिए सैन्यशक्ति का प्रयोग किया जाता है)। इसके विपरीत उपनिवेशवाद का अर्थ है लोगों के जीवन और संस्कृति पर अधिकार।

VISION IAS

- उपनिवेशवाद का मुख्य लक्ष्य उपनिवेशों का आर्थिक दोहन करना था जबकि साम्राज्यवाद के अंतर्गत राजनीतिक नियंत्रण शामिल होता है। इस प्रकार उपनिवेशवाद उन कंपनियों द्वारा किया जा सकता है जो विशेष व्यापारिक विशेषाधिकार रखती हैं और व्यापारिक केन्द्रों की स्थापना करती हैं, जबकि साम्राज्यवाद राज्य द्वारा सरकार की कूटनीति के माध्यम से प्रदेशों, संरक्षित क्षेत्रों और प्रभाव क्षेत्रों को प्राप्त करने और औद्योगिक व्यापार और निवेश को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है।
- उपनिवेशवाद का परिणाम राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में मूलनिवासियों के जीवन पर नियंत्रण होता है, जबकि साम्राज्यवाद अधिक औपचारिक और आक्रामक होता है।
- उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के बीच के अन्तर को कई इतिहासकार औद्योगिक क्रांति से जोड़ कर देखते हैं तथा औद्योगिक क्रांति को दोनों के बीच एक विभाजन रेखा मानते हैं। औद्योगिक क्रांति के बाद औपनिवेशिक साम्राज्य निर्माण की घटनाओं को **नव साम्राज्यवाद** का नाम दिया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि **इसमें नया क्या था?** यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद आरंभ हुए नव साम्राज्यवाद में होड़ या रेस का घटक नई बात थी। औपनिवेशिक प्रक्रिया के प्रत्येक पहलू में भी वृद्धि हुई। इस होड़ ने यूरोपीय शक्तियों द्वारा जितना संभव हो सके, उतने उपनिवेशों को अधिग्रहीत करने की आर्थिक प्रतिस्पर्धा को दर्शाया। यह कच्चे माल के स्रोतों और निर्यात बाजारों के लिए होड़ थी, जिसे उपनिवेशों द्वारा प्रदान किया जाना था। यह व्यापार के लिए अन्य राष्ट्रों के साथ संधि के द्वारा या *पोर्ट ऑफ कॉल्स* को उपनिवेश बना कर समुद्री गलियारे सुरक्षित कर वाणिज्यिक जहाजों को सुरक्षित बंदरगाह उपलब्ध कराने की भी होड़ थी। होड़ के इस घटक में नौसैनिक वर्चस्व और स्थलीय सैन्य बलों को स्थापित करने की होड़ भी सम्मिलित थी। **लेकिन होड़ की यह परिघटना पहले इतने स्पष्ट रूप में क्यों नहीं हुई?** इसका उत्तर औद्योगिक क्रांति जैसे कारकों में है, जो 19वीं सदी में शेष यूरोप, अमेरिका और जापान में फैली।
- राष्ट्रवाद का उदय भी एक अन्य कारक है जिसने आर्थिक और सैन्य वर्चस्व की तलाश हेतु राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा दिया और साथ ही घटता हुआ भू-क्षेत्र भी इसका कारण था।
- अंतिम कारक दिलचस्प है और वैश्विक शांति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। पहले यूरोपीय शक्तियों द्वारा उपनिवेश स्थापित करने के लिए पर्याप्त भू-भाग थे, लेकिन 19वीं सदी में अफ्रीका के अंदरुनी भू-भाग को छोड़ कर लगभग संपूर्ण विश्व एक या दूसरे शक्तिशाली राष्ट्र के प्रभाव में आ चुका था। इस प्रकार अब दुनिया की प्रमुख शक्तियाँ एक दूसरे की कीमत पर ही आगे बढ़ सकती थीं। एक देश के जो भी उपनिवेश थे उनकी रक्षा के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा थी और साथ ही साथ अन्य उपनिवेशों से प्रतिद्वंद्वी औपनिवेशिक शक्ति को प्रतिस्थापित करने का प्रयास भी किया जा रहा था। नव साम्राज्यवाद में औपनिवेशिक शक्तियों को अपनी औपनिवेशिक संपत्तियों की रक्षा और अपनी सीमाओं को सुरक्षित करने के लिए अधिक बल का उपयोग करना पड़ा। इसने उपनिवेशों में आर्थिक नियंत्रण सुनिश्चित करने के लिए राजनीतिक नियंत्रण को अधिक अनिवार्य बनाया। राजनीतिक नियंत्रण को सुरक्षित रखने के लिए सेना की आवश्यकता थी और इस प्रकार नव साम्राज्यवाद की एक अद्भुत विशेषता राष्ट्रीय शक्ति का उदय थी। ईस्ट इंडिया कंपनी जैसी व्यापारिक कंपनियां धीरे-धीरे अपनी सरकारों द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गईं।

17. नव साम्राज्यवाद (New Imperialism) की परिभाषा

- साम्राज्यवाद, औद्योगिक देशों द्वारा गैर-औद्योगिक देशों पर राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व या उनका शोषण है। यह वर्चस्व सैन्य विजय या विदेशी क्षेत्र को उपनिवेश बना कर प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् विदेशी भूमि को जीतना और उन्हें स्वयं पर निर्भर बनाना। विदेशी शासक अल्पसंख्यक होते हुए भी देशी लोगों पर अपनी जाति और संस्कृति की श्रेष्ठता थोपते हैं।

- साम्राज्यवाद के प्रमुख घटकों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है:
    - कच्चा माल और निर्यात बाजार
    - संरक्षणात्मक प्रशुल्क
    - मुक्त व्यापार का अधिरोपण
    - अपवाह सिद्धांत (Drain Theory)
    - उपनिवेशों का राजनीतिक नियंत्रण
    - पोर्ट्स ऑफ़ कॉल्स का अधिग्रहण
- औद्योगिक देशों के कारखानों से अतिरिक्त उत्पादन हेतु कच्चे माल और निर्यात बाजारों की खोज के लिए यूरोपीय शक्तियों, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच उपनिवेशों पर नियंत्रण के लिए एक प्रतिस्पर्धा चल रही थी। इससे नव साम्राज्यवाद का उदय हुआ जिसकी विशेषता उपनिवेशों और प्रभाव क्षेत्रों के लिए होड़ थी।
- 1750 के पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन, औद्योगिकीकरण में अग्रणी रहा। अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही औद्योगिकीकरण किया और इस प्रकार वे विदेशी बाजारों में अंग्रेजी निर्यात से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। उन्होंने अपने स्वदेशी उद्योगों की रक्षा हेतु घरेलू और विदेशी बाजारों में अंग्रेजी निर्यात को रोकने के लिए सुरक्षात्मक प्रशुल्क लगाए। इससे पहले कि औद्योगिक क्रांति शेष यूरोप में अपने पाँव पसारती, अंग्रेजों ने वाणिज्यिक पूंजीवाद के अंग के रूप में फ़्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और हॉलैंड के प्रभाव को रोकने के लिए अमेरिकी उपनिवेशों में व्यापारिक और प्रशुल्क संबंधी प्रतिबन्ध आरोपित कर दिए। इस प्रकार उपनिवेशों के साथ व्यापार पर औपनिवेशिक शक्तियों का एकाधिकार था। परन्तु, उपनिवेशों को अपने स्वदेशी उद्योग की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार का संरक्षणात्मक प्रशुल्क लगाने की अनुमति नहीं थी और उन पर मुक्त व्यापार थोप दिया गया, जिसके अंतर्गत औपनिवेशिक राष्ट्र से आयात पर कोई भी शुल्क नहीं लगाया जा सकता था।
- उपनिवेशों के विभिन्न क्षेत्रों जैसे रेलवे में विदेशी निवेश पर उच्च दरों पर लाभ उपलब्ध होता था और औपनिवेशिक राष्ट्र विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करता था और स्वदेशी निवेश हतोत्साहित करता था। उपर्युक्त परिघटना को दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादियों द्वारा प्रतिपादित ड्रेन थियरी में भली-भांति समझाया गया है। अंग्रेजों ने भारत को कच्चे माल का निर्यातक और तैयार माल का आयातक बना दिया था। विदेशी निवेश ने इन निवेशों से प्राप्त होने वाला लाभ विदेशी निवेशकों की जेबों में जाना सुनिश्चित किया।
- उपनिवेशों को राजनीतिक रूप से नियंत्रित किया गया। इसे या तो भारत की तरह प्रत्यक्ष शासन से या फिर भारतीय रियासतों जैसे मध्यस्थों के माध्यम से शासन के द्वारा किया गया। साम्राज्यवाद के दौरान एक और रणनीति थी *पोर्ट्स ऑफ कॉल्स* का अधिग्रहण करना अर्थात् उन स्थानों पर जहाँ पोत कोयला और जल की पुन: पूर्ति कर सकते थे, उन बन्दरगाहों पर कब्जा करना। औपनिवेशिक राष्ट्रों ने उन द्वीपों को जीतने का प्रयत्न किया जो समुद्री मार्गों पर स्थित थे और व्यापारिक देशों के तटों के निकट स्थित थे।

18. नव साम्राज्यवाद का इतिहास

- 'नव-साम्राज्यवाद' के इस रूप की पहचान 19वीं और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में साम्राज्यवाद की दूसरी लहर के रूप में की जा सकती है। यह यूरोपीय उपनिवेशवाद की 15वीं से 19वीं शताब्दी की पहली लहर से भिन्न थी। यह औद्योगिक पूंजीवाद का परिणाम थी।
- कुछ उपनिवेशों में स्वाधीनता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया था, क्योंकि विश्व एक नए साम्राज्यवाद की ओर बढ़ रहा था। अमेरिका ने 1776 में अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी थी। फ़्रांसीसी क्रांति ने विश्व के बहुत से देशों में स्वतंत्रता आंदोलनों को प्रेरित किया। प्रारम्भिक वर्षों में नेपोलियन के साथ युद्धों ने स्पेन और पुर्तगाल को निर्बल बना दिया था, जिसके परिणामस्वरूप दक्षिण और मध्य अमेरिका में उनके कुछ उपनिवेशों ने अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी थी। मैक्सिको 1821 में स्पेन से स्वाधीन हो गया था। साइमन बोलिवर ने कोलम्बिया, इक्वेडोर, पेरू, वेनेजुएला और बोलीविया को स्पेन से मुक्त कराया। 1824 में ब्राजील, पुर्तगाल से मुक्त हो गया गया। इस प्रकार से 1789 की

VISION IAS

फ़्रांसीसी क्रांति के पश्चात् की अवधि साम्राज्यवाद में गिरावट का एक अस्थाई दौर था, जो 1870 में पुनः उदित हुआ।

- यहाँ उन कारकों का संक्षेप में उल्लेख करना प्रासांगिक है, जिनके कारण नव-साम्राज्यवाद का उदय हुआ:
    - **राजनीतिक कारकों की भूमिका:** नव साम्राज्यवाद के उद्भव के पीछे राजनीतिक कारकों की बहुलता थी। इनमें से एक, 1870-71 में जर्मनी व इटली के एकीकरण के पश्चात्, इटली और जर्मनी में निरंकुश राजतंत्र का उदय होना था। इस प्रकार के एकाधिपत्य ने राज्य की ओर से होने वाली आक्रामकता में वृद्धि की। परन्तु, नव-साम्राज्यवाद के लिए पूरी तरह से निरंकुश राजतंत्रों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। वास्तव में, ब्रिटेन, जहाँ प्रजातांत्रिक व्यवस्था थी, उसके पास सबसे बड़ा औपनिवेशिक साम्राज्य था। इस प्रकार सभी औद्योगिक शासन, भले ही वे लोकतान्त्रिक या निरंकुश राजतंत्र हो, साम्राज्यवाद में लिप्त थे। औद्योगीकरण ने औपनिवेशिक साम्राज्य निर्माण के लिए उनकी क्षुधा के साथ-साथ उनकी सम्भाव्यता में भी वृद्धि की थी। कुछ शासकों ने अपने देश में राजनीतिक नियंत्रण बनाए रखने के लिए साम्राज्यवाद को एक उपकरण के रूप में देखा। उपनिवेशों पर सैन्य विजय और साम्राज्य निर्माण, न केवल औपनिवेशिक शक्तियों की अर्थव्यस्था में सुधार ला रही थी, अपितु शासकों की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि कर रही थी। इन्हीं दो कारकों, अर्थात् एक सशक्त अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय गौरव ने उनके शासन को वैधता प्रदान की। इसी प्रकार के कारकों के कारण इटली और ज़ार द्वारा शासित रूस भी उपनिवेशों की होड़ में सम्मिलित हुए थे।
    - **राष्ट्रवाद की भूमिका:** 1789 की फ़्रांसीसी क्रांति के पश्चात् राष्ट्रवाद का उत्थान हुआ। औद्योगीकरण के युग में यह शीघ्र ही राष्ट्र-राज्यों के बीच आर्थिक प्रतिद्वंद्विता के रूप में प्रकट हुआ। राष्ट्रवादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीयता के विचारों से इस प्रतिद्वंद्विता को और अधिक बढ़ावा मिला। 1868-72 की अवधि में ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी और इटली में राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप औपनिवेशिक साम्राज्य में विस्तार की मांग उठी। निरंकुश शासक सत्ता पर अपनी पकड़ बनाए रखने और अपनी जनता के ध्यान में भटकाव लाने के लिए साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद दोनों पर निर्भर थे।
    - **औद्योगिक क्रांति/औद्योगिक पूंजीवाद की भूमिका:** नव साम्राज्यवाद के उद्भव में औद्योगिक क्रांति प्रमुख कारकों में से एक थी। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् व्यापक उत्पादन से अतिरिक्त लाभ मिला जिससे पूंजी संचित हुई। इस धन को पूँजी निर्माण के लिए पुन: निवेश किया गया। परिवहन और संचार अवसरंचना में विकास से लोगों तथा वस्तुओं को तीव्र गति से लाना-ले जाना सम्भव हो गया था और भाप के पोतों के विकास से विश्व भर में व्यापारिक वस्तुओं के आवागमन में लगने वाले समय में कमी आई। 19वीं शताब्दी में यूरोपीय जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि होने के कारण घरेलू बाजारों में भी वस्तुओं की मांग बढ़ रही थी। कारखानों में कच्चे माल की मांग में वृद्धि हुई, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर कच्चे माल की खोज होने लगी। यूरोप में जनसंख्या के बढ़ते दबाव के कारण और अधिक उपनिवेशों की खोज आरम्भ हुई जहाँ यूरोपीय लोगों को बसाया जा सकता था। शीघ्र ही, कारखानों में जो उत्पादन हो रहा था वह घरेलू और विदेशी बाजारों की खपत से कहीं अधिक हो गया। इसने नये उपनिवेशों की आवश्यकता में और अधिक वृद्धि की। इस प्रकार से उत्पादित माल की अधिक मांग, लाभ, पूँजी निर्माण, कच्चे माल की मांग, अतिरिक्त उत्पादन और निर्यात बाजारों की मांग का एक चक्र स्थापित हो गया। अतः यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक पूंजीवाद (औद्योगिक क्रांति के पश्चात् पूंजीवाद, जब कारखानों में मशीनों से उत्पादन किया जाने लगा) ने साम्राज्य विस्तार पर बल दिया।
    - **प्रतिस्पर्धियों की बढ़ी हुई संख्या:** 1870 के दशक के पश्चात् शेष यूरोप, अमेरिका और जापान में भी औद्योगिक क्रांतियाँ हुईं। औद्योगिक देशों ने कच्चे माल के स्रोतों और निर्यात बाजारों की आक्रामक तरीके से खोज प्रारम्भ कर दी थी।
    - **भौगोलिक स्थानों में कमी:** 19वीं शताब्दी के मध्य तक, जब उपनिवेश के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध थे और साम्राज्यों का सुगमता से विस्तार हो सकता था तो विश्व अपेक्षाकृत अधिक शांतिपूर्ण था। परन्तु, 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसी भी प्रकार का विस्तार किसी अन्य औपनिवेशिक शक्ति की कीमत पर ही हो सकता था। इस 'दौड़' में प्रतिस्पर्धियों की संख्या में भी वृद्धि हो गई थी। इस प्रकार से

VISION IAS

उपनिवेशवाद अब साम्राज्यवाद में परिवर्तित हो चुका था, क्योंकि अब औपनिवेशिक साम्राज्य को बनाये रखने और विस्तार करने के लिए सैन्य शक्ति और कठोर नियंत्रण की आवश्यकता थी। अगले चार दशकों में (1870 से आगे) उपनिवेशों के लिए होड़ प्रारम्भ हो गई थी और अछूते क्षेत्र केवल चीन और अफ्रीका में ही उपलब्ध थे, जिनके लिए यूरोपीय राष्ट्रों में होड़ लगी हुई थी।

- **धार्मिक और सांस्कृतिक कारक:** ईसाई धर्म का प्रसार करने के लिए ईसाई प्रचारकों (मिशनरीज) की आकाक्षाएँ और पिछड़े उपनिवेशों में श्रेष्ठ सभ्यता का प्रसार करने का भार श्वेत लोगों द्वारा अपने कंधे पर लिए जाने की धारणा ने भी इसमें अपनी भूमिका का निर्वाह किया। बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड द्वितीय ने कांगो का शोषण करने के लिए इस धारणा को एक साम्राज्यिक रणनीति के रूप में उपयोग किया और ऐसा ही कुछ अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों ने किया। परन्तु कुछ नेक व्यक्तियों ने सामाजिक सुधारों के माध्यम से लोगों के जीवन में उत्थान के लिए भी कार्य किया। थियोसोफिकल सोसायटी ने भी भारत में 1916 में साम्राज्यवाद विरोधी 'होम रूल आन्दोलन' का नेतृत्व किया। अन्य विषय जिन पर उन्होंने कार्य किया, उनमें महिलाओं के अधिकार और आधुनिक शिक्षा का प्रसार सम्मिलित थे।

नव साम्राज्यवादी शक्तियों का उदय		औद्योगीकरण की वास्तविक शुरुआत	नव साम्राज्यवाद के पीड़ित
इटली	1870 से आगे	1870 से आगे	प्रमुख रूप से अफ्रीका
जर्मनी	1870 से आगे	1870 से आगे	प्रमुख रूप से अफ्रीका, प्रशांत महासागर क्षेत्र
रूस	1850 के दशक से आगे	1914 तक प्रारम्भ हुआ फिर भी प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ तक प्रमुखता कृषि अर्थव्यस्था थी	प्रमुख रूप से मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया एवं चीन
संयुक्त राज्य अमेरिका	1890 के दशक तक	1865 से आगे	प्रमुख रूप से प्रशांत महासागर क्षेत्र (दक्षिणी अमेरिका का प्रभुत्व)
जापान	1890 के दशक तक	1868 से आगे	प्रमुख रू से चीन (सुदूर पूर्व) और प्रशांत महासागर क्षेत्र

19. अफ्रीका में उपनिवेशवाद

- 19वीं शताब्दी में इसके आन्तरिक क्षेत्रों की खोज नहीं होने से पहले तक अफ्रीकी महाद्वीप को अंध महाद्वीप के रूप में जाना जाता था। दुर्गम क्षेत्र, गैर-परिवहनीय नदियाँ और ऐसी ही अन्य भौगोलिक विशेषताओं के चलते ही अफ्रीका की मुख्य भूमि में उपनिवेशवाद का प्रवेश देर से हुआ और लम्बे समय तक यह तटीय अफ्रीका तक ही सीमित रहा।
- दास प्रथा पर पिछले अध्याय में पहले ही चर्चा की जा चुकी है।
- 19वीं शताब्दी में, व्यक्तिगत अन्वेषकों द्वारा किये गए अभियानों के प्रकाशन ने यूरोपीय लोगों में इसके प्रति रूचि बढ़ा दी। इन प्रकाशनों में उन अन्वेषकों के वृतांत भी सम्मिलित थे, जिन्होंने मध्य अफ्रीका की सम्पत्ति के विस्तृत विवरण प्रस्तुत किये थे। वे कांगो जैसी नदियों के जलमार्ग की रुपरेखा प्रस्तुत करने में सफल रहे। नदियों के नौवहन में योगदान और उनके जलमार्ग का ज्ञान होने का अर्थ था कि यूरोपीय कम्पनियाँ और उनके सैन्यबल अब आन्तरिक क्षेत्रों में पहुंच सकते थे और खनिज सम्पत्ति को आगे निर्यात करने के लिए तट पर वाहनों द्वारा ला सकते थे।
- बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड द्वितीय ने अन्वेषकों को सरंक्षण दिया और यह मध्य अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने वाला पहला देश था। 1876 में उसने कांगो को अपने नियंत्रण में ले लिया और इसका प्रबन्धन निजी उपनिवेश के रूप में किया {1885 में कांगो का कांगो मुक्त राज्य (Congo Free State) के रूप में नामकरण कर दिया गया}। बेल्जियम की सफलता ने अन्य यूरोपीय शक्तियों की इसमें रूचि बढ़ा दी और उन्होंने भी अफ्रीका में उपनिवेशों की खोज के लिए प्रवेश किया। कांगो के

VISION IAS

उपनिवेशीकरण के पश्चात् अफ्रीका के लिए होड़ प्रारम्भ हो गई। 1914 तक अबीसीनिया (जहाँ 1876 में अडोवा के युद्ध में राष्ट्रवादियों द्वारा इटली की हार हुई थी) और लाईबेरिया को छोड़ कर सम्पूर्ण अफ्रीका - ब्रिटेन, बेल्जियम, फ़्रांस, जर्मनी, इटली और पुर्तगाल में बंट चुका था।

- अफ्रीका में भू-क्षेत्र और व्यापारिक अधिकारों को लेकर यूरोपीय शक्तियों के बीच बहुत से विवाद थे। मिस्र और सूडान में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के हितों में टकराव था। बेल्जियम ने 1884 में ब्रिटेन और पुर्तगाल के बीच हुए समझौते का विरोध किया। इसके तहत इन दोनों के प्रभाव क्षेत्रों की सीमा निर्धारित की गई थी। चूंकि इसके द्वारा बेल्जियम को कांगो तक समुद्री पहुंच से वंचित कर दिया गया था, अतः उसने इसका विरोध किया था। अंततः यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों के अतिव्यापी दावों को विभिन्न सम्मेलनों में वार्ताओं के माध्यम से सुलझाया गया।
- जर्मनी में 1884-85 के **बर्लिन सम्मेलन** का आयोजन पश्चिमी और मध्य अफ्रीका, विशेषकर नाइजर और कांगो नदियों के विवादों के समाधान के लिए किया गया था। यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसके परिणामस्वरूप अफ्रीका में प्रत्येक औपनिवेशिक शक्ति के प्रभाव क्षेत्र को निर्धारित किया गया।

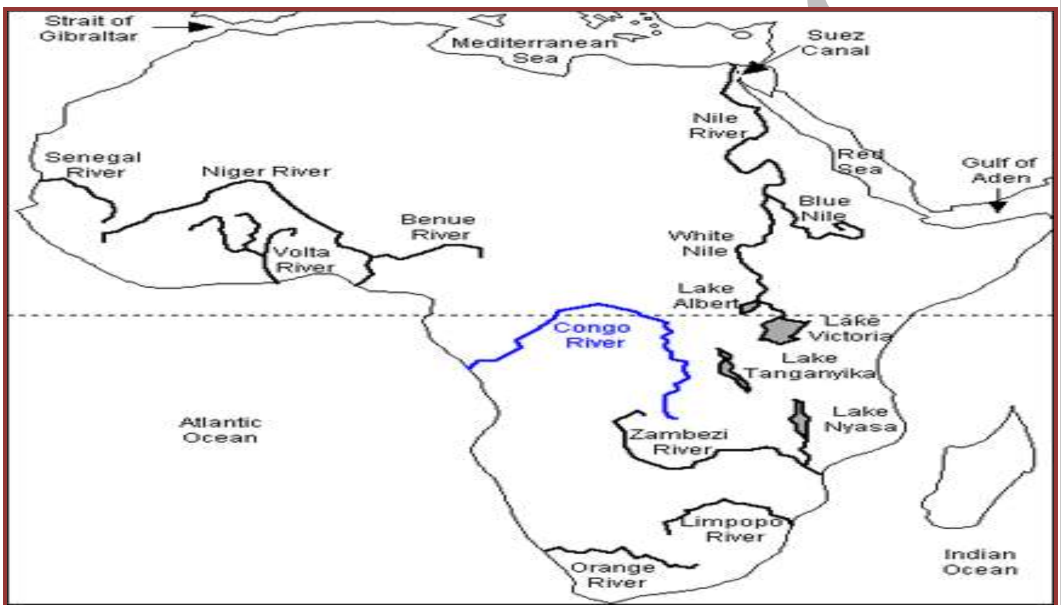

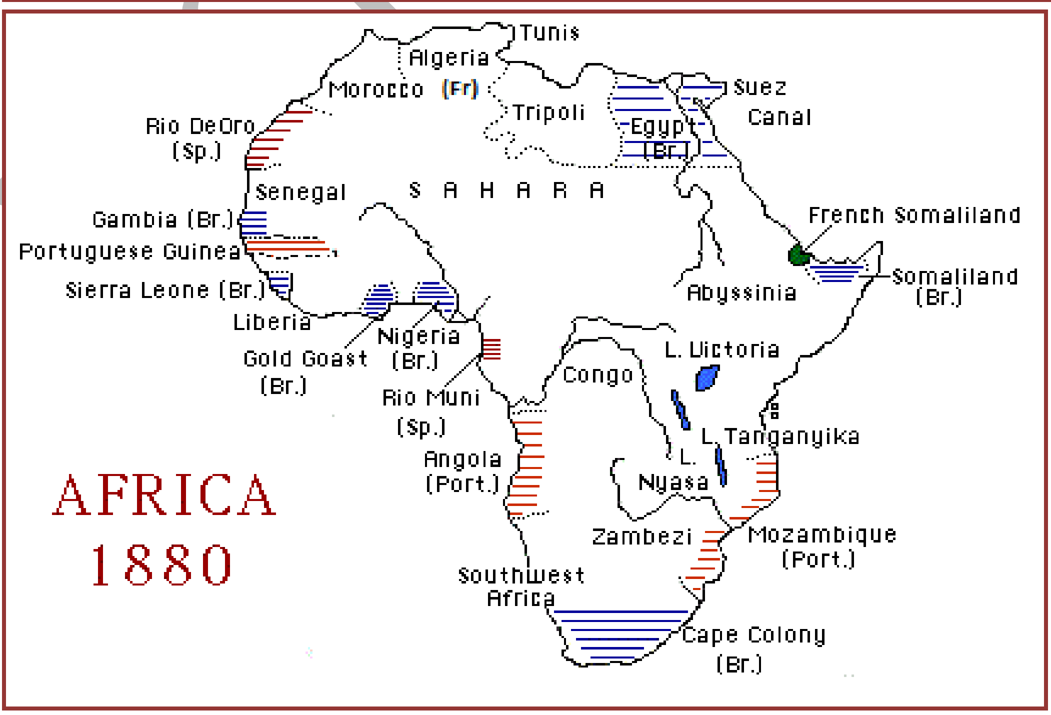

चित्र: 1880 में अफ्रीका

बर्लिन सम्मेलन (1884-85) के कुछ निर्णय इस प्रकार थे:

- नाइजर नदी घाटी को अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच विभाजित किया गया था, निचला नाइजर ब्रिटेन का संरक्षित राज्य बन गया और ऊपरी नाइजर फ़्रांस का संरक्षित राज्य बन गया।
- नाइजर नदी को सभी हस्ताक्षरकर्ताओं के पोतों के लिए निःशुल्क बनाया गया।
- अंग्रेज, ट्युनिस को फ़्रांस का उपनिवेश बनाने पर सहमत हो गये। स्पेन को आज के पश्चिमी सहारा का तटीय क्षेत्र सौंप दिया गया।
- इसके अतिरिक्त, यूरोपीय शक्तियों ने अफ़्रीकी लोगों के कल्याण और विकास के लिए कदम उठाने का वचन भी दिया। इस सम्मेलन में अश्वेत और इस्लामिक शक्तियों द्वारा प्रयुक्त दास प्रथा को समाप्त करने हेतु संकल्प लिया गया। साथ ही प्रत्येक औपनिवेशक शक्ति द्वारा अपने प्रभाव क्षेत्र में इसको समाप्त किया जाना था।
- यह निर्णय लिया गया कि कांगो मुक्त राज्य का शासन ***इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर एक्सप्लोरेशन एंड सिविलाइज़ेशन ऑफ़ सेंट्रल अफ़्रीका*** (International Association for Exploration and Civilization of Central Africa) द्वारा किया जायेगा। इस संघ की स्थापना बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड द्वितीय द्वारा की गयी थी और इस प्रकार कांगो को सम्राट लियोपोल्ड द्वितीय के निजी उपनिवेश के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी (बेल्जियम सरकार द्वारा इसे 1908 में लियोपोल्ड द्वितीय से वापिस लिया जाना था)।
- कांगो नदी घाटी में सबके लिए व्यापार और जहाजरानी की स्वतंत्रता की गारंटी थी। किसी भी राष्ट्र को कांगो में किसी विशेषाधिकार का दावा नहीं मिला था और सम्राट लियोपोल्ड ने सभी हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों को निवेश की स्वतंत्रता प्रदान कर दी थी। समझौते के अनुपालन की निगरानी के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय आयोग भी स्थापित किया गया था।

19.1. अफ्रीका के लिए फ़्रांसीसी संघर्ष

- फ़्रांस ने उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका में अपना साम्राज्य स्थापित किया। अल्जीयर्स (1830), गाम्बिया के कुछ हिस्से, और ट्युनिस (1881) को अपना उपनिवेश बनाने के पश्चात् अब यह मोरक्को पर अपना नियंत्रण स्थापित करना चाह रहा था। प्रारम्भ में फ़्रांस को विरोध का सामना करना पड़ा। 1880 के **मैड्रिड सम्मेलन** में मोरक्को की स्वतंत्रता की गारंटी दी गयी और सभी यूरोपीय देशों को व्यापार की स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया। परन्तु 1900 में फ़्रांस ने इटली के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसके अंतर्गत इटली ने मोरक्को में फ़्रांस के प्रभाव का विरोध न करने पर अपनी सहमति दे दी और फ़्रांस ने इसके बदले में लीबिया पर इटली के नियंत्रण का विरोध न करने के लिए वचन दिया।
- बर्लिन सम्मेलन में ब्रिटेन ने ट्युनिस पर फ़्रांस के विशेषाधिकार के लिए सहमति दे दी। इसके अतिरिक्त 1904 में ब्रिटेन और फ़्रांस ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसके अंतर्गत फ़्रांस ने मिस्र और सूडान पर अंग्रेजों के विशेषाधिकार को मान्यता दी, वहीं फ़्रांस को मोरक्को पर अपने विशेषाधिकार को मान्यता मिल गयी। इसी वर्ष, एक समझौते के अंतर्गत मोरक्को में स्पेन और फ़्रांस की सीमाएं निर्धारित की गईं। उपनिवेशवाद की होड़ में जर्मनी का प्रवेश सबसे बाद में हुआ और वह अपने आप को इस होड़ में पिछड़ा हुआ अनुभव कर रहा था। 1911 में जब फ़्रांस ने मोरक्को में अपनी सेना तैनात की तो जर्मनी ने अपने युद्धपोत को निकटवर्ती द्वीप अगादिर में भेज दिया। वार्ता के पश्चात् जर्मनी को फ़्रांसीसी कांगो का कुछ क्षेत्र दे दिया गया और उसके बदले में उसने मोरक्को पर फ़्रांस के नियंत्रण को मान्यता दे दी। 1912 में फ़्रांस ने मोरक्को को अपना संरक्षित राज्य बना लिया और मोरक्को अब स्वतंत्र नहीं था।

19.2. अफ्रीका के लिए ब्रिटिश संघर्ष

- दक्षिणी, पूर्वी एवं पश्चिमी अफ्रीका में अंग्रेजों के उपनिवेश थे। पश्चिम में गोल्ड कोस्ट (घाना) का इसका उपनिवेश कोको के उत्पादन में बहुत समृद्ध था, वहीं नाईजीरिया में तेल के बहुत बड़े भंडार थे। स्वेज नहर के कारण मिस्र में अंग्रेजों की विशेष रूचि थी, जहाँ से उसे अपने एशियाई उपनिवेशों के लिए, विशेषकर भारत के लिए छोटा समुद्री मार्ग मिलता था। स्वेज नहर का प्रबन्धन एक कम्पनी कर रही थी, जिसमें फ़्रांस और मिस्र के गवर्नर की सहभागिता थी। 19वीं शताब्दी में मिस्र आर्थिक संकट से गुजर रहा था और उसे स्वेज नहर में अपनी शेयरधारिता 1875 में अंग्रेजों को बेचनी पड़ी। 1876 में मिस्र; ब्रिटेन और फ़्रांस से लिए गये अपने ऋण की किश्त वापस करने में असफल रहा परिणामस्वरूप दोनों यूरोपीय शक्तियों ने मिस्र की सरकार के बजट प्रबन्धन के लिए एक परिषद की स्थापना की और इस प्रकार मिस्र उनके आर्थिक नियंत्रण में आ गया। कराधान की उच्च दरों और वेतन भुगतान में देरी के कारण मिस्र की सेना ने 1882 में विद्रोह कर दिया। ब्रिटिश सेना ने इस विद्रोह को कुचल दिया और मिस्र अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया। 1904 में फ़्रांस ने मोरक्को पर अपने अधिकार की मान्यता के बदले में मिस्र और सूडान पर अंग्रेजों के नियंत्रण को मान्यता दे दी। 1922 में, मिस्र को स्वतंत्रता दे दी गयी परन्तु ब्रिटेन ने स्वेज नहर पर अपना नियंत्रण बनाए रखा।

19.3. अफ्रीका के लिए जर्मनी का संघर्ष

- अफ्रीका के लिए संघर्ष में जर्मनी ने 1870 में अपने एकीकरण के पश्चात् प्रवेश किया। 1882 से 1884 तक जर्मनी दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका, कैमरुन और भूमध्यरेखीय अफ्रीका में टोगोलैंड और जर्मन पूर्वी अफ्रीका में उपनिवेश स्थापित करने में सफल रहा।
- प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जर्मन औपनिवेशिक साम्राज्य का अंत हो गया और इसके उपनिवेशों को मित्र राष्ट्रों के बीच मैंडेट्स के रूप में बाँट दिया गया। मैंडेट्स वे पूर्व उपनिवेश थे, जिन्हें लीग ऑफ़ नेशंस द्वारा बाद में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु तैयार करने के लिए विकसित देशों को सौंप दिया गया था। उदाहरण के लिए जर्मनी के कब्जे वाले दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका को मैंडेट के रूप में दक्षिणी अफ्रीका को सौंप दिया गया था।

19.4. अफ्रीका के लिए इटली का संघर्ष

- जर्मनी की भांति, इटली भी देर से प्रवेश करने वालों में से था। यह ट्युनिस को उपनिवेश बनाने में असफल रहा, क्योंकि फ़्रांस ने 1881 में इसे अपने अधिकार में ले लिया था। यह उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका में ईरीट्रिया को उपनिवेश बनाने में सफल रहा। विभिन्न संधियों के माध्यम से 1880 के दशक में इसने पूर्वी सोमालीलैंड का अधिग्रहण किया। अबीसीनिया (इथोपिया), ईरीट्रिया और पूर्वी सोमालिया के बीच में पड़ता है। इटली इसे उपनिवेश बनाने में विफल रहा और 1896 में यहाँ के राष्ट्रवादियों ने इटली को हरा दिया। 1911 में, इटली ने निर्बल ऑटोमन तुर्की साम्राज्य से लीबिया को अपने कब्जे में ले लिया। 1935 में इटली ने इथियोपिया पर हमला करके उसे अपने नियंत्रण में ले लिया। द्वितीय विश्व युद्ध में पराजय के पश्चात् इटली ने अपने सभी उपनिवेशों से हाथ धो लिए।
- बेल्जियम जैसा छोटा-सा राष्ट्र भी अफ़्रीकी केक में अपना भाग प्राप्त करने में सफल रहा। पहले इसने कांगो को अपना उपनिवेश बनाया और फिर रवांडा और बुरुंडी में अपने नियंत्रण का विस्तार कर लिया।
- अंगोला, गिनी और मोजाम्बीक पुर्तगाल के उपनिवेश थे; वहीं स्पेन के पास मोरक्को, स्पेनिश सहारा (रिओ डी ओरो इसका भाग था) और स्पेनिश गिनी थे।

VISION IAS

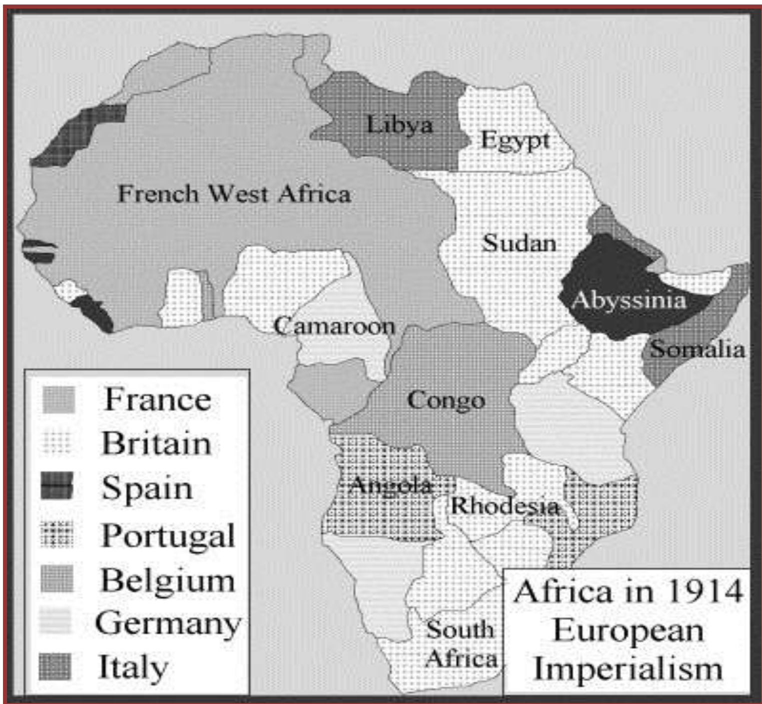

चित्र: यूरोपीय साम्राज्यवाद और अफ्रीका (1914)

19.5. अफ्रीका पर उपनिवेशवाद के प्रभाव

- औपनिवेशिक श्वेत लोग कुलीन बन गए और उन्होंने देशी अश्वेतों का शोषण किया।
- दासप्रथा।
- औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा जनसंहार।
- फूट डालो और राज करो की नीति ने स्वतंत्रता के पश्चात् समस्याएं उत्पन्न कीं।
- शिक्षा और स्वास्थ्य की अत्यधिक उपेक्षा।
- आर्थिक विकास की क्षति।

19.5.1. औपनिवेशिक श्वेत लोग कुलीन बन गए और उन्होंने देशी अश्वेतों का शोषण किया

- अफ्रीका में उपनिवेशवाद अपने साथ व्यवसायी, व्यापारी, प्रचारक, सैन्य और प्रशासनिक अधिकारी साथ ले कर आया। उनमें से अनेक अफ्रीका की समृद्ध कृषि-योग्य भूमि और व्यापार के लाभ के आकर्षण के कारण वहीं बस गए। प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए यहाँ का रुख किया और चर्चों की स्थापना की। इसलिए आज हम कई अफ़्रीकी देशों को मुस्लिम और ईसाई वर्चस्व वाले क्षेत्रों में विभाजित देखते हैं। यूरोप वासी अफ्रीका में कुलीन बन गए थे और विलासितापूर्ण जीवन का आनन्द उठाते थे जिसे वे स्वदेश में प्राप्त करने में असमर्थ थे। दक्षिणी अफ्रीका में बोअर्स जैसे औपनिवेशिक श्वेत लोग अफ्रीका में समृद्ध और शक्तिशाली बन गए। उनका सरकार पर नियंत्रण था और उन्होंने अफ्रीकियों को उनके किसी भी राजनीतिक अधिकार से वंचित कर दिया था। लगभग प्रत्येक उपनिवेश में अफ्रीकियों की भूमि को औपनिवेशिक श्वेत लोगों ने कृषि और खनन के लिए उनसे ले लिया था और अश्वेत लोग उनके दासों के रूप में कार्य करते थे।

19.5.2. दासप्रथा

- दास व्यापार ने कई अफ्रीकियों को बलपूर्वक अपने घरों को छोड़ने के लिए विवश कर दिया और वे फिर कभी अपने घर वापस नहीं लौट सके। इसने कई परिवारों को नष्ट कर दिया। स्थानीय अफ्रीकियों का स्थानीय दास बाजारों में व्यापार होता था। अफ्रीका में यूरोपीय खेतों में वे श्रमिकों की भांति कार्य करते थे। दासप्रथा का मनोवैज्ञानिक कुप्रभाव हीन भावना थी, जिसे सुव्यवस्थित रूप से समाज में पहुंचाया जा रहा था और स्वामी और दास के वर्णभेद की अवधारणा को चर्च तक का समर्थन प्राप्त था। दक्षिण अफ्रीका और जिम्बाब्वे में अफ्रीकियों को उनके अधिकारों से वंचित करने के लिए वर्णभेद के सिद्धांत की रंगभेद नीति को संस्थागत रूप से प्रचारित किया गया।

19.5.3. औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा जनसंहार

- अफ्रीकियों ने बहुत वीरता के साथ औपनिवेशिक सेनाओं का विरोध किया, परन्तु वे यूरोपीय लोगों की बंदूक की तकनीक के विरुद्ध खड़े नहीं हो सके। यूरोपीय सेनाओं द्वारा कई अफ्रीकियों को अपनी भूमियों को छीने जाने, दासता, और यूरोपियों द्वारा प्रस्तावित प्रतिकूल संधियों और यूरोपीय संस्कृति को लागू करने का विरोध करने के कारण हत्याएँ की गईं। जब कभी भी स्थानीय निवासियों ने उपनिवेशियों की मांगों को मानने से मना किया तो पूरे गाँव को नष्ट कर दिया जाता था। बेल्जियम कांगो ने शायद आधुनिक युग का पहला जनसंहार देखा था। 1876 से 1910 तक बेल्जियम के सम्राट लियोपोल्ड द्वितीय के प्रशासनिक अधिकारियों ने लगभग 10 मिलियन अफ्रीकियों को बेल्जियम कांगो में मौत के घाट उतार दिया था।

19.5.4. *बांटो और राज करो* की नीति से स्वतंत्रता पश्चात् समस्याएं

- विभिन्न भौगोलिक कारकों के कारण अफ्रीका में विभिन्न आदिवासी संस्कृतियाँ देखने को मिलती हैं। अफ्रीका की खींचतान ने अफ्रीका को मनमानी सीमाओं के साथ कई उपनिवेशों में विभाजित कर दिया था, जिनमें भौगोलिक निरन्तरता, सांस्कृतिक एकता या आर्थिक व्यवहार्यता का अभाव था। इन उपनिवेशों में विभिन्न जनजातियाँ निवास करती थीं जिनकी बिलकुल ही भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ थीं। वे स्वयं को एक राष्ट्र के भाग के रूप में नहीं देखते थे। इसके अतिरिक्त, उपनिवेशवादियों ने *बांटो और राज करो* की शासकीय नीति का उपयोग किया। उन्होंने एक जनजाति को किसी अन्य जनजाति के मूल्य पर संरक्षित किया। अभीष्ट जनजातीय लोगों को शस्त्र और धन उपलब्ध कराया गया जिसका उपयोग अन्य जनजातियों को बलपूर्वक अधीनता में लाने के लिए किया जाता था। इसके कारण जनजातीय समूहों में परस्पर शत्रुता उत्पन्न हुई। उदाहरण के लिए, रवांडा में बेल्जियम ने इस नीति का पालन किया और स्वाधीनता के पश्चात् देश में निरंतर जनजातीय हिंसा की घटनाएँ देखने में आईं। हाल ही के इतिहास में यह देखा गया कि 1994 में, इस प्रक्रिया ने सबसे विकृत नृजातीय संघर्ष का रूप लिया, जिसमें हुतू जनजाति के लोगों ने तुत्सी कबीले के लाखों लोगों की हत्या कर दी। अफ्रीकी राष्ट्रों में आज भी राष्ट्रीय एकता की कमी भयाक्रांत करती है, जिसके कारण एक कार्यात्मक लोकतंत्र को सुनिश्चित करना कठिन हो गया है।

19.5.5. शिक्षा और स्वास्थ्य की अत्यधिक उपेक्षा

- उपनिवेशवादियों और श्वेत उपनिवेशियों ने यह सुनिश्चित किया कि देशी अश्वेत शिक्षित न हो सकें। उच्च शिक्षा की विशेष रूप से उपेक्षा की गयी। जहाँ भी रंगभेद की नीति का अनुसरण किया गया, अफ्रीकियों को भिन्न विद्यालयों में निम्न स्तर की शिक्षा प्रदान की गई। अफ्रीकी देशों की स्वाधीनता के पश्चात् यदि सांख्यिकीय रूप में कहा जाए तो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तर पर प्रवेश का अनुपात बहुत ही कम था। उदाहरण के लिए 1960 में बेल्जियम कांगो की स्वाधीनता के समय केवल 17 स्नातक थे और कोई भी चिकित्सक, वकील, इंजीनियर नहीं था। इसके अतिरिक्त सेना में अधिकारी पद पर कोई भी अफ्रीकी नहीं था। इसके परिणामस्वरूप, स्वाधीनता के पश्चात् प्रशासनिक अक्षमता देखने को मिली जिसकी परिणिति लोकतान्त्रिक सरकारों के निरंतर पतन में हुई। निर्वाचित सरकारें विकास के बड़े लक्ष्यों को पूरा करने में विफल रहीं और वे सहायता के लिए विकसित विश्व पर निर्भर हो गए, जिसके कारण अफ्रीकी देशों में एक नव-उपनिवेशवाद आया। आज अफ्रीका की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और इसकी अधिकांश जनसंख्या कार्यशील आयुवर्ग में है। शिक्षा की कमी के चलते इस कार्यशील आयुवर्ग के ढांचे को जनसांख्यिकीय लाभांश में परिवर्तित करने का प्रयास किया जा रहा है, यदि यह कार्य आरंभ में हुआ होता तो वर्तमान में एक कुशल कार्यबल सुनिश्चित किया जा सकता था।
- स्वास्थ्य क्षेत्रक को भी बहुत अधिक उपेक्षित किया गया। ये उपनिवेश भूमध्यरेखीय आर्द्र जलवायु के कारण नियमित रूप से कई महामारियों से ग्रस्त रहते हैं। HIV- AIDS अफ्रीका में सर्वाधिक प्रचलित बीमारी है और आज WHO तथा बिल एवं मिलिंडा गेट्स फाउंडेशन जैसे गैर-सरकारी संगठनों के लिए यह सबसे बड़ा कार्यक्षेत्र है।

VISION IAS

19.5.6. आर्थिक विकास की क्षति

- उपनिवेशवाद, उपनिवेशवासियों के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पक्षों को प्रभावित करता है। जनजातीय विवादों के कारण समाज में एकजुटता का अभाव, दासता के कारण जातिगत पूर्वाग्रहों की उपस्थिति, निरंतर हीन भावना, शिक्षा का अभाव तथा शासन में भागीदारी का नकारा जाना – उपनिवेशवाद के नकारात्मक पक्ष हैं। ये कारक आर्थिक विकास में बाधक बने और स्वदेशी उद्यमशीलता को अफ्रीका में विकसित नहीं होने दिए। औपनिवेशक शक्तियों द्वारा वाणिज्यिक पूंजीवाद का अनुसरण किए जाने से अफ्रीकी अर्थव्यवस्थाओं को क्षति पहुंची। अफ्रीकियों को निर्यात किए गए अपने खनिज संसाधनों का बाजार मूल्य नहीं मिला। उपनिवेशवादियों ने यह सुनिश्चित किया कि अफ्रीका में कोई भी स्वदेशी उद्योग न विकसित हो और अफ्रीका केवल कच्चे माल का निर्यातक और यूरोपीय कारखानों में उत्पादित तैयार माल का आयातक बना रहे।
- 1880 के दशक में बर्लिन सम्मेलन में अफ्रीकी क्षेत्रों के संदर्भ में जर्मनी विभिन्न यूरोपीय देशों के स्पष्ट नियंत्रण से सम्बन्धित एक खंड (clause) शामिल करना चाहता था, ताकि उक्त क्षेत्र पर किसी औपनिवेशिक राष्ट्र का स्पष्ट दावा हो सके। इस खंड के जोड़े जाने से मुख्य लाभ यह होना था कि कोई औपनिवेशिक राष्ट्र अपने उपनिवेश में आधारभूत ढांचा विकसित कर सकता था, साथ ही कानून एवं व्यवस्था हेतु एक मशीनरी भी विकसित की जा सकती थी। जर्मनी इस खंड का उपयोग कर अन्य यूरोपीय राष्ट्रों को उपनिवेश स्थापित करने से रोकना चाहता था। परन्तु ब्रिटेन और फ्रांस ने इस खंड को नहीं जुड़ने दिया। इस प्रकार कई अफ्रीकी राष्ट्रों में औपनिवेशिक शक्तियों ने शासन किया और आर्थिक लाभ अर्जित किए। जो भी थोड़ी बहुत मूलभूत अवसरंचना विकसित की गयी थी उसे औपनिवेशिक हितों को सुगम बनाने के लिए किया गया था। उदाहरण के लिए परिवहन ढांचे का उद्देश्य आन्तरिक खनिज समृद्ध क्षेत्रों से कच्चे माल को बंदरगाहों तक पहुँचाना था। ब्रिटेन हाईड्रोकार्बन की निकासी के लिए सूडान और नाईजीरिया में पाईपलाइन विकसित करने की जल्दी में था। इसके अतिरिक्त औपनिवेशिक प्रतिद्वंदिता के परिणामस्वरूप उपनिवेशवादियों ने उपनिवेशों के बीच व्यापारिक अवरोध उत्पन्न किये और इस प्रकार अफ्रीका में कोई एकीकृत बाजार विकसित नहीं हो सका।

20. प्रशांत महासागर क्षेत्र में उपनिवेशवाद

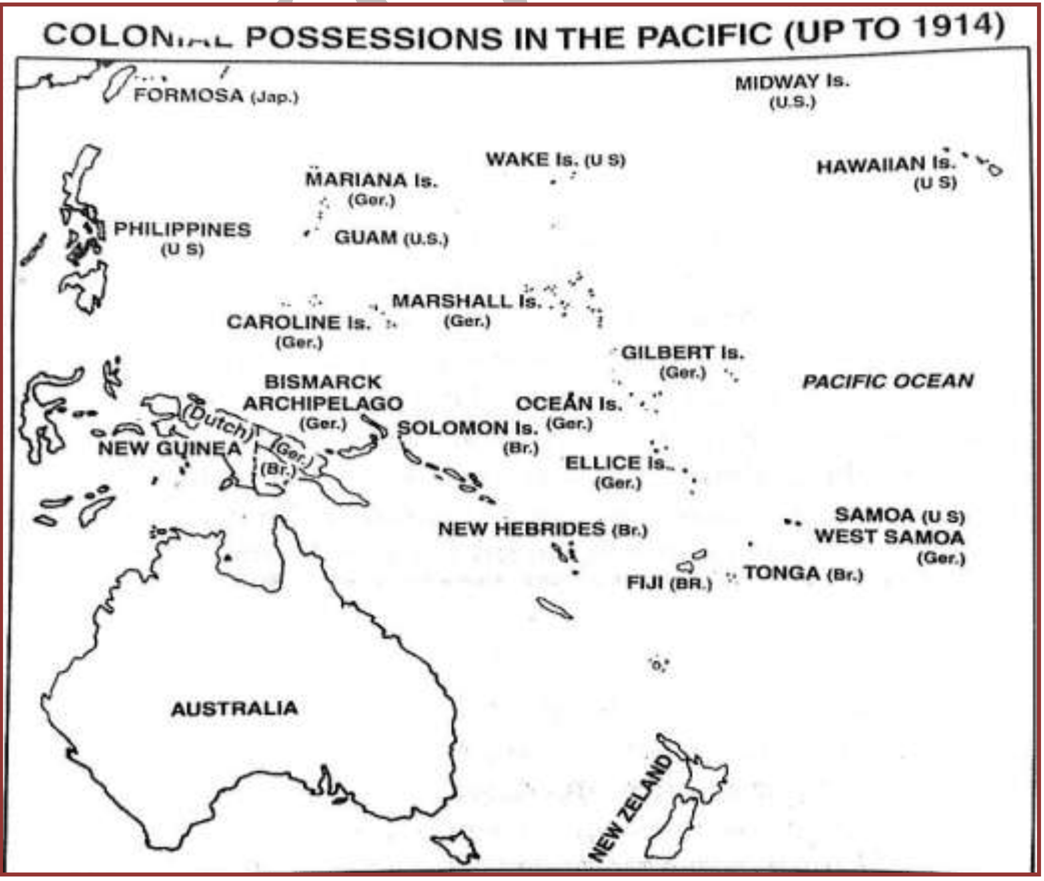

- वर्ष 1900 तक प्रशांत महासागर के लगभग सभी द्वीप औपनिवेशिक नियंत्रण में आ गए थे।
- **संयुक्त राज्य अमेरिका:** 1823 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने मुनरो सिद्धांत प्रस्तुत किया। इसमें दो बातों पर विशेष बल दिया गया था: सम्पूर्ण अमेरिका (उत्तर और दक्षिण) में अलगाव और यू.एस. अधिपत्य की नीति। इसमें कहा गया था कि संयुक्त राज्य अमेरिका यूरोपीय मामलों या उनके उपनिवेशों में हस्तक्षेप नहीं करेगा और अपने बैकयार्ड (उत्तर और दक्षिण अमेरिका) में किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को आक्रामक कार्यवाही मानेगा। परन्तु 1890 तक, अमेरिका एक नई साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। इसने अमेरिका के बाहरी क्षेत्रों को भी अपने प्रभाव में लाना प्रारम्भ कर दिया अर्थात इसने अपनी 'बैकयार्ड' अवधारणा का विस्तार प्रशांत महासागर और सुदूर पूर्व (चीन) तक कर दिया।
- 1881 तक यू.एस.ए. ने हवाई द्वीप समूह पर यह कहते हुए दावा करना प्रारंभ कर दिया कि ये द्वीप अमेरिका के अंग हैं। स्पेन-अमेरिकी युद्ध (जिसे स्पेन के उपनिवेश क्यूबा पर अधिपत्य के लिए लड़ा गया था) के परिणामस्वरूप:
  - प्रशांत महासागर में स्पेन के उपनिवेश:
    - फिलीपींस पर यू.एस.ए. ने आक्रमण किया और इसका अधिग्रहण कर लिया।
    - प्युर्टो रिको और गुआम को अमेरिका को सौंप दिया गया।
  - यद्यपि क्यूबा को स्वतंत्र कर दिया गया परन्तु इसकी विदेश नीति यू.एस.ए. के नियंत्रण में आ गई और इसपर किसी अन्य देश के साथ संधि करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
- हवाई द्वीप समूह (प्रशांत क्षेत्र) पर 1898 में आधिकारिक रूप से यू.एस. का नियंत्रण हो गया। (*गुआम और हवाई द्वीप आज भी अमेरिका की एशिया नीति के लिए रणनीतिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं)।
- अमेरिका, जर्मनी और ब्रिटेन के मध्य सामोआ द्वीप पर नियंत्रण को लेकर विवाद था। 1899 में सामोआ द्वीपों को यू.एस. और जर्मनी के मध्य विभाजित कर दिया गया। (ब्रिटेन को इसकी क्षतिपूर्ति कहीं और की गई)।
- ब्रिटेन के मामले में न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया के अधिवासी चाहते थे कि उनके आसपास के क्षेत्रों को ब्रिटेन अपना उपनिवेश बनाए। निरंकुश शासन का विरोध करने वाले फिजी के मूल निवासियों की मांग पर ब्रिटेन ने 1885 में फिजी पर अधिकार कर लिया। 1885 में ब्रिटेन और जर्मनी ने न्यू गिनी के पूर्वी भाग को अपने मध्य विभाजित कर लिया, जबकि पश्चिम भाग पर हॉलैंड का नियंत्रण था। प्रशांत महासागर के कुछ द्वीपों को जर्मनी ने स्पेन से खरीद लिया।

21. मध्य और पश्चिमी एशिया में उपनिवेशवाद

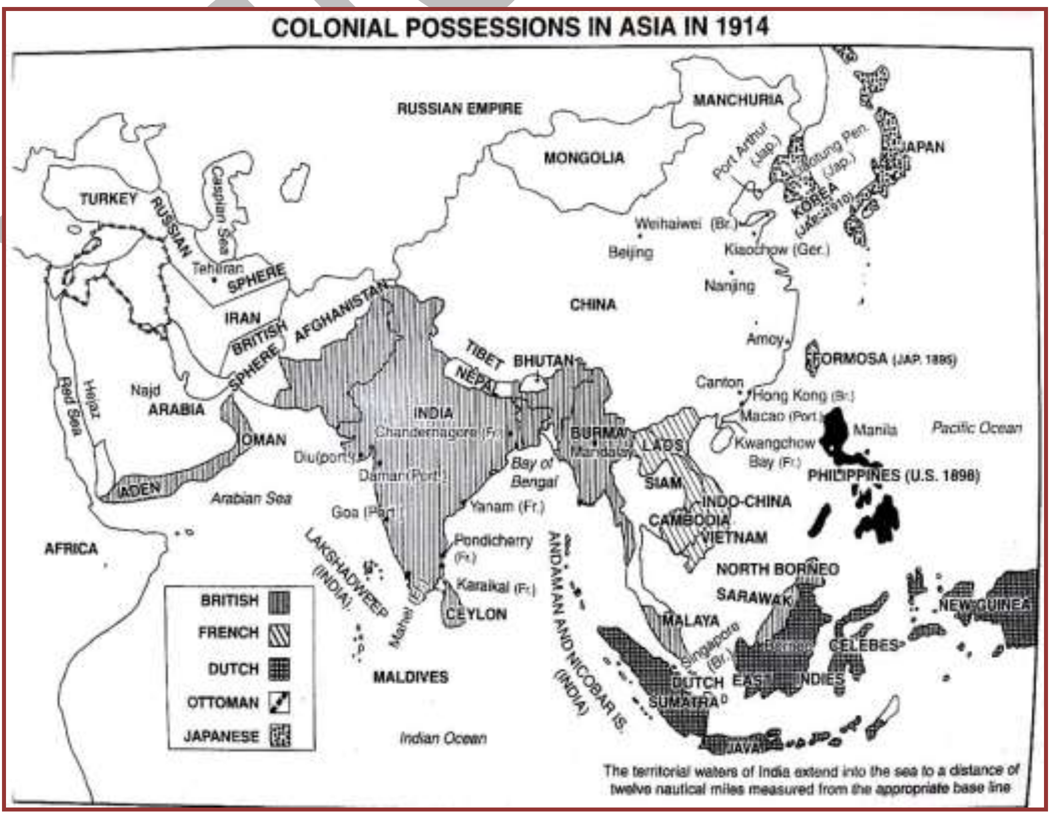

- मध्य और पश्चिमी एशिया में उपनिवेशों को लेकर प्रतिद्वंदिता मुख्य रूप से रूस और ब्रिटेन के मध्य थी। व्यापार की सुगमता के लिए रूस समुद्र तक आसान पहुंच चाहता था, इसलिए वह इन क्षेत्रों के बन्दरगाहों को नियंत्रित करना चाहता था। वह विस्तारवादी नीति का पालन कर रहा था, जो ब्रिटेन के भारतीय साम्राज्य के लिए खतरा थी। 1907 तक दोनों प्रतिद्वन्दियों के संबंध तनावपूर्ण थे। एशिया में रुसी विस्तार क्रीमिया युद्ध (1853-56) के पश्चात् प्रारम्भ हुआ, जिसमें फ्रांस, ब्रिटेन, ऑटोमन साम्राज्य और सार्डिनिया (इटली) के गठबंधन से रूस की पराजय हुई। क्रीमिया युद्ध में रूस निर्बल ऑटोमन साम्राज्य के हितों के मूल्य पर विस्तार करना चाहता था जबकि यूरोपीय शक्तियाँ रूस के इस विस्तार के विरुद्ध थीं, क्योंकि इससे पूर्वी यूरोप के रुसी प्रभाव में आने का खतरा था। 1858 में रूस ने अपने सुदूर पूर्वी क्षेत्र और मंचूरिया (चीन) के बीच आधुनिक सीमा की स्थापना के लिए, चीन को अमूर नदी के उत्तर में एक विशाल क्षेत्र रूस को सौंपने पर विवश कर दिया। चीन आज भी रूस से इस क्षेत्र को वापस लेने के लिए प्रयासरत है।

चित्र: अमूर नदी

- इससे रूस को पश्चिमी प्रशांत महासागर में एक बन्दरगाह प्राप्त हो गया। तिब्बत में रूस के प्रभाव को रोकने के लिए 1904 में ब्रिटेन ने अपने सैनिकों को तिब्बत भेजा और तिब्बत की विदेश नीति पर अपना नियंत्रण कर लिया। 1904-05 के रुसी-जापानी युद्ध में हार से निर्बल रूस ने 1907 में ब्रिटेन के साथ एक समझौता कर लिया और तिब्बत एवं अफगानिस्तान को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। इस प्रकार ब्रिटेन भारत और रूस के बीच एक मध्यवर्ती क्षेत्र बनाने में सफल हो गया।
- 1907 के समझौते के अनुसार फारस (ईरान) में उत्तरी ईरान को रूसी प्रभाव क्षेत्र और दक्षिणी ईरान को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई और मध्य ईरान एक मध्यवर्ती क्षेत्र बन गया, जिसमें दोनों देशों को समान स्वतंत्रता प्राप्त थी।
- एशिया में ब्रिटेन के पास भारत, सीलोन (श्रीलंका), अफगानिस्तान और बर्मा थे।
- 1871 तक चीन के अतिरिक्त सुदूर पूर्व के अधिकांश क्षेत्रों का बंटवारा किसी न किसी शक्ति के प्रभाव क्षेत्र के रूप में हो गया था। रूस के नियंत्रण में एक-तिहाई क्षेत्र था। पूर्वी एशिया में चीन और जापान स्वतंत्र थे। जापान साम्राज्यवाद से बच गया और मेइजी पुनःस्थापना के पश्चात् उसने औद्योगीकरण प्रारम्भ कर दिया। जापान 1890 के दशक में साम्राज्यवादी बन गया और 19वीं और 20वीं शताब्दी में चीन साम्राज्यवादी विस्तार का लक्ष्य बन गया।

22. चीन में साम्राज्यवाद

उपनिवेशवाद के दौर में चीन में घटने वाली घटनाएँ निम्नलिखित हैं: (हालांकि इसे उपनिवेशवाद की अपेक्षा नव-उपनिवेशवाद कहना अधिक प्रासंगिक होगा):

- पुर्तगालियों द्वारा 1514 में चीन की खोज की गई और 1557 में कैंटन में एक व्यापारिक केंद्र की स्थापना के साथ ही उन्होंने चीन के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किया।
- परन्तु चीन ने पृथकता की नीति का अनुसरण किया और व्यापारिक गतिविधियाँ सीमित ही रहीं।

- 19वीं शताब्दी के अफीम युद्धों ने चीन को विश्व के साथ खुलने पर विवश कर दिया अर्थात् व्यापार, विदेशियों का आवागमन और राजनयिक सम्बन्धों की स्थापना होने लगी।
- ऐतिहासिक रूप से, चीन में राष्ट्रीय एकता थी और मांचू वंश ने 1640 से 1911 तक वहां शासन किया। परन्तु, 1840 से 1949 की अवधि में चीन विदेशी हस्तक्षेप, गृहयुद्ध और विघटन का साक्षी बना।
- ताईपिंग विद्रोह (1850-64) एक धार्मिक-राजनीतिक आन्दोलन था, जिसे चीन की प्रादेशिक सेनाओं ने कुचल दिया था।
- 1858 में अमूर नदी के उत्तर का क्षेत्र रूस को सौंपना पड़ा।
- जापान ने 1894-95 में चीन पर आक्रमण किया और चीन के कई भागों को अपने नियंत्रण में कर लिया, विशेषकर मंचूरिया को जापान के आर्थिक प्रभाव में ले लिया गया।
- 1899-1900 में बॉक्सर विद्रोह हुआ। यह विदेशी लोगों की उपस्थिति एवं हस्तक्षेप विरोधी और इसाई-विरोधी था। इसे दबाने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों को तैनात किया।
- 1904-05 के रूस-जापान युद्ध में जापान विजयी रहा और रूस द्वारा नियंत्रित क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में ले लिया।
- 1911 में मांचू राजवंश को सत्ता से बाहर कर दिया गया और गणतन्त्र की घोषणा कर दी गई।
- 1916 से 1928 तक चीन में कोई भी केन्द्रीय सत्ता अस्तित्व में नहीं थी और विभिन्न प्रान्तों में निजी सेनाओं वाले जनरलों का नियंत्रण था। इस युग को **वॉरलॉर्ड युग (Warlord Era)** के रूप में जाना जाता है।
- कुओमिन्तांग या KMT या नेशनलिस्ट पार्टी का उद्भव वॉरलॉर्ड युग में हुआ और इसने वॉरलॉर्ड युग को 1928 तक पूर्ण रूपेण समाप्त कर दिया। **सन यात सेन** और उसके पश्चात् **च्यांग काई शेक** इसके महत्त्वपूर्ण नेता थे।
- 1920 के दशक के उपरांत KMT और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के मध्य गृह-युद्ध लड़ा गया, जिसमें 1949 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी विजयी हुई, चीन में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना हुई, च्यांग काई शेक भाग कर ताईवान चले गए और वहीं से निर्वासित सरकार का संचालन किया।

22.1. चीन की घटनाओं का विवरण

- 1514 में पुर्तगालियों ने चीन की खोज की और 1557 में कैंटन में एक व्यापारिक केंद्र की स्थापना के साथ ही इन्होंने चीन के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए। 1730 तक, सभी यूरोपीय राष्ट्र चीन के साथ व्यापार में संलग्न हो गए थे, जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1784 में चीन के साथ व्यापार प्रारम्भ किया। परन्तु जब यूरोपीय राष्ट्रों, विशेषकर रोम (1870 तक रोम को फ़्रांस का समर्थन प्राप्त था। इसलिए फ़्रांस की भी चीन में संलिप्तता थी।) के ईसाई प्रचारकों ने चीन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया तो चीन ने पृथकतावादी नीति का अनुसरण किया। चीन ने कुछ चयनित चीनी व्यापारियों के माध्यम से केवल कैंटन बन्दरगाह से सीमित व्यापार की अनुमति प्रदान की।

22.2. प्रथम एवं द्वितीय अफीम युद्ध (1840-42 और 1858)

- 19वीं शताब्दी में, चीन में मांचू वंश की निर्बल सरकार थी। इस समय तक ब्रिटेन चीन का प्रमुख व्यापारिक सहभागी बन गया था परन्तु चीन के आत्मनिर्भर होने और पश्चिम से कम आयात के कारण यह व्यापार संतुलन ब्रिटेन के पक्ष में नहीं था। चूंकि चीनी लोग ब्रिटेन को निर्यात (विशेषरूप से चाय और रेशम) के भुगतान के रूप में केवल सोने जैसी मूल्यवान धातुओं को स्वीकार करते थे अतः अंग्रेजों को व्यापारिक घाटे का सामना करना पड़ रहा था। इस समस्या के समाधान के रूप में अंग्रेजों ने

VISION IAS

भुगतान के रूप में अफीम का विनिमय प्रारम्भ कर दिया। चीन ने इसका विरोध किया और परिणामस्वरूप 1840-42 और 1858 में अफीम युद्ध हुए। अफीम युद्धों के पश्चात्, अंग्रेजों ने हांगकांग पर अधिकार कर लिया और चीन से बलपूर्वक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। उन्होंने व्यापारिक केन्द्रों पर अंग्रेजी सम्प्रभुता की स्थापना भी कर ली। पश्चिमी देशों के साथ व्यापार के विरोध की नीति को समाप्त करने के लिए चीन को विवश किया गया। ब्रिटिश व्यापार एवं ब्रिटिश लोगों के चीन में बसने हेतु चीन के प्रमुख बन्दरगाहों को खोल दिया गया। चीन पर मुक्त व्यापार थोप दिया गया। इसका अर्थ था कि अंग्रेज अब किसी भी चीनी व्यापारी के साथ व्यापार कर सकते थे और साथ ही आयात शुल्क भी कम कर दिए गए। इसके अतिरिक्त एक अंग्रेज राजनयिक स्थायी रूप से चीन में नियुक्त कर दिया गया। चीन में रहने वाले ब्रिटिश नागरिकों पर केवल ब्रिटिश कानून के अंतर्गत ही अभियोग चलाया जा सकता था।

- दो अफीम युद्धों के मध्य, अन्य यूरोपीय राष्ट्र और संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी चीन के साथ व्यापारिक अनुबंधों पर हस्ताक्षर किए, परन्तु वे अधिक अनुकूल संधियाँ चाहते थे जिसके परिणामस्वरूप द्वितीय अफीम युद्ध हुआ।
- द्वितीय अफीम युद्ध के पश्चात्, व्यापारिक संधियों में संशोधन किये गए और पहले से अधिक चीनी बन्दरगाहों को व्यापार के लिए खोल दिया गया। यूरोपीय पोतों को चीनी नदियों में आवागमन का अधिकार प्राप्त हो गया और यूरोपीय लोग स्वतंत्र रूप से चीन में यात्रा कर सकते थे। चीन को ईसाई धर्म प्रचारकों की सुरक्षा का वचन देना पड़ा और उन्हें चीन में कहीं भी चर्च स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हो गया। यह विडम्बना ही थी कि चीन में धार्मिकता के आयात के साथ अफीम के व्यापार को भी वैध बना दिया गया। द्वितीय अफीम युद्ध के पश्चात्, कई अन्य यूरोपीय राष्ट्र, कुछ दक्षिणी अमेरिकी राष्ट्र और जापान ने चीन के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किये। इस प्रकार चीन को विभिन्न साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए खोल दिया गया, जिन्होंने धीरे-धीरे सम्पूर्ण चीन में अपने प्रभाव क्षेत्र स्थापित कर लिए।

22.2.1. 1858 में अमूर नदी के उत्तर का क्षेत्र रूस को सौंपना पड़ा

- 1858 में चीन निर्बल था। यह द्वितीय अफीम युद्ध में हार रहा था और साथ ही ताईपिंग विद्रोह का भी सामना कर रहा था। 1858 में रूस ने आक्रमण की धमकी दी और परिणामस्वरूप चीन को अमूर नदी के उत्तर का बहुत बड़ा क्षेत्र रूस को सौंपने के लिए विवश होना पड़ा।

22.2.2. मांचू राजवंश और वॉरलॉर्ड युग

- मांचू राजवंश ने चीन पर 1640 से 1911 तक शासन किया। 1840 के दशक में प्रथम अफीम युद्ध तक मांचू शासकों ने पृथकतावाद या अलगाव की नीति का अनुसरण किया। यह अपनी अलगाववादी नीति को बनाए रखने में सक्षम था, क्योंकि चीन सभी वस्तुओं के लिए आत्मनिर्भर था और वास्तव में उसका शेष विश्व के साथ व्यापार संतुलन (BoT) बहुत ही सकारात्मक था। इसकी चाय अंग्रेजों द्वारा अपने साम्राज्य और शेष विश्व में पहुंचा दी गई। वास्तव में, बोस्टन टी पार्टी की चाय भी चीनी चाय थी। चीन में कोई बड़ा उथलपुथल नहीं हुआ था और 1840 के दशक तक यह सामान्यतः शांत ही रहा। 1840 में यूरोपीय राष्ट्रों ने व्यापारिक सम्भावनाओं का लाभ उठाने के लिए चीन में बलपूर्वक अपना मार्ग प्रशस्त किया। उनका उद्देश्य चीन को कच्चे माल का निर्यातक और तैयार माल का आयातक बनाना था। चीन में हस्तक्षेप करने वाला पहला देश ब्रिटेन था। इसने अफीम युद्ध लड़ा और इसमें विजय प्राप्त की इसके परिणामस्वरूप चीन को अपनी अलगाववादी नीति को समाप्त करने के लिए विवश होना पड़ा। अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने भी ब्रिटेन का अनुसरण किया और चीन को अपने प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया। प्रभाव क्षेत्र वे क्षेत्र थे जहाँ विशिष्ट यूरोपीय राष्ट्रों को विशेष बन्दरगाहों पर विशेष अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त थी। इसके पश्चात् 19वीं और 20वीं शताब्दी के आरम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने खुले द्वार की नीति (Open Door Policy) थोप दी, जहाँ किसी अन्य राष्ट्र के मामलों में हस्तक्षेप किए बिना, सभी राष्ट्र चीन से व्यापार करने के लिए स्वतंत्र थे।

VISION IAS

- 1850-64 की अवधि में दक्षिणी चीन में **ताईपिंग** विद्रोह हुआ। यह आंशिक रूप से धार्मिक और आंशिक रूप से राजनीतिक आन्दोलन था, जिसका उद्देश्य मांचू राजवंश के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह के माध्यम से **पूर्ण शांति का दिव्य साम्राज्य** (Heavenly Kingdom of Great Peace) स्थापित करना था। ईसाई ताईपिंग विद्रोहियों ने सम्पत्ति में सहभागिता (परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार भूमि का वितरण), महिलाओं को समानता और कन्फ्यूशियसवाद, बौद्ध धर्म तथा चीनी लोक धर्म को ईसाई धर्म से प्रतिस्थापित करने की मांग की। ताईपिंग विद्रोह को कुचल दिया गया, परन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा नहीं, अपितु प्रांतीय सेनाओं द्वारा। माँचू शासकों के नियंत्रण और उनकी प्रतिष्ठा में गिरावट ने प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार से स्वतंत्र होने के लिए प्रोत्साहित किया। यह प्रक्रिया वॉरलॉर्ड युग में (1916-28) आरम्भ हुई, जहाँ वास्तविक शक्ति क्षेत्रीय सेनाओं के पास थी जिनका नेतृत्व विभिन्न वॉरलॉर्डस करते थे।

22.2.3. पांच प्रमुख घटनाएँ

वॉरलॉर्ड युग के प्रारम्भ होने से पूर्व पांच प्रमुख घटनाएँ घटित हुईं:

- **चीन-जापान युद्ध (1894-95):** यह युद्ध मुख्यतः कोरिया के लिए लड़ा गया था, जो अब तक चीन के नियंत्रण में था। हार के पश्चात् चीन ने कोरिया को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता प्रदान कर दी (*जापान ने 1910 में कोरिया पर अधिकार किया)। इसके अतिरिक्त चीन को दक्षिणी चीन के कुछ क्षेत्र जापान को देने हेतु विवश किया गया। फॉर्मोसा (ताईवान) पर जापान ने अधिकार कर लिया। इस युद्ध के पश्चात् दक्षिण चीन सागर में स्थित सेनकाकू द्वीप पर जापान ने कब्ज़ा कर लिया। यह द्वीप आज भी चीन और जापान के मध्य विवाद का मुद्दा बना हुआ है। इसके अतिरिक्त मंचूरिया भी जापान के आर्थिक प्रभाव में आ गया, जहाँ उसने 1890 में अत्यधिक पूँजी निवेश किया। अपने समृद्ध कोयला भंडारों और खनिज संसाधनों के कारण मंचूरिया बहुत ही महत्वपूर्ण था। यह प्रशांत महासागर तक पहुंच भी प्रदान करता था।
- **बॉक्सर विद्रोह (1899-1900):** 1900 तक चीन को विभिन्न प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया था (इस प्रकार से चीन को एक अंतर्राष्ट्रीय उपनिवेश के रूप में बदल दिया गया)। शीघ्र ही चीन ने यह अनुभव किया कि इन प्रभाव क्षेत्रों के कारण चीन का विभाजन हो जाएगा, और प्रत्येक साम्राज्यवादी शक्ति अपने प्रभाव क्षेत्र पर शासन करेगी। बॉक्सर विद्रोह राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह था जिसे ब्रिटिश-रूसी-फ़्रांसीसी-जापानी-अमेरिकी सेनाओं द्वारा कुचल दिया गया। चीन की महारानी को चीन में विदेशी सम्पत्तियों को हुई क्षति हेतु भारी मुआवजा देने के लिए विवश किया गया। इसके पश्चात् बॉक्सर प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किये गए और विदेशी शक्तियों को चीन में अपने नागरिकों की सुरक्षा के लिए अपने सैनिकों को तैनात करने की अनुमति प्राप्त हो गई। इस संधि के पश्चात् रूस ने मंचूरिया के सभी भागों पर अधिकार कर लिया।
- **रूस-जापान युद्ध (1904-05):** यह युद्ध मंचूरिया पर अधिकार के लिए लड़ा गया था। जापान इस युद्ध में विजयी हुआ और चीन में स्थित रूसी सम्पत्तियों का अधिग्रहण कर लिया। इस प्रकार और अधिक चीनी क्षेत्र जापान के नियंत्रण में आ गया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप:
    - जापान को दक्षिण मंचूरिया में विशेषाधिकार की स्थिति प्राप्त हो गई (अर्थात दक्षिण मंचूरिया को जापान ने अपने प्रभाव क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया) और उसे ऑर्थर बन्दरगाह भी प्राप्त हो गया।
    - 1905 में जापान ने स्वतंत्र कोरिया को अपने संरक्षित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया और लिओतुंग प्रायद्वीप पर नियंत्रण स्थापित कर लिया।
    - रूस ने सखालिन द्वीपों का आधा क्षेत्र जापान को सौंप दिया।

  इस विजय ने जापान को एक प्रमुख विश्व शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। अमेरिका, चीन में रूसी वर्चस्व का विरोधी था। रूस-जापान युद्ध में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मध्यस्थता की और जापान के अर्जित क्षेत्रों को स्वीकृति प्रदान करने के लिए रूस को राजी कर लिया। अमेरिका ने जापान के साथ गुप्त अनुबंध किया ताकि उन क्षेत्रों में अमेरिका को स्वतंत्र रूप से व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो सके। इस प्रकार अमेरिका ने जापान के तुष्टीकरण की नीति आरम्भ की, जिससे जापान के साम्राज्यवाद को बढ़ावा मिला और इसे एक प्रमुख शक्ति और प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका का प्रतिद्वंदी बनने में सहायता

VISION IAS

मिली। एक ओर तो एक एशियाई देश के हाथों रूस की पराजय ने एशियाई लोगों को उनके स्वतन्त्रता संघर्षों में मानसिक रूप से प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर रूस में ज़ार के शासन को निर्बल कर दिया। यह पराजय ज़ार के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण बनी और 1905 में रूसी क्रांति के परिणामस्वरूप जार का शासन समाप्त हो गया। 1905 की रूसी क्रांति के फलस्वरूप रूस में सीमित संविधानिक राजतन्त्र अस्तित्व में आया और अंततः 1917 में कम्युनिस्ट शासन की स्थापना हुई।

- 1900 के प्रारम्भ में पश्चिम में शिक्षित चीनी युवक उग्र क्रन्तिकारी विचारों के साथ चीन आए। वे मांचू राजवंश को उखाड़ फेंकना चाहते थे और उनमें से ***सन यात सेन*** जैसे कुछ लोग संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा लोकतंत्र स्थापित करना चाहते थे। **सन यात सेन** ने **कुओमिन्तांग** या **KMT** या **नेशनलिस्ट पार्टी** का गठन किया।
- **1911 में गणतन्त्र**: 1911 की क्रांति में अधिकांश प्रान्तों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया और इसी के साथ मांचू राजवंश का शासन समाप्त हो गया। नई सरकार ने युवा बुद्धिजीवियों द्वारा मांगे गए लोकतान्त्रिक सुधारों को लाने का प्रयास किया। परन्तु प्रांतीय सेनाओं ने इन सुधारों का विरोध किया और 1911 के सैन्य तख्तापलट में नई सरकार को सत्ता से बाहर कर दिया। युआन शी काई नामक सैन्य जनरल ने स्वयं को राष्ट्रपति घोषित करते हुए चीन को गणतन्त्र घोषित कर दिया। परन्तु जब प्रांतीय सेनाओं की इच्छा के विरुद्ध, युवान ने स्वयं को 1915 में सम्राट घोषित किया तो उसे सत्ताच्युत कर दिया गया और इसके परिणामस्वरूप वारलॉर्ड युग (1916-28) का प्रारम्भ हो गया।

22.2.4. प्रथम विश्व युद्ध (1914-19)

- प्रथम विश्व युद्ध (1914- 19) के दौरान, जापान ने कियाचो द्वीपों और शान्तुंग प्रांत के रूप में और अधिक चीनी प्रदेशों पर कब्जा कर लिया। हालांकि, 1921 में वाशिंगटन सम्मेलन के दौरान प्रशांत महासागर में अमेरिकी, ब्रिटिश और फ्रांसीसी नौसेनाओं की उपस्थिति को सीमित करने के बदले जापान इन प्रदेशों को मुक्त करने पर सहमत हो गया।

22.2.5. वॉरलॉर्ड्स युग (1916-28)

- इस समय चीन कई राज्यों में विभाजित था, प्रत्येक राज्य एक वॉरलॉर्ड के नियंत्रण में था जो अपनी निजी सेना के सहयोग से आपस में लड़ते रहते थे। वॉरलॉर्ड युग में चीन में अराजकता पैदा हुई जिससे किसानों को सबसे अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

22.2.6. 4 मई का आंदोलन (1919)

- **4 मई का आंदोलन (1919)** सामंतों और प्रतिगामी चीनी संस्कृति के विरूद्ध चीनी युवाओं द्वारा आरंभ किया गया एक आंदोलन था। इस आन्दोलन में छात्रों ने बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन किया। 1921 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की गई और यह किसानों के हितों के प्रति सहानुभूति रखती थी, जो वॉरलॉर्ड युग के दौरान समाज का सबसे शोषित वर्ग था। इसके साथ ही, च्यांग काई शेक के नेतृत्व में कोमिन्तांग स्वयं को सैन्य दृष्टि से मजबूत बना रहा था और इसने 1927-28 के अंत तक वॉरलॉर्ड का शासन समाप्त करने और देश में एकता कायम करने में सफलता प्राप्त कर ली। कोमिन्तांग चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की साम्यवादी विचारधारा के विरूद्ध था। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने भूमि के पुनर्वितरण जैसे उपायों के माध्यम से कृषक कल्याण पर ध्यान केंद्रित किया, जबकि कोमिन्तांग जमींदार समर्थक था और यह भूमि के पुनर्वितरण जैसे उपायों का विरोधी था। सैन्य रूप से मजबूत होने के कारण 1927 तक कोमिन्तांग कम्युनिस्टों पर हावी रहा।

VISION IAS

22.2.7. कोमिन्तांग और सन यात सेन

- कोमिन्तांग दल का गठन 1912 में डॉ. सन यात सेन ने किया था। वह 1911 की क्रांति के बाद चीन वापस लौट आए थे। कोमिन्तांग का लक्ष्य संयुक्त, लोकतांत्रिक और आधुनिक चीन की स्थापना करना था। हालांकि कोमिन्तांग की विचारधारा साम्यवादी नहीं थी, लेकिन प्रारंभिक चरण में यह साम्यवादियों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार था। डॉ. सन यात सेन ने वॉरलॉर्ड युग के दौरान चीनी विघटन का विरोध किया था। उनकी नीति का विश्लेषण **राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और भूमि सुधार** के तीन सिद्धांतों में किया जा सकता है। राष्ट्रवाद द्वारा, वह चीनी मामलों में विदेशी हस्तक्षेप का अंत और एक महान राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे, जबकि लोकतंत्र द्वारा वह वॉरलॉर्डस का शासन समाप्त करना चाहते थे। भूमि सुधार के सिद्धांतों के अंतर्गत, वह जमींदारों से भूमि की तत्काल जब्ती के पक्ष में नहीं थे, बल्कि उन्होंने किसानों से वादा किया कि वे किसानों के पक्ष में भविष्य में भूमि के पुनर्वितरण का प्रयास करेंगे साथ ही उनके आर्थिक विकास और लगान कम करने के लिए भी प्रयास करेंगे।
- डॉ. सन यात सेन अपने लक्ष्य में केवल आंशिक रूप से सफल रहे। 1912 में, वह दक्षिणी वॉरलॉर्डस की सहायता से दक्षिण चीन के कैंटन में सैन्य सरकार बनाने में सफल रहे। इस प्रकार, लोकतंत्र का उद्देश्य नहीं प्राप्त हो सका। पुनः कोमिन्तांग के पास शक्तिशाली सेना के अभाव के कारण दक्षिणी चीन के बाहर डॉ. सन यात सेन का प्रभाव आंशिक ही था। दक्षिणी सामंतों के साथ उनका गठजोड़ 1921 में समाप्त हो गया और उसके बाद उन्हें कैंटन से पलायन करना पड़ा और चीन के एकीकरण के लिए सोवियत रूस की सहायता मांगनी पड़ी, जिसने कोमिन्तांग की सेना का आधुनिकीकरण करने और प्रशिक्षित करने में सहायता प्रदान की। वह राष्ट्रवाद की भावना पैदा करने में सफल रहे और बौद्धिक राजनीतिज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हुए लेकिन विदेशी हस्तक्षेप समाप्त नहीं कर पाए तथा चीन को महान राष्ट्र नहीं बना पाए। 1925 में 59 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई, जिसके बाद च्यांग काई शेक कोमिन्तांग का नेता बना।

22.2.8. च्यांग काई शेक

- 1925 के बाद, सैन्य रूप से प्रशिक्षित च्यांग काई शेक ने सोवियत सहायता से कोमिन्तांग की सेना का आधुनिकीकरण किया। हालांकि उसने सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी और लाल सेना की कार्यप्रणाली का अध्ययन किया था परन्तु उसकी विचारधारा दक्षिणपंथी थी और वह पूंजीवादी वर्ग का समर्थक था। उसने 1925 में कोमिन्तांग से सभी कम्युनिस्ट सदस्यों को निकाल दिया और इससे सिद्ध होता है कि वह अपने पूर्ववर्ती सन यात सेन की तुलना में कम सहिष्णु था।

22.2.9. चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (1921 के बाद)

- कोमिन्तांग का लक्ष्य चीन में लोकतंत्र की स्थापना करना था। सोवियत रूस ने 1921 के बाद से कोमिन्तांग के नेतृत्व में एक मित्रवत और संयुक्त चीन की उम्मीद के साथ नकदी, सैन्य प्रशिक्षण और हथियारों के रूप में कोमिन्तांग की सहायता करना आरंभ कर दिया। वहीं दूसरी ओर, 1921 में वामपंथी बुद्धिजीवियों ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया। कोमिन्तांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों को वॉरलॉर्डस युग के दौरान कृषकों और मजदूरों का समर्थन मिला।
- उत्तरी अभियान (Northern March: 1926) वॉरलॉर्डस के विरूद्ध कोमिन्तांग और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का सैन्य अभियान था। 1927 में, वॉरलॉर्डस के विरूद्ध अपनी विजय के बाद, कोमिन्तांग ने शुद्धीकरण आंदोलन आरंभ किया। यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के विरूद्ध कोमिन्तांग का अभियान था। इस दौरान मजदूर और किसान नेताओं के साथ-साथ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों का भी संहार किया गया। वस्तुत: इस दौरान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को काफी हद तक समाप्त कर दिया गया।

VISION IAS

- लेकिन सत्ता में आने वाली अनुवर्ती कोमिन्तांग सरकार जनता की आकांक्षाएं पूरा करने में विफल रही। यह सरकार अक्षम और भ्रष्ट थी। जमींदारों, उद्योगपतियों और सरकारी अधिकारियों के मध्य गठजोड़ विकसित हुआ, जिसका परिणाम गरीबों के शोषण के रूप में सामने आया। श्रमिक कार्य की खराब स्थितियों से पीड़ित थे, जबकि कृषक भूमि सुधारों के अभाव, ऊंचे करों और बेगार से त्रस्त थे।
- 1930 से लेकर 1934 तक, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को नष्ट करने के लिए कोमिन्तांग ने **घेराबंदी अभियान (Encirclement Campaigns)** चलाया। इसकी रणनीति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को उसके आधार पर घेरने और युद्ध में उन्हें नष्ट करने की थी। 1934 में कम्युनिस्ट पलायन इस संदर्भ में प्रसिद्ध है, जिसमें चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के 1 लाख कार्यकर्ता दक्षिण-पश्चिम चीन में कोमिन्तांग की घेराबंदी के बावजूद चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्यालय से निकलने में सफल रहे और वे दक्षिण-पश्चिम चीन से उत्तर में पहाड़ों तक 6000 मील लॉन्ग मार्च पर निकल पड़े। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं ने एक वर्ष में 6000 मील की दूरी तय की (लगभग 9600 कि.मी.) तथा अपने मार्ग में उन्होंने पहाड़ों और नदियों को पार किया एवं कोमिन्तांग के सहयोगी वॉरलॉर्डस से युद्ध करते हुए कई प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। 1 लाख में से केवल 20 हजार सदस्य जीवित बचे और उन्होंने सेंसी प्रांत में अपना नया आधार स्थापित किया।

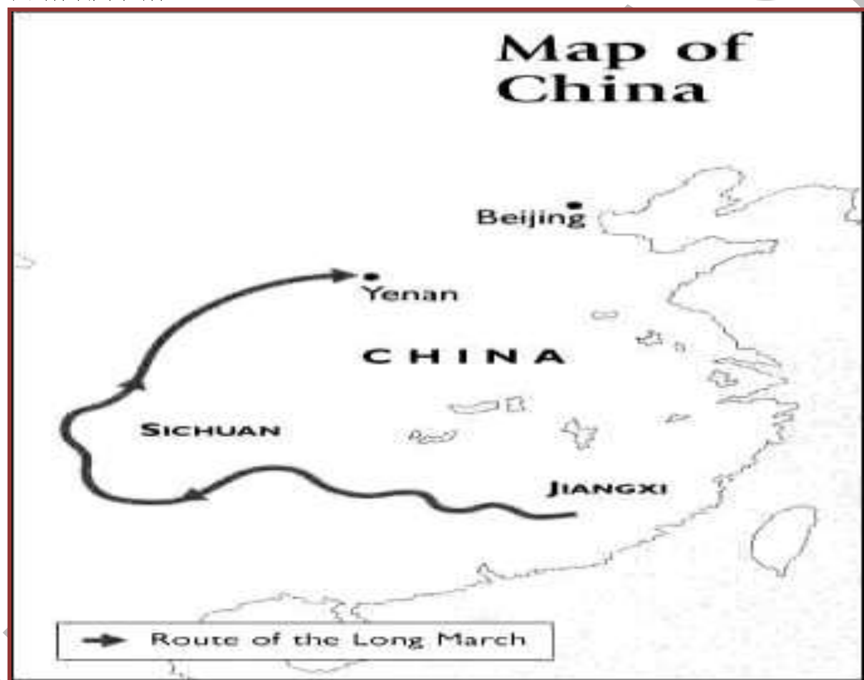

- किसानों की सहायता से चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के शेष बचे नेतृत्व ने, विशेषकर माओ त्से तुंग ने पार्टी को पुनःस्थापित किया। इसके पश्चात् चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने धीरे-धीरे और अधिक क्षेत्रों को अपने नियंत्रण में लाना आरंभ किया। उन्होंने उचित प्रशासन प्रदान किया और अपने नियंत्रणाधीन क्षेत्रों में कृषकों के हित में भूमि सुधारों को प्रारंभ किया, जिससे उन्हें आम जनता का और अधिक समर्थन प्राप्त हुआ।
- 1931 में जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और वहां कठपुतली सरकार (मंचुकुओ) की स्थापना की। 1931 से, चीन के विरूद्ध जापानी आक्रामकता की छोटी-छोटी स्थानीय "घटनाएं" होती रहीं। लेकिन कोमिन्तांग ने जापानियों के विरूद्ध पूरी ऊर्जा लगाने की बजाय चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं पर हमला करना जारी रखा। अपने ही सैनिकों के दबाव के चलते, कोमिन्तांग को 1936 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ युद्धविराम करना पड़ा और इसके बाद दोनों ने जापानी आक्रमण के विरूद्ध एक साथ मिलकर लड़ाई लड़ी, जिसने 1937 में चीन पर जापानी आक्रमण के दौरान पूर्णव्यापी युद्ध का रूप धारण कर लिया। इसे **द्वितीय चीन-जापान युद्ध** (1937-45) कहा जाता है जोकि द्वितीय विश्व युद्ध का ही एक भाग था।
- कोमिन्तांग बलों को शीघ्रतापूर्वक जापानी सेना ने हरा दिया जबकि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को अपनी गुरिल्ला युद्ध रणनीति के कारण अधिक सफलता मिली। इससे कम्युनिस्टों का

समर्थन आधार बढ़ गया और इन्हें अब देशभक्तों के रूप में देखा जाने लगा। इसके साथ ही, माओ (जो 1931 से ही चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का अध्यक्ष था) ने सुधार प्रक्रिया शुरू करने में विलंब नहीं किया और युद्ध के बीच में ही जितनी जल्दी संभव हुआ इसे आरंभ कर दिया। उदाहरण के लिए, 1942 में इसने एक **परिशोधन कार्यक्रम** (Rectification programme) आरंभ किया जिसके अंतर्गत किसानों के जीवन की कठिनाइयों को समझने और समानुभूति प्रकट करने के लिए बुद्धिजीवियों, छात्रों और शहरी युवाओं को कृषकों के साथ खेतों पर काम करने के लिए दूर-दराज के गांवों में भेजा गया। इस प्रकार, चीन-जापान युद्ध के दौरान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी अपनी गुरिल्ला युद्ध नीति के माध्यम से एवं अधिक से अधिक चीनी किसानों और श्रमिकों को भर्ती करके चीन पर अपना सैन्य नियंत्रण बढ़ाने में सफल रही।

- 1945 के बाद, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और कोमिन्तांग के बीच पुन: गृहयुद्ध आरंभ हो गया। जापान को हराने के बाद अमेरिका और सोवियत संघ ने चीन में जापान के नियंत्रण वाले क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर लिया था। चूंकि अमेरिका साम्यवाद के विरूद्ध था, अत: उसने अपने कब्जे वाला क्षेत्र कोमिन्तांग को सौंप दिया जबकि रूस ने मंचुरिया को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को सौंप दिया। इस प्रकार, अब चीनी गृहयुद्ध शीत युद्ध का भाग बन गया, जिसमें अमेरिका कोमिन्तांग का समर्थन कर रहा था और सोवियत संघ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन कर रहा था।
- 1949 तक, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का नियंत्रण लगभग सम्पूर्ण चीन पर हो चूका था क्योंकि उसकी लाल सेना अपेक्षाकृत बड़ी और सोवियत हथियारों से भलीभांति सुसज्जित थी। इसने च्यांग काई शेक को ताइवान भागने के लिए विवश किया जहां च्यांग काई शेक ने निर्वासित चीनी सरकार की स्थापना की। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस सरकार को चीन की वैध सरकार के रूप में मान्यता दी, जबकि विश्व के मानचित्र पर चीन के मुख्य भूमि वाले क्षेत्र में एक नए साम्यवादी देश का उदय हुआ।

23. साम्राज्यवादी जापान

- 1868 से पहले जापान में निम्नलिखित स्थितियां विद्यमान थीं:
    - **राजनीतिक व्यवस्था:** सम्राट केवल प्रतीक मात्र था। वास्तविक शक्ति सैन्य जनरलों के पास थी जिन्हें *शोगुन* (*shoguns*) कहा जाता था।
    - **सामाजिक व्यवस्था**: जापान की सामाजिक व्यवस्था सामंती यूरोप के सामान थी।
    - **अंतर्राष्ट्रीय संपर्क:** 200 से भी अधिक वर्षों से जापान का शेष विश्व से कोई संपर्क नहीं था।
- लगभग 1850 के दशक में जापान की स्वतंत्रता खतरे में पड़ गई। अमेरिका ने 1853 में एक नौसैनिक बेड़ा जापान भेजा और जापान को अमेरिकी जहाजों के लिए दो बंदरगाह खोलने पर विवश किया तथा व्यापार की अनुमति प्राप्त की। अगले कुछ वर्षों में यूरोपीय शक्तियों के साथ भी इसी तरह की संधियों पर हस्ताक्षर किए गए।
- **मेइजी पुनर्स्थापना (1868)**: 1868 में शोगुनों का शासन समाप्त हो गया और सलाहकारों के एक नए समूह ने सम्राट के नाम पर शासन करना आरंभ किया। इस प्रकार सम्राट की सर्वोच्चता कम से कम कागजों पर पुनर्स्थापित हो गई। सम्राट ने मेइजी की उपाधि ग्रहण की और इन परिवर्तनों को सामूहिक रूप से **मेइजी पुनर्स्थापना** कहा गया। 1868 से 1908 तक जापान एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप में उभरा। प्रारंभ में सरकार ने उत्तरदायित्व लेते हुए भारी उद्योगों में अत्यधिक निवेश किया। बाद में इन उद्योगों को पूंजीपतियों को बेच दिया गया, जो शीघ्र ही आत्मनिर्भर बनकर उभरे। इसके साथ ही प्रभावी शिक्षा कार्यक्रम ने जापानियों को बहुत तेजी से साक्षर बनाना सुनिश्चित किया जिससे द्रुत औद्योगिकीकरण के लिए आवश्यक कुशल कार्यबल की उपलब्धता भी सुनिश्चित हुई। शिक्षा कार्यक्रम में उग्र राष्ट्रवाद और सम्राट की पूजा पर जोर दिया गया। इसने लोगों को राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिए कड़ी मेहनत करने के लिए प्रोत्साहित किया और बाद में होने वाले साम्राज्यवाद के औचित्य को सही ठहराने में भी सहायता प्रदान की। 1889 में एक नया संविधान बनाया गया जिसके अनुसार मंत्री सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे न कि डायट (संसद) के प्रति। सम्राट को देव तुल्य समझा जाता था। सेना और नौसेना के अधिकारियों की नियुक्ति में मंत्रियों और डायट की कोई भागीदारी नहीं थी। डायट के पास सीमित वित्तीय शक्तियाँ थीं। मताधिकार केवल 3% आबादी को दिया गया था। इस प्रकार जापान के राजनीतिक मामलों पर धीरे-धीरे जापानी सेना का वर्चस्व स्थापित हो गया।

VISION IAS

- जापान एक छोटा सा द्वीपीय देश था, जहां अधिकांश लोग बहुत मामूली मजदूरी पर निर्वाह करते थे। इस प्रकार जापान में घरेलू बाजार का अभाव था। जापान को अपने नए विकसित हो रहे उद्योगों का पोषण करने के लिए निर्यात बाजारों और कच्चे माल की आवश्यकता थी, जिसकी तलाश में उसे उपनिवेशवाद का आश्रय लेना पड़ा। कोयला और खनिज के समृद्ध भंडारों के कारण मंचूरिया बहुत महत्वपूर्ण था। साथ ही यह प्रशांत महासागर तक पहुंच भी प्रदान करता था। 1858 के बाद से मंचूरिया पर रूस के नियंत्रण से जापान असंतुष्ट था।
- **चीन-जापान युद्ध (1894-95):** यह युद्ध मुख्यतः कोरिया के लिए लड़ा गया था, जो अब तक चीन के नियंत्रण में था। हार के पश्चात् चीन ने कोरिया को एक स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता प्रदान कर दी (*जापान ने 1910 में कोरिया पर अधिकार किया)। इसके अतिरिक्त चीन को दक्षिणी चीन के कुछ क्षेत्र जापान को देने हेतु विवश किया गया। फॉर्मोसा (ताईवान) पर जापान ने अधिकार कर लिया। इस युद्ध के पश्चात् दक्षिण चीन सागर में स्थित सेनकाकू द्वीप पर जापान ने कब्ज़ा कर लिया। यह द्वीप आज भी चीन और जापान के मध्य विवाद का मुद्दा बना हुआ है। इसके अतिरिक्त मंचूरिया भी जापान के आर्थिक प्रभाव में आ गया।
- **रूस-जापान युद्ध (1904-05):** यह युद्ध मंचूरिया पर अधिकार के लिए लड़ा गया था। जापान इस युद्ध में विजयी हुआ और चीन में स्थित रूसी सम्पत्तियों का अधिग्रहण कर लिया। इस प्रकार और अधिक चीनी क्षेत्र जापान के नियंत्रण में आ गया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप:
    - जापान को दक्षिण मंचूरिया में विशेषाधिकार की स्थिति प्राप्त हो गई (अर्थात दक्षिण मंचूरिया को जापान ने अपने प्रभाव क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया) और उसे ऑर्थर बन्दरगाह भी प्राप्त हो गया।
    - 1905 में जापान ने स्वतंत्र कोरिया को अपने संरक्षित क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया और लिओतुंग प्रायद्वीप पर नियंत्रण स्थापित कर लिया।
    - रूस ने सखालिन द्वीपों का आधा क्षेत्र जापान को सौंप दिया।
- जापान ने 1910 में कोरिया पर अधिकार स्थापित कर लिया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, जापान चीन को अपने संरक्षित राज्य में परिवर्तित करना चाहता था लेकिन ऐसा करने में वह विफल रहा।
- जापान ने 1931 में मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और मांचकुओ के कठपुतली राज्य की स्थापना की।
- **चीन-जापान युद्ध (1937-45):** 1937 में जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया। बाद में यह युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध का भाग बन गया।

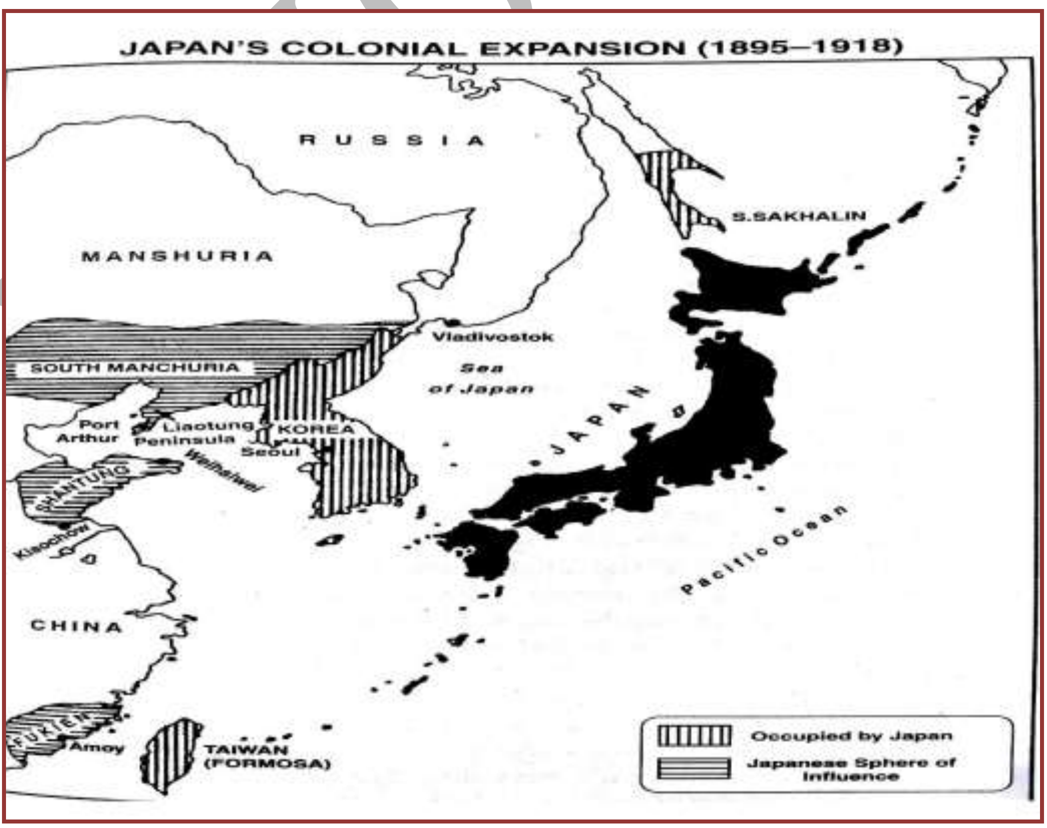

- 1930 के दशक की शुरुआत में आर्थिक और सामाजिक समस्याओं के कारण जापान में सैन्य तानाशाही की स्थापना हुई। इसने चीन में अपने साम्राज्यवादी अभियानों को बढ़ावा दिया। 1921 के मध्य तक जापान आर्थिक रूप से काफी मजबूत हो चुका था। जापान प्रथम विश्व युद्ध (1914-1919) से लाभान्वित हुआ था क्योंकि युद्ध के बाद यूरोपीय शक्तियाँ आर्थिक रूप से कमजोर हो गईं थीं और वर्साय की संधि को लेकर हुए विवादों में व्यस्त थीं। यूरोपीय देशों की आर्थिक कमजोरी ने उनके निर्यातों को कम प्रतिस्पर्धी बना दिया। इसके साथ ही, वे सैन्य रूप से भी कमजोर हो चुके थे और इस कारण जापानी आक्रामकता पर लगाम लगाने की स्थिति में नहीं थे। जापान के साम्राज्यवादी अभियान पर लगाम लगाने के लिए एकमात्र पर्याप्त शक्तिशाली देश अमेरिका था, लेकिन वह स्वयं प्रथम विश्व युद्ध से निराश था और अलगाव की नीति का पालन कर रहा था, जिसके कारण अमेरिका वैश्विक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति का पालन कर रहा था और किसी भी कीमत पर किसी भी अन्य देश के साथ सैन्य संघर्ष को टाल रहा था। फलस्वरूप, जापान ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 1918 तक मित्र देशों को नौवहन और अन्य वस्तुओं का निर्यात करके जापान आर्थिक रूप से लाभान्वित हुआ था। उसने निर्यात बाजारों में, विशेषकर एशिया में, यूरोपीय कंपनियों को प्रतिस्थापित कर दिया और ऐसी वस्तुओं के *सप्लाई ऑर्डर्स* प्राप्त करने लगा, जिनकी आपूर्ति यूरोपीय नहीं कर सकते थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, जापान का सूत निर्यात तीन गुना हो गया था और व्यापारी जहाज दोगुने हो गए थे।
- जापान की सामाजिक स्थितियां भी उसकी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी थीं। सेना और रूढ़िवादियों जैसे समाज के प्रभावशाली वर्ग लोकतंत्र के विरूद्ध थे और प्राय: सरकार की आलोचना करते थे। सेना चीन के प्रति सरकार के नरम और सौहार्द्रपूर्ण दृष्टिकोण के विरूद्ध थी, क्योंकि वह औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार करने के लिए चीन में चल रहे गृहयुद्ध का लाभ उठाना चाहती थी।
- सैन्य तानाशाही की स्थापना में जापान की आर्थिक स्थितियों ने भी भूमिका निभाई। आर्थिक उत्कर्ष 1921 तक समाप्त हो गया था, क्योंकि यूरोपीय देश आर्थिक रूप से पुन: संभल गए थे और अब अपने खोए निर्यात बाजारों पर पुनः कब्जा कर रहे थे। जापान में, बेरोजगारी बढ़ गई और किसान भरपूर फसल के कारण चावल की कीमतों में हुई तीव्र कमी से प्रभावित हुए। मजदूरों और किसानों के प्रदर्शनों को क्रूरतापूर्वक दबा दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप वे भी सरकार के विरूद्ध हो गए। वैश्विक आर्थिक संकट ने इन घटनाओं के उत्प्रेरक के रूप में कार्य किया क्योंकि आयातक देश आयात के लिए भुगतान करने की स्थिति में नहीं थे जिससे जापानी निर्यात बुरी तरह से प्रभावित हुआ। मंचूरिया में चीनी कंपनियां जापानी कंपनियों का स्थान लेने का प्रयास कर रहीं थीं और यहाँ पर भी जापानी व्यापार और कारोबार खतरे में था। 1929 के आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि में यह असहनीय था। सरकार की जानकारी के बिना सेना ने 1932 में मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और आक्रमण का विरोध करने

VISION IAS

पर 1932 में प्रधान मंत्री की हत्या कर दी गई। 1945 तक जापान की सेना ने देश पर फासीवादी तरीके से शासन किया। सम्राट को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी, लेकिन वह भी जापानी साम्राज्यवाद को नियंत्रित करने में विफल रहा क्योंकि उसे भय था कि उसके आदेशों का पालन नहीं किया जाएगा। इस प्रकार 1930 के दशक में होने वाले जापानी साम्राज्यवाद के लिए जापान की सेना उत्तरदायी थी। इसके अतिरिक्त, आर्थिक समस्याएं और जापान का छोटा भौगोलिक क्षेत्र जापानी साम्राज्यवाद की वृद्धि के लिए उत्तरदायी था।

24. साम्राज्यवादी संयुक्त राज्य अमेरिका

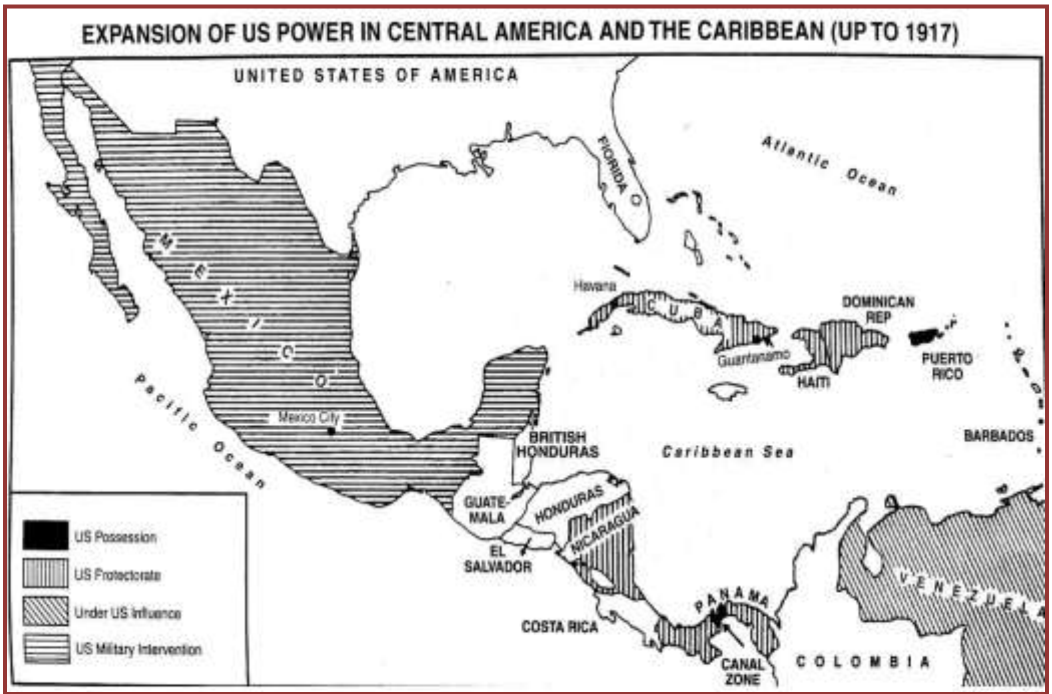

- 1865 से 1895 के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका का एक औद्योगिक शक्ति के रूप में उदय हुआ। इसके विशाल घरेलू बाजार के कारण कुछ समय तक अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव महसूस नहीं किया गया। इस घरेलू बाजार के कारण इसका काफी अधिक उत्पादन आंतरिक रूप से उपभोग कर लिया जाता था। विशाल घरेलू बाजार का कारण 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में यूरोपीय और अन्य समूहों का बड़े पैमाने पर उत्प्रवास था, जिसके कारण संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या में वृद्धि हुई। एक अन्य कारण अलगाव की नीति थी जिसके चलते यह विश्व मामलों में सामान्यतः कम रूचि लेता था।
- लेकिन 1890 के दशक तक अमेरिका एक नई साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभरा। इसका मुख्य कारण यह था कि औद्योगिक क्रांति ने निर्यात बाजारों और कच्चे माल के लिए मांग प्रेरित की। अमेरिका ने भी श्वेत व्यक्ति के कन्धों पर बोझ (White Man's Burden) की अवधारणा का उपयोग किया और विश्व के विभिन्न देशों में अमेरिकी हस्तक्षेप के कारण के रूप में आधुनिक सभ्यता के प्रसार का तर्क दिया। प्रकृति के नियम के रूप में शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा निर्बलों पर प्रभुत्व का औचित्य सही ठहराया गया। प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका का विस्तार काफी पहले ही आरंभ हो चुका था।

(*प्रशांत क्षेत्र में उपनिवेशवाद से संबंधित अध्याय देखें)

- 1890 के दशक में जब यूरोपीय देश चीन का बँटवारा करना चाहते थे तो ऐसी परिस्थिति में संयुक्त राज्य अमेरिका को लगा कि वह इस बंदरबांट में पीछे रह जाएगा। अतः उसने 'खुले द्वार की नीति' की घोषणा की। इसका निहितार्थ यह था कि चीन में सभी साम्राज्यवादी शक्तियों के समान अधिकार होंगे और कोई भी साम्राज्यवादी शक्ति किसी भी क्षेत्र को अपने प्रभाव क्षेत्र के रूप में उद्धृत करते हुए दूसरी

शक्ति के साथ भेदभाव नहीं करेगी। इस प्रकार चीन एक अंतर्राष्ट्रीय उपनिवेश बन गया। बॉक्सर विद्रोह (1899-1900) के दमन के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की सेना भी यूरोपीय शक्तियों के साथ शामिल थी।

- 1893 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने संपूर्ण अमेरिकी महाद्वीप पर अपने प्रभुत्व की घोषणा कर दी। उसने स्वयं को पूरे अमेरिका में व्यवहारिक रूप से संप्रभु घोषित कर दिया और कहा कि उसके आदेश को क़ानून माना जाना चाहिए। उसने ब्रिटेन को वेनेजुएला और ब्रिटिश गयाना (वर्तमान गुयाना) के बीच के क्षेत्रीय विवाद में मध्यस्थता हेतु सहमत होने के लिए विवश कर दिया।
- अमेरिका चीन में रूसी वर्चस्व के विरूद्ध था। 1904-05 के रूस-जापान युद्ध में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने मध्यस्थता की और इस युद्ध में जापान ने जिन क्षेत्रों पर कब्ज़ा कर लिया था उन पर उसके वर्चस्व को स्वीकार करने के लिए रूस को राजी किया। रूजवेल्ट ने जापान के साथ एक गुप्त समझौता भी किया जिसके फलस्वरूप अमेरिका को उस क्षेत्र में निर्बाध रूप से व्यापार करने की सुविधा मिल गई। इस प्रकार अमेरिका ने जापान के प्रति तुष्टीकरण की नीति आरंभ की। इसने जापान के साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया और जापान के लिए प्रशांत महासागर की प्रमुख शक्ति और अमेरिका का प्रतिद्वंदी बनना संभव बनाया।
- **मुनरो सिद्धांत का परिणाम:** 1904 में मुनरो सिद्धांत (1823) का विस्तार किया गया। रूजवेल्ट ने अब तर्क दिया कि अमेरिका को न केवल लैटिन अमेरिकी मामलों में यूरोपीय हस्तक्षेप का विरोध करने का अधिकार है बल्कि दक्षिणी अमेरिकी देशों के आंतरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार है। 1906-09 के दौरान अमेरिकी सैनिकों ने क्यूबा में 'कानून और व्यवस्था की पुनर्स्थापना' के लिए हस्तक्षेप किया।
- **कोलंबिया में पनामा नहर:** पनामा नहर 1914 में पूरी हुई। इससे अमेरिका के व्यापार को बड़े पैमाने पर बढ़ावा मिला। इस नहर ने प्रशांत और अटलांटिक महासागरों के बीच संपर्क संभव बनाया। पहले अमेरिका ने नहर का निर्माण कर रही फ्रांसीसी कंपनी के शेयर खरीदे। जब कोलंबियाई सरकार ने अमेरिका के साथ समझौते की शर्तों का विरोध किया, तो अमेरिका ने पनामा में एक क्रांति की साजिश रची और व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर (लेकिन वास्तव में कोलंबिया को इस तथाकथित क्रांति को दबाने से रोकने के लिए) पनामा में अमेरिकी सैनिक भेज दिए। परिणामस्वरूप, शीघ्र ही पनामा को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई। पनामा की नई सरकार ने अमेरिका के साथ पनामा नहर के बारे में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते की शर्तें अमेरिका के लिए उन शर्तों से भी अधिक अनुकूल थीं जो पिछले समझौते में कोलंबिया के सामने रखी गईं थीं।
- **दक्षिण अमेरिका में नव-उपनिवेशवाद:** रूजवेल्ट के बाद आने वाले राष्ट्रपतियों, अर्थात्, विलियम हॉवर्ड टैफ्ट और वुड्रो विल्सन ने अमेरिकी कंपनियों द्वारा निवेश को बढ़ावा देने और इन निवेशों की सहायता से लैटिन अमेरिकी अर्थव्यवस्था को अपने नियंत्रण में लाने की नीति का पालन किया। अमेरिका ने लोकप्रिय रूप से निर्वाचित नेता मैड्रो (1910 में निर्वाचित, 1913 में हटाकर हत्या कर दी गई) के विरूद्ध तख्तापलट में सहायता करके मेक्सिको में हस्तक्षेप किया। इस घटना के बाद मेक्सिको निवासी अमेरिका के शत्रु बन गए (मेक्सिको 1821 में स्पेन से स्वतंत्र हुआ था)।

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

विश्व इतिहास : भाग 2A

VISIONIAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

1. द्वितीय विश्व युद्ध के मुख्य कारण ____ 5

2. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान घटित विभिन्न घटनाक्रमों का सारांश ____ 7

3. द्वितीय विश्व युद्ध के कुछ महत्वपूर्ण घटनाक्रम और उनका विश्लेषण ____ 9

4. द्वितीय विश्वयुद्ध में नौसेना की भूमिका ____ 16

5. द्वितीय विश्वयुद्ध में मित्र देशों की विजय में वायुसेना की भूमिका ____ 16

6. धुरी राष्ट्रों की पराजय (Axis Defeated) (जुलाई 1943-45) ____ 17

7. द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रों की पराजय क्यों हुई? ____ 18

8. द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव ____ 18

9. विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रणालियां ____ 19

9.1. पूंजीवाद ____ 19

9.2. साम्यवाद ____ 20

9.3. समाजवाद ____ 20

10. समाजवाद के विभिन्न प्रकार ____ 21

11. एक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद का विकास ____ 25

12. कार्ल मार्क्स के विचार ____ 28

13. रूस में समाजवाद: सामाजिक क्रान्तिकारी, बोल्शेविक और मेंशेविक ____ 33

14. लेनिन और मार्क्सवाद ____ 40

15. भारत में समाजवाद ____ 43

16. स्टालिनवाद ____ 46

16.1. स्टालिन के समक्ष चुनौतियाँ और उसका समाधान ____ 46

16.2. स्टालिन ने भारी उद्योगों पर बल क्यों दिया? ____ 47

16.3. पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारंभ ____ 47

16.4. कृषि का सामूहिकीकरण (1929) ____ 48

16.5. स्टालिनवाद का परिणाम ____ 48

17. विस्टालिनीकरण (De-Stalinization) ____ 50

18. ब्रेजनेव युग (1964-82) ____ 51

19. साम्यवादी राज्यों का पतन ____ 52

19.1. दूरगामी प्रभाव ____ 52

19.2. पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में साम्यवाद की आर्थिक विफलता ____ 52

VISION IAS

19.3. मिखाइल गोर्बाचोव ____ 53
19.4. मिखाइल गोर्बाचेव की नीतियों के कारण USSR का पतन क्यों हुआ? ____ 54
20. USSR के पश्चात् साम्यवाद ____ 56
21. चीनी साम्यवाद बनाम रूसी साम्यवाद ____ 57
21.1. 1949 में चीन की समस्याएं ____ 57
21.2. रूसी मॉडल में परिवर्तन क्यों किया गया? ____ 58
21.3. 1958 तक रूसी मॉडल के साथ समानताएँ ____ 58
21.3.1. रूस सदृश्य कृषि परिवर्तन (1950-56) ____ 59
21.3.2. रूस सदृश्य औद्योगिक परिवर्तन (1953-58) ____ 59
21.4. ख्रुश्चेव के नेतृत्व वाले रूसी दृष्टिकोण से मतभेद ____ 59
21.5. सांस्कृतिक क्रांति (1966-69) ____ 61
22. 1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में साम्यवाद ____ 63
23. चीन में साम्यवाद क्यों जीवित रहा और सोवियत संघ में क्यों विफल हुआ? ____ 67
24. इटली: मुसोलिनी और फासीवादियों का उदय ____ 69
24.1. रोम मार्च (MARCH ON ROME: 1922) ____ 69
24.2. एसरबो कानून (ACERBO LAW) ने सत्ता पर मजबूत पकड़ बनाने में मुसोलिनी की सहायता की (1923) ____ 70
24.3. अधिनायकवादी राज्य की दिशा में कदम ____ 71
24.4. निगमित राज्य या कॉर्पोरेटिव स्टेट ____ 71
24.5 लेटरन संधि/समझौता (LATERAN TREATY- 1929) ____ 71
24.6. परिवर्तन ____ 72
24.7. इटली में मुसोलिनी के शासन का मूल्यांकन ____ 72
24.7.1. इटली वासियों के लिए फासीवाद के सकारात्मक पहलू ____ 72
24.7.2. इटली में फासीवाद के नकारात्मक पहलू ____ 73
24.8. मुसोलिनी के पतन के कारण ____ 74
24.9. मुसोलिनी की प्रणाली कितनी अधिनायकवादी थी? ____ 74
25. जर्मनी: वाइमर गणतंत्र और हिटलर का उदय ____ 74
25.1. जर्मन क्रांति (नवंबर 1918-अगस्त 1919) ____ 74
25.2. वाइमर गणतंत्र के विरूद्ध हुए विफल प्रयास ____ 75
25.3. वाइमर गणतंत्र के तीन चरण ____ 76
25.4. वाइमर गणतंत्र का पतन ____ 76
25.5. हिटलर के उदय एवं नाजियों की लोकप्रियता के लिए उत्तरदायी कारण ____ 78
VISION IAS

25.6. हिटलर को चांसलर क्यों बनाया गया था? 79
25.7. हिटलर के पास शक्ति का संचय 80
25.8. हिटलर का शासन या नाजीवादी कार्यप्रणाली 80
25.9. हिटलर के शासनकाल का आंकलन 82
26. जापान: सैन्य फासीवाद (Japan: Military Fascism) 83
27. स्पेन: फ्रैंको का फासीवाद (Spain: Franco's Fascism) 84
27.1. स्पेन के गृहयुद्ध (1936-39) से पूर्व की स्थिति 84
27.2. स्पेन का गृहयुद्ध (1936-39) 85
27.3. स्पेन में फासीवाद (1939-75) 85
28. फासीवादी दर्शन 86
29. नाजीवाद (राष्ट्रीय समाजवाद) {Nazism (National Socialism)} 87
30. नाजीवाद और इटली के फासीवाद में समानताएँ 88
31. नाजीवाद और फासीवाद में अंतर 89
32. साम्यवाद और फासीवाद में समानताएं 89
33. फासीवाद और साम्यवाद में अंतर 90

VISION IAS

1. द्वितीय विश्व युद्ध के मुख्य कारण

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: **अनिवार्य परन्तु अपर्याप्त कारण** और **अप्रत्याशित कारण।**

- अनिवार्य परन्तु अपर्याप्त कारणों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं-
  - वर्साय की संधि और म्यूनिख समझौते जैसी संधियाँ, जिसने या तो यूरोपीय देशों के बीच असंतोष पैदा किया या आक्रामक शक्तियों को तुष्ट करने की असफल कोशिश की।
  - राष्ट्रसंघ और 'सामूहिक सुरक्षा' की अवधारणा की विफलता।
  - अमेरिका में महान आर्थिक मंदी ने वैश्विक आर्थिक संकट को प्रेरित किया और इससे हिटलर एवं अन्य फासिस्ट शक्तियों का उदय हुआ।
- हिटलर और जर्मनी की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति, UK एवं अन्य देशों द्वारा अपनाई गई तुष्टीकरण की नीति तथा USSR की भूमिका जैसे कारक युद्ध के अप्रत्याशित कारण सिद्ध हुए।
  - **हिटलर की भूमिका**
    - उसने पोलैंड से अपनी कुछ मांगों को मनवाने यथा पोलिश कॉरिडोर और डैनज़िंग पर कब्जा करने, के बजाय सभी मोर्चों से पोलैंड पर हमला कर दिया। हिटलर के इस कदम से पता चलता है कि वह केवल वर्साय की संधि के बाद खोए क्षेत्रों को ही पाना नहीं चाहता था बल्कि पूरे पोलैंड का विनाश चाहता था।
    - हिटलर रूस को नष्ट करना चाहता था और अपने लेबेन्स्रॉम (Lebensraum) या 'जर्मनों के लिए रहने की जगह' के लिए उस क्षेत्र का उपयोग करना चाहता था। लेबेन्स्रॉम की अवधारणा को पहले ही समझाया जा चुका है। पूर्व में रूस की ओर मार्च करने के लिए पोलैंड पर कब्जा करना एक महत्वपूर्ण शर्त थी। रूस के साथ 1939 का अनाक्रमण समझौता पोलैंड पर आक्रमण के समय रूस को तटस्थ रखने के लिए था। वह दो मोर्चों पर एक साथ युद्ध नहीं चाहता था अर्थात् एक तरफ पश्चिमी शक्तियों के विरुद्ध (जो पोलैंड की सहायता के लिए आते) और दूसरी तरफ रूस के विरुद्ध। रूस पर कब्जा करने की हिटलर की इच्छा का सबूत मेन कैम्फ (मेरा संघर्ष) और एक अप्रकाशित गुप्त किताब से मिलता है जिसे उसने 1928 में लिखा था। यदि यह सिद्धांत सही है, तो तुष्टीकरण को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसा कहा जा सकता है कि तुष्टीकरण ने ही हिटलर की लक्ष्य प्राप्ति को सरल बना दिया। इसी प्रकार जर्मन लोगों को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। अतः यहां यह कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के लिए केवल हिटलर जिम्मेदार था।
    - फिर भी, ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के लिए सिर्फ हिटलर दोषी नहीं था। वह केवल स्थानीय युद्ध चाहता था। उसने नहीं सोचा था कि ब्रिटेन और फ्रांस जिन्होंने हिटलर के अनुचित कदम के बावजूद चेकोस्लोवाकिया की सहायता नहीं की थी वे पोलिश सीमाओं की सुरक्षा की दी गई गारंटी का सम्मान करेंगे। उसने सोचा कि पोलैंड और रूस कमजोर हैं तथा जर्मन ब्लिट्ज़क्रिग यानी तीव्र हवाई बमबारी के साथ एक तेज और हिंसक सैन्य आक्रमण के माध्यम से वे शीघ्र ही पराजित हो जाएंगे।
    - इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया जा सकता है कि हिटलर एक अवसरवादी था और 1939 में चेकोस्लोवाकिया (सुडेटेनलैंड को छोड़कर) पर कब्जा करने से पीछे नहीं हटा क्योंकि स्लोवाकिया द्वारा अर्द्ध-स्वतंत्रता की मांग के कारण खराब कानून-व्यवस्था के रूप में हिटलर के समक्ष एक अवसर विद्यमान था।

VISION IAS

○ **तुष्टिकर्ताओं की भूमिका:** तुष्टिकर्ता हिटलर के समान ही दोषी हैं। तुष्टीकरण की नीति ने उसके देश में उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया। हिटलर को म्यूनिख सम्मेलन (1938) में जितनी सरलता से सुडेटेनलैंड की पेशकश की गई उसे देखते हुए उसने जब 1939 में पौलैंड पर आक्रमण किया तो उसे ब्रिटिश और फ्रांसीसी निष्क्रियता पर दृढ़ विश्वास था। इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया जा सकता है कि ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चेम्बरलेन ने जर्मनी के विरुद्ध सैन्य कार्रवाई के लिए एक गलत मुद्दा उठाया। डैनज़िंग और पोलिश कॉरिडोर सुडेटेनलैंड की तुलना में अधिक वास्तविक मांग थी क्योंकि डैनज़िंग की आबादी में जर्मन लोगों का 95% हिस्सा था और पूर्वी प्रशा को शेष जर्मनी के साथ जोड़ने के लिए पोलिश कॉरिडोर महत्वपूर्ण था। म्यूनिख सम्मेलन में हिटलर को तुष्ट करने के ब्रिटिश फैसले को इस आधार पर सही नहीं ठहराया जा सकता कि ब्रिटेन को पुनर्सैन्यीकरण के लिए और अधिक समय की आवश्यकता थी क्योंकि चेकोस्लोवाकिया सैन्य रूप से सशक्त था और जर्मनी के आक्रमण के विरुद्ध सुडेटनलैंड में उत्कृष्ट किलेबंदी थी। इस प्रकार, सुडेटनलैंड की घटना के समय चेकोस्लोवाकिया पोलैंड की तुलना में बेहतर सहयोगी हो सकता था। इसके अतिरिक्त, चेकोस्लोवाकिया पर कब्जे के दौरान ब्रिटेन और फ्रांस की निष्क्रियता निंदनीय है।

○ **वर्साय की संधि और जर्मन जनता:** यह तर्क दिया जा सकता है कि जर्मन जनता के समर्थन के बिना, हिटलर का उदय संभव ही नहीं हो पाता। हिटलर ने सत्ता में आने के लिए कोई तख्तापलट नहीं किया, वह चुनावों के लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से सत्ता में आया। उसने नाज़ी पार्टी की अध्यक्षता की और चुनाव लड़ा और अच्छी-खासी सीटें जीतीं। ऐसा कहा जा सकता है कि हिटलर ने वे बातें कहीं जो जर्मन सुनना चाहते थे। वर्साय की संधि के विरुद्ध उसके प्रचार ने जर्मनों के बीच इस संधि से मिले अपमान के कारण पल रहे क्रोध को भड़काने का काम किया। जर्मन जनता ने हिटलर की कार्रवाई को मंजूरी प्रदान की थी। अतः यह कहा जा सकता है कि हिटलर के उत्थान के लिए जनता जिम्मेदार थी, लेकिन हिटलर द्वारा किए गए अत्याचारों के लिए जनता को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। हिटलर का एक

 ©Vision IAS

प्रचार विभाग था जो जर्मनों का लगातार ब्रेनवाश करता रहता था और उनके मन में एंटीसेमेटिक (यहूदियों के प्रति घृणा) विचार भरता रहता था। स्कूल के पाठ्यक्रम को तदनुसार बदल दिया गया था। हिटलर ने साम्यवाद के प्रति सार्वजनिक भय पैदा कर दिया और इस भय का उपयोग अपने हित के लिए किया। हिटलर के उदय से पूर्व के वे कमजोर नेता भी दोषी हैं, जिन्होंने केवल अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए काम किया और हिटलर के विरुद्ध खड़े नहीं हुए। जर्मन पूंजीपतियों ने नाज़ियों के पक्ष में धन व्यय किया क्योंकि नाजियों ने कानून और व्यवस्था को बहाल करने में मदद की थी। लोगों और व्यापारियों ने हिटलर का समर्थन किया क्योंकि उसने कानून और व्यवस्था की स्थिरता सुनिश्चित की और साथ ही वे आम तौर पर साम्यवाद के विरुद्ध थे।

- **सोवियत संघ और जर्मनी के बीच अनाक्रमक संधि:** यह तर्क दिया जा सकता है कि USSR ने जर्मनी के साथ 1939 के अनाक्रमक समझौते पर हस्ताक्षर करके विश्वयुद्ध को अपरिहार्य बना दिया। अगर ऐसा नहीं हुआ होता तो जर्मन आक्रामकता उभरने से पहले ही कुचल दी गई होती। भारत और अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में कोमिन्टर्न की गतिविधियाँ भी अविश्वास की स्थिति के लिए जिम्मेदार थीं। अपने बचाव में, रूसी विद्वानों का तर्क है कि रूस को पता था कि भविष्य में रूस पर हमला किया जाएगा और अपनी सुरक्षा को मजबूत करने के लिए रूस को समय की आवश्यकता थी इसलिए उसने अनाक्रमक समझौता किया।
- **सोवियत संघ और भावी मित्र राष्ट्रों के बीच अविश्वास:** सोवियत संघ और भावी मित्र राष्ट्रों के बीच अविश्वास भी एक प्रमुख कारण था। फ्रांस और ब्रिटेन के रूढ़िवादी, नाजियों की तुलना में सोवियत संघ के साम्यवादियों को लेकर अधिक संदेहग्रस्त थे। फ्रांस के दक्षिणपंथी हिटलर के प्रति सहानुभूति रखते थे और उसकी उपलब्धियों को लेकर आदर का भाव रखते थे। फ्रांस के रूढ़िवादियों ने 1935 में फ्रांस और USSR के बीच हस्ताक्षरित समझौते में सैन्य सहयोग के एक खंड को जोड़ने से फ्रांस को रोक दिया। अगर दोनों देशों के मध्य सैन्य गठबंधन उसी समय हो गया होता तो जर्मनी पूर्वी यूरोप के स्थानीय युद्धों में हार गया होता या हो सकता था कि उसने युद्ध ही नहीं किया होता।

2. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान घटित विभिन्न घटनाक्रमों का सारांश

- प्रथम विश्व युद्ध के विपरीत, जो खाइयों की लड़ाई (war of trenches) थी {खाई युद्ध (trench warfare) थल युद्ध (land warfare) का एक रूप है जिसमें बड़े पैमाने पर सैनिकों से भरी खाइयों की युद्ध पंक्तियाँ होती हैं, अर्थात गड्ढे जिसमें सैनिक दुश्मन के छोटे युद्धास्त्रों की मार से काफी सुरक्षित होते हैं और उन्हें तोप को गोलों से भी काफी सुरक्षा मिलती है}, द्वितीय विश्व युद्ध तेज गतिविधियों वाला युद्ध था। सैनिक टैंकों, ट्रकों आदि से लैस मैकेनाइज्ड डिवीजनों में चलते थे। हालांकि युद्ध में सभी प्रतिभागियों को उनकी सैन्य सहायता के लिए यह तकनीकी लाभ नहीं था।
- जब जर्मनी और USSR ने 1939 में पोलैंड पर हमला किया था तो पोलैंड ने अपने सैनिकों को स्थानांतरित करने के लिए घुड़सवार सेना का उपयोग किया। इसी प्रकार, फ्रांस अपने सैनिकों को तैनात करने में सुस्त था, जो जर्मनी से मिली हार का एक प्रमुख कारण था। युद्ध प्रशांत महासागर, सुदूर पूर्व, अटलांटिक महासागर, उत्तरी अफ्रीका, रूस की मुख्य भूमि, मध्य और पश्चिमी यूरोप में लड़ा गया था, जिसके कारण यह एक विश्व युद्ध बना।
- युद्ध को निम्नलिखित चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

VISION IAS

प्रथम चरण: आरंभिक गतिविधियां: (सितम्बर 1939- दिसंबर 1940)

- जर्मनी और रूस ने पोलैंड पर कब्जा कर लिया।
- रूस ने एस्टोनिया, लाटविया, लिथुआनिया और फिनलैंड पर हमला किया।
- फोनी युद्ध (Phoney War): जर्मनी ने नॉर्वे और डेनमार्क पर कब्जा कर लिया।
- हॉलैंड, बेल्जियम और फ्रांस पर जर्मनी ने हमला किया।
- ब्रिटेन की लड़ाई (Battle of Britain) जर्मन और ब्रिटिश वायु सेना के बीच लड़ी गयी।
- मुसोलिनी ने मिस्र और ग्रीस पर हमला किया।

द्वितीय चरण: धुरी देशों की आक्रामकता में वृद्धि:

- 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया।
- पर्ल हार्बर पर जापानी वायु सेना द्वारा बमबारी की गई, जिससे संयुक्त राज्य अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध में प्रवेश किया।
- दक्षिण-पूर्व एशिया के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर जापानी कब्जा। इसके नियंत्रण में था - फिलीपींस, बर्मा, मलाया और सिंगापुर।
- जर्मनी और जापान अपराजेय लग रहे थे, जबकि इटली कम सफल था।

तृतीय चरण: धुरी शक्तियों की तीन प्रमुख हार:

- संयुक्त राज्य अमेरिका ने मिडवे द्वीप के युद्ध में जापान को हराया।
- जर्मनी ने संघर्षरत इटली की मदद के लिए मिस्र पर हमला किया। शीघ्र ही जर्मनी को उत्तरी अफ्रीका से ब्रिटेन और न्यूजीलैंड द्वारा बाहर कर दिया गया।
- रूस में, जर्मन सेना 1942 तक स्टालिनग्राद तक पहुंच गई थी, लेकिन अत्यधिक सर्दी के कारण संघर्षरत जर्मन सेना स्टालिनग्राद की लड़ाई हार गयी।
- दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रमुख शहरों और प्रतिष्ठानों पर हवाई बमबारी में संलग्न थे।
- अमेरिका और ब्रिटेन जर्मन पनडुब्बी खतरे को रोकने में सक्षम थे।

चतुर्थ चरण: धुरी देशों की निर्णायक हार

- इटली पराजित होने वाला पहला राष्ट्र था।
- ब्रिटेन और अमेरिका ने नॉरमैंडी पर हमला किया। जिस दिन मित्र देशों की सेनाएं (Allied forces) नॉरमैंडी के समुद्र तटों पर उतरीं, उसे डी-डे के रूप में जाना जाता है और इस ऑपरेशन को ऑपरेशन ओवरलॉर्ड कहा जाता है। इस युद्ध में अमेरिकी पैराट्रूपर्स ने प्रमुख भूमिका निभाई। अमेरिका ने अपने टैंकों को इस युद्ध के मैदान में उतारा। इस युद्ध के परिणाम स्वरूप फ्रांस स्वतंत्र हो गया, बेल्जियम और हॉलैंड भी जर्मन नियंत्रण से मुक्त हुए।
- इसी चरण में मित्र राष्ट्रों कि सेना ने जर्मनी में राइन नदी पार कर ली।
- रूस ने स्टालिनग्राद (1942) की लड़ाई में जीत के बाद जर्मनी को बाहर धकेल दिया और उसके बाद, पोलैंड के माध्यम से जर्मनी पर आक्रमण किया। यह अमेरिका और ब्रिटेन से पहले बर्लिन पहुंचने में सक्षम रहा।
- 1945 तक जर्मनी युद्ध हार चुका था।
- 1945- जापान को आत्मसमर्पण करने हेतु मजबूर करने के लिए अमरीका ने हिरोशिमा पर परमाणु बम से हमला किया। इसके उपरांत भी जब जापान ने आत्मसमर्पण नहीं किया तो उसने नागासाकी पर भी परमाणु बम से हमला किया।

VISION IAS

3. द्वितीय विश्व युद्ध के कुछ महत्वपूर्ण घटनाक्रम और उनका विश्लेषण

इस अध्याय में हम युद्ध की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करेंगे और उन महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश करेंगे जो प्रासंगिक हैं।

युद्ध के प्रारंभिक चरणों में जर्मनी अधिक सफल क्यों रहा?

- ब्लिट्जक्रिग की रणनीति (technique of Blitzkrieg) के कारण जर्मनी आरंभ में बहुत सफल रहा जिससे जर्मन सेना मशीनीकृत डिवीजनों में बहुत तेजी से आगे बढ़ सकी।
- विभिन्न देशों के सैनिक अपने टैंकों द्वारा मार्च करते हुए और मार्ग में आने वाले दुश्मनों पर हमला बोलते हुए आगे बढ़ सकते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस समय थल सेना के आक्रमण को बेहतर और विनाशकारी वायुसेना की सहायता भी प्राप्त थी। जर्मनी द्वारा जीते गए युद्धों में जर्मन वायु सेना की श्रेष्ठता एक महत्वपूर्ण कारक थी।
- इसके अतिरिक्त जिन देशों पर आक्रमण किया गया उन देशों में स्थानीय नाज़ी समूहों का समर्थन जर्मन सेनाओं के लिए सहायक साबित हुआ। उदाहरण के लिए, नॉर्वे पर आक्रमण के दौरान स्थानीय नाजियों ने जर्मनों की मदद की। हालांकि इस आक्रमण को विफल करने हेतु ब्रिटेन और फ्रांस ने अपने सैनिक भी भेजे लेकिन हवाई समर्थन की अनुपस्थिति यहाँ घातक साबित हुई।

आरंभिक गतिविधियाँ (सितंबर 1939-दिसंबर 1940)

पोलैंड की पराजय: 1939 की अनाक्रमण संधि के तहत रूस और जर्मनी ने एक-दूसरे पर हमला न करने का करार किया था। इस संधि के महत्वपूर्ण प्रावधानों और उनके उपरांत के घटनाओं का विवरण निम्नलिखित है:

- USSR को पोलैंड के कुछ हिस्से और बाल्टिक राज्य देने का वादा किया गया था।
- जर्मनी द्वारा पोलैंड पर हमले की स्थिति में USSR को तटस्थ रहना था। हालांकि जब जर्मनी ने पश्चिम से पोलैंड पर हमला किया तो रूस ने पूर्व से इस पर हमला बोला। पोलैंड इस हमले को नहीं झेल सका।
- जर्मन ब्लिट्जक्रिग ने पोलिश रेलवे और एयरफोर्स को नष्ट कर दिया। पोलैंड की सेना में कोई मोटर चालित प्रभाग नहीं था और वे सेना के आवागमन के लिए घोड़ों का उपयोग करते थे।
- इस हमले के दौरान ब्रिटेन पोलैंड की बहुत ज्यादा मदद नहीं कर सका और पुराने ढंग की धीमी गति से चलने वाली सेना होने के कारण फ्रांस समय पर कार्रवाई करने में विफल रहा था।
- इसका परिणाम यह हुआ कि पोलैंड को USSR और जर्मनी के बीच विभाजित कर दिया गया। पूर्वी पोलैंड USSR को मिला और पश्चिमी भाग अनाक्रमण संधि (1939) के तहत व्यक्त सहमति के अनुसार जर्मनी को मिला।

फोनी युद्ध (The Phoney War): यह 6 महीने की एक ऐसी अवधि थी जिसे सामान्यतः छद्म युद्ध (Phoney War) कहा जाता है। इस अवधि में जर्मनी ने इस आशा में पश्चिमी यूरोप के किसी भी हिस्से पर हमला नहीं किया कि ब्रिटेन और फ्रांस उससे शांति वार्ता के लिए कहेंगे। पुनः इस अवधि में जर्मन सैन्य जनरलों को बहुत अधिक समय मिल गया जिससे वे आगे की तैयारी को एक मूर्त रूप दे सके। उन्हें लगा कि जर्मनी उस समय व्यापक स्तर पर युद्ध करने के लिए पर्याप्त रूप से शक्तिशाली नहीं था।

जब **फिनलैंड** पर 1939 में सोवियत संघ ने हमला किया तब राष्ट्र संघ ने रूस को निष्कासित कर दिया। फिनलैंड ने रूसी क्रांति (1917) और रूसी गृह युद्ध (1918-20) के दौरान रूस से स्वतंत्रता अर्जित की थी। रूस ने पूरे फिनलैंड पर कब्जा नहीं किया था, लेकिन इसे अपने क्षेत्र का एक बड़ा हिस्सा सौंपने के लिए मजबूर किया था। केवल उन्हीं क्षेत्रों को फ़िनलैंड से लिया गया था जिससे रूस को पश्चिम से होने

VISION IAS

वाले हमले से निबटने में मदद मिलती। 1940 में रूस ने **बाल्टिक राज्यों** (एस्टोनिया, लाटीविया और लिथुआनिया) पर आक्रमण कर कब्जा कर लिया। उल्लेखनीय है कि ब्रेस्ट लिटोवस्क (1917) की संधि के तहत जर्मनी ने इन्हें रूस से प्राप्त किया था और उसके बाद वर्साय की संधि (1920) के तहत इन्हें स्वतंत्र राज्य बनाया गया था। स्टालिन उन्हें पुनः रूस के अधीन करना चाहता था।

डेनमार्क और नॉर्वे पर आक्रमण (1940)

- यह युद्ध इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे द्वितीय विश्व युद्ध के कई महत्वपूर्ण घटनाक्रम संबद्ध हैं। नॉर्वे जर्मनी के लिए महत्वपूर्ण था क्योंकि नॉर्वे का फियोर्ड तट जर्मन नौसैनिक अड्डों के लिए अच्छे स्थलों के रूप में काम कर सकता था।
    - नार्वे को जीत कर जर्मनी अपनी कई आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ रहा। नार्वे के बंदरगाहों के माध्यम से अब जर्मनी स्वीडिश लौह अयस्क का आसानी से आयात करने में सक्षम हुआ। ये अयस्क जर्मन शस्त्र फैक्ट्रियों के लिए अति महत्वपूर्ण थे। इस प्रकार इस युद्ध को जीतने के बाद जर्मनी को जहां एक तरफ लोहे की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित हो सकी वहीं दूसरी ओर उसके नौसैनिक ठिकानों के लिए अच्छी सामरिक अवस्थिति भी मिली।
    - ब्रिटेन में चेम्बरलिन ने इस्तीफा दे दिया और उसके बाद विंस्टन चर्चिल प्रधान मंत्री बने। युद्ध के दौरान चर्चिल ब्रिटेन का नेतृत्व करने में सफल रहे।

हॉलैंड, बेल्जियम और फ्रांस पर जर्मनी का एक साथ आक्रमण

- जर्मनी ने हॉलैंड, बेल्जियम और उत्तरी फ्रांस पर कब्जा कर लिया। बेल्जियम और उत्तरी फ़्रांस पर जर्मन जीत महत्वपूर्ण थी क्योंकि इस क्षेत्र में ब्रिटिश और फ्रांसीसी सैनिकों के आत्मसमर्पण के कारण वे अनाश्रित और सुभेद्य बन गए। ब्रिटेन और फ्रांस को बंदरगाह शहर डनक्रिक से इन सैनिकों को निकालने की चुनौती का सामना करना पड़ा। यह मित्र शक्तियों के अधीन उत्तरी फ्रांस का एकमात्र क्षेत्र था। जर्मन लुफ़्टवाफे (जर्मन वायुसेना) द्वारा गोलीबारी की घटना के दौरान ब्रिटिश नौसेना द्वारा मित्र देशों के 3,38,000 सैनिकों के डनक्रिक से इस सफल निकासी को **ऑपरेशन डायनमो या डनक्रिक की लड़ाई** के रूप में जाना जाता है। यह फ्रांस के आत्मसमर्पण के लिए भी महत्वपूर्ण साबित हुआ। इन सैनिकों की निकासी और लुफ़्टवाफे की गोलीबारी के दबाव में ब्रिटेन फ्रांस की मदद नहीं कर सका। डनक्रिक के सैनिकों ने सभी हथियारों और साजो-समान से हाथ धो लिए। ऑपरेशन डायनमो के बाद जर्मनी ने पेरिस पर कब्जा कर लिया और फ्रांस ने आत्मसमर्पण कर दिया (इसे 1940 के फ्रांस के युद्ध के रूप में भी जाना जाता है)। जर्मनी ने फ्रांस को उसी रेल कोच में युद्धविराम पर हस्ताक्षर करने के लिए विविश किया, जिसका उपयोग प्रथम विश्व युद्ध के दौरान 1918 के युद्ध विराम के लिए किया गया था। फ्रांस की सेना को तोड़ दिया गया था यानी फ्रांस को निःशस्त्र बनाया गया था, ठीक वैसे ही जैसे वर्साय की संधि द्वारा जर्मनी

VISION IAS

को निःशस्त्र किया गया था। जर्मनी ने उत्तरी फ्रांस और अटलांटिक तट पर कब्जा कर लिया, जिससे जर्मनी को पनडुब्बी हमलों के लिए महत्वपूर्ण आधार मिला।

- फ़्रांस का जो हिस्सा कब्जे में नहीं लिया गया था उसे एक कठपुतली सरकार के अधीन रखा गया और इसे विची फ्रांस (Vichy France) के रूप में जाना जाने लगा। यह 1940 से 1944 तक अस्तित्व में रहा, यानी मित्र राष्ट्रों द्वारा फ्रांस को मुक्त किये जाने तक। इस दौरान विची फ्रांस में अधिकारवादी शासन (authoritarian regime) देखने को मिला। विची फ्रांस के गठन के साथ ही तृतीय फ्रांसीसी गणराज्य (1870-1940) का अंत हुआ। जब फ़्रांस को मुक्त करा लिया गया तो उसके बाद चतुर्थ फ्रांसीसी गणराज्य (1946-58) की घोषणा की गई।

फ्रांस जर्मनी से इतनी जल्दी क्यों हार गया था, इसके कारणों पर चर्चा करना महत्वपूर्ण है।

कारण

- हालांकि फ्रांसीसी जर्मन खतरे से अवगत थे फिर भी वे युद्ध के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। वामपंथ और दक्षिणपंथ के बीच टकराव के कारण न तो उनमें एकता थी और न ही सही तैयारी थी। परस्पर विरोधी होने के बावजूद वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों जर्मनी के साथ युद्ध के विरुद्ध थे। 1939 के रूस-जर्मन अनाक्रमण संधि के बाद वामपंथी युद्ध के पक्ष में नहीं थे, जबकि दक्षिणपंथियों ने हिटलर की उपलब्धियों की प्रशंसा करते थे और युद्धविराम चाहते थे। इन्होंने तर्क दिया कि चूंकि जब पोलैंड हार ही चुका है तो जर्मनी के विरुद्ध युद्ध लड़ने का कोई कारण नहीं बनता क्योंकि फ्रांस की युद्ध में कोई भी भूमिका केवल पोलिश सीमाओं की गारंटी के कारण ही थी।
- फौज की धीमी लामबंदी: इनफैन्ट्री द्वारा अपने साथ चल रहे यंत्रीकृत डिवीजनों को धीमा कर दिया गया। इसने जर्मनी को एक फायदा पहुंचाया क्योंकि जर्मनी की सैनिकों को लाने-ले जाने की गति फ्रांस की तुलना में तेज थी।

- फ्रांस ने अपने सैनिकों के लिए हवाई सहयोग की उपेक्षा की, जबकि जर्मन हवाई सहयोग बहुत प्रभावी था।
- सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी एक साथ दो मोर्चों पर युद्ध लड़ रहा था अर्थात् पूर्व में रूस और पश्चिम में फ्रांस के विरुद्ध। 1939 में रूस के साथ किए गए अनाक्रमण संधि से हिटलर की प्रतिभा उभर कर सामने आई जिसके तहत अब उसने अपनी सारी सेनाओं को केवल फ्रांस के विरुद्ध एक ही मोर्चे पर ध्यान केंद्रित करने की अनुमति दी थी। इस प्रकार फ्रांस को रूस जैसा सहयोगी नहीं मिला जिसने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान उसकी भली-भांति मदद की थी।

ब्रिटेन की लड़ाई (Battle of Britain: 1940)

- यह युद्ध जर्मन लुफ़्टवाफ़े (German Luftwaffe) और ब्रिटेन के रॉयल एयर फ़ोर्स के बीच लड़ा गया था। इस युद्ध में जर्मनी को पहली बार पराजय का सामना करना पड़ा। हालांकि लुफ़्टवाफे द्वारा बमबारी के कारण ब्रिटेन के शहरों में बुनियादी ढांचे को भारी क्षति पहुंची फिर भी जर्मनी ब्रिटिश एयरफोर्स को पराजित नहीं कर सका। जर्मनी ने 1400 हवाई जहाज खो दिए जबकि ब्रिटेन को केवल 700 जहाजों का ही नुकसान हुआ। ब्रिटिश रडार स्टेशनों द्वारा ब्रिटिश हवाई जहाजों को आरंभिक चेतावनी देने के कारण ब्रिटेन यह युद्ध जीत गया। इसके अतिरिक्त जर्मन हवाई जहाजों ने लंदन पर बमबारी करने पर अपना ध्यान केंद्रित किया और इस दौरान ब्रिटिश एयरफोर्स को एकजुट होने का समय मिल गया।

मिस्र और ग्रीस (1940) पर मुसोलिनी का आक्रमण

- लीबिया इटली का उपनिवेश था। इटली ने मिस्र पर लीबिया की ओर से और ग्रीस पर अल्बानिया की ओर से हमला किया। अल्बानिया 1939 से इटली के कब्जे में था। यह घटना महत्वपूर्ण रही क्योंकि इससे इटली को हथियारों, जहाजों, टैंकों और सैनिकों का भारी नुकसान पहुंचा। ब्रिटेन ने मिस्र से इटली को खदेड़ दिया और ग्रीस अल्बानिया पर कब्जा करने में सफल रहा। यहाँ एक और महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि हिटलर को इटली की हार के बाद उसकी मदद के लिए अपनी सेना भेजनी पड़ी। हालांकि इन सैनिकों का जर्मन ऑपरेशन के लिए कहीं और उपयोग किया जा सकता था। इस प्रकार मुसोलिनी के कारण हिटलर शर्मिंदगी अनुभव करने लगा।

धुरी शक्तियों के आक्रमण में तेजी (1941-42)

- **उत्तरी अफ्रीका और ग्रीस:** हिटलर ने इटली में मदद के लिए सेना भेजी। जर्मन सेना ने ब्रिटेन को लीबिया से पूर्णरूपेण और मिस्र से आंशिक रूप से बाहर कर दिया। उन्होंने ग्रीस पर भी हमला किया और ब्रिटिश सैनिकों को भागने पर विवश किया। युगोस्लाविया और ग्रीस पर जर्मनी द्वारा एक साथ हमला किया गया। जर्मनी की जीत का निम्नलिखित प्रभाव पड़ा :
  - मित्र राष्ट्रों के मनोबल में कमी आई क्योंकि उन्हें सैनिकों की भारी क्षति हुई थी।
  - यह मित्र राष्ट्रों के लिए अप्रत्यक्ष कृपादान भी साबित हुआ क्योंकि इससे रूस पर जर्मन हमले में देरी हुई थी। इस समय हिटलर इटली की सहायता करने में व्यस्त था।
- **ऑपरेशन बारबोसा (1941):** यहाँ जर्मनी ने 10 वर्षों के लिए हस्ताक्षरित अनाक्रमण संधि (1939) को तोड़ते हुए रूस पर आक्रमण किया। जर्मनी ने रूस पर हमला क्यों किया? इसके कई कारण हो सकते हैं:
  - कुछ विद्वानों का तर्क है कि जर्मनी जब पश्चिम में युद्धरत था तो उसे रूस के हमले का डर था। वे रूस द्वारा इस तरह के अभियान को रोकना चाहते थे।
  - जर्मनी को आशा थी कि जापान सुदूर पूर्व से एक साथ रूसियों पर हमला करेगा, जिससे उनकी हार जल्दी और निश्चित हो जाएगी।
  - साम्यवाद से घृणा भी इसका एक कारण था।
  - कुछ लोग तर्क देते हैं कि हिटलर हमेशा रूस पर हमला करना चाहता था। यूराल पर्वत तक रूसी क्षेत्र पर कब्जा करना उसकी रणनीति का हिस्सा था ताकि जर्मनों के लिए रहने की जगह या लेबेन्स्रम (Lebensraum) का सृजन किया जा सके।
  - इसका एक अन्य कारण यह भी है कि जर्मन रूसी सैनिकों को पकड़ना चाहते थे।

VISION IAS

जर्मनी ने उत्तर, दक्षिण और मध्य से हमला किया और क्रमशः लेनिनग्राद, यूक्रेन और मॉस्को की ओर ब्लिट्जक्रिग रणनीति का उपयोग कर मार्च किया और हवाई जहाज, टैंक और सौनिकों द्वारा एक साथ तेजी से हमले किए।

जर्मन आरंभ में बेहद सफल रहे क्योंकि उन्होंने एक अनुभवहीन रूसी सेना का सामना किया। 1937 के स्टालिन पर्ज (Stalin purges) के बाद अनुभवी जनरलों की जगह अनुभवहीन युवा अधिकारी आ गए थे। धीमी लामबंदी प्रक्रिया भी एक कारण था। लेकिन जर्मनी 1941 में मॉस्को और लेनिनग्राद (अब सेंट पीटर्सबर्ग) पर कब्जा करने में असफल रहा। अक्टूबर में काफी अधिक बारिश होने के कारण रूसी सड़कें कीचड़ से पट गई थीं और फिर नवंबर-दिसंबर (तापमान शून्य से 38 डिग्री सेल्सियस नीचे था) में पाले (frost) ने भी जर्मनी को आगे मार्च करने से रोक दिया। जर्मन सेना के पास सर्दियों के कपड़े की भी कमी थी क्योंकि उन्हें नवंबर तक रूस को हराने की उम्मीद थी। 1942 में जर्मन स्टेलिनग्राद की लड़ाई हार गए।

- **अमेरिका का युद्ध में प्रवेश (दिसंबर 1941) :** जापान ने पर्ल हार्बर पर हमला किया और इस हमले के साथ अमेरिका अलगाव की नीति को समाप्त कर मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। हालांकि लैंड-लीज एक्ट (अप्रैल 1941) के माध्यम से, संयुक्त राज्य अमेरिका पहले से ही ब्रिटेन को भारी वित्त और रूसियों को युद्ध सामग्री देकर सहायता कर रहा था। पर्ल हार्बर हवाई द्वीप में एक नौसेना बेस था। वाशिंगटन सम्मेलन में जापान ने ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ नौसैना को सीमित करने को लेकर एक समझौते किया था। 1930 में, उसने नौसेना की सीमा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराई थी, लेकिन जल्द ही इसका उल्लंघन किया। इस प्रकार वाशिंगटन सम्मेलन की प्रतिज्ञा को तोड़ दिया गया। यह वाशिंगटन सम्मेलन (1921-22) के तहत चीन की तटस्थता को बनाए रखने पर भी सहमत था, लेकिन 1931 में इसने मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया।

चित्र: पर्ल हार्बर पर जापानी हमले का एक दृश्य

- 1937 तक जापान ने चीन पर पूर्ण रूप से आक्रमण आरंभ कर दिया और द्वितीय चीन-जापान युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध का हिस्सा बन गया। पर्ल हार्बर पर जापानी हमले के निम्नलिखित कारण थे:
    - जापान 'ग्रेटर ईस्ट एशिया सह-समृद्धि क्षेत्र' (Greater East Asia Co-prosperity Sphere) का वर्चस्व चाहता था। यह जापान की साम्राज्यवादी नीति का एक परिचायक थी। इसका निहितार्थ यह था कि पूर्वी एशिया के सभी देशों पर से पश्चिमी शक्तियों का प्रभुत्व खत्म हो जाए और ये देश जापानी साम्राज्य के नियंत्रण में आ जाएं।
    - जापान अपने यहां कच्चे माल की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित करना चाहता था। इस हेतु वह मलाया और बर्मा पर अधिकार चाहता था, जिनपर अंग्रेजों का नियंत्रण था। ये क्षेत्र रबर, तेल और टिन में समृद्ध थे। यह तेल में समृद्ध डच ईस्ट इंडीज को भी अपना उपनिवेश बनाना चाहता था।
    - जापान अमेरिका के साथ युद्ध नहीं चाहता था लेकिन अमेरिका जापानी योजनाओं के रास्ते में बाधा साबित हो रहा था। अमेरिका जापान के विरुद्ध युद्ध में चीन की मदद कर रहा था। अमेरिका ने जापान पर तेल प्रतिबंध भी लगाया था क्योंकि जापान फ्रेंच इंडो-चाइना (लाओस, वियतनाम और कंबोडिया के क्षेत्र) से वापस जाने की अमेरिकी मांग पर ध्यान नहीं दे रहा था। जापान ने विची फ़्रांस से इंडो-चाइना प्राप्त किया था जो हिटलर द्वारा फ्रांस की लड़ाई (1940) के बाद स्थापित एक कठपुतली सरकार थी। जब अमेरिका ने इंडो-चीन और चीन से जापान की वापसी की मांग जारी रखी तो वार्ताएं गतिरोध पर पहुंच गई थीं ।
    - आक्रामक जनरल तोजो के जापान के प्रधान मंत्री बनने से युद्ध भी अनिवार्य हो गया था।

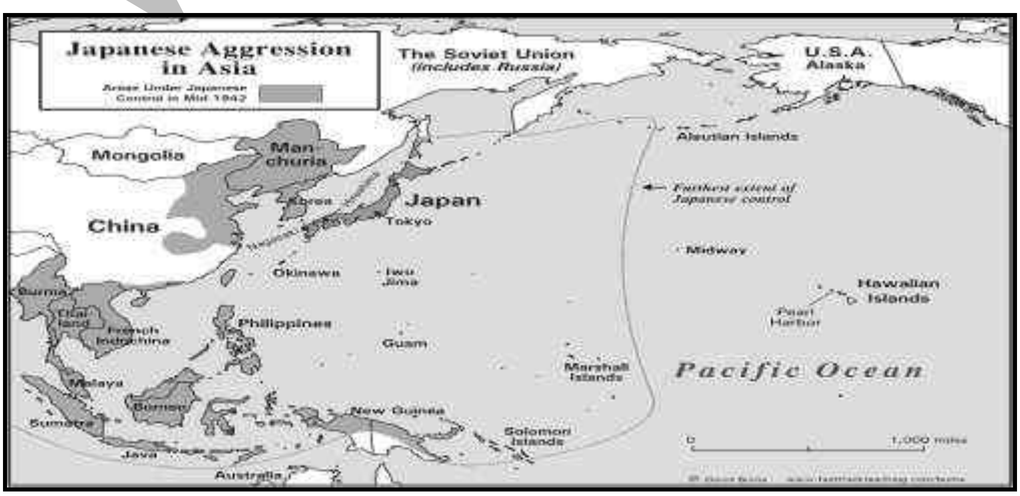

VISION IAS

पर्ल हार्बर पर हमले के बाद:

- जापान को प्रशांत क्षेत्र का नियंत्रण मिला।
- इसने मलाया, सिंगापुर, बर्मा और हांगकांग के ब्रिटिश उपनिवेशों पर कब्जा कर लिया।
- इसने डच ईस्ट इंडीज, फिलीपींस, गुआम और वेक आइलैंड पर कब्जा कर लिया, ये तीनों अमेरिकी उपनिवेश थे।

- पर्ल हार्बर पर किये गए हमले के बाद हिटलर ने संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। USSR पर हमला करने की पहली गलती के बाद यह दूसरी गंभीर गलती थी। अगर हिटलर ने संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं की होती तो संभवतः वह सुदूर पूर्व अर्थात जापान के साथ प्रशांत युद्ध पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकता था। हिटलर के इस कदम ने जर्मनी को USSR, अमेरिका और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के विशाल संसाधनों के विरुद्ध खड़ा कर दिया और इस घटना के बाद एक ऐसी स्थिति विद्यमान हो गई, जहां- जितना लंबा युद्ध चलता, धुरी शक्तियों के विजय की संभावना उतनी ही कम होती।
- एशिया और अन्य जगहों के मूल निवासियों से क्रमशः जापान और जर्मनी द्वारा बुरा व्यवहार किया गया। अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो पूर्व-विद्यमान शक्तियों के उत्पीड़न से ऊबे मूल निवासी धुरी शक्तियों के साथ सहयोग कर सकते थे। उदाहरण के लिए, बाल्टिक राज्यों (एस्टोनिया, लाटिविया, लिथुआनिया और यूक्रेन) के मूल निवासी स्टालिन के शासन के समय उत्पीड़न के शिकार हुए थे। उपनिवेशों में मूल निवासियों के साथ जापानियों का दुर्व्यवहार बेवकूफी भरा था क्योंकि उपनिवेशों ने खुले बाहों के साथ पूर्व का स्वागत किया था क्योंकि उन्होंने जापान को मुक्तिदाता के रूप में देखा था। साम्यवादियों के नेतृत्व में प्रायः गरीबों के साथ व्यवहार के विरोध में प्रतिरोध आंदोलनों का आयोजन किया गया। हालांकि इंडोनेशिया में, जापान ने सुकर्णो को राष्ट्रवादी आंदोलन के नेता के रूप में मान्यता दी और जापानी युद्ध के प्रयासों में इंडोनेशियाई समर्थन पाने के लिए स्वतंत्रता का वादा किया।

धुरी देशों की तीन हार: मिडवे द्वीप में जापान पर अमेरिका की जीत, मिस्र (अल-अलामेन की लड़ाई के रूप में जाना जाता है) में ब्रिटेन और न्यूजीलैंड के हाथों जर्मनी की हार और रूस के हाथों स्टालिनग्राद की लड़ाई में जर्मनी की हार।

मिडवे की लड़ाई (1942) एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुई। इस लड़ाई में अमेरिका के बमवर्षकों ने जापानी विमान वाहक पोतों को नष्ट कर दिया। जापान के लिए विमान वाहक पोत के बिना समुद्री लड़ाइयों को जीतना लगभग असंभव था। इस युद्ध के बाद अमेरिका ने जो आरंभ किया उसे 'आइलैंड हॉपिंग' के रूप में जाना जाने लगा। 1942-44 के बीच इसने जापान से प्रशांत द्वीपों को एक-एक कर जीत लिया। इसके लिए उसने हवाई बमबारी के साथ-साथ जमीनी हमलों का भी सहारा लिया।

मिस्र [अल अलामेन की लड़ाई अक्तूबर 1942] में जर्मनी की हार एक निर्णायक मोड़ थी क्योंकि इसने स्वेज नहर को जर्मनी के नियंत्रण में जाने से बचाया था। इसने धुरी शक्तियों और मध्य-पूर्व के बीच गठबंधन की संभावना को भी समाप्त कर दिया। रेगिस्तान में हुए इस युद्ध ने जर्मनी के संसाधनों को समाप्त कर दिया, जिसका सोवियत संघ के विरुद्ध बेहतर उपयोग किया जा सकता था। इस प्रकार इटली के खराब प्रदर्शन ने जर्मनी को झटका दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अल अलामेन की लड़ाई ने उत्तरी अफ्रीका से धुरी शक्तियों को पूरी तरह से बाहर कर दिया। इसने मित्र देशों की सेनाओं को मोरक्को और अल्जीरिया में उतरने का मौका दिया जिससे पश्चिम से धुरी देशों की सेनाओं पर हमला किया जा सके। इसके बाद लीबिया और ट्यूनीशिया को पुनः जीत लिया गया और इटली पर आक्रमण किया गया।

VISION IAS

स्टालिनग्राद का युद्ध (1942) दक्षिणी रूस में लड़ा गया था। जर्मनी अगस्त 1942 तक स्टालिनग्राद पहुंच गया और इसने यहां के बुनियादी ढांचे को नष्ट कर दिया। लेकिन रूसियों ने आत्मसमर्पण करने से इनकार कर दिया और नवम्बर में आक्रामक प्रतिरोध करना प्रारम्भ किया। फरवरी 1943 तक जर्मन घिर चुके थे, उनकी आपूर्ति लाइनें काट दी गई थीं और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। स्टालिनग्राद का युद्ध एक निर्णायक मोड़ था क्योंकि यदि जर्मनी इस युद्ध में जीत जाता तो वह रूस के तेल की आपूर्ति लाइनों को काटने में सक्षम हो जाता। रूस में काकेशस से तेल पहुंचता था। स्टालिनग्राद के जर्मनी के नियंत्रण में होने पर जर्मनी दक्षिण-पूर्व से मास्को पर हमला करने में सक्षम हो जाता। इस जीत ने रूसी सैनिकों का मनोबल बढ़ाया और जल्द ही जर्मनी को लेनिनग्राद से और रूस से बाहर कर दिया गया।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध में नौसेना की भूमिका

धुरी राष्ट्रों की पराजय में नौसेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जापान को पराजित करने में अमेरिकी नौसेना की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ब्रिटिश नौसेना ने भी मित्रराष्ट्रों को पूर्ण रूप से सहयोग दिया था:

- नौसेना ने मित्रराष्ट्रों के व्यापारिक जहाजों की सुरक्षा की। इससे भोजन की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित हो सकी। आर्कटिक के रास्ते रूस को हथियार, हवाई जहाज और मांस पहुंचाने वाले रक्षादलों को सुरक्षा प्रदान करने में विशेषकर ब्रिटिश नौसेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।
- जर्मनी की यू-बोट्स (U-boats) (पनडुब्बियों) को डुबाने और नौ सेना के जहाजों को परास्त करने में मित्र देशों की नौसेनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- धुरी देशों को होने वाली आपूर्ति को अवरुद्ध करने में मित्र देशों की नौसेनाएँ सफल रहीं।
- सैनिकों को उत्तरी अफ्रीका और फिर इटली तक पहुंचाकर मित्र राष्ट्रों की नौसेना ने सैनिकों के आवागमन को संभव बनाया।
- 1944 में विची फ्रांस के आक्रमण के दौरान नौसेना और वायुसेना की ताकत महत्वपूर्ण साबित हुई।
- ब्रिटिश नौसेना को **अटलांटिक की लड़ाई (1939-45)** में ब्रिटिश जीत सुनिश्चित करने के लिए सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। अटलांटिक की लड़ाई वस्तुतः ब्रिटिश नौसेना और जर्मन यू-बोट्स के बीच का एक संघर्ष था। उल्लेखनीय है कि जर्मन यू-बोट्स ब्रिटिश व्यापारिक जहाजों को डुबाकर ब्रिटेन को खाद्य सामग्री और कच्चे माल की आपूर्ति से वंचित कर रही थीं। अटलांटिक की लड़ाई में मित्र देशों के विजयी होने के विभिन्न कारण थे:
    - जिस तेजी से जर्मन यू-बोट्स जहाजों को डुबा रही थीं, 1943 तक मित्र देश उससे भी अधिक तेजी से जहाजों का निर्माण करने लग गए थे।
    - राशन की आपूर्ति करने वाले व्यापारिक जहाजों को सुरक्षा प्रदान कर रहे मित्र देशों के रक्षादलों को वायु संरक्षण मिलने से जर्मनी को पराजित करना आसान हो सका।
    - ब्रिटेन द्वारा हवाई जहाजों में एक ऐसी नई रडार तकनीक लगाई गई जिसकी सहायता से रात्रि के दौरान या कम दृश्यता की स्थिति में भी यू-बोट्स का पता चल जाता था।

5. द्वितीय विश्वयुद्ध में मित्र देशों की विजय में वायुसेना की भूमिका

- **ब्रिटेन की लड़ाई (1940) -** रॉयल एयरफोर्स ने जर्मन एयरफोर्स को पराजित कर दिया। जर्मन एयरफोर्स की पराजय ब्रिटेन के अस्तित्व की सुरक्षा के लिए अति आवश्यक थी।
- कम दृश्यता की स्थिति में यू-नौकाओं का पता लगाने के लिए हवाई जहाज में नई तकनीक के उपयोग से अटलांटिक की लड़ाई (1939-45) जीतने में सहायता मिली।
- अमेरिकी वायुसेना ने प्रशांत युद्ध (1941-45) जीतने में अमेरिकी नौसेना को सहायता प्रदान की थी। मिडवे की लड़ाई में इसका एक महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसके अतिरिक्त, अमेरिकी हवाई जहाजों ने बर्मा को दोबारा जीतने के लिए मित्र शक्तियों हेतु आपूर्ति का एक महत्वपूर्ण प्रवाह सुनिश्चित किया था।

VISION IAS

- उत्तरी अफ्रीका में युद्ध के दौरान रॉयल एयरफोर्स ने भूमध्य सागर में आपूर्ति जहाजों पर बमबारी की थी।
- विमानों के कारण पैराट्रूपरों को युद्ध क्षेत्र में उतारना संभव हो सका और नॉर्मैंडी (1944) व इटली (1943) में विमानों ने उन्हें हवाई सुरक्षा भी प्रदान की।
- **मित्र देशों के सामरिक हवाई हमलेः** यह धुरी शक्तियों के शहरों, विशेष रूप से उनके सैन्य और औद्योगिक केन्द्रों को लक्ष्य बनाकर की गई बमबारी थी। लेकिन इस हमले का 1944 तक जर्मन औद्योगिक उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परंतु अंततः इसका परिणाम यह हुआ कि 1944 के बाद जर्मनी में तेल का अभाव उत्पन्न हो गया।

6. धुरी राष्ट्रों की पराजय (Axis Defeated) (जुलाई 1943-45)

इसमें चार घटनाएं सम्मिलित हैं- इटली का पतन (1943), फ्रांस की स्वतंत्रता के लिए 'ऑपरेशन ओवरलॉर्ड' (1944), जर्मनी पर आक्रमण (1944-45) और जापान की पराजय (1945)।

- **इटली का पतन (1943):** अमेरिकी और ब्रिटिश सैनिकों को सिसली में हवाई जहाजों के माध्यम से उतारा गया। इटली के राजा ने मुसोलिनी को बर्खास्त कर दिया और इटली मित्र देशों की ओर से युद्ध में सम्मिलित हो गया। जर्मनी ने अपने सैनिकों को इटली भेजा, लेकिन वे हार गए। इटली के पतन ने हिटलर को अपने सैनिक इटली भेजने के लिए बाध्य कर दिया, जिनका कि रूस के विरुद्ध अपेक्षाकृत अधिक अच्छा उपयोग किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त मित्र देशों को मध्य यूरोप और बाल्कन में जर्मन सैनिकों पर बमबारी करने के लिए उपयुक्त हवाई ठिकाने भी उपलब्ध हुए।
  ऑपरेशन ओवरलॉर्ड (1944): यह फ्रांस को नाजी जर्मनी से मुक्त कराने के लिए फ्रांस पर किया गया हमला था जो कि तथाकथित 'डी-डे' (कारवाई शुरू करने के लिए निर्धारित किया गया दिन) वाले दिन ही आरंभ हुआ था। इस हमले के विभिन्न कारण थे। 1941 से ही रूस दूसरा मोर्चा खोलने की मांग कर रहा था। जर्मन यू-बोट्स अब अनुपयोगी हो चुकी थीं और उनके दिन लद गए थे। इसके अतिरिक्त मित्र देशों की हवाई श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी और इटली को मित्र देशों के खेमे में सम्मिलित किया जा चुका था। ऐसे में, मित्र देशों की सेनाएँ फ्रांस, बेल्जियम और हॉलैंड को मुक्त कराने पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकती थीं।
- **जर्मनी पर आक्रमण (1944-45):** अमेरिका और ब्रिटेन के बीच इस पर असहमति थी। जहां ब्रिटेन रूस से पहले बर्लिन पहुंचना चाहता था, वहीं अमेरिका 1944 में जर्मनी पर आक्रमण के अपने विफल प्रयासों के कारण सावधानी बरतने की सलाह दे रहा था। **बल्ज की लड़ाई** (Battle of Bulge) 1944 में लड़ी गई थी। इस युद्ध को यह नाम दिए जाने के पीछे तथ्य यह था कि जर्मन सेना अमेरिकी रक्षा पंक्ति को पार करते हुए 60 मील आगे बढ़ गई और दोनों सेनाओं के मध्य की रेखा पर बने विशाल उभार (बल्ज) के सामने पहुंच गई थी। अमेरिकी और ब्रिटिश सेनाओं ने उन्हें वापस धकेल दिया था। परिणाम यह हुआ कि हिटलर ने इस युद्ध में अपने सभी संसाधन उपयोग कर डाले थे, जिनकी दोबारा भरपाई नहीं हो सकी। जर्मनी का पतन अब निश्चित हो चुका था। 1945 में रूस ने जर्मनी पर कब्जा कर लिया और हिटलर ने आत्महत्या कर ली।
- **जापान की पराजय (1945):** जापान में परमाणु बम का प्रयोग किया गया था। इसका कारण यह था कि अमेरिका जल्दी से जल्दी युद्ध समाप्त करना चाहता था ताकि प्रशांत क्षेत्र में रूस और अधिक क्षेत्रीय लाभ न ले सके। USSR ने जापान पर किये जाने वाले आक्रमण में मित्र राष्ट्रों का साथ देने का वचन दिया था, लेकिन अमेरिका नहीं चाहता था कि रूस को जापान का कोई भी क्षेत्र मिले। एक विचार यह भी है कि अमेरिका नए बम की शक्ति का प्रदर्शन करके USSR को डराना और स्वयं को एक ताकतवर सैन्य शक्ति के रूप में स्थापित करना चाहता था।

VISION IAS

7. द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्रों की पराजय क्यों हुई?

इसे निम्न बिंदुओं से समझाया जा सकता है:

- **कच्चे माल की कमी:** इटली और जापान आयात पर निर्भर थे। यहां तक कि जर्मनी में भी रबड़, कपास और तेल की कमी थी।
- धुरी राष्ट्रों की सफलता उनकी त्वरित जीत पर निर्भर करती थी, जो उन्हें कभी नहीं मिल पाई। इस प्रयोजन के लिए तैयार की गई तड़ित युद्ध या ब्लिट्जक्रिग की रणनीति (Blitzkrieg strategy) आरंभ में सफल रही थी, लेकिन बाद में ब्रिटिश हवाई ताकत के कारण यह विफल हो गई थी।
- मित्र देशों ने जल्दी ही समुद्र में हवाई शक्ति और विमानवाहक पोत के महत्व को समझ लिया और उनके उत्पादन व युद्ध के मैदान में उनके उपयोग पर ध्यान केंद्रित कर लिया।
- अमेरिका, USSR और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में सम्मिलित देशों के पास संसाधनों का अपार भंडार था। USSR ने अपनी फैक्ट्रियों को युद्ध से परे यूराल पर्वत श्रृंखला के पूर्व में स्थानांतरित कर दिया, जिससे निरंतर उत्पादन सुनिश्चित हो गया। साथ ही धुरी राष्ट्र हथियारों के उत्पादन में अमेरिका से कोई साम्यता नहीं रखते थे।
- धुरी राष्ट्रों ने एक ही समय में कई मोर्चे खोल दिए थे।
- मुसोलिनी एक अक्षम जनरल साबित हो चुका था क्योंकि वह जीत प्रदान करने में असमर्थ रहा था। हिटलर को दो बार उसके बचाव में आना पड़ा था - एक बार उत्तर अफ्रीका में और फिर इटली में।
- साथ ही, कुछ सामरिक गलतियाँ भी हुईं। जापान विमान वाहक पोतों के महत्व को समझने में विफल रहा और युद्धपोतों का उत्पादन ही करता रहा। इसी प्रकार, हिटलर ने रूस में पड़ने वाली भीषण सर्दी को ध्यान में रखकर कोई योजना नहीं बनाई थी और न ही उपयुक्त समय पर जर्मन सेना स्टालिनग्राद से पीछे हटी।

8. द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव

- **विनाश:** इस युद्ध में 4 करोड़ से अधिक लोग मारे गए, जिनमें से आधे रूसी थे। भारी संख्या में लोग विस्थापित हो गए थे। जर्मनी के अधिकांश औद्योगिक क्षेत्र और शहर तबाह हो गए थे। इसी प्रकार फ्रांस और पश्चिमी रूस के शहर भी हवाई हमलों से तबाह हो गए थे। सर्वनाश या विध्वंस युद्ध का एक अन्य परिणाम था। यातना शिविरों (concentration camps) में हिटलर ने सुनियोजित तरीके से छह लाख यहूदियों का वध करवाया। हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए गए, जिसमें असंख्य जापानी विकलांग और अक्षम हो गए। उनकी कई पीढ़ियों के स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव रहा।
- **शांति समझौता:** कई अलग-अलग संधियों पर हस्ताक्षर किए गए थे। अल्बानिया और इथियोपिया समेत अपने सभी अफ्रीकी उपनिवेशों को इटली हार चुका था। USSR ने पूर्व चेकोस्लोवाकिया और फिनलैंड के कुछ हिस्से ले लिए और 1939 में कब्जा कर लिए गए एस्टोनिया, लाटीविया और लिथुआनिया के बाल्टिक राज्यों को मुक्त नहीं किया। त्रिएस्ते (Trieste) संयुक्त राष्ट्र प्रशासन के अंतर्गत आ गया था। जापान (1951) ने पिछले 90 वर्षों के दौरान अधिग्रहीत सभी प्रदेशों पर से अपना अधिकार हटा लिया और पूरी तरह से चीन से वापस चला गया। USSR ने जर्मनी और ऑस्ट्रिया पर कोई समझौता करने से इनकार कर दिया था, सिवाय इसके कि वे मित्र देशों की सेना के कब्जे में रहेंगे, जबकि पूर्वी प्रशा को पोलैंड और रूस के बीच विभाजित किया जाएगा।
- **प्रवसन/स्थानांतरण:** जर्मनी के बाहर मित्र देशों के कब्जे वाले क्षेत्रों में रह रहे जर्मनवासियों को जर्मनी स्थानांतरित किया गया। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि भविष्य में जर्मन सरकार इन क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य न जमाने पाए।

VISION IAS

- **नाभिकीयकरणः** द्वितीय विश्व युद्ध ने नाभिकीय हथियारों के उत्पादन को आरंभ किया।
- **शक्ति संतुलनः** द्वितीय विश्वयुद्ध के साथ विश्व पर यूरोप का वर्चस्व समाप्त हो गया और शक्ति संतुलन USSR और अमेरिका के पक्ष में स्थानांतरित हो गया। युद्ध में हुए भारी खर्चे के कारण इटली, जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रांस दिवालिएपन की कगार पर आ गए थे। ब्रिटेन पर अमेरिका का भारी ऋण हो गया था। ब्रिटेन को यह ऋण उधार अधिनियम (लेंड-लीज ऐक्ट- 1941) के अंतर्गत अमेरिका द्वारा दी जाने वाली सहायताराशि के रूप में प्राप्त हुआ था। युद्ध के बाद ब्रिटेन ऐसा ही दूसरा अमेरिकी ऋण लेने के लिए बाध्य हो गया था। इसके अतिरिक्त यूरोपीय निर्यात में भारी गिरावट आ गई थी। अमेरिका आर्थिक रूप से मजबूत था जबकि USSR के पास विशाल सेना थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का विश्व एक द्विध्रुवीय विश्व बन गया, जो दो महाशक्तियों के बीच के शीतयुद्ध (प्रतिद्वंद्विता) में घिरी हुई थी।
- **तीसरी दुनिया की संकल्पना का प्रादुर्भावः** तीसरी दुनिया में गुटनिरपेक्ष देश सम्मिलित थे। अर्थात इसमें वे देश सम्मिलित थे जिनका दोनों वैश्विक शक्तियों में से किसी के साथ कोई गठबंधन नही था। युद्ध के बाद उभरे स्वतंत्र राज्यों के सभी नेता 1973 में अल्जीयर्स में एकत्र हुए और उन्होंने स्वयं को तीसरी दुनिया के रूप में घोषित किया। तीसरी दुनिया के देशों को साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों पर संदेह था।
- **उपनिवेशवाद का अंतः** जापान से परास्त होने के कारण यूरोपीय ताकतों की प्रतिष्ठा कम हो गई थी। अपनी प्रतिष्ठा के बल पर ही वे औपनिवेशिक शासन कर रहे थे। कहा जाता था कि ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का आधार सेना नहीं थी बल्कि यह उनकी प्रतिष्ठा पर टिका हुआ था। यह युद्ध उत्पीड़न के विरुद्ध और फासीवादी शासन से स्वतंत्रता के लिए लड़ा गया था। इसके अतिरिक्त उपनिवेशों के भी बहुत सारे सैनिकों ने यूरोप में हुए युद्धों में भाग लिया था, जहां इन्हें पश्चिमी देशों के विचारों और समृद्धि के संपर्क में आने का अवसर मिला। यहां की परिस्थितियां गरीबी भरी उनकी अपनी परिस्थितियों के ठीक विपरीत थीं। इन सबके कारण उपनिवेशों में राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त यूरोपीय शक्तियाँ सैन्य रूप से और आर्थिक रूप से कमजोर थीं। USSR अब एक विश्व शक्ति बन चुका था। साम्यवादी विचारधारा उपनिवेशवाद के विरुद्ध थी। कई पूर्व यूरोपीय उपनिवेश युद्ध के दौरान जापानी शासन के अधीन आ गए थे। साम्यवादी नेताओं के नेतृत्व में राष्ट्रवादी संघर्षों के उदय के वे साक्षी बने। युद्ध के बाद स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला भारत पहला उपनिवेश था। इस प्रकार उपनिवेशवाद का अंत पहले एशिया में आरंभ हुआ, जिसके बाद अफ्रीका और मध्यपूर्व में भी स्वतंत्रता की मांग उठी। 1960 के दशक में उपनिवेशवाद के अंत की प्रक्रिया कई नए राष्ट्रों के उदय का कारण बनी।
- 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की स्थापना विश्व शांति बनाए रखने, व्यक्तिगत अधिकारों के संरक्षण और सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए की गई थी।

VISION IAS

9. विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रणालियां

- पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद जैसे शब्दों का प्रयोग सामान्य भाषा में प्रायः किया जाता है, लेकिन इन शब्दों के मूलभूत अर्थ और इनके पीछे के दर्शन को समझना महत्वपूर्ण है। ये शब्द सामूहिक रूप से पूरे विश्व में उपयोग हो रहे विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों को दर्शाते हैं। अधिक स्पष्टता के लिए इन राजनीतिक दर्शनों के सामान्य सिद्धांतों को नीचे समझाया गया है।

9.1. पूंजीवाद

- राज्य और समाज के संचालन की पूँजीवादी व्यवस्था देश की संपत्ति के निजी स्वामित्व और अहस्तक्षेप की नीति (लेसेज़ फेयर) पर आधारित अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करती है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि बाजार की शक्तियां आर्थिक नीतियों का निर्धारण करती हैं और कोई निर्देशित अर्थव्यवस्था नहीं होती। इस प्रकार राज्य उद्योगों को यह नहीं बताता कि क्या उत्पादित करना है, कब करना है या किस प्रकार उत्पादन करना है। साथ ही, पूँजीवादी व्यवस्था

के अंतर्गत, श्रमजीवी वर्ग को कोई विशेष सुरक्षा प्राप्त नहीं होती। श्रमिक भी पूंजी और भूमि की तरह उत्पादन का मात्र एक कारक माना जाता है (तैयार माल के उत्पादन के लिए आवश्यक सभी निवेश उत्पादन के कारक होते हैं)। निजी उद्यम (उद्यमशीलता), निजी धन की सुरक्षा और लाभ के उद्देश्य से उत्पादन करना ही पूँजीवादी व्यवस्था की प्रेरक शक्तियाँ हैं।

9.2. साम्यवाद

- साम्यवादी आर्थिक प्रणाली की विशेषता समुदाय द्वारा संपत्ति का सामूहिक स्वामित्व है, जिसका अंतिम लक्ष्य पूर्ण सामाजिक समानता है। राज्य और समाज का संचालन करने वाली साम्यवादी प्रणाली कार्ल मार्क्स के विचारों पर आधारित है। इसमें तीन चीजें महत्वपूर्ण हैं- संपत्ति का स्वामित्व, आर्थिक योजना और श्रमिक वर्ग की सुरक्षा। देश की संपत्ति का सामूहिक रूप से स्वामित्व होना चाहिए। अर्थव्यवस्था केंद्रीय रूप से नियोजित की जानी चाहिए (निर्देशित अर्थव्यवस्था) और राज्य को श्रमिक वर्ग के हितों की सुरक्षा के लिए सकारात्मक कार्रवाई करनी चाहिए। समानता, सामूहिक स्वामित्व और समाज कल्याण के लिए उत्पादन साम्यवादी प्रणाली की प्रेरक शक्तियाँ हैं। साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों ही अलग-अलग देशों द्वारा आवश्यकतानुसार अलग-अलग तरीके से अपनाए गए हैं।

9.3. समाजवाद

- समाजवाद के उदय और विकास के बारे में चर्चा करने से पहले इस शब्द के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझना महत्वपूर्ण है। साधारणतः, समाजवाद सार्वजनिक संपत्ति पर राज्य के स्वामित्व को संदर्भित करता है या उत्पादन के साधनों पर राज्य के स्वामित्व को दर्शाता है। वैकल्पिक रूप से, समाजवाद सामाजिक संगठन की ऐसी प्रणाली है, जिसमें वस्तुओं के उत्पादन और वितरण के साधन निजी या सामूहिक स्वामित्व वाले हो सकते हैं या फिर एक केंद्रीकृत सरकार द्वारा निर्देशित हो सकता है जो प्रायः अर्थव्यवस्था का नियोजन और नियंत्रण करती हो। हालांकि ऐसा नहीं है कि समाजवाद केवल साम्यवादी या फासीवादी सरकारों के ही समकालीन होता है। कई देशों में समाजवाद के कार्यान्वयन के लिए अधिकतर यह आवश्यक होता है कि इस दर्शन को कार्यान्वित करने के लिए एक मजबूत केंद्रीय सरकार विद्यमान हो।
- समाजवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:
  - **एक समतावादी समाजः** इसका अर्थ है कि जाति, वर्ग या रंग के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। 'समानता के बिना कोई वास्तविक स्वतंत्रता नहीं हो सकती।'
  - **बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टिः** 'लाभ का उद्देश्य' के बदले 'सेवा का उद्देश्य' होना चाहिए। संसाधनों के वितरण में राज्य का ध्यान इस पर नहीं होना चाहिए कि कहां इसे सबसे अच्छे मूल्य मिलेंगे, बल्कि इस पर होना चाहिए कि कहां उसकी आवश्यकता सबसे अधिक है।
  - **सार्वजनिक स्वामित्वः** उत्पादन के सभी साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व। समाजवाद के अनुसार, सामूहिक स्वामित्व वाला उद्योग अधिक दक्षतापूर्ण और नैतिक दृष्टि से अधिक संतोषजनक होता है।
  - **सेवा का आदर्शः** समाजवाद सामान्य कल्याण या सार्वजनिक हित की वकालत करता है। यह पारंपरिक उदारवादियों के व्यक्तिवाद और कठोर भौतिकवाद का विरोध करता है।
- एक विशुद्ध समाजवादी राज्य वह होगा जिसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और संचालन राज्य करेगा। हालांकि, लगभग सभी आधुनिक पूँजीवाद देश समाजवाद और पूंजीवाद का सम्मिश्रण हैं। कुछ अर्थव्यवस्थाएँ बहुत केंद्रीकृत हैं, जबकि कुछ पूरी तरह विकेंद्रीकृत हैं। वे सभी समानता के पक्ष में ही खड़े हैं लेकिन उनके दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं।

VISION IAS

10. समाजवाद के विभिन्न प्रकार

- समाजवाद एक सीधी-सरल अवधारणा नहीं है और अस्तित्व में आने के बाद से इसके कई रूप उभर चुके हैं। साम्यवाद समाजवाद से घनिष्ठता से संबद्ध एक अवधारणा है, जिसकी हम पहले ही संक्षेप में चर्चा कर चुके हैं। रूस विश्व का पहला साम्यवादी देश था।
- शीघ्र ही साम्यवाद (मार्क्सवाद) यूरोप के बाहर एशिया, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में भी फैल गया, जहां प्रत्येक देश ने अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं, स्थितियों और इतिहास के अनुसार मार्क्सवाद की अपनी स्वयं की शैली को अपनाया। उदाहरण के लिए, चीन ने 1958 तक रूसी प्रतिमान अपनाए रखा, लेकिन उसके बाद माओ ने पहले के प्रतिमानों की दुर्बलताओं से मुक्ति पाने और साम्यवाद / समाजवाद का ऐसा प्रतिमान लाने के लिए जो चीनी स्थितियों के लिए अधिक प्रासंगिक और विशिष्ट चीनी समस्याओं को हल करने में अधिक प्रभावी होता **ग्रेट लीप फॉरवर्ड** (1958) का शुभारंभ किया।
- इस प्रकार, यह समझा जाना चाहिए कि साम्यवाद का कोई एक आदर्श प्रतिमान नहीं है और किन विशेषताओं को मूलरूप में आयात करना है, किन विशेषताओं को पूरी तरह से अपवर्जित करना है और किन विशेषताओं को संशोधित करके अपनाना है - इन प्रश्नों का उत्तर विभिन्न देशों के लिए और विभिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न होता है। साम्यवादी चीन ने डेंग जियाओपिंग (1978-1992 तक नेता) के अधीन बाजार समाजवाद को अपनाया। बाजार समाजवाद अधिक उदारवादी और पूंजीवाद का अपेक्षाकृत कम विरोधी था और इसे दक्षिणपंथी साम्यवाद कहा गया। इस प्रकार डेंग के अधीन, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना समय की आवश्यकता के अनुसार बाजार अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हुआ। बाजार समाजवाद, समाजवाद का एक ऐसा स्वरुप है जिसमें समाजवादी बाजार अर्थव्यवस्था होती है और इसे खुली आर्थिक नीतियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है, जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था निवेश और व्यापार अवरोधों में कमी के माध्यम से वैश्विक अर्थव्यवस्था से अधिक एकीकृत हो जाती है। बाजार समाजवाद के अंतर्गत आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण (क्योंकि यह साम्यवादी दल के लिए अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में निर्णय लेने से पीछे हटना आवश्यक बनाता है), भूमि का अधिक निजी स्वामित्व और पूंजीवाद की अन्य विशेषताएँ शामिल होती हैं। लेकिन, यह समता की उस दृष्टि को ओझल नहीं होने देता है, जो साम्यवादी राज्य का प्राथमिक लक्ष्य है।

समाजवाद और साम्यवाद की अवधारणा स्पष्ट रूप से समझने के लिए दोनों के बीच अंतर करना महत्वपूर्ण है।

- **मार्क्सवाद बनाम समाजवाद:** मार्क्सवाद को वैज्ञानिक समाजवाद या मार्क्सवादी समाजवाद के नाम से भी जाना जाता है। यह कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) में यथा प्रतिपादित मार्क्स और एंगल्स का दर्शन है। इस संबंध की रूपरेखा को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है:
    - मार्क्सवाद समाज में समाजवाद लाने के संबंध में चर्चा करता है।
    - समाजवाद एक व्यापक शब्द है और समाजवाद लाने के लिए अन्य विचारकों द्वारा सुझाए गए अन्य तरीकों की भांति ही मार्क्सवाद भी इसका एक अवयव मात्र है।
    - एक अवधारणा के रूप में समाजवाद मार्क्सवाद से पुराना है। मार्क्स से पहले समाजवाद का अपना संस्करण प्रस्तुत करते हुए रॉबर्ट ओवन जैसे युटोपियन समाजवादी और अन्य समाजवादी काम कर चुके थे।
    - मार्क्सवाद मार्क्स द्वारा यथा वांछित समाजवाद है।

VISION IAS

- मार्क्सवाद औद्योगिकीकृत सेटिंग, अर्थात् औद्योगिकीकृत अर्थव्यवस्था में समाजवाद है।
- मार्क्सवाद सर्वहारा (अर्थात श्रमिक वर्ग) की तानाशाही के संबंध में चर्चा करता है। मार्क्सवाद संकीर्ण है क्योंकि यह केवल श्रमिकों पर ही ध्यान केंद्रित करता है। लेकिन समाजवाद का दृष्टि-क्षेत्र अधिक व्यापक है क्योंकि यह स्वयं को केवल श्रमिकों के साथ नहीं बांधता। यह श्रमिकों सहित किसानों और समस्त आबादी का भी समावेश करता है। वे अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्रक में कार्यरत हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, समाजवाद गैर-औद्योगीकृत देशों अर्थात रूस, चीन, भारत, वियतनाम, क्यूबा और अंगोला जैसे अफ्रीकी देशों द्वारा अपनाया गया है।
- मार्क्सवाद राज्य विरोधी है और राज्यहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जबकि समाजवाद के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। समाजवाद अपेक्षाकृत अधिक सामान्य अवधारणा है और यह राज्य के परित्याग की मांग नहीं करता है। समाजवाद राज्य विरोधी नहीं है बल्कि केवल सभी की समानता पर ध्यान केंद्रित करता है। वहीं भारतीय समाजवाद ने तो समाज में अधिक समानता लाने के लिए राज्य नामक संस्था का उपयोग किया है।
- **विधि (Method):** मार्क्स का तर्क था कि मार्क्सवाद लाने के लिए हिंसक क्रांति एकमात्र उपाय है लेकिन समाजवाद के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। उदाहरण के लिए, अलेन्डे के अधीन चिली जैसे देश समाजवाद के लिए शांतिपूर्ण क्रांति के साक्षी बने और वो भी लोकतांत्रिक राजनीति के अंतर्गत।
- **अंतिम उद्देश्य:** समाजवाद के उद्देश्य प्रकृति में व्यापक हैं। जहाँ समाजवाद का एक संस्करण पूँजीवादी व्यवस्था के वर्चस्व में कमी मात्र का लक्ष्य रख सकता है वहीं मार्क्सवाद पूंजीवाद का पूर्ण विनाश चाहता है।
- समानता इस तथ्य में निहित है कि मार्क्सवाद का उद्देश्य ऐसा समाजवाद है जिसका निहितार्थ समानता आधारित गैर-शोषणात्मक समाज है। दोनों अवधारणाएँ मात्र दर्शन हैं और वास्तव में समाज को संगठित करने के तरीके के संबंध में कार्यात्मक विवरणों की कमी से ग्रस्त हैं। इस प्रकार दोनों अवधारणाओं में उनके परिचालन के स्तर पर अभी भी सुधार करने की संभावनाएं उपस्थित हैं।

- **फेबियन समाजवाद** समाजवाद का एक अन्य रूप है और इसके संबंध में नीचे संक्षेप में चर्चा की गई है: फेबियन समाजवाद शब्द की उत्पत्ति ब्रिटेन में फेबियन सोसाइटी (1883) के गठन में देखी जा सकती है। फेबियन सोसाइटी ने ब्रिटेन में लेबर पार्टी के आधारभूत सिद्धांतों की स्थापना की थी। फेबियनवाद ने समाजवाद लाने के लिए क्रांति की बजाय विकास को अनिवार्य तत्व बनाया। यहां दो बातें महत्वपूर्ण हैं: एक, समाजवाद लाना और दूसरा, विकास। फेबियन समाजवादी लोकतंत्र को उखाड़ फेंकने और एक-दलीय साम्यवादी राज्य की स्थापना की वकालत नहीं करते हैं। उनका मानना था कि प्रतिनिधि मूलक लोकतंत्र सबसे अच्छी राजनीतिक व्यवस्था है। इसके साथ ही, वे क्रांति लाने के लिए हिंसा का उपयोग अस्वीकार करते थे और समाजवादी व्यवस्था की दिशा में समाज को अग्रसर करने के लिए वार्ता, याचिकाओं और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त क्रमिक सुधारों में विश्वास करते थे। समानता का उनका लक्ष्य साम्यवादी राज्यों के समर्थकों के समान था लेकिन उनके साधन भिन्न थे। सामान्यत: फेबियन समाजवादी के रूप में संदर्भित किए जाने वाले प्रमुख नामों में एनी बेसेंट और जवाहरलाल नेहरू के नाम सम्मिलित हैं।
- **लोकतांत्रिक समाजवादी और सामाजिक लोकतंत्र** वस्तुत: समाजवाद से जुड़े दो अत्यंत महत्वपूर्ण पद हैं। इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति द्वितीय अंतर्राष्ट्र (2nd International) के समय में सुधारवादियों और क्रांतिकारी समाजवादियों के बीच विभाजन में खोजी जा सकती है। द्वितीय अंतर्राष्ट्र/अंतर्राष्ट्रीय को विश्व भर के समाजवादी और श्रमिक दलों का संगठन समझा जा सकता है।

VISION IAS

सुधारवादियों को सामाजिक लोकतंत्रवादी भी कहा जाता है। लोकतांत्रिक समाजवाद में बहस का मुख्य मुद्दा लोकतांत्रिक बनाम सर्व सत्तावादी समाजवाद है, जबकि सामाजिक लोकतंत्र में मुख्य बल समाजवादी व्यवस्था प्राप्त करने के लिए क्रांतिकारी हिंसक साधनों के विरूद्ध सुधारवादी अहिंसक साधनों पर दिया गया है।

- **लोकतांत्रिक समाजवाद:** लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थक ऐसी समाजवादी व्यवस्था के लिए तर्क प्रस्तुत करते हैं जो वास्तव में लोकतांत्रिक हो। उनके विचार में, सच्चे समाजवादी समाज में अर्थव्यवस्था के प्रबंधन के संबंध में निर्णय लेने की शक्ति जनता के पास होगी। इसलिए उनका बल "सोशलिज्म फ्रॉम बिलो" (नीचे से समाजवाद) पर है, जिस पर आगे और प्रकाश डाला गया है:
  - यह अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में संपूर्ण आबादी और विशेषकर श्रमिकों की सक्रिय भागीदारी का पक्षधर है। यह लोकतांत्रिक समाजवाद या नीचे से समाजवाद की मूलभूत विशेषता है। इसके साधन प्रकृति में द्वितीयक हैं और सुधारवादी या क्रांतिकारी साधनों के माध्यम से ऐसी समाजवादी व्यवस्था प्राप्त की जा सकती है। लोकतांत्रिक समाजवादियों के भीतर कई उप-समूह हैं जो साधनों के एक समुच्चय की तुलना में दूसरे का समर्थन करते हैं, हालांकि क्रांतिकारी साधनों के पक्षधर सबसे अधिक हैं, फिर भी उनका वास्तविक बल साधनों की बजाय अंतिम उद्देश्य पर है।
  - नीचे से समाजवाद वस्तुतः स्टालिनवाद और सामाजिक लोकतंत्र के विपरीत समाजवाद का एक गैर-तानाशाही दृष्टिकोण है। जबकि स्टालिनवाद और सामाजिक लोकतंत्र दोनों ही तानाशाही राज्य समाजवाद के रूप हैं। तानाशाही से यहां तात्पर्य सत्ता के विकेंद्रीकरण के विपरीत सत्ता के केंद्रीकरण से है। अन्य बातों के साथ-साथ, स्टालिनवाद का निहितार्थ सर्वोच्च नेता के हाथों में सत्ता का संकेंद्रण है जो राज्य पर शासन करता है। अर्थव्यवस्था केंद्रीय रूप से नियोजित होती है जहां अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में ऊपर से नीचे निर्णय लिया जाता है। सामाजिक लोकतंत्र में भी, आर्थिक निर्णयन राज्य और पूंजीपतियों में संकेंद्रित होता है। यहां भी संपत्ति के वास्तविक उत्पादकों, अर्थात श्रमिकों की निर्णयन में भागीदारी नहीं होती है। इस प्रकार लोकतांत्रिक समाजवादियों के अनुसार, सामाजिक लोकतंत्र और स्टालिनवाद दोनों ही जनता के हाथों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण की भावना के विरूद्ध हैं।
  - लोकतांत्रिक समाजवाद राज्य समाजवाद के विपरीत है। राज्य समाजवाद में उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और निर्देशित अर्थव्यवस्था (केंद्रीय रूप से नियोजित अर्थव्यवस्था, जहां राज्य उद्योगों को आदेश देता है कि क्या, कब, कितना और कैसे उत्पादन करना है) सम्मिलित होती है। पूंजीवाद में आर्थिक उत्पादन के प्रश्नों पर निर्णय लेने की शक्ति पूंजीपतियों के हाथों में होती है। लोकतांत्रिक समाजवादियों का तर्क है कि राष्ट्रीयकरण के माध्यम से पूंजीपतियों को राज्य द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है और श्रमिकों को पुनः बाहर छोड़ दिया जाता है।
- **सामाजिक लोकतंत्र:** यह ऐसी राजनीतिक विचारधारा है जिसमें सामाजिक लोकतंत्रवादियों का मुख्य बल अपने अंतिम उद्देश्य अर्थात् समाजवादी समाज को प्राप्त करने के साधन पर होता है। वे हिंसक साधनों के विरोधी होते हैं और मानते हैं कि समतापूर्ण समाजवादी व्यवस्था अहिंसात्मक तरीके से क्रमिक सुधारों के माध्यम से प्राप्त की जानी चाहिए। सामाजिक लोकतंत्र की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को नीचे सूचीबद्ध किया गया है:
  - इसके लक्ष्य लोकतांत्रिक सामाजवाद के लक्ष्यों की भांति ही होते हैं अर्थात, समाजवादी समाज की प्राप्ति जहां धन का कम संकेद्रण और अधिक समानता हो।

- इनके साधन सुधारवादी हैं - अर्थात् हिंसक साधनों के बजाय क्रमिक सुधारात्मक विधियाँ। वे पूँजीवाद अर्थव्यवस्था से समाजवादी अर्थव्यवस्था की दिशा में शांतिपूर्ण और विकासवादी परिवर्तन का समर्थन करते हैं।
- सामाजिक लोकतंत्र को ऐसी राजनीतिक विचारधारा के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है जिसका लक्ष्य समाजवादी नीतियों वाला कल्याणकारी राज्य हो और जहां श्रमिकों के पास पूँजीवाद अर्थव्यवस्था और लोकतांत्रिक ढांचे के अंतर्गत सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति हो।
- राजव्यवस्था का वरीय रूप कानून के शासन के साथ लोकतंत्र होता है। यहां पर उल्लिखित लोकतंत्र राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही पक्षों में है।
- ये मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर होते हैं लेकिन राज्य द्वारा अतिहस्तक्षेप के विरूद्ध हैं। इतना ही नहीं ये 100 प्रतिशत मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था और 100 प्रतिशत नियोजित अर्थव्यवस्था के भी विरूद्ध होते हैं।

दो राजनीतिक विचारधाराएं	**लोकतांत्रिक समाजवाद**	**सामाजिक लोकतंत्र**
वोट बैंक	श्रमिक और गरीब किसान	मध्यम वर्ग
अतिवाद की मात्रा	काफी अधिक अतिवादी	कम अतिवादी
वरीय अर्थव्यवस्था की प्रणाली	पूर्णतः समाजवादी अर्थव्यवस्था	मिश्रित अर्थव्यवस्था। पूर्णतः समाजवादी अर्थव्यवस्था नहीं बल्कि सामूहिक सौदेबाजी और कल्याणकारी राज्य जैसी समाजवादी विशेषताओं वाली पूँजीवाद अर्थव्यवस्था।
साधन	दो समूह- 1. सुधारवादी लोकतांत्रिक समाजवादी - शांतिपूर्ण क्रमिक सुधारों को वरीयता देते हैं। 2. क्रांतिकारी लोकतांत्रिक समाजवादी – तत्काल हिंसक क्रांति को वरीयता देते हैं। वे "ऊपर से समाजवाद" का समर्थन करने वाले सुधारवादी लोकतांत्रिक समाजवादियों की आलोचना करते हैं क्योंकि लोकतांत्रिक समाजवाद पूंजीवाद का तात्कालिक अंत नहीं चाहता है।	क्रमिक; सुधारवादी; शांतिपूर्ण; क्रांति के बजाय विकास
राज्य की भूमिका	राज्य की न्यूनतम भूमिका। यहां तक कि कल्याणकारी राज्य भी अस्थायी उपाय ही होना चाहिए।	राज्य की कुछ भूमिका। 100 प्रतिशत मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के साथ-साथ 100 प्रतिशत राज्य नियोजित अर्थव्यवस्था के विरूद्ध।
राजव्यवस्था	सत्ता का विकेंद्रीकरण मुख्य मुद्दा है, चाहे यह लोकतंत्र के अधीन हो या साम्यवादी राज्य के।	कानून के शासन के साथ लोकतंत्र।

VISION IAS

अभी तक हमने विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक प्रणालियों और समाजवाद के विभिन्न रूपों के संबंध में जाना। अब, हम विश्व इतिहास में विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से समाजवाद का विकास समझने का प्रयास करेंगे।

11. एक राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद का विकास

- समाजवाद के उदय की जड़ सामंतवाद और पूंजीवाद की नकारात्मकताओं में खोजी जा सकती है। इन दोनों अवधारणाओं द्वारा निर्देशित समाज असमानता और व्यापक विषमता से ग्रस्त थे। फ्रांसीसी क्रांति से पहले ही विचारकों ने एक ऐसे समाज की कल्पना करना आरंभ कर दिया था, जहां सामाजिक संबंधों और अमीर-गरीब विभाजन के रूप में कम असमानता होती। समाजवादी विचारकों ने सामंतवाद की प्रणाली पर आक्रमण किया, जिसमें समाज कठोर श्रेणीबद्ध संरचना में विभाजित था जहां सामंत और पादरी वर्ग का किसानों पर प्रभुत्व था। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति मुख्यतः समानता पर केंद्रित थी और फ्रांसीसी क्रांति की सफलता ने भ्रातृत्व और समानता के विचारों को बहुत बढ़ावा दिया। इसके साथ ही औद्योगिक क्रांति (1750 से आगे) के पश्चात इंग्लैंड में भी श्रमिकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। शीघ्र ही श्रमिकों ने स्वयं को संगठित करना आरंभ कर दिया और श्रमिकों के कल्याण के लिए आंदोलनों का शुभारंभ हुआ। इस प्रकार यूरोप में सामंतवाद और पूंजीवाद के विरूद्ध समाजवाद का उदय हुआ जिसमें मुख्य रूप से समानता पर बल दिया गया।
- फ्रांस में सामंती सरंचना पर आक्रमण किया गया जबकि इंग्लैंड में श्रमिकों के पूँजीवादी उत्पीड़न के विरूद्ध आवाज उठाई गई। जैसे-जैसे 19वीं शताब्दी में यूरोप में औद्योगीकरण हो रहा था, समाजवादी और पूँजीवाद विचारों के मध्य संघर्ष बढ़ता जा रहा था। 1750 के बाद इंग्लैंड में औद्योगीकरण आरंभ होने के कारण इसकी स्पष्टता इंग्लैंड में अधिक थी। 19वीं सदी में समाजवाद ने सुदृढ़ आकार लेना आरंभ किया और यहीं समाजवादी विचारकों द्वारा पूँजीवाद व्यवस्था के विकल्प के रूप में समाजवाद को आगे बढ़ाया गया। इसी सदी के दौरान कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने पूंजीवाद की व्यापक आलोचना की। इस प्रकार निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि समाज में असमानता के कारण और मुख्य रूप से औद्योगिक क्रांति के उपरांत यूरोप (18वीं और 19वीं शताब्दी) में औद्योगिक पूंजीवाद की नकारात्मकताओं के कारण समाजवाद का उदय हुआ। हालांकि समाजवादी विचारों ने 18वीं शताब्दी में सामंती समाज वाले फ्रांस में भी आकार लेना आरंभ कर दिया था।

आइए अब हम विशेष रूप से पूंजीपतियों के विरूद्ध श्रमिकों के उठ खड़े होने पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिसने यूरोप में समाजवाद के उदय की गति तेज कर दी।

श्रमिक आन्दोलनों का शुभारंभ:

- औद्योगिक क्रांति के बाद कारखानों वाले कस्बों में श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई। कारखाना स्वामियों और प्रबंधन द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता था। उनकी काम की दशाएँ असुरक्षित होती थीं, काम के घंटे सोलह घंटे जितने लंबे होते थे, बाल श्रम का व्यापक प्रचलन था, सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों का अभाव था और उनकी मजदूरी भी बहुत कम थी। इसके परिणाम-स्वरुप व्यापार संघ (श्रमिकों के संगठन) उभरने लगे थे, लेकिन लंबे समय तक ये अवैध थे क्योंकि पूंजीवादियों का राज्य की कानून बनाने वाली संस्थाओं पर प्रभाव था। फ्रांसीसी क्रांति (1789) में, श्रमिक एक प्रमुख तत्व थे और उन्होंने सामंतवाद को उखाड़ फेंकने के लिए स्वयं को गुप्त समाजों में संगठित किया था। इंग्लैंड और अन्य देशों में श्रमिक वर्ग के दबाव के कारण सरकारों को पूँजीवाद

VISION IAS

 ©Vision IAS

की सबसे निकृष्ट विशेषताओं के विरूद्ध कानून पारित करने के लिए विवश होना पड़ा। उदाहरण के लिए, कई देशों में काम की असुरक्षित दशाओं के विरूद्ध कानून पारित किए गए और काम के अधिकतम घंटों पर सीमाएँ आरोपित की गईं।

यूरोप में समाजवाद के उदय से जुड़े कुछ आंदोलन और प्रमुख समाजवादी विचारक:

- **ल्युडिट्स (1811-17):** यह लुड की अगुवाई में इंग्लैंड के श्रमिकों का समूह था। लुड यह मानता था कि मशीनें ही श्रमिकों के दुःख दैन्य का कारण हैं। उन्होंने कारखानों में मशीनें तोड़ने के लिए आंदोलन आरंभ किया। यह एक सीधा-सरल विचार था और शीघ्र ही उन्होंने अनुभव किया कि उनका आंदोलन व्यर्थ था।
- **चार्टिस्ट आंदोलन (1830 - 40):** श्रमिकों के लिए मताधिकार की मांग को लेकर इंग्लैंड में यह आंदोलन आरंभ हुआ। 1850 के दशक तक इस आंदोलन का अंत हो गया, लेकिन इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा और इसने अपने अधिकारों की मांग करने के लिए श्रमिकों को उत्साहित किया और उन्हें और अधिक जागरूक बनाया। संसद द्वारा पारित चार अधिनियमों के माध्यम से ब्रिटेन मताधिकार के प्रश्न पर धीरे-धीरे आगे बढ़ा और 1929 तक सभी वयस्कों को मताधिकार प्राप्त हो गया।
- **यूरोप में 1848 के विद्रोह:** 1848 में अधिकांश यूरोप में विरोध-प्रदर्शन और विद्रोह हो रहे थे। कम्युनिस्ट लीग (आगे चर्चा की गई है) ने मार्क्स और एंजेल्स द्वारा लिखित कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) प्रकाशित करते हुए श्रमिकों को प्रेरित किया। श्रमिकों ने उत्साहपूर्वक भागीदारी की और उनकी मांगों में न सिर्फ स्वेच्छाचारी शासन का, बल्कि पूंजीवाद का अंत भी सम्मिलित था। मध्यवर्ग ने श्रमिकों द्वारा राज्य के अधिग्रहण से डरकर अंतिम क्षणों में निरंकुश शासकों के साथ समझौता कर लिया और ये विद्रोह लोकतंत्र की स्थापना करने में विफल रहे।
- **प्रारंभिक समाजवादी:** सामान्यत: हम कार्ल मार्क्स के साथ समाजवादी आंदोलन का तादात्म्य स्थापित करते हैं लेकिन सेंट साइमन, चार्ल्स फ़ोरियर (Charles Fourier), रॉबर्ट ओवन, ऑगस्टे ब्लांकी (Auguste Blanqui), और लीग ऑफ जस्ट जैसे यूटोपियन समाजवादियों; बाबूफ जैसे प्रारंभिक विचारकों, क्रांतिकारियों और उनके संगठनों द्वारा समाजवादी विचारों के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया गया था। श्रमिकों, उनके नेताओं और कई विचारकों ने श्रमिक वर्ग की दशा में सुधार लाने का प्रयास किया। धीरे-धीरे, यह विश्वास जड़ पकड़ने लगा कि पूंजीवाद अपने आप में ही बुरा है। इसलिए एक नई सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की वकालत की गयी, जहां उत्पादन के साधन सामूहिक रूप से समाज के स्वामित्व में हों न कि मुट्ठीभर पूंजीपतियों के हाथ में।
- **फ्रांसीसी क्रांति और श्रमिक आंदोलन:** फ्रांसीसी क्रांति (1789) से पहले ही कई विचारक ऐसे समाज के संबंध में लिख रहे थे जिसमें समानता होती। लेकिन फ्रांसीसी क्रांति होने तक यह एक अव्यवहारिक स्वप्न प्रतीत होता था। फ्रांसीसी क्रांति ने समानता पर बहुत बल दिया और सामंतवाद को समाप्त करने में इसकी सफलता ने समानता के विचार को बढ़ावा दिया। हालांकि हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि फ्रांसीसी क्रांति पूंजीवाद के विरूद्ध नहीं थी बल्कि इसने मुक्त व्यापार और पूंजीवाद का पक्ष ही लिया था। फिर भी सामंतवाद के विरुद्ध रही फ्रांसीसी क्रांति में समानता का विचार केंद्रीय तत्व था। (अमेरिकी क्रांति के समय स्वतंत्रता की घोषणा ने संपत्ति के अधिकार का अलंघनीय अधिकार के रूप में वर्णन किया, जबकि फ्रांसीसी क्रांति के समय मनुष्य और नागरिक अधिकारों के घोषणापत्र ने तर्क प्रस्तुत किया कि व्यक्ति को संपत्ति का अधिकार है लेकिन सार्वजनिक कल्याण के पक्ष में इसका उल्लंघन किया जा सकता है)। लेकिन फ्रांसीसी क्रांति स्थिर गणराज्य प्रदान करने में विफल रही। यह केवल लुई 16वें का निरंकुश शासन समाप्त कर पाई और इसका परिणाम अधिक न्यायसंगत समाज के रूप में सामने नहीं आया। श्रमिकों को क्रांति का लाभ नहीं मिला। क्रांति का लाभ केवल किसानों को मिला क्योंकि उन्हें सामंतों और पादरी वर्ग से जब्त की गई भूमि मिली। फ्रांसीसी क्रांति के तुरंत बाद सत्ता बुर्जुआ वर्ग (मध्यम वर्ग) के हाथ में

VISION IAS

आ गई। संविधान में न्यूनतम आय मानदंडों के कारण श्रमिकों को मताधिकार नहीं मिला। इस असंतोष के परिणामस्वरूप जैकोबिन सत्ता में आए, लेकिन वे कानून का शासन प्रदान करने में विफल रहे और फ्रांस आतंक के शासन में चला गया। इस शासन में प्रत्येक असहमतिपूर्ण आवाज को दबाने के लिए गिलोटिन का उपयोग किया गया। इसके बाद, बुर्जुआ वर्ग पुनः सत्ता में आया। इस प्रकार फ्रांसीसी क्रांति के वास्तविक परिणामों और उसके विचारों में व्यापक अंतर था। इस असंतोष ने बाबूफ के षड्यंत्र (1796) को जन्म दिया।

- **बाबूफ का षडयंत्र और बाबूफ की घोषणा (Babeuf's conspiracy and Babeuf's Manifesto):** बाबूफ का षडयंत्र फ्रांसीसी सरकार को उखाड़ फेंकने और समाजवाद के सिद्धांतों के आधार पर समाज का निर्माण करने का एक प्रयास था। बाबूफ ने फ्रांसीसी क्रांति में भाग लिया था और "सोसाइटी ऑफ इक्वल्स" नामक गुप्त समाज का गठन किया था। सरकार द्वारा आंदोलन दबा देने के कारण बाबूफ असफल रहा और 1797 में उसे मार दिया गया। बाबूफ की घोषणा ने समाज में समानता के विचार पर बल दिया। इसमें तर्क दिया गया था कि अर्थव्यवस्था की सभी वस्तुओं का उपभोग करने के लिए हर कोई समान अधिकार के साथ पैदा होता है। सच्चे समाज में अमीर और गरीब के लिए कोई स्थान नहीं होता है। इसलिए अमीर-गरीब का विभाजन समाप्त करने के लिए एक और क्रांति आवश्यक है।'
- **यूटोपियन समाजवादी:** इसमें सेंट साइमन, चार्ल्स फ़ोरियर और रॉबर्ट ओवन जैसे विचारक सम्मिलित हैं। ये एक नया सामूहिक समाज चाहते थे। सेंट साइमन ने "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार" नारा दिया। इन्हें यूटोपियन समाजवादी के नाम से इसलिए जाना जाता है क्योंकि इस प्रकार का समाज स्थापित करने के लिए उन्होंने जो उपाय सुझाए थे वे अव्यवहारिक और प्रभावहीन थे।
- **ऑगस्टे (1805-81):** वह समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए एक उपकरण के रूप में हिंसक क्रांति के विचार का प्रतिपादक था। ऑगस्टे 1830 के दशक से लेकर 1871 तक तृतीय फ्रांसीसी गणराज्य की स्थापना होने तक पेरिस में होने वाले विद्रोहों में बहुत सक्रिय रहा था। उसने समाजवाद की स्थापना के लिए क्रांतिकारी षडयंत्र के विचार का समर्थन किया। वह बहुत लोकप्रिय था और 1881 में उसके अंतिम संस्कार के दौरान लगभग दो लाख श्रमिक अपना सम्मान प्रकट करने के लिए एकत्रित हुए थे।
- **लीग ऑफ द जस्ट:** यह कई समाजवादी संगठनों में से एक था। इसका प्रमुख योगदान अंतर्राष्ट्रीयतावाद का विचार था। अंतर्राष्ट्रीयतावाद का निहितार्थ सभी देशों के सभी श्रमिकों की एकता और श्रमिकों के बीच अनेकता के स्रोत के रूप में सीमाओं को अस्वीकार करना था। सम्पूर्ण यूरोप से इसके सदस्य थे। इसने नारा दिया "सभी लोग भाई हैं" (all men are brothers)।
- **कम्युनिस्ट लीग:** लीग ऑफ द जस्ट ने 1847 में एक नया नाम कम्युनिस्ट लीग अपनाया। इसने "सर्वहारा का शासन" (Rule of Proletariat) का नारा दिया और इसे ही अपना लक्ष्य बनाया। इस लक्ष्य का निहितार्थ बुर्जुआ वर्ग का पतन और श्रमिकों के शासन की स्थापना थी। इसका उद्देश्य वर्ग भेद की विशेषता रखने वाले मध्य वर्ग के वर्चस्व वाले समाज को उखाड़ फेंकना था। यह वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता था, जिसमें निजी संपत्ति के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसने अंतर्राष्ट्रीयतावाद की भावना को आगे बढ़ाया और नारा दिया "सभी देशों के सर्वहारा एक हो जाओ!"।

समाजवाद और साम्यवाद शब्द का प्राय: एक दूसरे के लिए उपयोग किया जाता है। इसका प्रमुख कारण कार्ल मार्क्स का प्रभाव है। इसलिए इन शब्दों की बेहतर समझ विकसित करने के लिए अलग से कार्ल मार्क्स के विचारों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है।

12. कार्ल मार्क्स के विचार

- कार्ल मार्क्स (1818-83) ने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848) में मार्क्सवाद का सिद्धांत प्रस्तुत किया था। कार्ल मार्क्स ने इंग्लैंड में अपने प्रवास के दौरान अपने चारों ओर के समाज का अध्ययन करके अपने विचारों का निरूपण किया था। उल्लेखनीय है कि मार्क्स ने अपने विचारों का विश्लेषण तात्कालिक औद्योगिक परिस्थितियों से जनित समस्याओं को देखते हुए किया था। इस प्रकार मार्क्स का कार्य औद्योगिक समाज के लिए अधिक प्रासंगिक है। जब उसने औद्योगिक क्रांति के उपरांत इंग्लैंड में इसका विश्लेषण किया तो उसने पूँजीवाद प्रणाली की नकारात्मकताओं पर ध्यान केंद्रित किया और एक वैकल्पिक व्यवस्था प्रदान करने का प्रयास किया जो आम जनता (जो श्रमिक थे) का कल्याण सुनिश्चित करती। उसकी महत्वपूर्ण रचनाओं में **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848)** और **दास कैपिटल (1867)** सम्मिलित हैं। कार्ल मार्क्स के विचारों का प्रकाशन 19वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था जो यूरोप में सामंतवादी और पूँजीवाद व्यवस्था के विरूद्ध विरोध का भी समय था।

- मार्क्सवाद को **वैज्ञानिक समाजवाद** भी कहा जाता है क्योंकि मार्क्स ने अपने सिद्धांत पर पहुंचने से पहले इसका अनुभवजन्य वैज्ञानिक विश्लेषण भी किया था। उसने दर्शाया कि श्रमिकों द्वारा सृजित मूल्य में से पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों को दी गई मजदूरी को घटाने के उपरांत जो शेष बचता है वही पूंजीपतियों का लाभ है और यही समाज में संघर्ष का प्राथमिक स्रोत है।
- **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (1848):** कम्युनिस्ट लीग के निर्देश पर मार्क्स और एंजेल्स ने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो तैयार किया था। इसने "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार" के नारे को बदलकर "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" कर दिया। ऐसा अधिक समावेशी समाज प्राप्त करने के लिए किया गया था, जो उन लोगों की देखभाल करता जो वृद्धावस्था, विकलांगता आदि के कारण पर्याप्त योगदान नहीं दे सकते हैं।
- **दास कैपिटल (1867):** यह मार्क्स द्वारा पूंजीवाद पर किया गया अध्ययन है और अपने इस प्रकाशन में उन्होंने पूंजीवाद की विशेषताओं को उद्धृत किया है, जो अपने ही विनाश का कारण बनती है।
- **पूँजीवाद समाज का मूल संघर्ष क्या है?-** पूँजीवाद समाज की मूल समस्या यह है कि श्रमिक समाज में मजदूरी के रूप में जो वापस पाते हैं, उसकी तुलना में वे अधिक मूल्य सृजित करते हैं। मजदूरी और उत्पादित मूल्य के बीच का अंतर पूंजीपतियों का लाभ होता है। पूंजीपति मजदूरी की कीमत पर लाभ को बढ़ाने का प्रयास करते हैं और इसलिए श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच न मिट सकने वाला संघर्ष होता है।

- **पूँजीवाद समाज में आर्थिक संकट अपरिहार्य क्यों है?-** ऐसा इसलिए है क्योंकि मजदूरी उत्पादित वस्तुओं के मूल्य से काफी कम होती है। अधिकांश आबादी (अर्थात श्रमिकों) की क्रय शक्ति और बाजार से खरीदी जाने वाली वस्तुओं के कुल मूल्य के बीच विसंगति होती है। इस प्रकार आर्थिक संकट अवश्यम्भावी है। उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व समाप्त करना और केवल लाभ के उद्देश्य का अंत करना ही इस समस्या का समाधान है। इससे कुछ लोगों के लाभ की बजाय सामाजिक कल्याण के लिए उत्पादन होगा। जहां व्यक्ति के लिए जो अच्छा है और समाज के लिए जो अच्छा है, के बीच कोई अंतर नहीं होगा; जिससे वर्गहीन समाज अस्तित्व में आएगा। निजी स्वामित्व के अंत से पूँजीवाद शोषण का भी अंत हो जाएगा। हालांकि इस संदर्भ में मार्क्स का तर्क यह है कि ऐसा केवल श्रमिक वर्ग द्वारा किया जा सकता है क्योंकि यही वर्ग औद्योगिक समाज में सबसे क्रांतिकारी वर्ग है।

निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत मार्क्स के विचारों पर आगे चर्चा की जा सकती है:

- **पूंजीवाद, संघर्ष और वर्ग (Capitalism, conflict and classes):** कार्ल मार्क्स ने इस बात का विश्लेषण करने का प्रयास किया कि समाज में संघर्ष क्यों है। उसने यह निष्कर्ष निकाला कि समाज का वर्गों में विभाजन का परिणाम संघर्ष है। इसके अतिरिक्त उसने समाज का वर्गों में विभाजन के लिए पूंजीवाद को दोषी ठहराया। इस प्रकार पूंजीवाद वर्गों में समाज के स्तरीकरण के लिए होने वाले संघर्ष हेतु उत्तरदायी है। कार्ल मार्क्स के अनुसार वस्तुओं के उत्पादन के लिए लोगों का एक साथ आना स्वाभाविक है। इस प्रकार संयुक्त उत्पादन के लिए लोगों के बीच मूल रूप से सामंजस्य होता है, लेकिन पूंजीवाद इस सामंजस्य को नष्ट कर देता है और इसका परिणाम समाज में संघर्ष के रूप में सामने आता है। दूसरे शब्दों में संघर्ष का कारण वर्ग नहीं होता है बल्कि यह संघर्ष ही है जो लोगों को "हम" बनाम "उन्हें" की श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए वर्गों में स्वयं को संगठित करने हेतु बाध्य करता है। इस प्रकार एक वर्गहीन समाज वर्ग आधारित समाज में परिवर्तित हो जाता है। कार्ल मार्क्स ने संघर्षरहित, पूंजीवादरहित और वर्गहीन समाज की आकांक्षा की [पूंजीवाद नहीं --> संघर्ष नहीं --> वर्गहीन समाज]।
- **श्रमिकों का शोषण (Exploitation of Workers):** कार्ल मार्क्स का तर्क है कि श्रमिक (अर्थात सर्वहारा वर्ग) अर्थव्यवस्था में मूल्य के वास्तविक उत्पादक हैं और पूंजीपतियों (यानी मध्यम वर्ग या बुर्जुआ वर्ग) द्वारा सर्वत्र उनका शोषण किया जाता है। इस प्रकार अंततः वे इस शोषण के विरूद्ध उठ खड़े होंगे और सर्वहारा की तानाशाही स्थापित हो जाएगी। इससे मार्क्स का आशय यह है कि जब कोई समाज "पूर्ण रूप से औद्योगिकीकृत" हो जाएगा तो श्रमिक अंततः इस व्यवस्था पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए विद्रोह कर देंगे और अपने हित में सरकार अथवा समाज का संचालन करेंगे। इसी को मार्क्स ने **"सर्वहारा की तानाशाही"** कहा है।
- **औद्योगिकीकरण (Industrialization):** हमें यहां यह ध्यान रखना है कि मार्क्स औद्योगिकीकरण के विरूद्ध नहीं था बल्कि केवल औद्योगिक समाज पर प्रभुत्व रखने वाले औद्योगिक पूंजीवाद के विरूद्ध था।
- **साध्य हेतु साधन (Means for Ends):** मार्क्स का मानना था कि चूंकि राज्य सभी शक्तियों को नियंत्रित करता है और यह (राज्य) स्वयं बुर्जुआ वर्ग का एक उपकरण है, इसलिए पूंजीवाद नष्ट करने के लिए हिंसक क्रांति एकमात्र उपाय है।
- **साम्यवादी समाज (Communist Society):** मार्क्स ने राज्यविहीन समाज का तर्क दिया। वह सभी विद्यमान संस्थाओं अर्थात; सेना, सरकार और नौकरशाही के विरूद्ध था क्योंकि वह उन्हें ऐसे संस्थानों के रूप में देखता था जिस पर राज्य अपने अस्तित्व के लिए निर्भर था। मार्क्स का मानना था कि राज्य केवल बुर्जुआ वर्ग के हितों की रक्षा करता है। पुनः मार्क्स के अनुसार नौकरशाही तटस्थ नहीं होती है और धीरे-धीरे यह अपना वर्गीय हित विकसित करने लगती है। गोपनीयता में इसका हित होता है और जानकारी छिपाकर यह अपनी शक्ति प्राप्त करती है।

VISION IAS

 ©Vision IAS

पूँजीवाद समाज के स्थान पर मार्क्स ने साम्यवादी समाज की आकांक्षा की। कम्यून का अर्थ है- एक साथ सद्भाव से रहने वाले और सब कुछ साझा करने वाले लोगों का समूह। मार्क्स ने तर्क दिया कि साम्यवादी समाज में "*प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योगदान करेगा और अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राप्त करेगा।*" लेकिन मार्क्स ने इस बात पर विस्तृत चर्चा नहीं की कि साम्यवादी समाज कैसे संगठित होगा। उसका प्रस्ताव काफी हद तक वैचारिक था जिसमें इस साम्यवादी विचार को व्यवहार में लाने के लिए एक व्यापक कार्यान्वयन योजना का अभाव था।

- **विधि के शासन का विरोधी (Anti-Rule of Law):** लोकतंत्र विधि के शासन के सिद्धांत पर फलते-फूलते हैं और इसका समर्थन करते हैं। मार्क्स का मानना था कि कानून सदैव मानव इच्छा और विशेषकर सत्ताधारी सामाजिक वर्ग की मनमानीपूर्ण इच्छा के उत्पाद होते हैं। इसलिए वह विधि के शासन के आदर्श को विस्थापित करना चाहता है। कार्ल मार्क्स ने कहा कि *"कानून, धर्म, कला, नैतिकता और साहित्य जनता के लिए अफ़ीम के समान हैं, जो मात्र सर्वहारा वर्ग को अधीन करने के लिए बुर्जुआ वर्ग द्वारा गढ़ी गई रचनाएँ हैं"।* मार्क्स राज्य और कानून को निचले वर्ग का दमन करने के लिए अभिजात्य वर्ग के एक साधन के रूप में देखता है और कहता है कि ये (राज्य और कानून) मानव विकास की क्षमता को उसके चरमोत्कर्ष पर पहुँचने में बाधा पैदा करते हैं। इस प्रकार मार्क्स विधि का शासन समाप्त करना चाहता है और इसके स्थान पर एक सेक्युलर यूटोपिया स्थापित करना चाहता है जहां धन और शक्ति के मामले में समानता होगी। इस प्रकार जहां उदारवाद दृढ़तापूर्वक कहता है कि कानून तटस्थ और गैर-पक्षपाती होता है, वहीं मार्क्स कानून को लोगों का दमन करने के लिए अभिजात्य वर्गों द्वारा उपयोग किया जाने वाला एक छद्मावरण कहते हुए इसका विरोध करता है।
- **अंतर्राष्ट्रीयतावाद (Internationalism):** मार्क्स ने यह जोर देते हुए कहा कि सभी देशों के सभी श्रमिकों का उद्देश्य पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना है। उसका तर्क था कि प्रत्येक का मुक्त विकास सभी के मुक्त विकास की पूर्व शर्त है। इस प्रकार प्रत्येक श्रमिक को कॉमरेड या भाई के रूप में देखा जाना चाहिए।
- **समाजवाद की अपरिहार्यता (Inevitability of Socialism):** मार्क्स समाजवाद की अपरिहार्यता में विश्वास करता था क्योंकि पूंजीवाद मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता है, अतः सामंतवाद की भांति पूंजीवाद भी समाप्त हो जाएगा।
- **अधिशेष उत्पादन (Surplus Production):** मार्क्स अधिशेष उत्पादन के विरूद्ध था क्योंकि उसके लिए यह उपनिवेशवाद और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का कारण था।

कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो का प्रभाव (1848)

इसने 1848 में यूरोप में हुए विद्रोहों में मध्यमवर्गीय लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भाग लेने वाले श्रमिकों का मनोबल बढ़ाया। इन विद्रोहों का उद्देश्य था-

- कुलीन वर्ग का वर्चस्व समाप्त करना।
- निरंकुश सरकारों का शासन समाप्त करना और लोकतंत्र की स्थापना करना।
- इटली और जर्मनी के प्रकरण में प्रदर्शनकारी अपने संबंधित देशों का एकीकरण चाहते थे।
- विशेष रूप से, इन विद्रोहों के माध्यम से श्रमिक स्वयं पूंजीवाद को समाप्त करना चाहते थे।

मार्क्स के सभी विचारों में अंतर्राष्ट्रीयतावाद का प्रधान महत्व है। इसलिए हमें आगे बढ़ने से पहले इस विचार की समझ प्राप्त कर लेनी चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीयतावाद (Internationalism)

- अंतर्राष्ट्रीयतावाद वस्तुतः एक मार्क्सवादी सामाजिक वर्ग (a Marxist social class concept) अवधारणा है, जो इस विचार पर आधारित है कि पूंजीवाद अब एक वैश्विक प्रणाली है और इसलिए यदि इसे हराना (अर्थात् यदि इसे ख़त्म करना) है तो श्रमिक वर्ग को एक वैश्विक वर्ग के रूप में संगठित होकर कार्य करना चाहिए। राष्ट्रीयता से निरपेक्ष सभी श्रमिकों के बीच एकता,

VISION IAS

समाजवादी आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। 1846 में ब्रिटेन में *द सोसाइटी ऑफ़ फ्रटर्नल डेमोक्रेट्स* (Society of Fraternal Democrats) का गठन किया गया। अन्य यूरोपीय देशों में भी इसी तरह की अन्य सोसाइटियाँ विद्यमान थीं। उनमें से सभी का एक दूसरे से संपर्क था। ये सभी श्रमिकों की वैश्विक एकता पर बल देती थीं। यहां तक कि वे श्रमिकों और किसानों की एकजुटता पर भी बल देती थीं।

- प्रथम अन्तर्राष्ट्र/अंतर्राष्ट्रीय (1st International), द्वितीय अन्तर्राष्ट्र/अंतर्राष्ट्रीय (2nd International) आदि जैसे संगठनों का अध्ययन कर हम अंतर्राष्ट्रीयतावाद की अवधारणा को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।
- **प्रथम अन्तर्राष्ट्र/अंतर्राष्ट्रीय (1864):** अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (International Workingmen's Association: IWA) जिसे कभी-कभी प्रथम अन्तर्राष्ट्र भी कहा जाता है, का गठन करने वाले ट्रेड यूनियनवादियों ने माना कि श्रमिक वर्ग एक अंतर्राष्ट्रीय वर्ग है जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने संघर्षों को जोड़ना है। प्रथम अन्तर्राष्ट्र का उद्देश्य 'वर्ग शासन' का पूर्ण उन्मूलन करना था। इसने श्रमिक वर्ग और समाजवादी नेताओं की अंतर्राष्ट्रीय एकता पर भी बल दिया। प्रथम अन्तर्राष्ट्र ने यूरोप और उत्तरी अमेरिका में श्रमिकों के आंदोलन को प्रभावित किया और साथ ही उन्हें सहायता भी प्रदान की। इसने एक देश के श्रमिकों की दूसरे देशों के श्रमिकों से धन एकत्र करके सहायता करने की व्यवस्था भी की। इसने युद्ध का विरोध किया। प्रशा और फ्रांस के श्रमिकों ने फ्रांस-प्रशा युद्ध (1870) और तत्पश्चात जर्मनी द्वारा फ्रांस से अल्सेस लॉरेन छीने जाने का विरोध किया।
- **पेरिस कम्यून (1871):** फ्रांस-प्रशा युद्ध (1870) के दौरान ही फ्रांस में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था समाप्त हो गई और तृतीय फ्रांसीसी गणराज्य की स्थापना हो गई। नई सरकार में संपत्तिशाली वर्ग का प्रभुत्व था और इसने सम्राट के पदत्याग के बाद भी प्रशा से युद्ध जारी रखा। श्रमिकों ने प्रशा पर फ्रांसीसी आक्रमण के कारण आरम्भ हुए युद्ध का विरोध किया था। लेकिन युद्ध आरंभ हो जाने के बाद वे साम्राज्यवादी प्रशा के समक्ष फ्रांस द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने का विरोध करने लगे जो फ्रांसीसी प्रदेशों पर आधिपत्य जमाना चाहता था। नवगठित फ्रांसीसी सरकार द्वारा बिस्मार्क की युद्धविराम की शर्तें स्वीकार कर लेने पर श्रमिकों ने पेरिस पर कब्ज़ा कर लिया। उल्लेखनीय है कि बिस्मार्क की युद्धविराम की शर्तों में प्रशा को अल्सेस-लॉरेन का क्षेत्र सौंपना और विशाल युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करना सम्मिलित था। इसके उपरांत श्रमिकों ने एक निर्वाचित परिषद का गठन किया जिसे पेरिस कम्यून (1871) के नाम से भी जाना जाता है। **पेरिस कम्यून के अंतर्गत:**
    - सभी सार्वजनिक पदों के अधिकारियों को सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के माध्यम से चुना जाता था,
    - लोगों के पास सभी सरकारी सेवकों को वापस बुलाने का अधिकार था,
    - निर्वाचित परिषद या पेरिस कम्यून में श्रमिकों और पेरिस के निम्न मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व था।

पेरिस कम्यून का उद्देश्य शेयर बाजार की सट्टेबाजी, एकाधिकार और उन सभी विशेषाधिकारों को समाप्त करना था जो श्रमिकों के उत्पीड़न हेतु उत्तरदायी थे। इसके बाद पेरिस के अतिरिक्त शेष फ्रांस पर नियंत्रण रखने वाली फ्रांसीसी सरकार ने पेरिस कम्यून (1871) को कुचलने के लिए प्रशा की सहायता मांगी। फ्रांसीसी सेना ने प्रशा की सेना के साथ पेरिस पर धावा बोल दिया और पेरिस कम्यून का पतन हो गया। इस संघर्ष में 30,000 से भी अधिक श्रमिक मारे गए। प्रथम अन्तर्राष्ट्र ने पेरिस कम्यून का समर्थन किया और कम्यून के पतन के बाद बचकर भागने वाले शरणार्थियों को सहायता प्रदान की। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप की सरकारें प्रथम अन्तर्राष्ट्र के विरूद्ध हो गईं और इसकी गतिविधियों पर अँकुश लगाने का प्रयत्न करने लगीं।

प्रथम अन्तर्राष्ट्र का पतन क्यों हुआ?

- संगठन की पद्धति और उद्देश्य को लेकर प्रथम अन्तर्राष्ट्र में 1872 में विभाजन हो गया। अंततः 1876 में इसका विघटन ही हो गया। लेकिन 1876 तक श्रमिकों के बीच जागरूकता फैलाने में

VISION IAS

प्रथम अन्तर्राष्ट्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अब वे राजनीतिक रूप से अधिक मुखर हो गए थे। 1876 तक कई देशों में मजबूत समाजवादी दल अस्तित्व में आ चुके थे और उनकी सदस्यता भी बढ़ गई थी।

द्वितीय अन्तर्राष्ट्र/अंतर्राष्ट्रीय (1889-1916) - लक्ष्य, कार्य और पतन: निम्नलिखित कारणों से द्वितीय अन्तर्राष्ट्र प्रथम अन्तर्राष्ट्र से अधिक सुदृढ़ था:

- प्रथम अन्तर्राष्ट्र (1864) के समय यूरोप में सुसंगठित समाजवादी दल नहीं थे। लेकिन 1870 और 1880 के दशक के दौरान सभी यूरोपीय देशों में समाजवादी दल अस्तित्व में आ चुके थे। इनमें से कुछ समाजवादी दल बहुत शक्तिशाली थे। उनके लाखों सदस्य थे। कुछ समाजवादी दल अपने देश के संसद में कुछ सीटें भी जीतने में सफल रहे थे। उदाहरण के लिए, जर्मन समाजवादी दल (German Socialist Party) को 1887 के चुनावों में लगभग 7 लाख वोट मिले थे और यह दल यूरोप का सबसे बड़ा समाजवादी दल बन गया था। इसी तरह ब्रिटेन में भी श्रमिकों के कई संगठन मौजूद थे जैसे कि फेबियन सोसाइटी और सोशलिस्ट लीग। फेबियन सोसाइटी की स्थापना 1883 में की गई थी (जिस वर्ष मार्क्स की मृत्यु हुई थी)।
    - द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के अस्तित्व में आने तक विभिन्न ट्रेड यूनियनों की सदस्यता कई गुना बढ़ चुकी थी और उन्होंने अपने देशों में कई हड़तालों का आयोजन भी किया था।
    - समाजवादी आंदोलन यूरोप के बाहर भी फैल रहा था। जापान में समाजवादी आंदोलन 1890 के दशक में आरंभ हुआ। भारत में 1899 में श्रमिकों द्वारा पहली बार संगठित तौर पर हड़ताल (जी. आई. पी. रेलवे सिग्नल पर कार्य करने वाले मजदूरों की हड़ताल) का आयोजन किया गया था।
- इस प्रकार द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के गठन तक समाजवादी आंदोलन यूरोप और यूरोप के बाहर अपने विस्तार के साथ-साथ एक जन आंदोलन बन चुका था। द्वितीय अन्तर्राष्ट्र का उद्देश्य सभी देशों के सभी समाजवादी दलों को एकजुट करना था। यह साम्राज्यवाद के विरूद्ध था और उपनिवेशों के मूल निवासियों और उपनिवेशवादियों के बीच समानता लाना चाहता था। यह युद्ध और प्रथम विश्व युद्ध से पहले हो रहे यूरोप के सैन्यीकरण के विरूद्ध भी था।

इसके द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्यों में निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं:

- मई दिवस (1890): द्वितीय अन्तर्राष्ट्र ने सभी श्रमिकों की ओर से काम के अधिकतम घंटों को प्रति दिन 8 घंटों तक सीमित करने की मांग को आगे बढ़ाया। इस संदर्भ में इसने सभी श्रमिकों की एकता और एकजुटता के प्रतीक के रूप में 1 मई (1890) को अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस घोषित किया।
- द्वितीय अन्तर्राष्ट्र ने श्रमिकों को अपने आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए उत्साहित किया। शीघ्र ही अधिकांश देशों में ट्रेड यूनियन और समाजवादी दलों की सदस्यता बढ़ गई।
- द्वितीय अन्तर्राष्ट्र उपनिवेशों की स्वतंत्रता का पक्षधर था और साथ ही उनके राष्ट्रवादी संघर्षों का समर्थन भी करता था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रख्यात नेता दादाभाई नौरोजी ने 1904 के द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के सम्मेलन को संबोधित किया था। इस संगठन ने 19वीं और प्रारंभिक 20वीं शताब्दी के दौरान अफ्रीका और अन्य उपनिवेशों की बंदरबांट का भी विरोध किया और इस बंदरबांट के परिणामस्वरूप होने वाले सैन्यीकरण की निंदा की। साम्राज्य निर्माण की अभिलाषा में यूरोपीय राष्ट्र अपने सैन्य व्यय में वृद्धि कर रहे थे। यह संगठन यूरोप के इस सैन्यीकरण के विरूद्ध था, जिसका परिणाम आगे चलकर प्रथम विश्वयुद्ध के रूप में सामने आया।
- युद्ध छिड़ जाने पर उसका त्वरित अंत करने के साथ-साथ युद्ध की रोकथाम द्वितीय अन्तर्राष्ट्र का एक प्रमुख उद्देश्य बन गया था। 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के दौरान युद्ध के विरूद्ध प्रतीकात्मक संकेत के रूप में जापान और रूस के समाजवादी समूहों के नेताओं को 1904 में होने वाले द्वितीय अन्तर्राष्ट्र सम्मेलन का संयुक्त अध्यक्ष बनाया गया।

VISION IAS

- इसने पूंजीवाद को युद्ध, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का मूल कारण ठहराया।
- द्वितीय अन्तर्राष्ट्र ने प्रथम विश्व युद्ध को रोकने का भी प्रयास किया। इसने युद्ध में भाग लेने से संबंधित देशों को रोकने के लिए सामान्य हड़ताल का अह्वान किया। इसने इस युद्ध के कारण सामने आए आर्थिक और राजनीतिक संकट को हथियार बनाते हुए श्रमिकों, समाजवादी दलों और उनके नेताओं से पूंजीवाद और उसे समर्थन देने वाली सरकारों को उखाड़ फेंकने का अह्वान किया। इस प्रकार कई सरकारें द्वितीय अन्तर्राष्ट्र का समर्थन करने वाले समाजवादी नेताओं के विरूद्ध हो गईं। युद्ध का विरोध करने के लिए प्रथम विश्व युद्ध की पूर्व संध्या पर फ्रांसीसी समाजवादी नेता जीन जारेस की हत्या कर दी गई।

द्वितीय अन्तर्राष्ट्र की दुर्बलताएं: द्वितीय अन्तर्राष्ट्र की दुर्बलताओं को इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है:

- प्रथम अन्तर्राष्ट्र के विपरीत द्वितीय अन्तर्राष्ट्र वस्तुतः विभिन्न देशों के समाजवादी दलों का एक ढीला-ढाला संघ था। इसके विपरीत प्रथम अन्तर्राष्ट्र सुगठित, अधिक एकजुट और छोटा समूह था तथा इस प्रकार उसका समन्वय और प्रबंधन करना आसान था।
- इसके अतिरिक्त कुछ आंतरिक मतभेद भी थे, जिन्होंने द्वितीय अन्तर्राष्ट्र को दुर्बल बनाया।
    - यह समाजवाद लाने के लिए किये जाने वाले संघर्ष की विधि के प्रश्न पर विभाजित था। कुछ हिंसक क्रांति की विधि को वरीयता देते थे, जबकि अन्य सरकारों पर दबाव डालकर और पैरवी करके धीरे-धीरे किये जाने वाले सुधारों के पक्षधर थे। जो लोग धीरे-धीरे सुधारों का समर्थन करते थे, वे अपनी सरकारों का भी समर्थन करते थे।
    - द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के कुछ वर्ग उपनिवेशवाद के पक्षधर थे, जिसमें उनके देश लगे हुए थे।
    - युद्ध के मुद्दे पर द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के भीतर विभिन्न समूहों के बीच युद्ध के विरोध के मूल सिद्धांत पर तो मतैक्य था लेकिन क्या कार्रवाई की जानी चाहिए, इसके संबंध में मतभेद था। उदाहरण के लिए कुछ समाजवादी दलों को इस बात का डर था कि यदि वे युद्ध का विरोध करते हैं तो उनकी सरकारें उनका दमन कर देंगी। इसके साथ ही कुछ समाजवादी दल अपनी क्रांति आगे बढ़ाने के लिए युद्ध जनित संकट का उपयोग करने के लिए तैयार नहीं थे।
    - जब प्रथम विश्व युद्ध आरंभ हुआ तो अधिकांश समाजवादी दलों ने अपनी सरकारों का समर्थन किया। इससे द्वितीय अन्तर्राष्ट्र का अंत हो गया। इस प्रकार यह तर्क दिया जा सकता है कि राष्ट्रवाद द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के पतन का एक प्रमुख कारण था। अंतर्राष्ट्रीयतावाद और राष्ट्रवाद (Internationalism and Nationalism) के बीच की खाई द्वितीय अन्तर्राष्ट्र के अंतिम वर्षों में और चौड़ी हो गई जिसने इसके पतन का मार्ग सुनिश्चित किया।

13. रूस में समाजवाद: सामाजिक क्रान्तिकारी, बोल्शेविक और मेंशेविक

- **सोशलिस्ट रेवोल्युशनरी पार्टी:** यह एक ऐसा दल था जिसका मतदाता आधार किसान थे। यह दल किसानों को संगठित कर क्रांति लाना चाहता था। यह विशुद्ध मार्क्सवाद का विरोधी था। इसने विशुद्ध प्रोलिटरियेट (श्रमिक वर्ग) क्रांति का विरोध किया क्योंकि इस प्रकार की क्रांति से किसानों के हितों की उपेक्षा होती और इसका सम्पूर्ण ध्यान तीव्र औद्योगीकरण पर ही केन्द्रित होता। दूसरी ओर यह दल किसानों की सहकारी समितियों (अर्थात खेतों के सामूहिकीकरण) के आधार पर एक कृषि अर्थव्यवस्था चाहता था। वे औद्योगिकीकरण को आगे बढ़ाने के विरुद्ध थे। क्योंकि रूसी जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषक था। 1917 की क्रांति के पश्चात हुए चुनावों में सोशलिस्ट रेवोल्युशनरी पार्टी ने बोल्शेविकों से दोगुने से अधिक सीटें प्राप्त की। परन्तु (बोल्शेविकों के) रेड गार्ड्स ने संविधान सभा को भंग कर दिया, जिसके कारण गृह युद्ध छिड़ गया (1918-20)।

VISION IAS

- **बोल्शेविक बनाम मेंशेविक:** रूस में सोशल डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी के विघटन से बोल्शेविक और मेंशेविक का उदय हुआ। यह दोनों ही गुट सोशल डेमोक्रेटिक लेबर पार्टी के झंडे तले ही विकसित हुए थे, जिसका दृष्टिकोण मार्क्सवादी था। पार्टी द्वारा चलाए जा रहे एक समाचार पत्र के सम्पादकीय बोर्ड के चुनाव के समय बोल्शेविक और मेंशेविक के बीच दरार पड़ गई। रूसी भाषा में बोल्शेविक का अर्थ है "बहुसंख्यक" और मेंशेविक का अर्थ है "अल्पसंख्यक" और इस प्रकार से बहुसंख्यक समूह बोल्शेविक कहलाया और अल्पसंख्यक समूह को मेंशेविक कहा जाने लगा। बोल्शेविकों का नेता लेनिन था।

बोल्शेविक	**मेंशेविक**
बोल्शेविकों का तर्क था कि पार्टी को केवल औद्योगिक श्रमिकों के लिए ही कार्य नहीं करना चाहिए अपितु किसानों को भी क्रान्तिकारी गतिविधियों में सम्मिलित करना चाहिए।	मेंशेविकों को क्रान्तिकारी गतिविधियों में किसानों के सहयोग का बहुत कम विश्वास था क्योंकि रूसी समाज में किसान वर्ग सर्वाधिक रूढ़िवादी था। इसलिए मेंशेविक श्रमिक विद्रोह के अर्थों में मार्क्सवाद के कट्टर अनुयायी थे।
बोल्शेविकों का मानना था कि पार्टी को पेशेवर क्रांतिकारियों का एक छोटा अनुशासित समूह होना चाहिए, जो पूर्णकालिक रूप में क्रांति लाने का कार्य करेंगे। सदस्यता के लिए प्रमुख मापदंड यही होना चाहिए, भले ही आवेदक श्रमिक हो या किसान।	मेंशेविक एक ऐसी बड़ी पार्टी चाहते थे जिसकी सदस्यता सभी के लिए खुली होती। पुनः उनका मानना था कि जो इसमें सम्मिलित होना चाहते हैं उनके लिए संगठन के प्रति प्रतिबद्धता और संगठन की गतिविधियों के लिए दिए जाने वाले समय को सदस्यता का प्रमुख मानदंड नहीं बनाना चाहिए।
वे क्रांति का अविलम्ब आरम्भ चाहते थे।	उनका विश्वास था कि क्रांति तब तक नहीं हो सकती, जब तक रूस का सम्पूर्ण औद्योगिकीकरण न हो जाए और श्रमिकों की संख्या किसानों से अधिक न हो जाए। ऐसा इसलिए था क्योंकि उन्हें किसानों से समर्थन की आशा नहीं थी।

रूसी क्रांति :

- त्सार या ज़ार (Tsar or Czar) का अर्थ है रोमानोव राजवंश का सम्राट (स्लाव वंश)।
- **20वीं सदी के प्रथम दो दशकों की स्थिति:** रूस पर ज़ार निकोलस द्वितीय का शासन था जो एक निरंकुश शासक था। यह एक प्रकार से एक व्यक्ति का शासन था, जहां ज़ार को संसद के प्रति बिना किसी उत्तरदायित्व के उच्च विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त थीं (दूसरे शब्दों में कहें तो रूस में संसद ही नहीं थी)।
- **जनसामान्य की शिकायतें:** ज़ार निकोलस द्वितीय के शासनकाल में विभिन्न कारणों से जनसामान्य अप्रसन्न था और सार्वजनिक असंतोष व्याप्त था। कारखानों में काम की स्थितियां बहुत ही खराब थीं इसलिए श्रमिकों का जीवन कष्टमय था। इसी प्रकार से किसानों की भी स्थिति अत्यधिक खराब थी। यद्यपि सर्फडम (कृषि दासता) की प्रथा 1861 में एलेक्जेंडर द्वारा समाप्त कर दी गई थी परन्तु दासता से मुक्त होने के पश्चात सर्फ (कृषि दास) भारी ऋण से दबे हुए थे और नितांत निर्धनता में जी रहे थे। यह इसलिए था क्योंकि उन्हें प्रतिदान (redemptions) का भुगतान करना पड़ता था। यह एक प्रकार का वार्षिक भुगतान था, जिसे किसानों को सर्फ़डम की समाप्ति (1861) के उपरांत प्राप्त हुई स्वतंत्रता और भूमि के एवज में सरकार को देना पड़ता था। प्रेस, वाक् एवं अभिव्यक्ति की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। आर्थिक विकास के मामले में रूस पिछड़ रहा था। इसलिए लोग एक प्रतिनिधित्व स्वरूप वाली सरकार, अर्थात प्रजातंत्र के रूप में परिवर्तन चाहते थे।

VISION IAS

- **1905 की क्रांति:** 1905 में सार्वजनिक अशांति अपने चरम पर पहुंच गई थी। 1904-05 का रूस-जापान युद्ध इसका प्रमुख कारण था क्योंकि इससे रूसी अर्थव्यवस्था का और अधिक पतन हुआ। युद्ध में रूस की पराजय ने ज़ार शासन के प्रति सार्वजनिक विश्वास को और भी कम कर दिया। इसका प्रत्युत्तर जनता ने एक सामान्य हड़ताल के रूप में दिया और ज़ार के शासन को उखाड़ कर प्रजातंत्र की स्थापना का प्रयास किया। 1905 की यह क्रांति निम्नलिखित कारणों से असफल रही:
    - सेना ज़ार के प्रति निष्ठावान रही।
    - ज़ार ने अक्टूबर घोषणापत्र (October Manifesto-1905) के रूप में सुविधाएँ प्रदान कीं।
    - विरोधियों के बीच एकता का अभाव था।
    - क्रांतिकारियों के बीच केन्द्रीय नेतृत्व का अभाव था, क्योंकि क्रांति बिना किसी योजना और नेता के अनायास ही प्रस्फुटित हो गई थी।
- **अक्टूबर घोषणापत्र (1905):** 1905 की क्रांति के समय ज़ार द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं को अक्टूबर घोषणापत्र (1905) के रूप में जाना जाता है। इसमें सम्राट द्वारा भविष्य में प्रदान की जाने वाली घोषणा शामिल थी।
    - ज़ार ने एक निर्वाचित संसद (जिसे रूसी भाषा में ड्यूमा कहा जाता है) की स्थापना का वचन दिया।
    - उसने श्रमिकों के वेतन में वृद्धि और कारखानों में काम की स्थितियों में सुधार का वचन दिया।
    - उसने भूतपूर्व सर्फ द्वारा किए जाने वाले करों के भुगतान को रद्द करने का वचन दिया।
    - उसने प्रेस को और अधिक स्वतंत्रता देने का वचन दिया।
    - उसने एक वास्तविक लोकतंत्र का वचन दिया, जहां देश के शासन को चलाने में ड्यूमा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी थी।
- **अक्टूबर घोषणापत्र का कार्यान्वयन:** यद्यपि ज़ार ने ड्यूमा की स्थापना कर दी थी और प्रतिदान भुगतान को रद्द कर दिया था परन्तु उसने अक्टूबर घोषणापत्र में किए गए कई अन्य वचनों को पूरा नहीं किया। सुधार के संदर्भ में ड्यूमा के विचारों और मांगों की उपेक्षा की गयी। पहली दो निर्वाचित ड्यूमाओं को ज़ार की सेना ने छिन्न-भिन्न कर दिया था। तीसरी और चौथी ड्यूमा ने अपना पांच वर्ष का कार्यकाल केवल इसलिए पूरा किया क्योंकि इसका गठन ज़ार-समर्थक सदस्यों द्वारा किया गया था। यह इसलिए हुआ क्योंकि द्वितीय ड्यूमा को भंग करने के पश्चात उसके मतदान व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया गया था। नई मतदान व्यवस्था में किसानों और शहरी श्रमिकों को मतदान के अधिकार से वंचित कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप अभिजात्य वर्ग के वे ही रुढ़िवादी सदस्य चुने गये, जो ज़ार समर्थक थे।

1917 की क्रांतियाँ

वर्ष 1917 में रूस में दो क्रांतियाँ हुईं – फरवरी क्रांति और अक्टूबर क्रांति। फरवरी क्रांति के उपरांत ज़ार के शासन का अंत हो गया और एक अंतरिम सरकार की स्थापना हुई। अक्टूबर क्रांति के परिणामस्वरूप बोल्शेविकों ने तख्तापलट की एक कार्यवाही में अंतरिम सरकार को अपदस्थ कर रूस में समाजवादी राज्य की स्थापना की।

फरवरी क्रांति (1917): अक्टूबर घोषणापत्र (1905) का कार्यान्वयन न किया जाना इस क्रांति का एक प्रमुख कारण था। इसके अतिरिक्त यहाँ दो प्रश्नों को सम्बोधित किया जाना महत्त्वपूर्ण है, पहला – ज़ार के विरुद्ध क्रांति किसानों और श्रमिकों की क्रांति क्यों थी? और दूसरा – 1905 की क्रांति के तुरंत पश्चात ज़ार ने अक्टूबर घोषणापत्र (1905) में किये गये वादों को पूरा क्यों नही किया?

ज़ार के विरुद्ध क्रांति किसानों और श्रमिकों की क्रांति क्यों थी?

प्रथम ड्यूमा का गठन 1906 में हुआ था। प्रथम ड्यूमा के लिए हुए चुनावों में सभी वर्गों को मतदान का अधिकार था। परन्तु इन चुनावों में धांधली हुई थी जिसके कारण जमींदारों और मध्यवर्ग के लोगों को

VISION IAS

बहुमत प्राप्त हुआ। प्रथम ड्यूमा ने जनता की मांगों को आगे बढाने का प्रयास किया। ज़ार से की गई इसकी मांगों में ये सम्मिलित थे:

- भूमि का पुनर्वितरण
- एक वास्तविक लोकतंत्र
- श्रमिकों को हड़ताल का अधिकार
- मृत्युदंड का उन्मूलन
- ड्यूमा को ज़ार के मंत्रियों के अनुमोदन का अधिकार।

जल्द ही प्रथम ड्यूमा को भंग कर दिया गया। द्वितीय ड्यूमा का भी यही हाल हुआ।

तृतीय (1907-12) और चतुर्थ ड्यूमा (1912-17) के पास कोई भी शक्ति नहीं थी और ये रुढ़िवादी थीं। मतदान का अधिकार न होने के कारण श्रमिकों और किसानों के हितों की उपेक्षा हुई। यही कारण है कि आन्दोलन मध्यवर्गीय लोगों के नेतृत्व में नहीं हुआ था अपितु किसानों और श्रमिकों द्वारा किया गया था। इसके अतिरिक्त गुप्तचर, पुलिस और मंत्रियों की नियुक्तियां ज़ार द्वारा ही नियंत्रित होती थीं और वह शक्तिशाली बना रहा।

अक्टूबर घोषणापत्र के कार्यान्वयन न होने के तुरंत पश्चात कोई आन्दोलन क्यों नहीं हुआ?

इसकी व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत की जा सकती है:

- 1906 के पश्चात हुए आर्थिक सुधारों ने किसानों और श्रमिकों को शांत कर दिया था।
- जो नेता ज़ार का विरोध करते थे और आन्दोलन करना चाहते थे, उनके पास धन की कमी थी। उनमें से कई या तो जेल में थे या निर्वासन का शिकार थे। उदाहरण के लिए, लेनिन निर्वासन में गया और फिर 1917 में जर्मन विदेश मंत्री ज़िम्मरमैन की सहायता से वापस आया। (जर्मनी यह चाहता था कि रूस प्रथम विश्व युद्ध से अलग हो जाए अथवा आंतरिक अशांति से यह कमजोर हो जाए)।
- ज़ार के प्रधानमन्त्री स्टोलीपिन ने कुछ सुधार प्रस्तुत किये:
    - किसानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने प्रतिदान का भुगतान समाप्त कर दिया।
    - भूमि सुधार आरंभ किये गये: किसानों को अपनी भूमि खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया गया। उदाहरण के लिए, किसानों को साइबेरिया में स्थानांतरित होने के लिए प्रोत्साहित किया गया जहाँ वे बीहड़ भूमि को सस्ते मूल्यों पर खरीद सकते थे। परन्तु इससे अमीर किसानों या कूलक जैसे नए वर्ग का उदय हुआ, जो सरकार के समर्थक थे।
    - उसने श्रमिकों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। निरीक्षकों को यह सुनिश्चित करने के लिए नियुक्त किया गया कि कारखानों में काम करने की स्थितियों में सुधार हो। 1906 के पश्चात अत्यधिक औद्योगिक विकास के कारण पूंजीपति श्रमिकों के वेतन को बढ़ाने में सक्षम हो गये। 1912 में बीमारी और दुर्घटना बीमा योजना का आरम्भ किया गया।
- विरोधी नेताओं के बीच मतभेद: बोल्शेविकों और मेंशेविकों के बीच विभिन्न मुद्दों पर मतभेद थे। मेंशेविक तत्काल क्रांति नहीं चाहते थे। उनका मानना था कि जब तक रूसी अर्थव्यवस्था पूरी तरह से औद्योगिकीकृत न हो जाये और जनसंख्या में श्रमिक बहुमत न हो जाए, तब तक क्रांति नहीं होनी चाहिए। दूसरी ओर लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक; श्रमिकों और किसानों के समर्थन से तत्काल क्रांति चाहते थे।

फरवरी क्रांति के कारण (1917): क्रांति के कारणों को निम्नलिखित प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है:

- **दीर्घकालीन शिकायतें:**
    - अक्टूबर घोषणापत्र (1905) का कार्यान्वयन सही से नहीं किया गया। पुनः वास्तविक प्रजातंत्र के वादे को भी पूरा नहीं किया गया था।
    - 1911 तक भूमि सुधार विफल हो गये थे। उल्लेखनीय है कि किसानों को भू-स्वामी बना कर और गरीबों को सबसे अधिक आहत करने वाली खाद्य मुद्रास्फीति में कमी के द्वारा किसानों के जीवन में

VISION IAS

सुधार लाने के उद्देश्य से भूमि सुधार किये गये थे। हालांकि ये भूमि सुधार विफल हो गये क्योंकि किसानों की जनसंख्या में कृषि क्षेत्र के विकास की तुलना में अधिक वृद्धि हुई। यह अक्षम कृषि पद्धतियों के कारण खाद्य मुद्रास्फीति को रोकने में विफल रही। प्रधानमन्त्री स्टोलीपिन के द्वारा प्रारम्भ किए गए सुधारों के परिणामस्वरूप जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई।

- ○ श्रमिकों के लिए चलाया गया कल्याण कार्यक्रम उनकी सभी शिकायतों को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं था। प्रथम विश्व युद्ध के आरंभ से पहले के तीन वर्षों (1912-14) के दौरान औद्योगिक अशांति और हड़तालें हुईं। यह अशांति 1912 में सोने की एक खदान में खनिकों पर गोलीबारी की घटना से प्रारम्भ हुई।
- ○ गुप्त पुलिस के उपयोग द्वारा सरकारी दमन का प्रयास किया गया। इसने समाज के तीन महत्त्वपूर्ण वर्गों अर्थात – किसान, श्रमिक और बुद्धिजीवी वर्ग (शिक्षित वर्ग) को आहत किया। ये क्रान्तिकारी छात्र, अध्यापक आदि थे जिन्हें या तो बंदी बना लिया गया था या गुप्त पुलिस ने मार दिया था। नृशंसता के एक और उदाहरण में यहूदियों का सामूहिक निर्वासन शामिल था। 1917 तक समाज के कई वर्ग ज़ार विरोधी हो गये थे।
- ○ 1912 के पश्चात विभिन्न क्रान्तिकारी दलों ने आपस में हाथ मिला लिए जिसके परिणामस्वरूप विरोधी दलों के मध्य रहने वाले विवाद समाप्त हो गए। उदाहरण के लिए बोल्शेविक, मेंशेविक और सोशलिस्ट रेवोल्युशनरी पार्टी – तीन प्रमुख दलों ने अपने मतभेद कम से कम अस्थाई रूप से समाप्त कर दिए और ज़ार के विरोध में एकजुट होने का निर्णय कर लिया।
- ○ शाही परिवार में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण उसकी विश्वसनीयता समाप्त हो गयी थी। उदाहरण के लिए, इस बात को लेकर भी वाद-विवाद हुआ कि क्या सुधारवादी प्रधानमन्त्री स्टोलीपिन की हत्या के पीछे ज़ार का हाथ था। कथित रूप से यह आरोप भी लगाया गया था कि जो पादरी ज़ार के बीमार बालक की सहायता किया करता था, ज़ार के सभी निर्णयों में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी थी।

- **तात्कालिक कारण:**
- ○ प्रथम विश्व युद्ध में भागीदारी ने ज़ार को सत्ता से उखाड़ फेंकने की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया, क्योंकि युद्ध में हुए भारी व्यय ने जनता की आर्थिक स्थिति को और बिगाड़ दिया था। उदाहरण के लिए युद्ध के वर्षों में खाद्य मुद्रास्फीति में तीव्रता से वृद्धि हुई। सेंट पीटर्सबर्ग (तब पेत्रोग्राद) में ब्रेड के लिए दंगे प्रारम्भ हो गए थे। प्रथम विश्व युद्ध में विफलता और युद्ध संचालन में ज़ार के अक्षम नेतृत्व (उदाहरण के लिए युद्धरत सैनिक इकाईयों के लिए शस्त्र आपूर्ति का धीमी गति से परिवहन) के कारण सेना और पुलिस में भी विद्रोह हो गया। इस प्रकार 1905 की क्रांति के विपरीत, वर्ष 1917 की फरवरी क्रांति के समय सेना और पुलिस ज़ार के प्रति निष्ठावान नहीं थी।
- ○ फरवरी की क्रांति एक सहज विस्फोट थी। क्रांति को दबाने के लिए जार निकोलस द्वितीय ने अपने सैनिकों को भेजा, जिन्होंने शीघ्र ही गोली चलाने से मना कर दिया। इस प्रकार पेत्रोग्राद की पूरी सेना ने विद्रोह कर दिया। जल्द ही भीड़ ने सार्वजनिक भवनों पर अधिकार कर लिया। चतुर्थ ड्यूमा ने ज़ार को एक संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना का परामर्श दिया परन्तु उसने मना कर दिया और पहले से अधिक सेना को भेजा, जो भीड़ को हटाने में विफल रही। सेना के वरिष्ठ जनरलों ने राजतंत्र को बचाने के लिए निकोलस द्वितीय को सिंहासन छोड़ने के लिए मनाने का प्रयास किया। निकोलस द्वितीय सहमत हो गया परन्तु उसके अगले उत्तराधिकारी (ज़ार का भाई) ने सिंहासन को अस्वीकार कर दिया और इस प्रकार रोमानोव राजवंश का शासन एक घटिया राज्यारोहण योजना के कारण समाप्त हो गया।
  - ○ फरवरी क्रांति के सहज विस्फोट के समय विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग (ड्यूमा के सदस्य, उद्योगपति, अभिजात्य वर्ग और सेना के वरिष्ठ जनरल) केवल अपनी जान बचाने के लिए ज़ार के विरुद्ध हो गये थे।

VISION IAS

अक्टूबर क्रांति (1917)

अस्थाई सरकार की असफलता ने अक्टूबर क्रांति को जन्म दिया, जिसमें बोल्शेविकों ने एक तख्तापलट कार्यवाही में करेंनस्की सरकार को उखाड़ फेंका। करेंनस्की के अधीन बनाई गयी अंतरिम सरकार की असफलता के निम्नलिखित कारण थे:

- इसने प्रथम विश्व युद्ध से अपनी सेनाओं को वापस नहीं बुलाया। विभिन्न लड़ाईयों में हुई क्षति के कारण सेना के मनोबल में भी बहुत गिरावट आई थी।
- इसने भूमि का पुनर्वितरण और नया संविधान तैयार करने के लिए एक संविधान सभा हेतु तुरंत चुनाव कराने के वादे को पूरा नहीं किया था। इस स्थिति का लाभ उठाने और अपना जनाधार बढ़ाने के लिए बोल्शेविकों ने कुलकों से जबरन भूमि खाली कराने और किसानों को भूमि का पुनर्वितरण करने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। नया संविधान तैयार करने के लिए एक संविधान सभा हेतु तुरंत चुनाव कराने के संदर्भ में सरकार ने यह तर्क दिया कि चूंकि राष्ट्र युद्ध में व्यस्त है इसलिए चुनाव आयोजित नहीं किये जा सकते। इससे असंतोष में और अधिक वृद्धि हुयी।
- सोवियत (Soviets) के उदय ने सरकार के अधिकारों को कम कर दिया था। सभी नगरों में सोवियत छाये हुए थे। नगर का प्रशासन चलाने के लिए सैनिकों और श्रमिकों की एक निर्वाचित समिति को सोवियत नाम दिया गया था। पेत्रोग्राद सोवियत फरवरी 1917 के पश्चात पेत्रोग्राद का शासन चला रही थी। इसने सैनिकों को सरकार के बजाए सोवियत के आदेशों का पालन करने के लिए कहा। इस प्रकार अंतरिम सरकार ने सेना का समर्थन खोना प्रारम्भ कर दिया।
- अप्रैल 1917 में जर्मनी ने लेनिन की स्विटजरलैंड निर्वासन से लौटने में सहायता की। लेनिन ने **अप्रैल थीसिस** में मांग की कि सभी शक्तियाँ सोवियत में निहित होनी चाहिए। अंतरिम सरकार को कोई समर्थन नहीं मिलना चाहिए और रूस को तुरंत प्रभाव से प्रथम विश्व युद्ध से अलग हो जाना चाहिए।
- कोर्निलोव मामला (Kornilov affair): कोर्निलोव सेना का एक जनरल था। उसने सोवियत के विरुद्ध अपने सैनिक भेजने का निर्णय किया। तत्पश्चात कोर्निलोव के ही बहुत से सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। इसके पश्चात जनमत प्रथम विश्व युद्ध में भागीदारी के विरुद्ध और सोवियत के पक्ष में हो गया।
- लेनिन ने जन सामान्य को अपने पक्ष में लाने के लिए बहुत ही आकर्षक सुधारों का प्रस्ताव दिया। उदाहरण के लिए भूमि का पुनर्वितरण, अत्यल्प खाद्य मुद्रास्फीति और यदि जनता इस क्रांति का समर्थन करती है तो प्रथम विश्व युद्ध से वापसी।

1917-24: बोल्शेविकों द्वारा शक्तियों का एकीकरण

- अंतरिम सरकार के हटने और संविधान सभा के गठन के पश्चात चुनावों का आयोजन किया गया था। यद्यपि लेनिन को पता था कि बोल्शेविक चुनावों में बहुमत प्राप्त करने में सक्षम नहीं हैं परन्तु उसने चुनावों को अक्टूबर क्रांति (1917) का एक महत्वपूर्ण एजेंडा बना लिया था। लेनिन ने चुनावों से पहले किसानों को प्रसन्न करने के लिए भूमि का पुनर्वितरण प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु बोल्शेविक केवल दूसरा स्थान ही प्राप्त कर सके। सोशल रिवोल्युशनरी पार्टी बोल्शेविकों द्वारा जीती गयी सीटों से दुगुनी सीटें पाने में सफल रही। इस पार्टी का प्रमुख मतदाता आधार किसान थे और इसने कृषि अर्थव्यवस्था को लक्षित करके एक आर्थिक कार्यक्रम का वायदा किया था। संविधान सभा की बहसों में जब बोल्शेविकों को निशाना बनाया गया और राज्य के प्रशासन के उनके दृष्टिकोण की आलोचना की गयी तो लेनिन ने रेड गार्ड्स को संविधान सभा को भंग करने का आदेश दे दिया। उसका तर्क था कि "हमें ऐसी संसद की आवश्यकता नहीं है जो हमें बताये कि क्या करना है। हमें पता है हमें क्या करना है।" **इसके कारण गृह युद्ध (1918-20) प्रारम्भ हो गया,** जो बोल्शेविकों और व्हाइट्स (Whites) (मेंशेविक, सोशल रेवोल्युशनरी पार्टी और कैडेट्स जो वास्तविक लोकतंत्र चाहते थे) के बीच लड़ा गया।
- ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस और जापान ने अपने सैनिकों को व्हाइट्स की सहायता के लिए भेजा, क्योंकि उन्हें डर था कि यदि बोल्शेविक विजयी हुए तो साम्यवाद रूस के बाहर भी

VISION IAS

फ़ैल जाएगा। इसके अतिरिक्त वे यह भी चाहते थे कि रूस प्रथम विश्व युद्ध में पुन: प्रवेश करे {रूस ने अक्टूबर क्रांति के पश्चात बोल्शेविकों द्वारा हस्ताक्षरित ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि (Treaty of Brest Litovsk- 1917) के माध्यम से स्वयं को प्रथम विश्व युद्ध से अलग कर लिया था)।

- अक्टूबर क्रांति के पश्चात कुछ सैनिक और श्रमिक बोल्शेविकों द्वारा सोवियत के साथ क्रूर व्यवहार किए जाने के कारण बोल्शेविकों के विरुद्ध थे। बोल्शेविकों ने रेड गार्ड्स की सहायता से सोशल रिवोल्युशनरियों और मेंशेविकों को सोवियत से बाहर का रास्ता दिखा दिया और एक कॉमिसार (Commissar- केंद्र द्वारा नियुक्त) को सोवियत का प्रमुख बना दिया। इस प्रकार सभी सोवियत बोल्शेविकों के सम्पूर्ण नियन्त्रण में आ गए। अगस्त 1918 में लेनिन की हत्या का प्रयास किया गया। इसके पश्चात बोल्शेविक के रेड गार्ड्स ने जो कुछ किया उसे रेड टेरर (लाल आंतकवाद) के नाम से जाना गया, जिसमें कई व्हाइट्स की हत्या की गयी थी। गृह युद्ध के समय यूक्रेन और जार्जिया को फिर से रूस के साथ जुड़ने के लिए विवश किया गया। रूस ने इन क्षेत्रों को जर्मनी के साथ हुए ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि (1917) में गंवा दिया था। गृह युद्ध के दौरान ही अर्मेनिया और अजरबैजान में चल रहे स्वाधीनता संघर्ष को कुचल दिया गया था। इन दोनों ने प्रचलित संकट से प्राप्त अवसरों का लाभ उठाते हुए स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

बोल्शेविकों की विजय के कारण

- व्हाइट्स भलीभांति संगठित नहीं थे और उनका कोई एकल केन्द्रीय नेतृत्व भी नहीं था।
- रेड आर्मी के पास अधिक सैनिक थे और इनके पास ट्रॉट्स्की के रूप में एक सक्षम नेता भी था।
- गृह युद्ध के दौरान व्हाइट्स द्वारा की गयी क्रूरताओं के कारण उन्होंने किसानों का समर्थन भी खो दिया था।
- लेनिन बोल्शेविकों को विदेशी सेना से लड़ रहे राष्ट्रवादियों के रूप में प्रस्तुत करने में सफल रहा।
- युद्ध साम्यवाद (war communism) ने बोल्शेविकों को युद्ध के दौरान संसाधनों की बचत में सहायता की। युद्ध साम्यवाद के अंतर्गत सभी कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया गया और सभी प्रकार के निजी व्यापार को प्रतिबंधित कर दिया गया ताकि सभी संसाधन सीधे पार्टी को प्राप्त हों। इसके अतिरिक्त किसानों से सभी खाद्यान्नों को सेनाओं और उन श्रमिकों को खिलाने के लिए जब्त किया गया जो बोल्शेविकों के समर्थन का आधार थे।

इस प्रकार रूस में साम्यवादी क्रांति सफल रही और 1920 तक अपनी स्थिरता तक पहुंच गई थी।

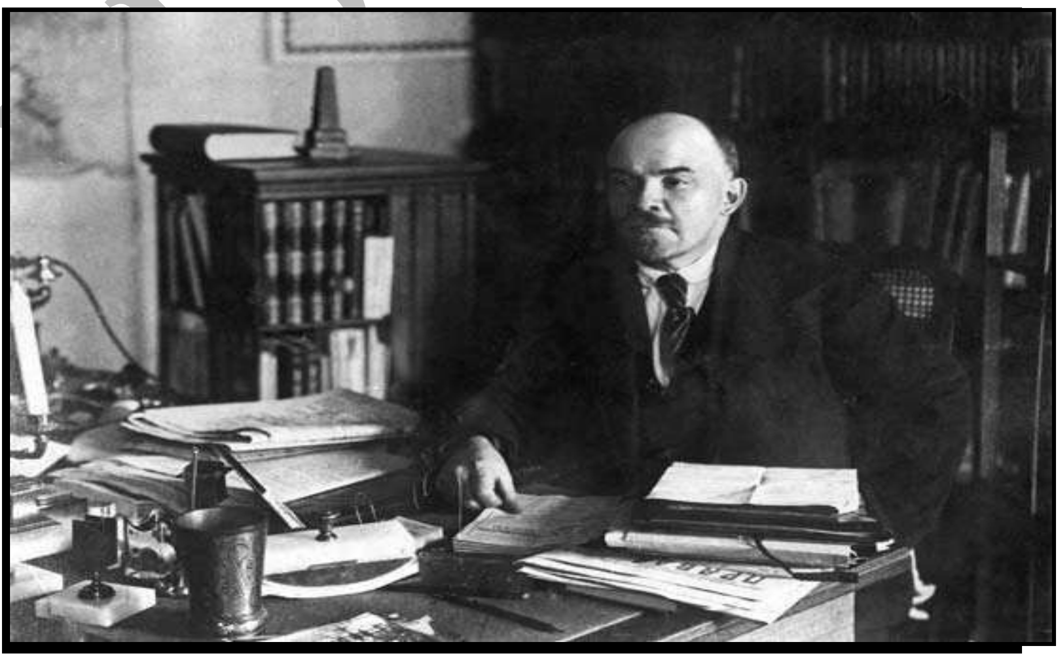

चित्र: लेनिन

14. लेनिन और मार्क्सवाद

लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने 1917 में रूस की कम्युनिस्ट क्रांति का नेतृत्व किया था। इस क्रांति का रूसी व्यवस्था पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। लेनिन द्वारा अनुसरण की गई नीतियों और मार्क्सवादी विचारधारा के अंतर्गत प्रतिपादित किये गए सिद्धांतों की तुलना हम निम्नलिखित बिन्दुओं से कर सकते हैं:

- **कम्युनिस्ट क्रांति कब प्रारम्भ किया जाए, इससे संबंधित प्रश्न:** मार्क्स ने तर्क दिया कि किसी देश के श्रमिक (कामगार) कम्युनिस्ट क्रांति तभी आरम्भ करेंगे जब उक्त देश पूर्ण रूप से औद्योगीकृत हो जाएगा। ऐसा इसलिए था क्योंकि मार्क्स ने क्रांति के लिए श्रमिक वर्ग को सबसे अधिक क्रान्तिकारी वर्ग माना था और दूसरा जब समाज का पूर्ण औद्योगिकीकरण हो जाएगा तो वहाँ की जनसंख्या में श्रमिकों का ही बहुमत होगा। इस प्रकार कट्टर मार्क्सवादियों (मेंशेविकों) ने क्रांति में तब तक विलम्ब करने को कहा जब तक समाज का सम्पूर्ण औद्योगिकीकरण न हो जाए। दूसरी ओर लेनिन को 1917 में बहुत जल्दी थी। वह इस कठोर धारणा के विरुद्ध था कि साम्यवादी क्रांति होने के लिए सम्पूर्ण औद्योगीकरण एक पूर्व-आवश्यकता है। कम्युनिस्ट क्रांति के क्षेत्र में श्रमिकों के बहुमत की कमी को पूरा करने के लिए किसानों को सम्मिलित करके वह तुरंत क्रांति करना चाहता था। इस प्रकार लेनिन ने 1917 की क्रांति के समय भूमि के पुनर्वितरण के लिए भूमि सुधारों पर बल दिया। उसने अपनी नई आर्थिक नीति (1921) में भूमि और कृषि उत्पाद के निजी स्वामित्व का समर्थन किया।
- इस प्रकार मार्क्स ने प्रोलिटेरियट (श्रमिक वर्ग) क्रांति के लिए तर्क दिया, जबकि लेनिन ने किसानों और श्रमिक वर्ग दोनों के सहयोग से क्रांति की बात की।
- **व्यवहारिकता (Pragmatism):** मार्क्स राज्य और उसकी संस्थाओं के विरुद्ध था। उदाहरण के लिए, मार्क्स सेना, न्यायपालिका और नौकरशाही का विरोधी था, क्योंकि ये संस्थाएँ पूंजीवाद का सरंक्षण करती थीं। दूसरी ओर लेनिन ने राज्य की मशीनरी का उपयोग साम्यवाद के सरंक्षण के लिए किया।
- **युद्ध साम्यवाद (War Communism):** लेनिन द्वारा इसका आरम्भ गृहयुद्ध (1918-20) के दौरान संसाधनों को जुटाने और उनके संरक्षण के लिए किया गया था। सभी कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया गया और सभी प्रकार के निजी व्यापार को प्रतिबंधित किया गया, जिससे संसाधन सीधे पार्टी को प्राप्त हो सकें। इसके अतिरिक्त किसानों से सम्पूर्ण खाद्यान्न को सेना और उन श्रमिकों को खिलाने के लिए जब्त किया गया जो बोल्शेविकों के समर्थन का आधार थे। युद्ध साम्यवाद के कारण गृह युद्ध के पश्चात खाद्यान्नों की कमी हो गयी। पुनः किसानों को उत्पादन के लिए कोई प्रोत्साहन भी नहीं दिया गया। उनके उत्पाद को बिना किसी मुआवजे के उनसे ले लिया जाता था। इस प्रकार से किसानों ने केवल अपने उपभोग के लिए उत्पादन करना आरम्भ कर दिया।
- लेनिन और मार्क्स दोनों का ही यह तर्क था कि युद्ध का वास्तविक कारण पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद था।

लेनिन की नई आर्थिक नीति, उसके द्वारा लाया गया राजनीतिक परिवर्तन और उसके विचारों और नीतियों की समालोचनात्मक व्याख्या:

लेनिन की नई आर्थिक नीति (New Economic Policy or NEP: 1921)

- प्रथम विश्व युद्ध से खुद को अलग करने के लिए रूस ने जर्मनी के साथ जो ब्रेस्ट लिटोवस्क (1917) की संधि की थी, उसके परिणामस्वरूप रूस को अत्यधिक आर्थिक क्षति पहुंची थी। इस संधि के कारण रूस ने अपनी एक तिहाई कृषि योग्य भूमि, एक तिहाई जनसंख्या, एक तिहाई कोयला खदानें और आधे भारी उद्योग गंवा दिए थे। यह इसलिए हुआ कि संधि के उपरांत यह यूक्रेन, जार्जिया, लाटीविया, लिथुआनिया, फिनलैंड और पोलैंड के क्षेत्रों से वंचित हो गया था। (गृहयुद्ध के दौरान कमजोर जर्मनी से यह जार्जिया और यूक्रेन वापस लेने में सफल रहा और आगे चलकर यह द्वितीय विश्व युद्ध में बाल्टिक देशों और पोलैंड के कुछ भाग प्राप्त करने में भी सफल रहा)।

VISION IAS

- गृहयुद्ध (1918-20) की समाप्ति के पश्चात लेनिन अपनी दो इच्छाएं पूरी करना चाहता था। पहली, आर्थिक सुधार की और दूसरी, कृषकों और श्रमिकों के बीच सामंजस्य जोकि युद्ध साम्यवाद से आहत हुए थे। कम्युनिस्टों के प्रमुख समर्थक श्रमिक थे, वहीं गृह-युद्ध में कृषक बोल्शेविकों के विरुद्ध लड़े थे, क्योंकि लेनिन ने 1917 के लोकतान्त्रिक चुनावों के पश्चात संविधान बनाने के लिए गठित संविधान सभा को भंग कर दिया था। इन चुनावों में सोशल रिवोल्युशनरी पार्टी (कृषकों के समर्थन पर आधारित) ने अधिकतम सीटों पर विजय प्राप्त की थी। साथ ही सदन की चर्चाओं में उन्होंने बोल्शेविकों को अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया। इसका कारण था कि जनसंख्या में बहुमत कृषकों का था, श्रमिकों का नहीं। पुनः इसका कारण यह भी था कि रूसी अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि आधारित थी। युद्ध साम्यवाद ने किसानों को बोल्शेविकों से और दूर कर दिया था। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लेनिन ने निम्नलिखित कदम उठाये:
    - लेनिन ने ब्रिटिश निवेश (FDI) प्राप्त करने के लिए ब्रिटेन के साथ 1921 में एक व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसका उद्देश्य रूस के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करना था।
    - लेनिन ने **नई आर्थिक नीति (NEP: 1921-27)** आरम्भ की जिसकी निम्नलिखित विशेषताएं थीं:
        - मुख्य रूप से यह नीति किसान कल्याण और विकास को बढ़ावा देने के लिए थी।
        - विकास को प्रोत्साहित करने के लिए NEP एक अस्थाई उपाय था।
        - भूमि के निजी स्वामित्व की अनुमति प्रदान की गयी और खाद्यान्न के उत्पादन के लिए पूँजीवाद प्रोत्साहन का उपयोग करना। कर भुगतान (जो अतिरिक्त उपज पर देय था) के पश्चात किसानों को अतिरिक्त उत्पादन अपने पास रखने की अनुमति थी।
        - लघु उद्योगों के लिए निजी स्वामित्व प्रदान किया गया। जबकि कोयला, लोहा और इस्पात तथा रसायन जैसे उद्योग राज्य के स्वामित्व में थे। इसी प्रकार से ऊर्जा, परिवहन, बैंकिंग भी राज्य के नियन्त्रण में थे।
        - लघु कारखानों द्वारा उत्पादित माल के व्यापार में निजी स्वामित्व।
        - लेनिन ने बोनस, प्रति नग वेतन दर (piece wage rates) आदि जैसे पूंजीपति उपायों को प्रारम्भ करने की अनुमति दी।
        - जिन प्रबंधकों को 1917 की क्रांति के पश्चात हटा दिया गया था उन पुराने प्रबंधकों को लेनिन ने वापस बुलाया। यह कारखानों के उत्पादन में सुधार लाने के लिए किया गया था।
        - पार्टी के वामपंथी सदस्यों ने NEP का विरोध किया क्योंकि उन्हें लगता था कि इसके कारण कुलकों (समृद्ध कृषक जमींदार) की संख्या में वृद्धि होगी।
        - लेनिन के दीर्घकालीन समाधानों में शामिल थे- अर्थव्यवस्था पर राज्य का नियन्त्रण, कृषि उत्पादन में बड़े स्तर के लाभ प्राप्त करने के लिए खेतों का सामूहिकीकरण (collectivization)। सामूहिकीकरण को 1924 में लेनिन की मृत्यु के पश्चात ही प्राप्त किया जा सका था।
        - NEP बहुत अधिक सफल नहीं हुई। सामान्य लोगों की स्थिति यद्यपि बेहतर थी परन्तु भोजन की कमी लगातार बनी रही।

लेनिन द्वारा प्रारम्भ किए गए राजनीतिक परिवर्तन

- 1921 में गुटबंदी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। यह पार्टी के अंदर असहमति को रोकने के लिए किया गया था। जब तक निर्णय न हो जाये स्वतंत्र चर्चा की अनुमति थी। परन्तु निर्णय हो जाने के पश्चात सभी पार्टी के सदस्यों को उस निर्णय का समर्थन करना था और उसके कार्यान्वयन के लिए पूरी प्रतिबद्धता से कार्य करना था।

VISION IAS

- **शुद्धिकरण (Purging) (पार्टी से बलात निष्कासन):** 1921 के दौरान गुप्त पुलिस के सहयोग से लगभग एक तिहाई पार्टी सदस्यों को या तो देश से निष्कासित कर दिया गया या फिर उन्हें मौत के घाट उतार दिया गया। कई सदस्यों ने NEP के विरोध में त्यागपत्र दे दिया।
- लेनिन के शासन के अंतर्गत ट्रेड यूनियन 100 प्रतिशत स्वतंत्र नहीं थे: लेनिन ने ट्रेड यूनियनों की इस मांग को निरस्त कर दिया था कि उन्हें कारखाने चलाने देने चाहिए (क्योंकि NEP के अंतर्गत पुराने प्रबंधकों को वापस लाया गया था)। लेनिन के अनुसार ट्रेड यूनियन का कार्य केवल उत्पादन वृद्धि में सहायता करना और सरकार के आदेशों का कठोरता से पालन करना था।

लेनिन की आलोचना

- जब 1917 की क्रांति के पश्चात उसने संविधान सभा को भंग किया तो उसने प्रजातंत्र की स्थापना में व्यवधान डाला था।
- गृह युद्ध के दौरान **रेड टेरर** में कई विरोधियों को मौत के घाट उतारा गया था।
- उसकी कई ऐसी नीतियां थीं, जिनका कालान्तर में स्टालिन द्वारा दुरूपयोग किया गया था जैसे:
  - एकल पार्टी राज्य,
  - गुटबंदी पर प्रतिबन्ध, जिसका अर्थ था पार्टी के अंदर असहमति को रोकना।
  - अपने विरोधियों के विरुद्ध गुप्त पुलिस का उपयोग और
  - ट्रेड यूनियनों की शक्ति और आवाज को कम करना।

1924 में लेनिन की मृत्यु के पश्चात भविष्य में कार्य करने के उपायों और समाज में समानता लाने हेतु कुछ अन्य दृष्टिकोणों पर चर्चा हुई। इसके तहत समाजवाद के मुख्य लक्ष्य का सुझाव दिया गया:

- **त्वरित औद्योगिकीकरण:** चर्चा के दौरान एक दृष्टिकोण यह था कि किसान समर्थक NEP को छोड़ कर त्वरित औद्योगिकीकरण पर ध्यान देना चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का तर्क था कि एक साम्यवादी राज्य श्रमिकों के समर्थन पर आधारित होता है, कृषक समर्थन पर नहीं। उन्हें डर था कि NEP से कुलकों (समृद्ध किसान जमींदार) की संख्या में वृद्धि होगी, जो न केवल समानता के लक्ष्य बल्कि कम्युनिस्ट क्रांति के लिए भी संकट बन जायेंगे। यह विचार मेंशेविकों द्वारा प्रस्तावित विचार जैसा ही था अर्थात् श्रमिकों और औद्योगिकीकरण पर ध्यान दो।
- **सम्पूर्ण देश में समाजवाद (Socialism in One Country):** यह दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट नेताओं का दृष्टिकोण था जो किसान समर्थक और NEP समर्थक थे। वे संपत्ति के सीमित निजी स्वामित्व और विकास में वृद्धि के लिए पूंजीवाद की विशेषताओं का उपयोग भी करना चाहते थे। इस दृष्टिकोण के तहत निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया:
  - **किसानों की समृद्धि (Prosperity of Peasants):** इसके तहत किसानों की समृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करके उन्हें निजी संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार प्रदान करके रूस में सोवियत की शक्ति को संगठित करने की संकल्पना प्रस्तुत की गयी। क्योंकि इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मानना था कि किसान ही जनसंख्या के बहुसंख्यक भाग हैं और कम्युनिस्ट पार्टी को सशक्त बनाने के लिए उनका समर्थन आवश्यक है। {**सोवियत;** परिषद के लिए रूसी भाषा का शब्द है। स्थानीय स्तर पर प्रशासन के लिए सोवियतों की स्थापना हुई थी। उनमें श्रमिकों एवं कृषकों दोनों की सदस्यता थी (कृषकों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक था क्योंकि वे जनसंख्या का अधिकतम भाग थे)। मार्क्सवादी विचारकों और लेनिन के अनुसार सोवियत वह संस्थाएं हैं जो श्रमिकों की प्रजातांत्रिक इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसलिए ये (सोवियत) प्रोलीटेरियट की तानाशाही लाने के लिए आवश्यक हैं}।
  - **क्रमिक औद्योगिकीकरण (Gradual Industrialization):** तीव्र गति से प्राप्त किए जाने वाले औद्योगिकीकरण के बजाए क्रमिक (धीमे) औद्योगिकीकरण का सुझाव दिया गया। कुछ इसी प्रकार का दृष्टिकोण माओ ने अपने ग्रेट लीप फॉरवर्ड (1958) में भी अपनाया था जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

VISION IAS

- **स्थाई क्रांति (Permanent Revolution):** लेनिन के विश्वासपात्र ट्रॉट्स्की ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया था। इसका आशय यह था कि रूस से बाहर भी कम्युनिस्ट क्रांति लायी जाए और एक बार जब इसे प्राप्त कर लिया जाएगा तो रूस की कम्युनिस्ट क्रांति को कोई संकट नहीं होगा। इसलिए यह क्रांति 'स्थाई' होगी क्योंकि सम्पूर्ण विश्व या कम से कम रूस के निकटतम पड़ोसी तो कम्युनिस्ट होंगे। यदि इसे एक बार प्राप्त कर लिया जाता है तो पश्चिमी यूरोप के वे देश जो पहले ही से औद्योगिकीकृत हैं, रूस के औद्योगिकीकरण में सहायक होंगे।

15. भारत में समाजवाद

- समाजवाद के भारतीय मॉडल को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है लेकिन 42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा प्रतिस्थापित अनुच्छेद 43A से यह स्पष्ट है कि प्रस्तावना द्वारा यथा परिकल्पित समाजवाद में उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी और परिणामस्वरूप लाभ में श्रमिकों की साझेदारी सम्मिलित है।
- डी.एस.नकारा बनाम भारतीय संघ (1982) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि भारतीय समाजवाद का लक्ष्य गांधीवादी समाजवाद की ओर अधिक झुकाव के साथ मार्क्सवाद और गांधीवाद का मिश्रण प्राप्त करना है।
- 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण से भारत उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा से दूर हट गया। लेकिन फिर भी, समाजवाद राष्ट्रीय बहस को प्रभावित करता रहा। निम्नलिखित को भारतीय समाजवाद के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं के रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है:
    - सभी के लिए समान अवसर।
    - राज्य द्वारा कानून निर्माण के माध्यम से और राज्य द्वारा कार्यान्वित कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से असमानताओं में कमी। भारतीय संविधान ने पूंजीवाद के प्रमुख नकारात्मक लक्षणों पर अंकुश लगाने के लिए सुरक्षात्मक उपायों को समाविष्ट करने का प्रयास किया है। 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों का कारखानों, खदानों और अन्य खतरनाक रोजगारों में नियोजन (बाल श्रम) संविधान के अनुच्छेद 24 द्वारा प्रतिबंधित है तथा श्रमिकों की आजीविका की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 विद्यमान है।
    - राज्य विनियमन और कानूनों के माध्यम से समाज में धन-संपत्ति के संकेंद्रण की रोकथाम।
    - अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर सार्वजनिक नियंत्रण। विशेष रूप से भारी उद्योग और अन्य पूंजी गहन क्षेत्रों में एक मजबूत सार्वजनिक क्षेत्र।
    - भारी उद्योगों और यंत्रीकरण पर बल।
    - भारत ने जमींदारी पर प्रतिबंध लगाने के बाद भूमि के पुनर्वितरण के लिए कार्यक्रम कार्यान्वित करने का प्रयास किया था। इसके साथ ही सहकारी कृषि के माध्यम से हमने कृषि का सामूहिकीकरण करने का प्रयास किया था। सहकारी कृषि के अंतर्गत किसान सहकारी कृषि के लिए अपनी भूमि देकर सहकारी समितियों में स्वयं को स्वेच्छा से संगठित करते हैं। वे भूमि पर कानूनी अधिकार बनाए रखते हैं लेकिन भूमि पर कृषि संयुक्त रूप से करते हैं। सहकारी निकाय किसानों को ऋण, बेहतर बीज और उर्वरक प्रदान करते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से कृषि करने वाले किसानों के लिए वहनीय नहीं होते हैं। सोवियत संघ के विपरीत भारत में सहकारी कृषि स्वैच्छिक पहल थी, जिसने किसानों को सामूहिक कृषि के पक्ष में अपनी भूमि देने के लिए बाध्य किया था। भारत इसमें केवल आंशिक रूप से सफल रहा क्योंकि कुछ वर्गों को संदेह था कि समय गुजरने के साथ किसान अपना भू-स्वामित्व खो देंगे। इसके साथ ही, चूँकि कृषि राज्य का विषय है, इसलिए अलग-अलग राज्यों ने अलग-अलग सफलता दर के साथ सहकारी कृषि का अलग-अलग संस्करण कार्यान्वित किया।

VISION IAS

- भारतीय समाजवाद को विकासवादी और सुधारवादी कहा जा सकता है।
- यह व्यक्तिगत हित और सामूहिक हित के बीच सामंजस्य पर केंद्रित है। हमने मिश्रित अर्थव्यवस्था अर्थात धनसंपत्ति के सार्वजनिक और निजी स्वामित्व की विशेषताओं वाली अर्थव्यवस्था को अपनाया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत में ऐसा समाजवाद है जो पूंजीवाद और लोकतंत्र के साथ सह-अस्तित्व रखता है।
- भारतीय समाजवाद को प्राय: लोकतांत्रिक समाजवाद कहा जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि यूरोप में जिसे सामाजिक लोकतंत्र कहा जाता है, वह समाजवाद के भारतीय स्वरूप के के अधिक निकट है।
- भारतीय समाजवाद फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के विचारों से प्रेरित है।
- मार्क्सवाद, सामाजिक लोकतंत्र, लोकतांत्रिक समाजवाद, अराजकतावाद से लेकर गांधीवाद तक भारतीय समाजवादी आंदोलन के कई रंग थे।
- स्टालिन के शुद्धिकरण से पहले मार्क्सवाद एक प्रमुख धारा थी। मेरठ सम्मेलन में भारतीय समाजवादियों ने अपने पंथ के रूप में मार्क्सवाद को अपनाया था। लेकिन स्टालिन के शुद्धिकरण के बाद भारतीय समाजवादियों ने मार्क्सवाद से मुँह फेर लिया क्योंकि मार्क्सवाद हिंसक क्रांति की मांग करता था। हिंसक उपायों से हुए इस मोहभंग ने भारतीय समाजवादियों को अहिंसा पर बल देने के साथ लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर मोड़ दिया और उन्होंने तर्क दिया कि "लोकतंत्र के बिना समाजवाद असंभव है"।
- 1931 के कराची सत्र में राष्ट्रीय आर्थिक कार्यक्रम में अमीर-गरीब की खाई पाटने के लिए 'प्रमुख उद्योगों के राष्ट्रीयकरण' और अन्य उपायों का उल्लेख किया गया था। इसके साथ ही इस सत्र में विकास के समाजवादी ढांचे को भारत का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।
- हमने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निर्देशित अर्थव्यवस्था अपनाई। हरिपुरा सत्र (1938) में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस ने राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की थी जिसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे।
- प्रधानमंत्री नेहरू ने “समाज का समाजवादी ढांचा" (socialist pattern of society) शब्द का प्रयोग किया था। यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाजवाद को वर्गीकृत करना मुश्किल है और यह अद्वितीय है:
  - इसका उद्देश्य न केवल वर्गहीन समाज का निर्माण करना है बल्कि जाति-रहित समाज का भी निर्माण करना है। इस प्रकार हमने समाज में असमानता कम करने के लिए आरक्षण की नीति अपनाई। यह कहा जा सकता है कि हमारे समाज की विशिष्ट विशेषताओं के कारण हमने दोनों प्रकार की असमानताओं को लक्षित किया है, चाहे यह वर्ग आधारित (जमींदारी पर प्रतिबंध) हो या जाति आधारित (अस्पृश्यता पर प्रतिबंध और सार्वजनिक नियोजन में आरक्षण)।
  - इसका लक्ष्य गरीबी कम करना, सांप्रदायिक सौहार्द बढ़ाना और न्यायसंगत आर्थिक विकास करना है।
  - गांधीवाद के अहिंसा, सत्ता के विकेन्द्रीकरण और विशेष रूप से ट्रस्टीशिप और मध्यस्थता के विचार का भारतीय समाजवाद पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ट्रस्टीशिप की अवधारणा यह प्रतिपादित करती है कि पूंजीपति ट्रस्टी है और वह केवल श्रमिकों की ओर से धन-संपत्ति रखता है। ये श्रमिक ही अर्थव्यवस्था में मूल्य के वास्तविक उत्पादक हैं। चूंकि पूंजीपति ट्रस्टी है, इसलिए उसे श्रमिकों के हितों का ध्यान रखना चाहिए और उनके कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। मध्यस्थता की

VISION IAS

अवधारणा को औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के माध्यम से कार्यान्वित किया गया है जिसका उद्देश्य पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच मतभेदों को सुलझाने के लिए मध्यस्थता की पद्धति का उपयोग करना है।

भारतीय समाजवाद का आलोचनात्मक विश्लेषण

- स्वतंत्रता के बाद भारत ने समाजवाद को अंगीकृत किया। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अधिकांश नेता जैसे कि जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया समाजवाद के प्रबल पक्षधर थे। इसलिए समाज का समाजवादी ढांचा नियोजित अर्थव्यवस्था के लक्ष्यों में से एक लक्ष्य के रूप में घोषित किया गया। उस समय भारत ने फेबियन प्रकार के सामूहिक नियंत्रण के साथ लोकतंत्र को संयोजित करने का प्रयास किया; जिसने आयात और निर्यात के विनियमन, उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर अंकुश और औद्योगिक *सेट-अप* (ढांचे) की लाइसेंसिंग का मार्ग प्रशस्त किया। गरीबी निवारण और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति को दो प्रमुख लक्ष्यों के रूप में स्वीकार किया गया। नेहरू ने संसाधन जुटाने और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के लिए आर्थिक जीवन में राज्य के अधिक से अधिक हस्तक्षेप द्वारा सामूहिक क्षेत्र को बढ़ावा देने का प्रयास किया। हालांकि, 1991 के बाद भूमंडलीकरण की बाध्यताओं के चलते भारत को अपनी अर्थव्यवस्था का उदारीकरण करना पड़ा।
- स्वतंत्रता के बाद कोयला, इस्पात, बैंक और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने के लिए भी कदम उठाए गए। सरकार ने आवास, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि के लिए कार्यक्रम आरंभ किए। लेकिन इस प्रकार के समाजवाद को केवल इस अर्थ में हम समाजवादी राज्य कह सकते हैं कि यहां राज्य ने कुछ संसाधनों का पुनर्वितरण किया लेकिन समाजवाद की आदर्श परिभाषा के अनुसार हम इसे समाजवादी राज्य नहीं कह सकते।
- इसमें कोई संदेह नहीं है कि समाजवाद आवश्यक है, लेकिन मात्र सेवाओं के प्रबंधन और अर्थव्यवस्था पर सरकारी नियंत्रण से समाजवाद नहीं आता है। भारत में अपनाया गया केन्द्रीकृत नियोजन एक समान आर्थिक विकास की प्रणाली का निर्माण करता है, जो व्यक्तिगत आकांक्षाओं की स्थानीय विविधता का पूरी तरह से ध्यान नहीं रखता है। इसलिए देश में समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण महत्वपूर्ण है। यह भी अनुभव किया गया कि सार्वजनिक स्वामित्व और आर्थिक अनुदान अपना मुनाफा बढ़ाने में केवल बड़े-बड़े निगमों की सहायता करते हैं। इनसे व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का जोखिम कम हो जाता है। यहां तक कि प्रगतिशील कराधान प्रणाली पर भी मजदूरी अर्जन करने वाले की तुलना में अति-समृद्ध लोगों का पक्ष लेने का आरोप लगाया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था ने जनता के बीच अति-समृद्ध लोगों की संपत्ति के पुनर्वितरण में बहुत कम योगदान दिया है।
- इसलिए भारत में यदि समाजवाद वास्तविकता में अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है तो इसे सबसे पहले स्वयं को रूपांतरित करना होगा। संभवतः समाजवाद को एक ओर उदारवाद और दूसरी ओर मार्क्सवाद के बीच संतुलन बनाना चाहिए।

VISION IAS

मुख्य विषय वस्तु 1: स्टालिनवाद आधिकारिक रूप से मार्क्सवाद-लेनिनवाद का पालन करते हुए साम्यवादी समाज विकसित करने की नीति थी, जिसकी कल्पना और कार्यान्वयन जोसफ स्टालिन ने की था। सोवियत संघ की स्टालिनवादी नीतियों में सम्मिलित थीं: भारी उद्योगों पर ध्यान देने के साथ तेजी से औद्योगिकीकरण, राज्य का केंद्रीकरण और कृषि का सामूहिकीकरण। स्टालिन द्वारा की गई दमनकारी राजनीतिक कार्रवाइयों के कारण, "स्टालिनवाद" का प्रयोग प्राय: नकारात्मक या अपमानजनक रूप में किया जाता है।

16. स्टालिनवाद

- 1922 में जोसफ स्टालिन को पार्टी की केंद्रीय समिति का महासचिव नियुक्त किया गया। लेकिन स्टालिनवाद का आरंभ 1929 से हुआ। जब 1924 में स्टालिन ने ट्रॉट्स्की और अन्य नेताओं को लेनिन की मृत्यु के बाद होने वाले सत्ता संघर्ष में पराजित कर अपनी सत्ता को सुदृढ़ कर लिया।

चित्र: जोसफ स्टालिन

16.1. स्टालिन के समक्ष चुनौतियाँ और उसका समाधान

जिस समय स्टालिन सत्ता में आया, रूस चार प्रमुख चुनौतियों का सामना कर रहा था। ये चुनौतियाँ थीं- खाद्यान्नों की कमी, निकृष्ट सेना, घटिया उद्योग और पूँजीवादी पश्चिमी देशों का बढ़ता प्रभाव। स्टालिन ने इन चुनौतियों से निपटने का इस प्रकार प्रयास किया:

- उसने भारी उद्योगों पर बल देने के साथ पंचवर्षीय योजनाएं आरंभ कीं।
- उद्योगों का राष्ट्रीयकरण।
- 1929 में नई आर्थिक नीति का परित्याग।
- कुलकों (बड़े और समृद्ध किसान) की हिंसक बेदखली द्वारा कृषि का सामूहिकीकरण।
- अधिनायकवादी शासन का प्रारंभ, जिसकी विशेषता गुप्त पुलिस का अधिक से अधिक उपयोग और असंतोष प्रकट करने वाली किसी भी आवाज का गला घोंटना था। लेनिन के महत्वपूर्ण सहयोगी ट्रॉट्स्की को रूस से निर्वासित कर दिया गया।
- पुनर्सैन्यीकरण।
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास पर बल।
- आक्रामक विदेश नीति जो पश्चिमी शक्तियों विशेषकर अमेरिका को शत्रु के रूप में देखती थी।

 ©Vision IAS

16.2. स्टालिन ने भारी उद्योगों पर बल क्यों दिया?

- स्टालिन ने भारी उद्योगों पर बल देने की नीति अपनाई। सोवियत संघ ने कोयला, इस्पात, तेल, लोहा आदि जैसे भारी उद्योगों में अधिक पूँजी निवेश किया और हल्के उद्योगों की उपेक्षा की। हल्के उद्योग भारी उद्योगों की तुलना में कम पूँजी गहन और अधिक उपभोक्ता उन्मुख और व्यापार उन्मुख होते हैं। इस प्रकार टिकाऊ और गैर-टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं की सोवियत संघ में कमी थीं और इससे दैनिक आवश्यकताओं और सामान्य लोगों के जीवन को हानि पहुँची। वहीं दूसरी ओर भारी उद्योगों ने अर्थव्यवस्था में आधारभूत संरचना का निर्माण किया और आर्थिक विकास के लिए आधार प्रदान किया।
- सोवियत संघ ने भारी उद्योगों पर बल देने की यह नीति इसलिए अपनाई क्योंकि:
    - स्टालिन का मानना था कि पूँजीवादी पश्चिम के साथ साम्यवादी रूस का युद्ध अपरिहार्य था। जब 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो यह सही सिद्ध हुआ।
    - अत्यधिक औद्योगिकीकरण से कार्यबल में श्रमिकों की संख्या, किसानों की संख्या से ज्यादा होती है। ये औद्योगिक श्रमिक ही थे जो साम्यवाद का समर्थन करते थे। स्टालिन किसानों, विशेषकर कुलकों (समृद्ध किसान) को समाजवाद के शत्रु के रूप में देखता था (माओवाद इसी बिंदु पर रूसी मॉडल से दूर हो जाता है)। इस प्रकार स्टालिन का मानना था कि भारी औद्योगिकीकरण से साम्यवादी राज्य की स्थिरता का मार्ग प्रशस्त होगा।

16.3. पंचवर्षीय योजनाओं का शुभारंभ

- पहली (1928-32) और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं (1933-37) ने निर्धारित समय से एक वर्ष पहले अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया। पहली योजना के दौरान, विदेशी निवेश अनुपलब्ध था क्योंकि रूस ने ज़ार शासन द्वारा उठाए गए युद्ध ऋणों को लौटाने से मना कर दिया था। यह इसलिए भी था क्योंकि औद्योगिक देश स्वयं भी 1930 के दशक के दौरान महामंदी का सामना कर रहे थे। इस प्रकार स्टालिन ने आंतरिक बचतों और निवेश पर निर्भर रहने का विकल्प चुना। उसने कृषि क्षेत्र का उपयोग पूँजी के स्रोत के रूप में करने का निर्णय लिया। दूसरे शब्दों में, उसने कृषि क्षेत्र को पूंजी संचय के स्रोत के रूप में चुना। कृषि का सामूहिकीकरण पहली योजना के दौरान आरंभ किया गया। औद्योगिक उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए लाभों के पुनर्निवेश पर बल दिया गया।
- पहली योजना (1928-32) के दौरान किए गए विशाल निवेश के चलते, दूसरी योजना (1933-37) में उद्योगों का विस्तार हुआ। इस प्रकार वैश्विक महामंदी ने पूँजीवादी व्यवस्था को बदनाम कर दिया और मार्क्सवाद, समाजवाद और आर्थिक नियोजन की ओर ध्यान आकर्षित किया। फलस्वरूप भारत जैसे देशों में भी समाजवादी विचारों ने अधिक से अधिक लोगों को आकर्षित करना आरंभ किया। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस ने कांग्रेस से समाजवाद को लक्ष्य के रूप में स्वीकार करने का आग्रह किया।
- तीसरी योजना के दौरान (1938-41), शस्त्रीकरण क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया क्योंकि यूरोप महाद्वीपीय युद्ध के निकट आ रहा था। चौथी योजना (1945 से आगे) जर्मन युद्ध क्षतिपूर्ति की सहायता से युद्ध के बाद पुनर्निर्माण पर केंद्रित थी और नई सुविधाएँ सृजित करने पर कम से कम ध्यान केंद्रित किया गया। पांचवीं योजना (1951-55) ने भारी औद्योगिकीकरण और परिवहन पर अपना ध्यान केंद्रित रखना जारी रखा।

इन योजनाओं के सामान्य पहलू इस प्रकार थे:

- इन योजनाओं में भारी उद्योगों पर ध्यान केंद्रित किया गया और ये काफी सफल भी रहीं। इस दौरान युराल पर्वत के पूर्व में सैकड़ों कारखानों की स्थापना की गई।
- भारी उद्योग में प्रभावशाली वृद्धि दर्ज की गई, लेकिन कृषि क्षेत्र सहित अन्य क्षेत्रों ने खराब प्रदर्शन किया।
- कई जल विद्युत संयंत्रों की स्थापना की गई।
- काकेशस के तेल-समृद्ध क्षेत्र में तेल शोधनशालाओं की स्थापना की गई।
- निवेश के घरेलू स्रोतों का प्रभावशाली तरीके से उपयोग किया गया।

VISION IAS

- शिक्षित कुशल श्रमिकों को बढ़ावा दिया गया।
- टेलरवादी सिद्धांतों का उपयोग करके दक्षता पर अतिरिक्त ध्यान दिया गया। इस सिद्धांत के अंतर्गत कार्य को विशिष्ट भागों में तोड़ने और अधिकतम क्षमता के साथ प्रत्येक भाग को निष्पादित करने का प्रावधान था। रिकॉर्ड उत्पादन प्राप्त करने वाले श्रमिकों को स्टख़नोवाइट्स (Stakhanovites) के रूप में जाना जाता था।
- 1930 के दशक के मध्य तक जनता के लिए सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध हो गई थी।

16.4. कृषि का सामूहिकीकरण (1929)

- कृषि के सामूहिकीकरण के तीन उद्देश्य थे:
  - कृषि दक्षता में सुधार लाना और कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र की ओर मोड़ना।
  - खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना और बड़े पैमाने पर किफायत के माध्यम से कृषि उत्पादन को बढ़ावा देना, जो विखंडित भू-जोतों के समेकन और कृषि के अनुवर्ती मशीनीकरण से आता।
  - उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करना (उदाहरण के लिए, नकदी फसलें)।
- सामूहिकीकरण के लिए किसानों को विवश किया गया और यह स्वैच्छिक नहीं था। यह निर्मम भी था क्योंकि जो किसान इस कार्यक्रम का भाग बनने से मना करते थे प्राय: उनका क्रूरतापूर्वक दमन किया जाता था। आरंभ में, बाध्य सामूहिकीकरण के कठोर कार्यान्वयन के कारण ग्रामीण आबादी को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उत्पादकता में कमी आई। क्योंकि कुलकों ने राज्य को अपनी उपज ले जाने देने की बजाए अपने मवेशियों को मारकर और फसलों को जलाकर इसका प्रतिकार किया। 1932-33 में यूक्रेन में अकाल पड़ा और लाखों लोग भूख से मारे गए। 1932 तक, 60 प्रतिशत किसान परिवार सामूहिकीकरण कार्यक्रम में सम्मिलित हो गए थे लेकिन कृषि उत्पादन 23 प्रतिशत तक गिर गया। दूसरी योजना (1933-37) के दौरान कृषि उत्पादन में सुधार आया।
- **सामूहिकीकरण की सफलता:** कृषि का सामूहिकीकरण इस अर्थ में सफल रहा था कि 1937 तक, 90 प्रतिशत भूमि का सामूहिकीकरण हो गया था। मशीनीकरण के कारण 1937 तक खाद्यान्न उत्पादन में काफी वृद्धि हुई थी।

16.5. स्टालिनवाद का परिणाम

- स्टालिनवाद; लेनिनवाद और मार्क्सवाद दोनों के विपरीत था, क्योंकि- श्रमिकों और किसानों का उतना ही शोषण हो रहा था - जितना ज़ार शासन के दौरान होता था। राज्य ने जनता का दमन करने वाले पूंजीपतियों का स्थान ले लिया और इस प्रकार यहां वास्तव में कोई वर्गहीन समाज नहीं था। यह प्रसिद्ध तर्क है कि स्टालिन के शासन के अंतर्गत 'सभी लोग समान थे, लेकिन कुछ लोग दूसरों की तुलना में अधिक समान थे'।
  - **शुद्धिकरण (Purges):** स्टालिन के शासन की एक अन्य विशेषता 'शुद्धिकरण' थी। इसका तात्पर्य स्टालिन या उसकी नीतियों का विरोध करने वाले पार्टी के किसी भी सदस्य को निर्वासन में भेजना, मुकदमा चलाना या कारावास देना या हत्या करना था।
  - लियोन ट्रॉटस्की सोवियत संघ से निर्वासित किया जाने वाला सबसे प्रमुख नेता था। ट्रॉट्स्की का विचार ट्रॉट्स्कीवाद का आधार था, ट्रॉट्स्कीवाद मार्क्सवादी विचारधारा का एक प्रमुख संप्रदाय है जो स्टालिनवाद के सिद्धांतों का विरोधी था। 1929 में उसे सोवियत संघ से निर्वासित कर दिया गया। बाद में 1940 में मेक्सिको में स्टालिन के आदेश पर उसकी हत्या कर दी गई। उसके परिवार के अधिकांश सदस्यों की भी अलग-अलग हमलों में हत्या कर दी गई।
- स्टालिन की नीतियों का परिणाम एक क्रूर शासन था जिसकी विशेषता निरंकुश समाजवाद और एक व्यक्ति का शासन (एक दल के शासन की बजाए क्योंकि सभी मतभेदों को कुचल दिया जाता था) थी। स्टालिन ने अपने व्यक्तित्व-पूजा को बढ़ावा दिया। उसने 'लौह पुरूष (Man of Steel)' की उपाधि ग्रहण की, जिसका रूसी में स्टालिन के रूप में अनुवाद किया जाता है। उसका

VISION IAS

वास्तविक नाम लोसिफ (जोसफ) विसारियनोविच झुगासविली (Iosif (Joseph) Vissarionovich Dzhugashvili) था। स्टालिन के शासन के अंतर्गत पार्टी की वास्तविक शक्ति में गिरावट आई। यद्यपि सभी निर्णय पार्टी द्वारा (कागज पर) लिए जाते थे, लेकिन वास्तविकता में निर्णय लेने की समस्त शक्ति स्टालिन के हाथों में केंद्रित थी।

- **भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं:** लेखकों, कलाकारों और संगीतकारों से सोवियत उपलब्धियों की महिमामंडन करने वाली रचनाएँ करने की आशा की जाती थी। शिक्षा को नि:शुल्क और अनिवार्य बनाकर विद्यार्थियों के विचार परिवर्तन का साधन बनाया गया।
- **सामाजिक सेवा:** स्टालिन के शासन के दौरान शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और सामाजिक सुरक्षा के रूप में सामाजिक सेवाओं में वृद्धि हुई।
- **बलात श्रम:** स्टालिन के शासन के अंतर्गत बंदियों से बलात श्रम करवाया गया। गुलग स्टालिन के शासन के अंतर्गत ऐसी सरकारी एजेंसी थी, जो सोवियत संघ के श्रमिक शिविरों का प्रबंधन करती थी। गुलग राजनीतिक उत्पीड़न का प्रमुख साधन बन गई क्योंकि स्टालिन के विरोधियों को भी इन्हीं शिविरों में रखा गया था।
- **रूढ़िवादी चर्च के प्रति कठोर नीति:** स्टालिन ने रूढ़िवादी चर्च के प्रति कठोर नीति अपनाई। कई चर्चों को बंद कर दिया गया और पादरियों पर मुकदमा चलाया गया। यह स्टालिन द्वारा राजनीतिक सत्ता के सुदृढ़ीकरण का भाग था।
- **पृथकतावाद के प्रति शून्य सहनशीलता:** सोवियत संघ के गैर-रूसी धड़े द्वारा स्वायत्तता या स्वतंत्रता की मांग के प्रति स्टालिन को कोई सहानुभूति नहीं थी। गृहयुद्ध (1918-20) के दौरान सोवियत संघ द्वारा यूक्रेन और जॉर्जिया के क्षेत्रों को वापस प्राप्त करने में स्टालिन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। स्टालिन ने यह भी सुनिश्चित किया कि अज़रबैजान और आर्मेनिया रूस का भाग बने रहें। इन्होंने गृहयुद्ध के दौरान स्वतंत्रता की घोषणा की थी। स्टालिन ने अपने कार्यकाल के अंतर्गत *आयरन हैंड* की नीति जारी रखी। वास्तविक समस्या यह थी कि सोवियत संघ की 47 प्रतिशत आबादी गैर-रूसी थी।
- **आर्थिक क्षेत्र:** आर्थिक मोर्चे पर कुछ सुधार हुआ। भारी उद्योगों में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई लेकिन अन्य क्षेत्रों में खराब प्रदर्शन हुआ। खाद्यान्नों की कमी लंबे समय तक जारी रही। इसके अलावा मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं की कमी थी, जो आम आदमी के दैनिक जीवन के लिए आवश्यक थीं।
- **शीत युद्ध:** स्टालिन के शासन के अंतर्गत, रूस संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ बड़े पैमाने पर शीत युद्ध में उलझ गया। इस प्रकार अमरीका के प्रति गहरा संदेह और अमेरिका और सोवियत संघ के बीच बिगड़ते संबंध स्टालिन के शासन की विशेषता थी। इस दौरान सोवियत संघ ने हथियारों के निर्माण पर बहुत धन व्यय किया।

- स्टालिन का कहना था कि 'पूंजीवाद पर अंतिम विजय तक पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व असंभव था'। हम एक अलग विषय के रूप में शीत युद्ध पर विस्तार से चर्चा करेंगे, फिर भी हम स्टालिन के शासन (1929-53) के दौरान शीत युद्ध के महत्वपूर्ण पहलुओं का उल्लेख कर सकते हैं। स्टालिन के अंतर्गत सोवियत संघ; संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ हथियारों की दौड़ में उलझ गया। सोवियत संघ के प्रभाव वाले क्षेत्रों को पश्चिम से अलग करने की स्टालिन की नीति का परिणाम यूरोप में लोहे के पर्दे (Iron Curtain) के रूप में प्रसिद्ध है। लोहे का पर्दा यूरोप और विशेषकर जर्मनी को दो भागों में विभाजित करता था, पहला रूसी प्रभाव वाले क्षेत्र में और दूसरा पश्चिमी प्रभाव वाले क्षेत्र में। लोहे का पर्दा, पर्दे के दोनों ओर के राष्ट्रों के बीच सभी तरह के संपर्कों में कमी को इंगित करता था। शीत युद्ध में मित्र देशों के संगठन का निर्माण करना भी सम्मिलित था। स्टालिन के अंतर्गत, सोवियत संघ ने वॉरसा संधि (NATO जैसा सैन्य गठबंधन), मोलोतोव योजना (सोवियत सहयोगियों को सहायता देने के लिए), कॉमिनफॉर्म (Cominform) (यूरोप के सभी साम्यवादी दलों का समूह जिसका गठन उन पर सोवियत संघ की मजबूत पकड़ सुनिश्चित करने के लिए किया गया था) और कॉमकॉन (Comecon) (कॉमिनफॉर्म की आर्थिक नीतियों का समन्वय करने वाला संगठन) की पहल की। अमेरिका और सोवियत संघ ने कभी भी प्रत्यक्ष युद्ध नहीं लड़ा लेकिन अन्य देशों के बीच युद्ध में विपरीत पक्षों का समर्थन किया; उदाहरण के लिए, कोरियाई युद्ध (1950), वियतनाम युद्ध का पहला चरण (1946-54) आदि।

मुख्य विषय वस्तु 2: निकिता ख्रुश्चेव 1953 में शीर्ष नेता के रूप में उभरा। उसने स्टालिन के शुद्धीकरण को त्याग दिया और सोवियत संघ में दमन को कम किया। हालांकि, सामान्य नागरिकों का जीवन बेहतर बनाने की दिशा में लक्षित उसकी घरेलू नीतियाँ, विशेषकर कृषिक्षेत्र में अप्रभावी थीं। उसने अपने लक्ष्य के रूप में पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की घोषणा की, लेकिन उसका शासनकाल शीत युद्ध के सर्वाधिक तनावपूर्ण वर्षों का साक्षी बना जो क्यूबा के मिसाइल संकट के समय चरम पर पहुँच गया।

17. विस्टालिनीकरण (De-Stalinization)

- 1953 में स्टालिन का निधन हुआ और 1955 में पांचवीं योजना समाप्त हुई। विस्टालिनीकरण उन राजनीतिक और आर्थिक सुधारों की प्रक्रियाओं को निरुपित करता है जो स्टालिन की मृत्यु के बाद आरंभ हुई थीं। 1956 में साम्यवादी दल के प्रथम सचिव निकिता ख्रुश्चेव (1953-64) ने अपना दूरगामी भाषण दिया, जिसमें स्टालिन की निंदा की गई थी। 1956 के भाषण में,
    - ख्रुश्चेव ने पार्टी को शासन करने देने की बजाय व्यक्ति पूजा को बढ़ावा देने के लिए स्टालिन की निंदा की।
    - ख्रुश्चेव ने 1930 के दशक के दौरान स्टालिन द्वारा किए गए शुद्धिकरण का विवरण प्रकट किया।
    - ख्रुश्चेव ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्टालिन के नेतृत्व की आलोचना की।
    - ख्रुश्चेव ने दावा किया कि स्टालिन द्वारा प्रयोग किए गए उपायों से भिन्न उपायों और अहिंसा से समाजवाद प्राप्त किया जा सकता है।
    - ख्रुश्चेव ने तर्क दिया कि "पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व न केवल संभव है बल्कि परमाणु दुर्घटना से बचने के लिए आवश्यक भी है"।

निकिता ख्रुश्चेव द्वारा पालन की गई विस्टालिनीकरण की सामान्य नीति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं के रूप में निम्नलिखित सुधारों को निरूपित किया जा सकता है, जिसे सोवियत संघ के इतिहास में युगांतरकारी परिवर्तन माना जाता है:

- **राजनीतिक सुधार:** पार्टी की प्रधानता पुनर्स्थापित की गई और व्यक्ति पूजा को त्याग दिया गया। स्टालिन के नाम पर रखे गए स्थानों के नाम परिवर्तित कर दिए गए। इसके साथ ही सीक्रेट पुलिस का उपयोग भी कम कर दिया गया। पर्यटन को बढ़ावा दिया गया और आम आदमी को अधिक स्वतंत्रता दी गई। इसके साथ ही प्रेस पर नियंत्रण भी कम कर दिया गया और इस प्रकार भाषण और अभिव्यक्ति की अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता का उपभोग किया जा सकता था। ख्रुश्चेव ने शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का तर्क देकर पश्चिम के साथ तनाव कम करने का प्रयास किया, हालांकि क्यूबा मिसाइल संकट जैसी घटनाओं के कारण शीत युद्ध फिर भी जारी रहा जहाँ सोवियत संघ ने रूस को लक्ष्य करके यूरोप (तुर्की और इटली) में तैनात पश्चिमी देशों की मिसाइलों के प्रत्युत्तर में अमेरिका के बगल में परमाणु मिसाइलें तैनात कर दी थीं।
- **उद्योग**
    - पंचवर्षीय योजनाएं जारी रहीं लेकिन आम आदमी का जीवन स्तर ऊपर उठाने के उद्देश्य के साथ पहली बार मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले हल्के उद्योगों पर ध्यान केंद्रित किया गया।
    - अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में विकेंद्रीकरण करने का प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले संबंधित स्थानीय उद्योगों के संबंध में निर्णय लेने के लिए 100 क्षेत्रीय आर्थिक परिषदों का गठन किया गया।

VISION IAS

  - कारखानों का उत्पादन बढ़ाने के लिए मुख्यालय द्वारा दिया गया कोटा पूरा करने की बजाय प्रबंधकों को लाभ कमाने के लिए प्रोत्साहन राशि दी गई।
  - गुलग श्रमिक शिविरों को बंद कर दिया गया, जिनका उपयोग कैदियों से बलात श्रम कराने के लिए किया जाता था।
- **कृषि:** 1954 में वर्जिन लैंड योजना आरंभ की गई। इसका तात्पर्य साइबेरिया और कजाकिस्तान में विशाल भू-क्षेत्र पर पहली बार खेती करना था। भूमि की खराब गुणवत्ता और धूलभरी आंधियों से मिट्टी का अपरदन (मिट्टी की सबसे ऊपरी परत सबसे अधिक उपजाऊ होती है) के कारण 1963 तक यह योजना बंद कर दी गई। इसके अतिरिक्त कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सरकार ने खरीदी गई फसलों के लिए सामूहिक फार्मों को अधिक भुगतान किया। इससे सामूहिक फार्मों को अधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन मिला। इसके साथ ही सामूहिक फार्मों के किसानों को अपने निजी भू-खंडों पर उगाई गई फसलें रखने या बेचने की अनुमति दी गई। लेकिन अभी भी कृषि क्षेत्र में बहुत अधिक केंद्रीकरण बना हुआ था जिससे कृषि क्षेत्र में पिछड़ापन बना हुआ था। सोवियत संघ को अमेरिका से अनाज का आयात करना पड़ता था।
- **संशोधनवाद (Revisionism):** अतिवादी मार्क्सवादियों द्वारा ख्रुश्चेव पर साम्यवाद के मूलभूत सिद्धांतों में संशोधन करने का आरोप लगाया गया। ऐसा इसलिए था क्योंकि ख्रुश्चेव का कहना था कि समाजवाद के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए अलग-अलग मार्ग विद्यमान हैं। उसने सैटेलाइट राज्यों को समाजवाद का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपनी विधियों का पालन करने की अनुमति दी। (सैटेलाइट राज्य से आशय उन राज्यों से था जो औपचारिक रूप से स्वतंत्र थे लेकिन राजनीतिक, आर्थिक और सैन्य रूप से विदेशी शक्ति के प्रभाव के अंतर्गत थे। सोवियत संघ के संदर्भ में इस शब्द का उपयोग पोलैंड, बुल्गारिया, हंगरी, रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया और पूर्वी जर्मनी जैसे मध्य और पूर्वी यूरोप के देशों के लिए किया जाता था। कभी-कभी क्यूबा जैसे यूरोप के बाहर स्थित देशों को भी सोवियत सैटेलाइट राज्यों की सूची में सम्मिलित किया जाता था)। इसके साथ ही ख्रुश्चेव ने पूरे विश्व में साम्यवाद के लिए हिंसक क्रांति का समर्थन करने की बजाय पूँजीवाद पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह अस्तित्व का समर्थन किया। आलोचकों ने पूँजीवाद उपायों के प्रचलन और प्रबंधकीय वर्ग को बढ़ावा देने पर भी विलाप किया - ख्रुश्चेव ने कारखानों का उत्पादन बढ़ाने के लिए इन तरीकों का उपयोग किया था। आलोचकों का मानना था कि ये उपाय साम्यवाद के मूलभूत सिद्धांतों के विरूद्ध हैं। चीन में माओ 1956 से सोवियत संघ का प्रमुख आलोचक था और वह रूस के उस आर्थिक मॉडल से परे हट गया जिसका चीन ने अभी तक अनुसरण किया था।

18. ब्रेजनेव युग (1964-82)

- निकिता ख्रुश्चेव के बाद ब्रेज़नेव सत्ता में आया। वह 1964 से लेकर 1982 तक सत्ता में बना रहा। उसने ब्रेजनेव सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसका तर्क था कि यदि उस देश में समाजवाद को खतरा पैदा होता है तो किसी भी साम्यवादी देश के आंतरिक मामलों में सोवियत संघ का हस्तक्षेप उचित है। जब सोवियत संघ ने अफगानिस्तान (1979) और पोलैंड (1981) में हस्तक्षेप किया तो यह सिद्धांत कार्यान्वित किया गया। पोलैंड में सॉलीडरिटी ट्रेड यूनियन ने बहु-दलीय प्रणाली और लोकतंत्र की दिशा में संक्रमण की मांग करते हुए विरोध-प्रदर्शनों का नेतृत्व किया। ब्रेजनेव के अंतर्गत सोवियत संघ ने क्यूबा तथा अफ्रीकी देशों इथियोपिया, मोज़ाम्बिक और अंगोला की सहायता राशि बढ़ा दी।

VISION IAS

मुख्य विषय वस्तु 3: मिखाइल गोर्बाचोव की ग्लास्नोस्त (खुलापन) और पेरेस्त्रोइका (पुनर्गठन) की नीतियों और उसके द्वारा सोवियत रणनीतिक लक्ष्यों के पुनर्उन्मुखीकरण ने शीत युद्ध की समाप्ति में योगदान दिया। राज्य के प्रशासन में कम्युनिस्ट पार्टी की संवैधानिक भूमिका समाप्त कर दी गई और अनजाने में सोवियत संघ के विघटन का मार्ग प्रशस्त हुआ। हालांकि पूर्वी यूरोप और रूस में साम्यवाद का अस्तित्व अभी भी एक या दूसरे रूप में बना हुआ है।

19. साम्यवादी राज्यों का पतन

- मिखाइल गोर्बाचोव 1985 में कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव बना। दिसंबर 1991 में सोवियत संघ का विघटन हो गया और इसके साथ ही सोवियत संघ में 74 साल के साम्यवादी शासन का अंत हो गया।

19.1. दूरगामी प्रभाव

पोलैंड (1989) में साम्यवाद के पतन का दूरगामी प्रभाव पड़ा और एक-एक करके पूर्वी यूरोप के राज्यों में और अंततोगत्वा सोवियत संघ में साम्यवादी शासन का पतन हो गया।

- **पोलैंड:** अगस्त 1988 में सॉलीडरिटी ट्रेड यूनियन द्वारा बड़े पैमाने पर की गयी सरकार विरोधी हड़तालों ने सरकार को 1989 में स्वतंत्र चुनाव करवाने के लिए विवश कर दिया जिसमें साम्यवादियों की पराजय हुई।
- इसके बाद सार्वजनिक क्रांतिकारी विरोध रूस के सभी सैटेलाइट राज्यों में फैल गया। हंगरी में स्वतंत्र चुनाव आयोजित किए गए जिसमें साम्यवादियों की पराजय हुई। पूर्वी जर्मनी में 1989 में साम्यवादी सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा और बर्लिन की दीवार (1961 में निर्मित) तोड़ दी गई। 1990 की गर्मियों में सोवियत संघ ने पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण के लिए सहमति व्यक्त की (इसका कारण यह था कि गोर्बाचोव रूसी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए पश्चिमी जर्मनी से सहायता और निवेश चाहता था)। 1989 के अंत में चेकोस्लोवाकिया, बुल्गारिया और रोमानिया में साम्यवादी सरकारों को उखाड़ फेंका गया। यूगोस्लाविया (1990) और अल्बानिया (1991) में स्वतंत्र बहु-दलीय चुनाव आयोजित किए गए। दिसंबर 1991 में सोवियत संघ स्वयं ही विघटित हो गया।

19.2. पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में साम्यवाद की आर्थिक विफलता

- सोवियत संघ के विघटन का प्रमुख कारण आर्थिक विफलता थी। अर्थव्यवस्था अत्यधिक-केंद्रीकृत थी और राज्य द्वारा व्यापार पर बड़े-बड़े प्रतिबंध लगाए गए थे, जिसका परिणाम अनवरत अक्षमता के रूप में सामने आया। इन साम्यवादी देशों में संसाधनों के अकुशल उपयोग के कारण जनता के जीवन स्तर में बहुत धीमी गति से सुधार हुआ था। उदाहरण के लिए इस्पात, ईंधन और ऊर्जा का सर्वोच्च उत्पादक होने के बावजूद सोवियत संघ में मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं की भारी कमी थी। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ के सैटेलाइट राज्यों पर व्यापारिक प्रतिबंध लगे हुए थे। इसके अंतर्गत उन्हें केवल साथी कम्युनिस्ट देशों के साथ व्यापार करने की अनुमति थी। इससे उनकी आर्थिक संवृद्धि प्रभावित हुई। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि श्रमिकों ने साम्यवाद को विफल बनाया क्योंकि पश्चिमी यूरोप के श्रमिकों के विपरीत साम्यवादी विश्व में श्रमिक वर्ग अपेक्षाकृत खराब स्थिति में रह रहा था। इसके साथ ही साम्यवादी पूर्वी यूरोप की तुलना में पूँजीवाद पश्चिमी यूरोप में स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास और सामाजिक सेवाओं के सामाजिक संकेतक बेहतर थे। 1980 के दशक में पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के लोगों के बीच संपर्क में वृद्धि होने के कारण पूर्वी यूरोप के लोगों ने पश्चिम की समृद्धि और पूर्व की गरीबी में भारी अंतर देखा। उन्होंने इसके लिए साम्यवाद और अपने नेताओं को दोषी ठहराया।

VISION IAS

- निकिता ख्रुश्चेव ने अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया लेकिन उसके बाद आर्थिक वृद्धि धीमी हो गई। निकिता के कृषि सुधार विफल रहे। शीतयुद्ध, अंतरिक्ष की दौड़, हथियारों की दौड़, अन्य देशों के संघर्षों में भागीदारी और सहयोगी देशों को सहायता देने के दबाव का - सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। अत्यधिक-केंद्रीकरण, राज्य एकाधिकार, हल्के उद्योगों की उपेक्षा और मूल उपभोक्ता वस्तुओं में मुद्रास्फीति के कारण सोवियत संघ की स्थिति बिगड़ती चली गई।

19.3. मिखाइल गोर्बाचोव

मिखाइल गोर्बाचोव ने सोवियत अर्थव्यवस्था की असफलता को स्वीकार किया साथ ही उसने सार्वजनिक असंतोष और निम्न जीवन स्तर के लिए दमनात्मक कट्टर साम्यवाद की भूमिका को भी स्वीकार किया। उसने निम्नलिखित सुधारात्मक कदम उठाकर स्थिति को सुधारने का प्रयास किया:

- उसने पश्चिम और चीन के साथ संबंध सुधारने का प्रयास किया। इससे अमेरिका, यूरोप और चीन के साथ सोवियत संघ के संबंधों में **तनाव शैथिल्य (देदान्त)** आया। देदान्त का अर्थ तनाव में अपेक्षाकृत स्थाई कमी है। गोर्बाचोव सोवियत संघ की सैन्य भागीदारी को कम करना चाहता था विशेषकर ऐसे समय जब अर्थव्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं थी। 1986 में उसने अफगानिस्तान से वापसी की प्रक्रिया आरंभ की। उसने राजनीतिक सुधारों के लिए विरोध-प्रदर्शन होने पर सोवियत सैटेलाइट राज्यों में सैन्य हस्तक्षेप न करने का भी निर्णय लिया।
- **ग्लास्नोस्त (खुलापन): -** यह राजनीति, मानवाधिकार और सांस्कृतिक मामलों के क्षेत्रों में खुलेपन की नीति थी। ग्लास्नोस्त का उद्देश्य अकुशलता और भ्रष्टाचार को प्रचारित करने और नयी नीतियों के लिए लोगों को तैयार करने हेतु मीडिया का उपयोग करना ही नहीं था अपितु जनता को शिक्षित करना और नई नीतियों के लिए सार्वजनिक समर्थन जुटाना भी था। इस बात को सुनिश्चित करते हुए कि कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना न हो ग्लास्नोस्त (खुलेपन) को प्रोत्साहित किया गया।
    - **राजनीति:** ग्लास्नोस्त में पहले के असंतुष्टों को क्षमा प्रदान करना सम्मिलित था जिन्हें अब जेलों से छोड़ दिया गया। अतीत में 'शुद्धीकरण' के कारण निर्वासन में रहने वाले महत्वपूर्ण नेताओं को मॉस्को लौटने की अनुमति दी गई। पार्टी के कामकाज में अधिक पारदर्शिता लाई गई। उदाहरण के लिए 1988 के पार्टी सम्मेलन का टेलीविजन पर प्रसारण किया गया। राजनीतिक असंतुष्टों को मानसिक अस्पताल / संस्थानों में भेजने से रोकने के लिए 1988 में एक नया कानून लाया गया।
    - **सांस्कृतिक मामले:** सोवियत फिल्म निर्माता संघ, लेखक संघ आदि जैसे संगठनों के अतिवादी प्रमुखों को हटा दिया गया और लोकतांत्रिक चुनावों के माध्यम से स्वतंत्र विचारधारा वाले लोगों को लाया गया। इसके साथ ही स्टालिन विरोधी फिल्मों और उपन्यासों पर लगा प्रतिबंध भी हटा दिया गया। व्यवस्था की आलोचक काव्यात्मक रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति दी गई। मीडिया रिपोर्टिंग में स्वतंत्रता प्रदान की गई। उदाहरण के लिए यूक्रेन की 1986 की चेरनोबिल परमाणु आपदा पर मीडिया में बहुत स्पष्ट रूप से चर्चा की गई।
- **पेरेस्त्रोइका (सामाजिक-आर्थिक सुधार):** - इन सुधारों के लिए अनुकूल वातावरण बनाने हेतु ग्लास्नोस्त आरंभ किया गया था।
    - **पेरेस्त्रोइका के अंतर्गत आर्थिक परिवर्तन:** गोर्बाचोव ने 1984 को 'नवीन आर्थिक प्रबंधन' वर्ष के रूप में घोषित किया। पेरेस्त्रोइका के द्वारा गोर्बाचोव सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सरकारी सेवाओं के मध्य प्रतिस्पर्धा पैदा करना चाहता था ताकि दक्षता में सुधार हेतु उन पर दबाव बन सके। पेरेस्त्रोइका का एक अन्य उद्देश्य लोगों के लिए वैकल्पिक रोजगार के अवसर उत्पन्न करना था ताकि बाजार राज्य के साथ रोजगार का बोझ साझा कर सके। इस प्रकार पारिवारिक रेस्त्रां, पारिवारिक व्यापार और हस्तशिल्प आदि जैसे निजी MSMEs को अनुमति प्रदान की गई। इसी प्रकार निजी सेवाओं जैसे कि ट्यूशन, कार मरम्मत, चित्रकला बेचने इत्यादि की भी अनुमति दी गई। कारखाना उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए पेरेस्त्रोइका सुधारों के अंतर्गत कारखाना प्रबंधन में विशेषाधिकार प्रदान न कर स्वतंत्र निकाय के अंतर्गत पूरे उद्योग में गुणवत्ता नियंत्रण प्रकार्य को शामिल किया गया। लॉ ऑन स्टेट

VISION IAS

इंटरप्राइजेज (1987) के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों का पुनर्गठन किया गया जिसके अंतर्गत बाजार की मांग के अनुसार यह निर्धारित होना था कि क्या और कितना उत्पादन हो। इससे पहले कारखानों को सीधे ग्राहकों से ऑर्डर लेने की अनुमति दी गई थी, लेकिन नए कानून के अधिनियमन के बाद कच्चे माल की खरीद और उत्पादन के संबंध में निर्णय लेने में केंद्रीय योजनाकारों का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया।

- पेरेस्त्रोइका के अंतर्गत राजनीतिक परिवर्तन:
  - **सोवियतों के भीतर लोकतंत्र:** स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा नियुक्त किए जाने के बजाय स्थानीय सोवियतों के सदस्यों का लोगों द्वारा निर्वाचन किया जाना था। इस प्रकार अब उम्मीदवारों का विकल्प था (हालांकि पार्टी का नहीं)।
  - **कारखानों में लोकतंत्र:** कारखानों के प्रबंधन पदों के लिए चुनाव आरंभ किए गए।
  - **सर्वोच्च सोवियत (संसद) में परिवर्तन:** पहले के 1450 सदस्यों के मुकाबले सर्वोच्च सोवियत को 450 सदस्यों का काफी छोटा समूह बनाया गया। इसे वास्तविक संसद के रूप में कार्य करने के लिए अधिक बार बैठकें करनी थी (अर्थात पहले के प्रति वर्ष 2 सप्ताह के सत्र की बजाए 8 महीने तक)। पहले सर्वोच्च सोवियत दो छोटे निकाय नियुक्त किया करती थी जो वास्तविक रूप से नीति निर्माता निकायों के रूप में कार्य करते थे। अब सर्वोच्च सोवियत का अध्यक्ष राज्य का प्रमुख होता। जनप्रतिनिधियों वाली एक नई कांग्रेस (2250 सदस्यों वाली) की स्थापना की गई और इसका कार्य नई सर्वोच्च सोवियत का चुनाव करना था।

19.4. मिखाइल गोर्बाचेव की नीतियों के कारण USSR का पतन क्यों हुआ?

- सर्वप्रथम यह कहा जा सकता है कि USSR का विघटन उसके पूर्ववर्ती नेताओं द्वारा अपनाई गई नीतियों के कारण व्यवस्था में व्याप्त दुर्बलताओं के कारण हुआ और अकेले गोर्बाचोव को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। उसकी नीतियों ने सम्भवतः एक ऐसे संघ के अंत को त्वरित कर दिया, जिसके भाग्य में विफलता लिखी थी। वैकल्पिक रूप से यह तर्क भी दिया जा सकता है कि गोर्बाचोव वास्तव में दोषी था क्योंकि चीन में उसका समकक्ष डेंग जियाओपिंग सामाजिक क्रांति के पश्चात चीन में बाजार अनुकूल सुधारों की लहर प्रारम्भ करने के बावजूद भी एकल पार्टी कम्युनिस्ट राज्य को बनाए रखने में सफल रहा था।
- पहला तर्क उपर्युक्त घटनाक्रमों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। गोर्बाचोव की नीतियों के कारण USSR का अंत हुआ, इस दूसरे तर्क की पांच प्रमुख कारकों के उल्लेख द्वारा विवेचना की जा सकती है। अर्थात् गोर्बाचोव को अतिवादियों और रूढ़िवादियों दोनों ही के विरोध का सामना करना पड़ा; त्वरित परिणामों के लिए किये गए आर्थिक सुधारों की विफलता; सोवियत गणराज्यों के बीच राष्ट्रवादी भावना; गोर्बाचोव और बोरिस येल्तसिन के बीच प्रतिद्वंदिता और 1991 का तख्तापलट।
  - **अतिवादियों और रूढ़िवादियों द्वारा विरोध:** जब गोर्बाचोव ने अपने सुधारों का कार्यान्वयन प्रारम्भ किया तो पार्टी के अतिवादी सदस्यों ने उसका विरोध किया वहीं पार्टी के उदारवादी सदस्यों ने पर्याप्त सुधार न करने के लिए उसकी निंदा की। जब एक दमनकारी शासन सुधार प्रारम्भ करता है तो शासन के लिए यह सबसे खतरनाक होता है। जो लोग सुधारों की इच्छा करते हैं वे कभी भी संतुष्ट नहीं होते हैं और वे अधिक रियायतों की मांग करते हैं, वहीं अतिवादी तत्व शासन के विरुद्ध खड़े हो जाते हैं। ऐसा ही कुछ गोर्बाचोव के साथ हुआ। बोरिस येल्तसिन पार्टी का दक्षिण पंथी सदस्य था। वह रूसी सोवियत गणराज्य में पार्टी का नेता था और भ्रष्टाचार का विरोध करने के कारण लोकप्रिय हो गया था। येल्तसिन शीघ्रातिशीघ्र पश्चिमी शैली की बाजार व्यवस्था लागू करना चाहता था। शीघ्र ही वामपंथी रूढ़िवादियों और दक्षिणपंथी उदारवादियों के बीच विभाजन हो गया। ग्लास्नोस्त द्वारा प्रस्तुत अवसर से लाभ उठाते हुए येल्तसिन ने और अधिक उग्र सुधारों के लिए सार्वजनिक प्रदर्शनों का नेतृत्व करना प्रारम्भ कर दिया और जनता में रूढ़िवादियों की आलोचना की। अतः यह स्पष्ट है कि गोर्बाचोव पार्टी के वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों ही को संतुष्ट करने में विफल रहा।

VISION IAS

- **आर्थिक सुधारों से त्वरित परिणाम नहीं प्राप्त हुए:** 1980 के दशक का USSR 1930 के दशक के अमेरिका जैसी आर्थिक समस्याओं का सामना कर रहा था। इन वर्षों में राष्ट्रीय आय में निरंतर गिरावट देखी गई। रूस की एक चौथाई जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही थी। *लॉ ऑन स्टेट इंटरप्राइजेज* (1987) के कारण भी कुछ समस्याएं थीं। इस कानून के पश्चात वेतन प्रदान करना भी कारखानों का एक कार्य हो गया। इस कानून का उद्देश्य यह था कि कारखाने उत्पादन वृद्धि पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। परन्तु समस्या यह थी कि उत्पादन की गणना उत्पादित वस्तुओं के मूल्य के आधार पर की जाती थी जोकि रूबल (रूसी मुद्रा) में होती थी। इस प्रकार कारखानों ने साबुन, कप आदि जैसी सस्ती वस्तुओं के स्थान पर मँहगी वस्तुओं पर ध्यान केंदित किया। इसके कारण मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं में कमी आई और मुद्रास्फीति में वृद्धि हुई। स्टोरों में लम्बी कतारें लगती थीं। **साइबेरिया कोयला खदान हड़ताल (1989)** इसी का परिणाम थी। जब श्रमिकों के पास स्वयं को धोने के लिए भी साबुन नहीं था तो वे आक्रोशित हो गए और हड़ताल पर चले गए। जल्द ही उनकी हड़ताल में कज़ाकिस्तान, यूक्रेन और साइबेरिया की अन्य खदानों के लगभग 5 लाख खनिक और शामिल हो गए। 1917 की बोल्शेविक क्रांति के पश्चात यह ऐसी पहली बड़ी हड़ताल थी। गोर्बाचोव ने श्रमिकों को कारखाने का सम्पूर्ण नियन्त्रण जैसी खनिकों की मांग को स्वीकार कर लिया। यह घटना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि हड़ताली खनिकों की एक प्रमुख मांग एकल पार्टी व्यवस्था का अंत करना भी थी। चुनाव लड़ने के लिए वे पोलैंड की सॉलिडरिटी ट्रेड यूनियन की शैली पर अपनी स्वयं की एक पार्टी बनाना चाहते थे।
- **सोवियत गणराज्यों के बीच राष्ट्रवादी भावनाएं:** सोवियत संघ 15 सोवियत गणराज्यों का एक संघ था, जिनमें प्रत्येक की अपनी स्वयं की एक संसद थी। फ़ेडरल सुप्रीम सोवियत और कांग्रेस ऑफ़ पीपल्स डेपुटीज मास्को में स्थित था। ग्लास्नोस्त और पेरेस्त्रोइका के कारण सोवियत संघ के देशों ने अपनी-अपनी संसद के लिए और अधिक स्वायत्तता की मांग प्रारम्भ कर दी। गोर्बाचोव उनकी मांगों के प्रति इस शर्त पर सहानुभूति रखता था कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी सर्वोच्च रहे। परन्तु छोटी-छोटी रियायतों का दूरगामी प्रभाव हुआ और गणराज्य अनियंत्रित हो गये।
  - **अज़रबैजान और अर्मेनिया: बहुसंख्यक मुस्लिम जनसँख्या वाले** सोवियत गणराज्य अज़रबैजान की अल्पसंख्यक ईसाई जनसँख्या ने अपने निवास क्षेत्र को बहुसंख्यक ईसाई जनसँख्या वाले सोवियत गणराज्य अर्मेनिया में मिलाने की मांग की। परन्तु पार्टी के रूढ़िवादी सदस्य सोवियत गणराज्यों की सीमाओं में परिवर्तन के विरुद्ध थे और गोर्बाचोव ने अजरबैजान के ईसाइयों की मांग को मानने से मना कर दिया। परिणामस्वरुप शीघ्र ही इन दो सोवियत गणराज्यों के बीच युद्ध छिड़ गया और मास्को ने इन पर से अपना नियन्त्रण खो दिया।
  - **एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया:** 1990 में इन तीन राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। परिणाम स्वरुप USSR ने इस विरोध को दबाने के लिए अपनी सेना भेजी।
  - शीघ्र ही सोवियत गणराज्यों के एक स्वैच्छिक संघ के प्रस्तावक बोरिस येल्तसिन सोवियत गणराज्य रूस (Soviet Republic of Russia) के राष्ट्रपति चुने गये (गोर्बाचोव USSR के राष्ट्रपति थे)।
- **गोर्बाचोव और येल्तसिन के बीच प्रतिद्वंद्विता:** दोनों ही रूस की प्रमुख हस्तियाँ थी और यदि ये दोनों एक साथ मिल कर कार्य करने में सक्षम होते तो शायद USSR की अखंडता बनी रहती, परन्तु इन दोनों में कई मतभेद थे। येल्तसिन का मानना था कि संघ स्वैच्छिक होना चाहिए और यदि कोई एक सोवियत गणराज्य स्वतंत्रता चाहता है तो उसे यह मिलनी ही चाहिए। रूढ़िवादियों के प्रभुत्व वाली कम्युनिस्ट पार्टी में येल्तसिन का विश्वास समाप्त हो गया था और वह एकल पार्टी व्यवस्था के विरुद्ध हो गया था। दूसरी ओर, गोर्बाचोव पार्टी के भीतर ही दो शक्तियों को संतुलित करना चाहता था। यद्यपि वह बहु-पार्टी व्यवस्था के विरुद्ध नहीं था, परन्तु वह सावधानी पूर्वक धीमी गति से सुधार करना चाहता था। इसके अतिरिक्त, जहाँ

VISION IAS

येल्तसिन एक शॉक थेरेपी (आघात उपचार) या बाजार अर्थव्यवस्था की ओर त्वरित बदलाव चाहता था, वहीं गोर्बाचोव धीरे-धीर बदलाव करना चाहता था, क्योंकि बाजार अर्थव्यवस्था से बड़े स्तर पर बेरोजगारी और उच्च मुद्रास्फीति की समस्या उत्पन्न हो सकती थी (केवल मूल्य नियन्त्रण से मुद्रास्फीति को नियन्त्रण में रखा जा सकता था, क्योंकि वस्तुओं की आपूर्ति में कमी थी)।

- **1991 का तख्तापलट:** येल्तसिन ने 1990 में कम्युनिस्ट पार्टी से त्यागपत्र दे दिया। दूसरी ओर रूढ़िवादियों ने गोर्बाचोव पर हमला किया क्योंकि वह बहु-पार्टी प्रणाली के विचार पर चर्चा के लिए तैयार था। पहले से ही सोवियत गणराज्यों ने अलगाव की मांग करना प्रारम्भ कर दिया था। जॉर्जिया ने 1991 में अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी। संघ की रक्षा के अंतिम प्रयास के रूप में गोर्बाचोव ने 15 गणराज्यों को स्वैच्छिक संघ बनाने का प्रस्ताव दिया। इससे पहले कि गोर्बाचोव स्वैच्छिक संघ पर हस्ताक्षर कर पाते, वामपंथी उग्रवादियों ने यानायेव के नेतृत्व में तख्तापलट की कार्यवाही कर दी। इसके प्रत्युत्तर में येल्तसिन ने विशाल सार्वजनिक रैलियों का आयोजन प्रारम्भ कर दिया परन्तु सरकार उसे बंदी बनाने में विफल रही। भारी दबाव में तख्तापलट के नेताओं ने त्यागपत्र दे दिए और उन्हें बंदी बना लिया गया। इसके पश्चात येल्तसिन ने सोवियत गणराज्य रूस (USSR में नहीं) में कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अब येल्तसिन सार्वजनिक नजरों में नायक बन चुका था और गोर्बाचोव को मुख्यधारा से अलग कर दिया गया। येल्तसिन ने शीघ्रता से रूसी सोवियत गणतंत्र को बाजार अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर दिया। येल्तसिन ने स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रमंडल (CIS) नामक स्वैच्छिक संघ के लिए वार्ता प्रारम्भ की। इसमें सदस्य राज्यों को सम्पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता थी, परन्तु उन्हें रूस के साथ अपनी रक्षा और आर्थिक नीतियों का समन्वय करना था। प्रारम्भ में यूक्रेन, बेलारूस और रूस इसमें सम्मिलित हुए और बाद में 8 अन्य गणतंत्र भी CIS में सम्मिलित होने के लिए सहमत हो गए। दिसम्बर 1991 में यूक्रेन की स्वतंत्रता के लिए मतदान हुआ और गोर्बाचोव ने क्रिसमिस के दिन (दिसम्बर 1991) राष्ट्रपति पद से त्यागपत्र दे दिया और USSR का पटाक्षेप हो गया।

20. USSR के पश्चात् साम्यवाद

- 1991 में जो समाप्त हुआ वह साम्यवाद नहीं अपितु स्टालिनवाद था। जल्द ही जिन साम्यवादी दलों में सुधार कार्य हुआ, वे दल पुनः सशक्त हो कर सामने आए और लिथुआनिया, बुल्गारिया, पोलैंड, रूस और दक्षिणी अमेरिका के कई देशों में जहां बहु-पार्टी व्यवस्था थी, ये विभिन्न नामों से सत्ता में रहे। 1991 की शॉक थेरेपी के पश्चात रूस को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। येल्तसिन की बाजार अर्थव्यवस्था अल्पावधि में ही विफल हो गयी। (येल्तसिन को इसका पहले ही आभास हो गया था। उसका तर्क था कि रूस को अल्पावधि में कठिनाईओं का सामना करना पड़ेगा परन्तु उसे दूरगामी लाभ प्राप्त होंगे)। जब चेचेन्या ने स्वाधीनता की घोषणा की तो येल्तसिन ने वहां सेनाएँ भेज दीं। ड्यूमा के 1995 के चुनावों में ज्युगानोव के नेतृत्व में परिष्कृत कम्युनिस्ट पार्टी ने अनेक सीटों पर विजय प्राप्त कर के वापसी की। IMF ने 1996 के राष्ट्रपति चुनावों में कम्युनिस्टों को विजयी होने से रोकने के लिए रूस को 10 बिलियन डालर का ऋण दिया। इसके पश्चात रूस में आर्थिक सुधार होने प्रारम्भ हुए और येल्तसिन बहुत ही कम अंतर से राष्ट्रपति चुने गये। इसके पश्चात भी रूस ने अपनी नीतियों में कुछ समाजवादी विशेषताओं को जारी रखा है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि साम्यवाद अभी भी जीवित है और 1991 में इसका समापन नहीं हुआ था।

VISION IAS

मुख्य विषय वस्तु 4: *प्रारम्भिक वर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ चाइना ने रूसी राजनीतिक दर्शन का निकटता से पालन किया। परन्तु माओ ने यह अनुभव किया कि चीन एक कृषक समाज था और कृषि आधारित कृषक क्रांति चीनी हितों के अधिक अनुकूल थी। इसलिए माओ ने चीनी साम्यवाद के लक्ष्य को कृषक क्रांति की अवधारणा की तरफ मोड़ दिया। इन मतभेदों के बावजूद भी, दोनों देश 1950 के दशक तक कई समान मूल्यों को साझा करते रहे। 1950 के दशक में इन दोनों देशों के मध्य एक प्रमुख वैचारिक मतभेद विकसित हुआ। इस समय ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत संघ ने पूँजीवाद के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का समर्थन किया और रूस की निर्देशित अर्थव्यवस्था में कथित पूँजीवाद विशेषताओं को प्रस्तुत किया। इन दोनों मोर्चों पर सैद्धांतिक मतभेद दुःसाध्य सिद्ध हुए और कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ चाइना ने औपचारिक रूप से सोवियत शैली के साम्यवाद की आलोचना की और इसे मार्क्स की शिक्षाओं से एक खतरनाक विचलन बताया।*

21. चीनी साम्यवाद बनाम रूसी साम्यवाद

21.1. 1949 में चीन की समस्याएं

- लम्बी अवधि तक हुए आतंरिक एवं बाह्य युद्धों ने चीन को तबाह कर दिया था। 1916-28 की अवधि को चीन में वॉरलार्ड युग के रूप में जाना जाता है। इस अवधि में चीन में बहुत कम विकास हुआ, लगभग हरतरफ बाधाएं मौजूद थीं। इसके तुरंत बाद 1931 में वह जापान के साथ युद्ध में उलझ गया। इसी समय कुओमिन्तांग (KMT) और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (CCP) के मध्य गृहयुद्ध चल रहा था और यह 1949 तक चला। 1949 में माओ ज़ेडोंग (माओत्से तुंग) के नेतृत्व में CCP के सत्ता में आने के उपरांत यह गृह-युद्ध समाप्त हुआ। हालांकि इसके बाद भी चीन को युद्ध से कोई राहत नहीं मिली थी क्योंकि इसे फिर से उत्तर कोरिया के पक्ष में कोरियन युद्ध (1950) में हस्तक्षेप करना पड़ा। चीन ने संयुक्त राज्य अमेरिका को चेतावनी दी थी कि वह उत्तर कोरिया पर आक्रमण न करे, परन्तु दोनों कोरिया को एक करने के उत्साह में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्वीकृत सेनाएँ अमेरिका के नेतृत्व में उत्तर कोरिया की सीमाएं पार कर गईं और चीनी सीमाओं के बहुत निकट आ गईं। चीन अपने निकट पड़ोसी देश (कोरिया) को पूंजीवाद का समर्थक बनते देख खतरा अनुभव करने लगा था, अतः उसने संयुक्तराष्ट्र की सेनाओं को पीछे धकेल दिया। अंततः उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के मध्य *38वीं समानांतर (38 डिग्री उत्तरी अक्षांश रेखा)* को दोनों के मध्य की सीमा मान ली गयी।
- चीन को मूलभूत ढांचे के विकास की बहुत अधिक आवश्यकता थी।
- इसे अपने कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में व्याप्त अक्षमता से भी निबटना था।
- खराब कृषि उत्पादन विशाल जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा को पूरा करने में विफल हो रहा था और इसलिए चीन को खाद्य सामग्री की कमी और उससे उपजी खाद्य मुद्रास्फीति की दोहरी चुनौती का सामना भी करना पड़ रहा था।
- 1949 के चीनी समाज में असमानता व्याप्त थी। कुओमिन्तांग समृद्ध जमींदारों और उद्योगपतियों का समर्थन कर रहे थे। इसलिए, भूमि सुधार चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालिक एजेंडे का भाग था।

चीन द्वारा अपनाया गया मॉडल (प्रारूप) 1958 तक रूस में अपनाए गए मॉडल जैसा ही था। माओ द्वारा शुरू किए गए "**100 फ्लावर कैंपेन' (1957)** का उद्देश्य यह था कि लोग व्यवस्था के प्रति अपने विचार प्रकट करें। 100 फ्लावर कैंपेन के पश्चात माओ ने अनुभव किया कि जनता में असंतोष बढ़ता जा रहा था। इसलिए उसने 1958 में ग्रेट लीप फॉरवर्ड कार्यक्रम प्रारम्भ किया, जो बाद में चीन के समाजवाद का मूलभूत कार्यक्रम बन गया था।

21.2. रूसी मॉडल में परिवर्तन क्यों किया गया?

माओ द्वारा रूसी मॉडल या प्रारूप को छोड़ दिया गया क्योंकि:

- भारी औद्योगीकरण पर ध्यान केन्द्रित करने से एक नई श्रेणी के तकनीशियन और इंजीनियर तैयार हो रहे थे। पार्टी कार्यकर्ताओं और तकनीशियन और इंजीनियर वर्ग के बीच संघर्ष बढ़ रहा था। पार्टी के कार्यकर्ताओं का कार्य लोगों को राजनीतिक और आर्थिक रूप से संगठित करना था। उदाहरण के लिए खेतों के सामूहिकीकरण और भूमि के पुन: वितरण कार्यक्रम के दौरान पार्टी के कार्यकर्ताओं ने ही भूमि बेदखली (land eviction) का कार्य किया था।
- **100 फ्लावर कैंपेन (1957):** सरकार चीनी समाज से वर्ग संघर्ष को समाप्त करना चाहती थी। पहली योजना (1953-58) के परिणामों से प्रसन्न हो कर सरकार ने कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों के बीच संघर्ष के समाधान के लिए खुली चर्चा के आयोजन का निर्णय किया। माओ ने कहा "*100 फूलों को खिलने दो और 100 विचारधाराओं की प्रतिस्पर्धा होने दो।*" इस प्रकार 100 फ्लावर कैंपेन के माध्यम से माओं ने "रचनात्मक आलोचनाओं" का स्वागत किया। परन्तु इससे जो प्राप्त हुआ वह एक आक्रामक मुखर आलोचना थी, जिसमें पार्टी कार्यकर्ताओं के अति उत्साह और अक्षमता, सरकार का अति केन्द्रीकरण और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अलोकतांत्रिक होने को लक्षित करते हुए आलोचना की गई। कुछ आलोचकों ने तो बहु-पार्टी प्रणाली का भी सुझाव दे दिया। इन सब का परिणाम यह हुआ कि माओ ने तुरंत ही इस अभियान को बंद कर दिया और आलोचकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 100 फ्लावर कैंपेन ने यह प्रदर्शित किया कि साम्यवाद के विरुद्ध अभी भी कितना विरोध है। इसलिए उसने रूसी मॉडल को छोड़ कर क्रांति के संरक्षण और साम्यवाद की प्रगति को संगठित करने के लिए ग्रेट लीप फॉरवर्ड (1958) प्रारम्भ किया।

रूसी मॉडल (प्रारूप) और साम्यवाद के चीनी प्रारूप में मूल विभेदों की निम्नलिखित रूपों में व्याख्या की जा सकती है:

- **कम्यून की नई पद्धति** चीन के सन्दर्भ में विशिष्ट थी। कम्यून सामूहिक खेतों के जमावड़े से कहीं कुछ अधिक था। उन्होंने स्थानीय स्व-शासन की इकाईयों के रूप में कार्य किया, कल्याणकारी सेवाएं उपलब्ध कराईं और पार्टी को जनता के सम्पर्क में बने रहने में सहायता की।
- **भारी उद्योगों पर कम ध्यान देना** और मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं पर अधिक ध्यान देना। इसने दैनिक जीवन की वस्तुओं में कमी को रोकने और मुद्रास्फीति को नियन्त्रण में रख कर आम आदमी की दैनिक आवश्यकताओं पर ध्यान दिया। दूसरी ओर रूस को मूलभूत उपभोक्ता वस्तुओं की कमी को झेलना पड़ा।
- केंद्रीकृत औद्योगिकीकरण के स्थान पर **ग्रेट लीप फॉरवर्ड** के द्वारा **विकेंद्रीकृत औद्योगिकीकरण** पर ध्यान दिया गया। माओ ने घरों के पिछले हिस्से में कम्यून्स द्वारा व्यवस्थित और प्रबंधित 6 लाख इस्पात भट्टियों (6 lakh backyard steel furnaces) की बात की। यह फार्म मशीनरी प्रदान करने वाली बहुत ही छोटे आकार की इकाइयाँ थीं।
- **औद्योगिक अर्थव्यवस्था के स्थान पर कृषि-केन्द्रित अर्थव्यवस्था:** ग्रेट लीप फॉरवर्ड के अंतर्गत माओ ने यह निर्णय लिया कि चीन मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में फैले छोटे उद्योगों के साथ एक कृषि अर्थव्यवस्था होगा। इसके अतिरिक्त उद्योग श्रम-आधारित होंगे जिनकी मशीनों पर निर्भरता कम होगी। इससे बेरोजगारी पर रोक लगी जो औद्योगिकीकृत पश्चिमी देशों का मुख्य लक्षण था। चीन की 600 मिलियन की विशाल जनसंख्या को देखते हुए इसे सर्वश्रेष्ठ रणनीति मानी गयी थी। कृषि अर्थव्यवस्था ने समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में भी सहायता प्रदान की।

21.3. 1958 तक रूसी मॉडल के साथ समानताएँ

- प्रथम पंचवर्षीय योजना (1953-58) को रूसी सलाहकारों की सहायता से तैयार किया गया था। रूस ने चीन के औद्योगिकीकरण में भी उसको सहायता प्रदान की। रूसी मॉडल की भाँति प्रथम

VISION IAS

योजना में भारी उद्योगों पर ध्यान दिया गया और तुलनात्मक रूप से उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर कम ध्यान दिया गया। चीन ने USSR की भाँति पंचवर्षीय योजनाओं को अपना कर कमांड अर्थव्यवस्था प्रारूप को अपनाया। इस प्रकार रूस की भाँति चीन ने भी केंद्रीकृत आर्थिक नियोजन को अपनाया।

21.3.1. रूस सदृश्य कृषि परिवर्तन (1950-56)

- चीन ने भूमि सुधार कार्यक्रम को दो चरणों में पूरा किया। **पहले चरण में,** किसानों के बीच **भूमि पुनर्वितरण** के लिए कार्यक्रम लाया गया। इसके कार्यान्वयन में कुछ हिंसा का उपयोग भी हुआ, क्योंकि समृद्ध किसानों ने अपनी भूमि जब्त किए जाने का विरोध किया। **दूसरे चरण में,** सहकारी समितियों का आरंभ किया गया। **सहकारी समितियों** के गठन में खेतों के विखंडित छोटे टुकड़ों के एकीकरण द्वारा सामूहिक फार्म बनाना सम्मिलित था। परन्तु चीन ने रूस में अपनाये गये हिंसक उपायों के स्थान पर अनुनय की विधि को अपनाया। किसानों की प्रत्येक सहकारी समिति में खेतों और उपकरणों का संयुक्त स्वामित्व 100-300 परिवारों के पास था। 1956 तक 95 प्रतिशत चीनी किसान इन सहकारी समितियों के सदस्य थे।

21.3.2. रूस सदृश्य औद्योगिक परिवर्तन (1953-58)

- प्रथम पंचवर्षीय योजना में, चीन ने अधिकतर व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण कर दिया था और रूस ने भी कोयला, इस्पात और लोहे आदि भारी उद्योगों में बहुत अधिक निवेश किया था।
- प्रथम योजना के परिणाम अच्छे थे और उद्योगों में लक्ष्य से 120 प्रतिशत अधिक वृद्धि हुई। चीनी अर्थव्यवस्था में सुधार होना आरम्भ हो गया था। सभी संचार व्यवस्थाएँ बहाल हो गईं थीं और मुद्रास्फीति नियन्त्रण में आ गयी थी। परन्तु इसके साथ कुछ नकारात्मक पक्ष भी जुड़े थे। 1957 के 100 फ्लावर कैंपेन में लोगों ने सरकार की नीतियों की आलोचना की थी और इसलिए माओ को संदेह हुआ कि क्या भारी उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया जाना चीन के लिए अच्छा है। इसके अतिरिक्त जब माओ ने रूस पर संशोधनवाद (मार्क्स की शिक्षाओं से खतरनाक/आपत्ति जनक प्रस्थान) का आरोप लगाया, तो उसने चीन को दी जाने वाली सहायता में कमी कर दी और उसके पश्चात USSR और चीन के बीच सम्बन्धों में प्रतिकूल मोड़ आ गया। इसके उपरांत चीन ने वैश्विक समाजवादी कैम्प से रूस के नेतृत्व में बदलाव की मांग की।

21.4. ख्रुश्चेव के नेतृत्व वाले रूसी दृष्टिकोण से मतभेद

- माओ पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के विरुद्ध था, जिसका समर्थन ख्रुश्चेव ने अपने 1956 के भाषण में किया था। वह USSR द्वारा अपनाए गये पूँजीवादी उपायों के उपयोग के भी विरुद्ध था और उसका यह तर्क था कि पूँजीवाद के प्रति USSR का दृष्टिकोण नर्म था। माओ रूस द्वारा पूँजीवादी मार्ग का अनुसरण किए जाने के भी विरुद्ध था। उदाहरण के लिए ख्रुश्चेव ने कारखानों के प्रबन्धन के लिए एक विशेषज्ञ और तकनीकी रूप से एक बेहतर प्रबन्धकीय वर्ग के सृजन का समर्थन किया था। माओ के अनुसार इससे कारखानों के कामगारों के बीच वर्ग असमानता में वृद्धि होगी और तकनीकी रूप से बेहतर वर्ग कारखानों में कामगारों को अपने अधीन कर लेगा। माओ विभेदीकृत वेतन (differential piece wage rate), कार्य प्रदर्शन से जुड़े प्रोत्साहन और भूमि के निजी स्वामित्व के विरुद्ध था (हालांकि वह छोटे भूमिखंडों पर किसानों के निजी स्वामित्व के पूर्णतः विरुद्ध नहीं था)। माओ के अनुसार रूस अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप मार्क्स और लेनिन के मूल विचारों में (अर्थात मार्क्सवाद) संशोधन कर रहा था। माओ पूंजीवाद के साथ सह-अस्तित्व के स्थान पर साम्यवाद को प्राप्त करने के लिए हिंसक क्रांति को साधन के रूप में उपयोग करने के पक्ष में था।

VISION IAS

- **ग्रेट लीप फॉरवर्ड (1958):** 100 फ्लावर कैंपेन के दौरान जब माओ को आलोचनाएँ झेलना पड़ा तब माओ ने ग्रेट लीप फॉरवर्ड कार्यक्रम प्रारम्भ किया जिसमें **माओवाद** देखने को मिला। 100 फ्लावर कैंपेन के दौरान लोगों को अपने विचार प्रकट करने की अनुमति थी, बहुत से लोगों ने पार्टी की आलोचना करनी प्रारम्भ कर दी और उन्होंने लोकतंत्र की ओर बढ़ने की मांग की। माओ ने अनुभव किया कि साम्यवादी क्रांति की रक्षा के लिए और आम आदमी की आर्थिक समृद्धि के लिए साम्यवाद पर लोगों के विश्वास को बढ़ाना होगा। चीन की अधिकांश जनसंख्या कृषक थी। इस प्रकार ग्रेट लीप फॉरवर्ड का उद्देश्य औद्योगिक विकास का परित्याग किये बिना कम्युनिस्ट क्रांति को बचाने के लिए कृषि विकास पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना था। ग्रेट लीप फॉरवर्ड के साथ चीनी साम्यवाद रूसी मॉडल से दूर होता चला गया।
    - ग्रेट लीप फॉरवर्ड का आशय था कि चीन धीरे-धीरे औद्योगीकरण के साथ-साथ बड़े स्तर पर कृषि अर्थव्यवस्था पर भी ध्यान केन्द्रित करेगा। यह श्रमिक बहुल वाली अर्थव्यवस्था को अपनाना चाहता था, और कारखानों में अत्यधिक मशीनरी के उपयोग को घटाना चाहता था, ताकि लोगों को और अधिक रोजगार प्रदान किया जा सके। जिस औद्योगीकरण के मॉडल को अपनाया जाना था उसमें कुछ चुने हुए केन्द्रों पर भारी उद्योगों के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्रों में छितराए हुए लघु उद्योगों पर ध्यान केन्द्रित करना था।
    - ग्रेट लीप फॉरवर्ड में **कम्यून** के रूप में एक नई पद्धति सम्मिलित **थी:**
        - इसका उद्देश्य शक्ति के अति-केन्द्रीकरण को रोकना था और इस हेतु कम्यून नामक एक पहल को अपनाया गया। कम्यून सामूहिक फार्म (खेत) से बड़ी इकाई थी। इसमें अनेकों सामूहिक फार्म सम्मिलित किए गए थे (प्रत्येक सामूहिक फार्म से 100 से 300 किसान परिवार संबद्ध थे) और इस प्रकार से प्रत्येक कम्यून में 30,000 से 75,000 के बीच की जनसंख्या सम्मिलित होती थी। प्रत्येक कम्यून में किसान, वृद्ध, महिलाएं, बच्चे, श्रमिक और 30-40 स्नातक तथा 30-40 तकनीशियनों वाली एक वैज्ञानिक टीम शामिल होती थी।
        - कम्यून्स **केवल साधारण खेतों (फार्मों) का जमावड़ा भर नहीं थे, वे स्थानीय स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में भी कार्य करते थे।** स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार कम्यूनों को बाँधों, सिंचाई परियोजनाओं और स्थानीय सड़क निर्माण जैसे मूलभूत ढांचागत परियोजनाओं के कार्यान्वयन का कार्य भी करना होता था। वे घरों के पिछले हिस्से में इस्पात भठ्ठियों जैसे अपने स्वयं के कारखाने चलाते थे (ग्रामीण क्षेत्रों में लघु उद्योग मॉडल)। माओ ने 6 लाख घरों के पिछले हिस्से में इस्पात भठ्ठियों की स्थापना की बात की थी। इन लघु उद्योगों / कारखानों ने कम्यून के किसानों को फार्म उपकरण प्रदान किये।
        - **सामाजिक सेवाएँ प्रदान करने में भूमिका:** ये कम्यून अपने सदस्यों को मूलभूत सेवाएँ प्रदान करने के लिए शिक्षा के प्रसार का कार्य करते थे, महिलाओं को बेहतर अवसर प्रदान करना और अन्य कल्याणकारी सेवाओं के लिए क्रैच, विद्यालय और प्राथमिक सेवा केन्द्रों का संचालन करना इनके अन्य कार्य थे।
        - कम्यूनों के राजनीतिक ढांचे में एक निर्वाचित परिषद, ब्रिगेड और कार्यकारी टीमें सम्मिलित थीं। दूसरे शब्दों में कम्यूनों का गठन एक निर्वाचित परिषद सहित, ब्रिगेडों और कार्यकारी टीमों के रूप में होता था।
    - **ग्रेट लीप फॉरवर्ड का आकलन:**
        - इसके अंतर्गत लोगों को अल्पावधि में कठिनाईयों का सामना करना पड़ा, परन्तु ग्रेट लीप फॉरवर्ड ने निश्चित रूप से चीन को दीर्घकालिक लाभ पहुंचाए थे।
        - पार्टी कार्यकर्ताओं को सौंपे गये कार्यों को करने में उनकी अनुभवहीनता के कारण अल्पावधि में कुछ कठिनाइयाँ भी आईं। इसके अतिरिक्त 1959 से 1961 तक फसलें भी निरंतर रूप से खराब हुईं। 1956 में रूस द्वारा सहायता से हाथ खींच लेने से चीन को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। ग्रेट लीप फॉरवर्ड से सम्बन्धित कठिनाईयों

VISION IAS

के कारण लगभग 20 मिलियन लोगों की समय से पूर्व मृत्यु हो गई। फलस्वरूप माओ के खिलाफ लोगों का आक्रोश बढ़ता गया।

- दीर्घकालीन रूप से ग्रेट लीप फॉरवर्ड चीन के लिए एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

- दीर्घावधि में कृषि और औद्योगिक उत्पादन में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई और इन सबसे लाभ उठाने के लिए प्रयास आरम्भ हो गये थे।
- ग्रेट लीप फॉरवर्ड ने कम्यून जैसी नई पद्धति के माध्यम से अति-केन्द्रीकरण पर रोक लगाई जो किसी भी प्रकार की पहल को दबा देता है। सामूहिक खेती के लिए कम्यून बहुत ही सरल उपकरण है। इनसे स्थानीय सरकार में जनता की भागीदारी सम्भव हो गयी और उनकी शिकायतों को शांत करने में सहायता मिली। वे स्थानीय स्व-शासन की कुशल इकाईयों के रूप में कार्य करने में सफल रहे और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को स्थानीय विचार और जनता की अपेक्षाओं से जोड़े रखा।
- बिखरे हुए और श्रमिक बहुल औद्योगिक मॉडल के कारण ग्रेट लीप फॉरवर्ड बेरोजगारी पर रोक लगाने में सक्षम रहा।
- शिक्षा प्रसार, महिलाओं की स्थिति में सुधार, बेहतर कल्याणकारी सेवाएं – ग्रेट लीप फॉरवर्ड के कुछ अन्य लाभ थे।

चित्र: माओत्से तुंग

21.5. सांस्कृतिक क्रांति (1966-69)

इसे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति (Great Proletarian Cultural Revolution) के रूप में भी जाना जाता है। क्रांति के उत्साह को बढ़ाने, कम्युनिस्ट क्रांति को बचाने, ग्रेट लीप फॉरवर्ड के पक्ष में जनता का समर्थन जुटाने और ग्रेट लीप फॉरवर्ड को विशुद्ध रूप से मार्क्सवाद और लेनिनवाद की परिपाटी पर बनाए रखने के लिए माओ द्वारा प्रारम्भ किया गया यह एक विशाल प्रचार अभियान था। इसके निम्नलिखित उद्देश्य थे:

- **कम्युनिस्ट क्रांति की रक्षा करना और ग्रेट लीप फॉरवर्ड को मार्क्सवाद की परिपाटी पर बनाए रखना:** कम्युनिस्ट पार्टी को बचाए रखने के लिए यह माओ का प्रयास था, जिसे कम्युनिस्ट पार्टी के दक्षिण पंथी नेताओं से खतरा था, जो रूसी पद्धति पर पूँजीवादी विशेषताओं को सम्मिलित करना चाहते थे (ख्रुश्चेव के शासनकाल में रूस ने कथित रूप से साम्यवाद के लिए पूँजीवाद का मार्ग चुन लिया था)। इस प्रकार से सांस्कृतिक क्रांति का उद्देश्य दक्षिण पंथी नेताओं का विरोध करना था, जो वेतन में अत्यधिक अंतर और किसानों को बड़े निजी भूखंड जैसे प्रोत्साहनों को प्रारम्भ करने की मांग कर रहे थे, जो उनके अनुसार कम्यूनों की दक्षता में वृद्धि के लिए आवश्यक थे। उन्होंने रूसी पद्धति के अनुसार विशेषज्ञ प्रबन्धन वर्ग के सृजन के पक्ष में तर्क दिया ताकि भारी उद्योगों की वृद्धि के लिए अनुभवहीन पार्टी कार्यकर्ताओं पर निर्भर न रहना पड़े। इस चर्चा के समाधान के लिए 100 फ्लावर कैम्पेन स्पष्ट रूप से चलता रहा। परन्तु इस प्रकार के उपायों में ख्रुश्चेव द्वारा अपनाए गये

पूँजीवादी मार्ग की झलक थी, जिसकी माओ ने संशोधनवाद कह कर आलोचना की थी। माओ के अनुसार, इस प्रकार के दृष्टिकोण से समृद्ध वर्ग और समृद्ध किसान और प्रबंधकों के समृद्ध वर्ग उभरने लगेंगे, जो निर्बल वर्गों का शोषण करेंगे, जिससे कम्युनिस्ट क्रांति प्रभावी रूप से समाप्त हो जाएगी।

- **ग्रेट लीप फॉरवर्ड के लिए समर्थन जुटाना:** माओ ने जब ग्रेट लीप फॉरवर्ड का प्रयोग किया तो इसके प्रारम्भिक चरणों में (1959 से 1963 में अल्पविधि के लिए) कुछ कठिनाइयाँ सामने आईं, जबकि दीर्घकाल में ग्रेट लीप फॉरवर्ड का परिणाम सामने आना बाकी था। इस प्रकार से पार्टी के भीतर माओ का विरोध बढ़ रहा था और ग्रेट लीप फॉरवर्ड पर बड़ी चर्चा चल रही थी और कई लोग इस बात का समर्थन कर रहे थे कि पूँजीवादी उपायों को प्रारम्भ करने का समर्थन किया जाए। इसलिए माओ को ग्रेट लीप फॉरवर्ड कार्यक्रम के लिए जनता का समर्थन जुटाने हेतु प्रचार कार्यक्रम की आवश्यकता थी।
- **सांस्कृतिक क्रांति की विशेषताएँ:** चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष के रूप में माओ ने 1966 में सांस्कृतिक क्रांति का शुभारम्भ किया। माओ के समर्थक रेड गार्ड कहलाते थे (उनमें से अधिकांश ने माओ की सांस्कृतिक क्रांति के समर्थन में विद्यालय और महाविद्यालय छोड़ दिए थे), उन्होंने संपूर्ण चीन का (उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम) भ्रमण किया और माओ के पक्ष में चर्चाएँ कीं। सांस्कृतिक क्रांति के दौरान चार 'प्राचीनों' (four 'olds') की आलोचना की गयी थी – अर्थात प्राचीन संस्कृति, प्राचीन आदतें, प्राचीन विचार और प्राचीन रीति रिवाज। इसके अतिरिक्त बुद्धिजीवियों को ग्रामीण क्षेत्रों और उनकी चुनौतियों और उपलब्ध अवसरों को समझने के लिए भेजा गया।
- **सांस्कृतिक क्रांति की आलोचना:** सांस्कृतिक क्रांति ने चीन में कुछ सीमा तक अव्यवस्था और गृहयुद्ध जैसी स्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। प्रारम्भ में रेड गाड्र्स (अधिकांश छात्र) ने अपनी हिंसा के द्वारा माओ के आलोचकों को लक्षित किया परन्तु शीघ्र ही अति उत्साह में उन्होंने किसी पर भी और सब पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। शिक्षक, पेशेवर लोग, स्थानीय पार्टी अधिकारी – सब को लक्षित किया गया। एक बार छात्र समूह उत्तेजित हो जाता था तो उन पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता था। कुख्यात **'चार लोगों का गिरोह' (Gang of four)** में महत्त्वपूर्ण नेता और माओ की पत्नी शामिल थे। इन्होंने माओ समर्थकों को अत्याचार करने के लिए उकसाया। ऐसा कहा जाता है कि चार लोगों का यह गिरोह माओ से भी अधिक माओवादी था। इसके कारण लाखों लोगों का जीवन बर्बाद हो गया। सांस्कृतिक क्रांति के दौरान अराजकता के कारण आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया था। लाखों लोगों को परेशान किया गया और वे बर्बाद हो गये। एक वर्ष के भीतर ही अर्थात 1967 तक रेड गाड्र्स के अतिवादी अनियंत्रित हो गये और माओ को सेना बुलाना पड़ा जिसने स्थिति को नियंत्रित किया। माओ ने रेड गाड्र्स के नेताओं और रक्षा मंत्री को इस स्थिति के अनियंत्रित होने के लिए दोषी ठहराया और परिणामस्वरूप कई रेड गाड्र्स पर अत्याचारों के लिए अभियोग चलाया गया और उन्हें मृत्युदंड दिया गया। 1969 में सांस्कृतिक क्रांति को औपचारिक रूप से समाप्त कर दिया गया और माओ को सभी दोषों से मुक्त घोषित कर दिया गया।
- **सांस्कृतिक क्रांति के सकारात्मक प्रभाव:** यद्यपि सांस्कृतिक क्रांति ने लगभग दस वर्ष तक आर्थिक प्रगति को रोक कर रखा, लेकिन 1970 के दशक के मध्य में कुछ आर्थिक सुधार हुआ। 1976 में माओ की मृत्यु के समय तक चीन आर्थिक सुधार के मार्ग पर चल पड़ा था।
    - छोटे उद्योगों पर ध्यान केन्द्रित करने से वहां उपभोक्ता वस्तुओं की कमी नहीं हुई, जैसी रूस में हुई थी।
    - जनसंख्या का एक उच्च प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहता था और यह जनसंख्या भलीभांति शिक्षित, कुशल और कम्यूनों के रूप में संगठित थी।
    - इस दौरान चीन में कोई भी अकाल नहीं पड़ा और खाद्यान्नों का उत्पादन वृद्धिमान जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम रहा।
    - औद्योगिक विकास से चीन में इस्पात के उत्पादन में तीन गुना वृद्धि हुई और पेट्रोलियम उद्योग के लिए एक महत्त्वपूर्ण नींव रखी जा चुकी थी। चीन शून्य से आरंभ कर स्वयं को मशीन निर्माण उद्योग में परिवर्तित करने में सक्षम रहा। औद्योगिक विकास ने चीन को परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में एक शक्ति बनने के लिए आधार प्रदान किया।

VISION IAS

मुख्य विषय वस्तु 5: माओ के उत्तराधिकारी डेंग जियाओपिंग ने सांस्कृतिक क्रांति के कारण हुए आर्थिक संकट के पश्चात चीन के आर्थिक पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उसकी आर्थिक नीतियाँ माओ की राजनीतिक विचारधाराओं के प्रतिकूल थीं। चीन को विदेशी निवेश के लिए खोलना, प्रशासन का विकेंद्रीकरण और सीमित निजी प्रतियोगिता प्रारम्भ करने जैसे सुधारों की श्रृंखला के द्वारा डेंग जियाओपिंग के शासनकाल के अंतर्गत चीन एक साम्यवादी बाजार अर्थव्यवस्था के रूप में विकसित हुआ। थियानमेन विरोध और अन्य प्रजातंत्र समर्थक विरोधों को डेंग जियाओपिंग द्वारा कठोरता से निबटने के कारण चीन साम्यवाद को ऐसे समय में जारी रखने में सफल रहा जब वैश्विक कम्युनिस्ट ढाँचा 1980 के दशक के अंतिम समय में संकट से ग्रस्त हो रहा था।

22. 1976 में माओ की मृत्यु के बाद चीन में साम्यवाद

- **सत्ता के लिए संघर्ष:** माओ की मृत्यु के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर सत्ता के लिए संघर्ष उत्पन्न हो गया। माओ विरोधी वर्ग और मजबूत होकर उभरा और डेंग जियाओपिंग उस लॉबी के नेता के रूप में उभरा (1976-89)। 'गैंग आॅफ फोर' (चार लोगों का समूह), जिनका नेतृत्व माओ की पत्नी कर रही थी, के विरुद्ध सांस्कृतिक क्रांति के दौरान किए गए अत्याचार के लिए मुकदमा चलाया गया। तात्कालीन पार्टी नेतृत्व पर गौर करें तो ऐसा लगता है कि यह एक माओ विरोधी कदम था, जो कि स्टालिनवाद को प्रभावहीन करने जैसे ही माओ (वाद) के व्यक्तित्व के प्रभाव को भी कम करना चाहता था। 1978 के मध्य के बाद से डेंग जियाओपिंग चीन का सर्वोच्च नेता बन गया। पूँजीवादी नीति का समर्थक होने के कारण सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, डेंग को पार्टी में अपने सभी पदों से अवकाश लेने के लिए बाध्य होना पड़ा था। डेंग जियाओपिंग को सांस्कृतिक क्रांति के दौरान रेड गार्ड्स द्वारा पीटा गया था और उनके बेटे के प्रताड़ित किया गया था। उन्हें चार साल तक एक साधारण कर्मचारी के रूप में काम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र में भेज दिया गया था।
- **डेंग के नेतृत्व में नीतियों में नाटकीय परिवर्तन:** सत्ता में आने के बाद 1978 में डेंग जियाओपिंग ने आकस्मिक नीतिगत बदलाव लाने आरंभ कर दिए। डेंग द्वारा प्रवर्तित नीतियाँ पूँजीवाद-समर्थक और माओवाद व उसकी सांस्कृतिक क्रांति के विपरीत थीं। आर्थिक क्षेत्र में, चीन ने जिन नीतियों को अपनाया, वे अंत में बाजार समाजवाद में परिवर्तित हुईं:-
    - सांस्कृतिक क्रांति के दौरान किए गए परिवर्तन उलट दिए गए थे।
        - जब्त की गई सभी संपत्तियों को उनके मूल मालिकों को लौटा दिया गया।
        - जनता को अभिव्यक्ति और धर्म की अधिक स्वतंत्रता दी गई।
        - बुद्धिजीवी वर्ग को साहित्यिक और अन्य कला-रूपों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त करने की भरपूर स्वतंत्रता दी गई।
        - स्थानीय सरकार चलाने के लिए बनाई गई क्रांतिकारी समितियों के बदले अधिक लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित समूहों को सत्ता सौंपी गई।
    - डेंग ने पूँजीवाद और 'ओपन डोर' (मुक्त द्वार) आर्थिक नीतियों को अपनाकर **आधुनिकीकरण के चार पहलुओं;** जैसे- कृषि, उद्योग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी और रक्षा; को अपना लक्ष्य बनाया। इन चार आधुनिकीकरणों के लिए निम्नलिखित कदम उठाए गए:
        - विदेशी सरकारों और विदेशी बैंकों से ऋण प्राप्त करना।
        - 1980 में चीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व बैंक में सम्मिलित हो गया।
        - आधुनिक उपकरणों के आयात के लिए विदेशी कंपनियों के साथ अनुबंध पर हस्ताक्षर किए गए।

VISION IAS

- **विकेंद्रीकरण** को बढ़ावा दिया गयाः सरकारी नियंत्रण वाले फार्मों को नियोजन, वित्तपोषण और मुनाफे के उपयोग पर अधिक नियंत्रण दिया गया।
- **दक्षता और औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहनः-**
  - पूँजीवादी उपायों जैसे बोनस, प्रति नग वेतन दर (piece wage rates) और लाभ के बँटवारे को प्रोत्साहन दिया गया।
  - राज्य ने अब कम्यून से उत्पादों की खरीद के लिए उच्च मूल्य चुकाने आरंभ किए।
  - अधिक उत्पादन के लिए कम्यून को प्रोत्साहित करने के लिए उन पर लगने वाले करों को घटा दिया गया।

- **डेंग जियाओपिंग के भविष्य के लक्ष्यः** 1986 में डेंग ने भविष्य के लिए अपने विचारों को सूचीबद्ध किया। डेंग की भविष्य की परिकल्पनाओं या उनके मुख्य लक्ष्यों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है:
  - वह चाहते थे कि लोग अमीर बनें और उनका मानना था कि अमीर होना कोई अपराध नहीं है।
  - उन्हें पूरा विश्वास था कि भविष्य में उद्योगों को और अधिक स्वतंत्रता देने और निर्णय लेने की शक्ति का विकेन्द्रीकरण करने की आवश्यकता होगी।
  - उनका मानना था कि केवल पूँजीवादी निवेश ही एक आधुनिक चीन बनाने में मदद कर सकता है।
  - उनका तर्क था कि पार्टी को प्रशासनिक कार्यों से हाथ खींच लेना चाहिए; इसे स्थानीय स्तर पर कम निर्देश जारी करने चाहिए और निचले स्तर पर अधिक से अधिक पहल करनी चाहिए।
  - उन्होंने तर्क दिया कि चीन को शांतिप्रिय राष्ट्रों के साथ मिलकर सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों का सामना करने की आवश्यकता है।
- **डेंग की नीतियों के नाटकीय परिणाम हुए:**
  - 1979 में अनाज का अभूतपूर्व उत्पादन हुआ जिससे किसान अधिक समृद्ध हुए।
  - हालांकि सरकार द्वारा आर्थिक क्षेत्र में किए गए सुधारों से राजनीतिक क्षेत्र में भी आमूल सुधार की मांग उत्पन्न हुई। 'लोकतंत्र की दीवार' (Democracy Wall) (नवंबर 1978) नामक अभियान से राजनीतिक क्षेत्र में आमूल सुधार की मांग की गई जिस पर लोगों ने गुमनाम पोस्टर चिपकाकर एकल-पार्टी प्रणाली समाप्त करने और लोकतंत्र बहाल करने की मांग की थी।
- **लोकतंत्र की दीवार (Democracy Wall: 1978):** 1978 में डेंग जियाओपिंग की प्रशंसा और समर्थन में पोस्टर अभियान (दीवारों पर) चलाए गए और रैलियाँ निकाली गईं। लेकिन जल्द ही अधिक कट्टरपंथी सुधारों की मांग और भारी प्रदर्शन को देखते हुए सरकार द्वारा इन पोस्टर अभियानों और रैलियों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। लेकिन 'दीवार', जो कि डेंग के निर्वाचन क्षेत्र बीजिंग में थी, को चालू रखने की आज्ञा मिली हुई थी, क्योंकि अब तक इस दीवार का उपयोग लोगों द्वारा गैंग आॅफ फोर पर हमला करने के लिए किया जा रहा था। समस्याएँ 1979 में तब आरंभ होने लगीं, जब दीवार पर लगाए जाने वाले पोस्टर अधिक निर्भीक हो गए। लोग माओ पर आक्षेप लगाने और विभिन्न अधिकारों की मांग करने लग गए थे जैसे (a) सरकार की आलोचना का अधिकार, (b) नेशनल पीपल्स कांग्रेस (संसद) में गैर-कम्युनिस्ट पार्टियों का प्रतिनिधित्व, (c)

VISION IAS

कम्युन्स का उन्मूलन और (d) नौकरियाँ बदलने और विदेश यात्रा की स्वतंत्रता। डेंग की प्रतिक्रिया करुणाशून्य थी। वह एकल-पार्टी प्रणाली का कट्टर समर्थक था। असंतुष्ट लोगों को हिरासत में ले लिया गया और जेल में डाल दिया गया। ध्यातव्य है कि लोकतंत्र की दीवार को 1979 में ध्वस्त कर दिया गया।

- **बाजार समाजवाद (Market Socialism):** ब्रिटानिका में बाजार समाजवाद को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: *"बाजार समाजवाद, जिसे उदारवादी समाजवाद भी कहते हैं, एक आर्थिक प्रणाली है जो समाजवादी योजना और मुक्त उद्यम के बीच समझौते का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें उपक्रमों का स्वामित्व सार्वजनिक होता है, परंतु उत्पादन और खपत बाजार की शक्तियों द्वारा निदेर्शित होती हैं, न कि सरकारी योजनाओं द्वारा।"* बाजार समाजवाद के साथ, चीन धीरे-धीरे बाजार अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ने लगा। व्यापारिक बाधाओं को कम करके और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देकर आर्थिक क्षेत्र में विश्व के साथ वृहद् संपर्क स्थापित करने के लिए चीन ने मुक्त-द्वार की नीति को अपनाया। बाजार समाजवाद तक के परिवर्तनकाल का विश्लेषण दो चरणों में किया जा सकता है - (a) 1979 में लोकतंत्र की दीवार के विध्वंस तक डेंग द्वारा अनुसरण की जाने वाली नीतियाँ और (b) डेंग द्वारा उसके बाद अनुसरण की जाने वाली नीतियाँ। इस संदर्भ में 1984 को महत्वपूर्ण बदलावों का वर्ष माना जा सकता है। दूसरे चरण में कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक सुधारवादी उपायों को सम्मिलित किया गया:
    - कम्यून पद्धति को समाप्त कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप प्राप्त भूमि किसानों के बीच वितरित की गई ताकि वे बड़े निजी भूखंडों को प्राप्त कर सकें। इसका मतलब था कि, कम्यून्स वाली भूमि (हालांकि अब भी यह राज्य के स्वामित्व में ही थी) को अलग-अलग किसान परिवारों में बांट दिया गया और उनको अधिक लाभ रखने की अनुमति दी गई। इससे उनके जीवन स्तर में सुधार आया।
    - 1984 में बाजार समाजवाद के पक्ष में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बदलाव किए गए:
        - राज्य द्वारा फसलों की अनिवार्य खरीद को अब त्याग दिया गया।
        - यह निर्णय लिया गया कि राज्य उपयोगी उत्पादों की खरीद जारी रखेगा परंतु बहुत कम मात्रा में। इस प्रकार किसानों को उनके उत्पाद को खुले बाजार में बेचने के लिए प्रोत्साहित किया गया।
        - पोर्क, अनाज, सब्जी, कपास आदि जैसी वस्तुओं पर मूल्य नियंत्रण समाप्त हो गया और मांग-आपूर्ति के अनुरूप खुले बाजार में उनके मूल्य में उतार चढ़ाव की अनुमति दी गई।
    - **बाजार समाजवाद के नकारात्मक प्रभाव:** 1984 आते-आते, बाजार समाजवाद के नकारात्मक प्रभाव दिखाई देने आरंभ हो गए। निर्यात की तुलना में आयात बहुत तेजी से बढ़ने लगा और इस तरह चालू खाता घाटे (करंट अकाउंट डेफिसिट) में भी वृद्धि होने लगी। विदेशी मुद्रा भंडार में तेज गिरावट आई। हालांकि सरकार ने सीमा शुल्क (कस्टम ड्यूटी) में वृद्धि कर आयात पर नियंत्रण करने का प्रयास किया, परंतु इससे मुद्रास्फीति में वृद्धि हो गई (1986 में मुद्रास्फीति 22 फीसदी थी)।

VISION IAS

- **थियानमेन चौक प्रोटेस्ट (Tiananmen Square Protests: 1989):** यह विरोध प्रदर्शन चीन में साम्यवाद के लिए एक संकट की घड़ी के समान था और चीनी साम्यवाद उससे बचकर एक विजेता के रूप में उभरा और अस्तित्व में बना रहा।
    - **पृष्ठभूमिः** डेंग जियाओपिंग की नीति वस्तुतः कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर दक्षिणपंथी (सुधारकों) और वामपंथी (कट्टरपंथी) गुटों के बीच संतुलन बनाए रखने की थी। इस प्रकार, उन्होंने विद्यार्थियों और बुद्धिजीवियों को आलोचना का अधिकार दिया। परंतु डेंग की नीतियों के तहत मात्र वहीं आलोचनाएँ स्वीकार्य थीं, जो अक्षमता और भ्रष्ट नौकरशाहों को हटाने के उद्देश्य से की जा रही थीं और जिनमें सुधार लाकर सार्वजनिक समर्थन प्राप्त करने में (डेंग को) सहायता मिलती। इस प्रकार डेंग के लेफ्ट-राईट संतुलन की नीति को आघात पहुँचाने वाली आलोचना को स्वीकार नहीं किया गया और इसे सीमारेखा का उल्लंघन माना गया। ऐसे आलोचकों पर कठोर नियंत्रण भी लगाया गया {उदाहरण के लिए लोकतंत्र की दीवार (Democracy Wall) की घटना में}। इसी तरह, 1986 में डेंग ने अपने 4 आधुनिकीकरणों (4 Modernizations) के समर्थन में प्रदर्शनों की अनुमति दी थी लेकिन जब प्रदर्शनकारियों ने अधिक क्रांतिकारी सुधारों की मांग करना आरंभ किया और पोस्टर अभियान पर प्रतिबंध का उल्लंघन किया तो उन्होंने उन पर फिर से पाबंदी लगा दी।
    - **दुविधा (The Dilemma):** डेंग और उसके सहयोगियों के सामने दुविधा यह थी कि क्या समकालीन राजनीतिक सुधारों के बिना आर्थिक सुधार लाना संभव होगा? क्या लोग मात्र बाजार में प्राप्त विकल्पों से संतुष्ट हो जाएंगे और क्या यह संभव है कि राज्य राजनीतिक क्षेत्र (बहु-दलीय व्यवस्था) में विकल्प न दे? पश्चिमी विचारकों और सोवियत संघ के मिखाइल गोर्बाचेव का मानना था कि दोनों तरह के सुधारों - आर्थिक और राजनीतिक - को एक साथ लाया जाना चाहिए और अकेले आर्थिक सुधार संभव नहीं हैं क्योंकि आर्थिक सुधार केंद्रीकृत राजनीति की समाप्ति पर निर्भर है और अर्थव्यवस्था की खराब स्थिति को लोग राजनीतिक व्यवस्था के परिणाम के तौर पर देखते हैं।
    - **थियानमेन चौक की घटनाएं (1989):-**
        - **विरोध प्रदर्शन के क्या कारण थे?** हू याओबांग (Hu Yaobang) की मौत से विरोध प्रदर्शन आरंभ हुआ। हू याओबांग डेंग प्रशासन का एक अधिकारी था, परंतु पोलित ब्यूरो के रूढ़िवादी अधिकारियों ने उसे प्रशासन से बेदखल होने पर बाध्य किया था। परंतु शीघ्र ही सुधारों की धीमी गति, कथित भाई-भतीजावाद और हू के प्रशासन से बेदखल होने के कारण सार्वजनिक विरोध बढ़ गया। 1988-89 में आर्थिक सुधार में समस्याएँ आने लग गईं। मुद्रास्फीति में उछाल आ गया था और वस्तुओं की कीमतों की तुलना में विशेष रूप से सार्वजनिक कर्मचारियों की मजदूरी बहुत कम रह गई थी। सोवियत संघ में, मिखाइल गोर्बाचेव ने राजनीतिक सुधार लाने के प्रति तत्परता दिखाई थी। पड़ोसी देश सोवियत संघ में गोर्बाचेव के सुधारों से प्रोत्साहित होकर और गोर्बाचेव की 1989 की आगामी यात्रा का लाभ उठाते हुए विद्यार्थियों ने थियानमेन चौक पर प्रदर्शन आरंभ कर दिया। यह विरोध प्रदर्शन गोर्बाचेव की यात्रा के दौरान भी जारी रहे।

VISION IAS

चित्र: 4 मई 1989 को थियानमेन स्क्वायर पर छात्रों की भीड़

- **प्रदर्शनकारियों की क्या मांगें थीं?** ये छात्र CPC के भ्रष्टाचारों की समाप्ति के साथ ही राजनीतिक सुधारों और लोकतंत्र की बहाली की मांग कर रहे थे।
- **आंदोलन इतनी बेरहमी से क्यों कुचला गया था?** विरोध प्रदर्शन को समाप्त करने में सेना का सहारा लिया गया था। यहां तक कि छात्रों को तितर-बितर करने के लिए टैंक और पैराट्रूपर्स तक भेजे गए थे और परिणामस्वरूप, मृतकों की संख्या 3,000 तक पहुंच गई थी। जबकि, विरोध प्रदर्शन पूरी तरह शांतिपूर्ण था। सरकार के इस कदम की दुनिया भर में निंदा होने के पश्चात भी डेंग टस से मस नहीं हुए, क्योंकि उनका विश्वास दृढ़ था कि समाजवादी बाजार अर्थव्यवस्था के लिए एकल दलीय व्यवस्था आवश्यक है। सरकार के उस निर्णय से चीन में साम्यवाद और एकल दलीय व्यवस्था का संरक्षण संभव हुआ।

23. चीन में साम्यवाद क्यों जीवित रहा और सोवियत संघ में क्यों विफल हुआ?

माओ की 1976 में मृत्यु हो गई। माओ के जाने के बाद, डेंग जियाओपिंग ने जिन नीतियों को अपनाया, उनका समापन बाजार समाजवाद के रूप में हुआ। उसकी नीतियों में सम्मिलित था- पूँजीवादी उपायों को अपनाना और व्यापार बाधाएँ कम करके अर्थव्यवस्था को खोलना। इस प्रकार, डेंग के नेतृत्व में चीन 'धीरे-धीरे' एक बाजार अर्थव्यवस्था मॉडल की तरफ अग्रसर हुआ।

- यह ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा कि चीन ने जनता को अधिक राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकने वाले **राजनीतिक सुधारों के सूत्रपात्र से पहले ही आर्थिक सुधारों का कार्यान्वयन कर लिया।** राजनीतिक सुधारों का सूत्रपात्र किए बिना ही आर्थिक सुधारों का कार्यान्वयन चीन में साम्यवाद को बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ। डेंग ने लोगों को राजनीति में कोई विकल्प दिए बिना बाजार में विकल्प प्रदान किए, अर्थात् खरीदने-बेचने तथा वस्तुओं व व्यवसायों का निजी स्वामित्व रखने का विकल्प। इस प्रकार चीन ने एकल दलीय व्यवस्था जारी रखी। आर्थिक समृद्धि और

आर्थिक स्वतंत्रता ने लोगों की राजनीतिक स्वतंत्रता की मांगों को शांत कर दिया। इसके विपरीत, मिखाइल गोर्बाचेव ने 1991 में ग्लास्तनोस्त (सामाजिक मुद्दों पर बहस की नीति) और पेरेस्त्रोइका (अर्थात पुनर्निर्माण) के माध्यम से राजनीतिक और आर्थिक सुधार लाने का प्रयास किया। लोगों ने सोवियत संघ की दयनीय अर्थव्यवस्था के लिए राजनीतिक व्यवस्था को दोषी ठहराया और जिसके परिणामस्वरूप सोवियत संघ का विघटन हो गया।

- कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर **लेफ्ट-राईट (वामपंथी-दक्षिणपंथी) विभाजन** कभी इतना नहीं गहराया कि वह पार्टी के विभाजन का कारण बने। इसके विपरीत, रूस में लेफ्ट-राईट के बीच विभाजन बहुत गहरा था। सोवियत संघ के अंतिम वर्षों में बोरिस येल्तसिन ने पार्टी की समाजवादी नीतियों की खुले-आम आलोचना की।
- **डेंग जियाओपिंग बनाम मिखाइल गोर्बाचेवः** दोनों ने पूँजीवादी मार्ग का समर्थन किया और दोनों आर्थिक सुधारों के पक्षधर थे। लेकिन जियाओपिंग ने 1976 से ही अपनी नीतियों को अंतिम रूप देना आरंभ कर दिया था, जबकि गोर्बाचेव देर से सत्ता में आए (1985 में)। डेंग बल का प्रयोग करने के लिए भी तैयार थे और एकल दलीय व्यवस्था में दृढ़ता से विश्वास रखते थे, लेकिन गोर्बाचेव के साथ ऐसा नहीं था। उदाहरण, थियानमेन चौक (1989) प्रदर्शन के दौरान डेंग ने बल प्रयोग किया, जबकि गोर्बाचेव बहुदलीय व्यवस्था की मांगों के आगे झुकने लगे थे। ऐसे में परिवर्तन विरोधियों ने तख्तापलट कर उसे अपदस्थ कर दिया। इसके अतिरिक्त, गोर्बाचेव बल प्रयोग के लिए तैयार नहीं थे और सोवियत गणराज्यों की स्वायत्तता की मांगों के प्रति सहानुभूति भी रखते थे।
- सोवियत संघ, जहां की लगभग आधी आबादी गैर रूसी थी, की तुलना में चीन जातीय और सांस्कृतिक रूप से एक अधिक समरूप समाज था। विभिन्न सोवियत गणराज्यों में संस्कृतियाँ और भाषाएँ भिन्न-भिन्न थीं। इस प्रकार अलगाव की मांग सोवियत संघ में कहीं अधिक थी।
- **100 फ्लावर्स कैंपेन** (1957) के कारण चीन के प्रमुख साम्यवादी नेताओं (माओ एवं अन्य) ने सही समय पर सही कदम उठाया। इसके उपरांत चीनी क्रांति को बचाए रखने के लिए ग्रेट लीप फॉरवर्ड (1958) के रूप में एक सुधारात्मक कदम उठाया गया। पुनः चीन ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप साम्यवाद के प्रारूप को अपनाया। दूसरी ओर, रूसी अर्थव्यवस्था जिन समस्याओं का सामना कर रही थी, उनके समाधान के लिए आवश्यक नीतियाँ विकसित करने में स्टालिन, ख्रुश्चेव और अन्य नेता विफल रहे थे।
- चीनी नेतृत्व ने सोवियत संघ की तुलना में अधिक मजबूती के साथ **'जनता के साथ संपर्क'** पर बल दिया। 'कम्यून' जैसे नवाचार ने जनता के साथ संपर्क बनाने में पार्टी की मदद की।
- **चीनी साम्यवाद लचीला था** और पार्टी नेताओं के बीच एकता थी, जो इसे जीवित बनाए रखने में सहायक रहा। बदलती आवश्यकताओं के साथ-साथ चीनी साम्यवाद का रूप भी बदलता रहा। उदाहरण के तौर पर, 1958 तक रूसी मॉडल का अनुसरण किया गया, जिसके बाद ग्रेट लीप फॉरवर्ड के रूप में माओवाद ने चीनी साम्यवाद को प्रभावित किया। 1976 से डेंग जियाओपिंग ने बाजार के अनुकूल आर्थिक नीतियों को अपनाया, जिनका समापन धीरे-धीरे बाजार समाजवाद को अपनाने के रूप में हुआ।
- शीत युद्ध में रूस की बड़ी भूमिका होने के कारण उसके बहुमूल्य संसाधन अन्यत्र पहुंच गए, जिससे उसकी अपनी अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान पहुंचा।

VISION IAS

24. इटली: मुसोलिनी और फासीवादियों का उदय

- **पृष्ठभूमि:** 1870 में एकीकरण के बाद, नवीन इटली राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल था। इसके अतिरिक्त, प्रथम विश्वयुद्ध से अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ा था। इटली पेरिस शांति सम्मेलन {केन्द्रीय शक्तियों (Central Powers) के विरूद्ध शांति शर्तों पर विचार-विमर्श करने के लिए प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आयोजित} से खाली हाथ लौटा था। पुनः युद्ध के बाद बेरोजगारी में काफी अधिक वृद्धि हुई, साथ ही साम्यवादी क्रांति की वास्तविक संभावनाएं भी मौजूद थीं।

24.1. रोम मार्च (March on Rome: 1922)

इस मार्च का नेतृत्व मुसोलिनी ने किया था जिसके बाद राजा ने उसे सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। उन दिनों, इटली में सरकार पर साम्यवादियों का कब्जा हो जाने का काफी भय था। साम्यवादी पहले ही 1922 में आम हड़ताल का प्रयास कर चुके थे। इसने मुसोलिनी को साम्यवाद विरोधी, पूंजीवाद का समर्थक और साथ ही इटली के उद्धारक के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करने का अवसर दिया। मुसोलिनी ने रोम मार्च का नेतृत्व करके इस अवसर का लाभ उठाया। 50,000 ब्लैक शर्ट्स (इतालवी फासीवादी दल का जत्था) रोम में आकर मिले, जबकि अन्य जत्थों ने उत्तर में महत्वपूर्ण शहरों पर कब्जा कर लिया। तात्कालीन प्रधानमंत्री मुसोलिनी का प्रतिरोध करना चाहता था, लेकिन राजा ने मुसोलिनी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया।

निम्नलिखित वे कुछ कारण हैं जिनसे उन पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है जिन्होंने मुसोलिनी के सत्तारोहण में योगदान दिया:

- **वर्साय की संधि से निराशा:** मित्र देशों की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में प्रवेश करने के बदले 1915 में किये गए वादे के अनुसार सभी क्षेत्र इटली को नहीं दिए गए। उदाहरण के लिए, इटली को दिए जाने वाले कुछ प्रदेश यूगोस्लाविया को दे दिए गए। साथ ही अल्बानिया को इटली को सौंपने का वादा किया गया था, परंतु अल्बानिया को एक स्वतंत्र देश बना दिया गया। इससे सरकार की प्रतिष्ठा में गिरावट आई और सार्वजनिक भावनाएं सरकार के विरूद्ध हो गईं।
- **दयनीय अर्थव्यवस्था:** मुसोलिनी के उदय का एक प्रमुख कारण इटली की अर्थव्यवस्था की दयनीय स्थिति थी। भारी युद्ध व्यय के कारण आर्थिक स्थिति बिगड़ गई थी। साथ ही, इटली ने अपने युद्ध प्रयासों का वित्तपोषण करने के लिए अमेरिका से भारी ऋण लिया था। अब यह ऋण डॉलर में चुकाया जाना था। इसके साथ ही बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी भी व्याप्त थी क्योंकि युद्धकालीन उत्पादन में कमी आ गयी थी। प्रथम विश्व युद्ध के बोझ, युद्ध के बाद आए आर्थिक संकट और अमेरिका से लिए गए ऋण, जिसे अब चुकाया जाना था, के कारण इटली की मुद्रा "लीरा" का मूल्य गिर गया (डॉलर के बाहर जाने और उत्पादन में गिरावट के कारण)। इसके फलस्वरूप मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हुई, जिससे सामान्य लोगों को समस्या हुई जो पहले ही बेरोजगारी से जूझ रहे थे। 2.5 लाख पूर्व सैनिकों को नौकरी खोजने में समस्या आ रही थी।
- **आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली:** - 1919 के चुनावों में सार्वभौमिक "पुरुष" मताधिकार और आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू की गई थी (महिलाओं को कहीं जाकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1945 में मताधिकार प्राप्त हुआ)। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अंतर्गत चुनाव में प्रत्येक दल को मिलने वाले मतों के अनुपात में संसद में सीटें आवंटित की जाती थीं। इस प्रणाली के

VISION IAS

 ©Vision IAS

परिणामस्वरूप संसद में कई दल हो जाते थे (उदारवादी, राष्ट्रवादी, समाजवादी, साम्यवादी, कैथोलिक पॉपुलर पार्टी और इटालियाई फासीवादी दल)। इस प्रकार, गठबंधन के कारण केवल कमजोर सरकारें ही बन पाती थीं क्योंकि किसी भी अकेले दल को बहुमत नहीं मिल पाता था। ये सरकारें अस्थिर होती थीं (1919-22 तक पांच सरकारें – सभी निर्णायक कार्रवाई करने में अक्षम) और इससे जनता के बीच सरकार के संसदीय रूप की विश्वसनीयता गिर गई, जिनका मानना था कि यह प्रणाली निर्णायक सरकार प्रदान करने में असमर्थ है।

- **साम्यवादियों द्वारा हिंसा:** 1919 और 1920 के दौरान साम्यवादियों के नेतृत्व में हड़तालों का तांता लग गया। 1919 से हिंसक हड़तालें, दंगे, दुकानों की लूटपाट और श्रमिकों द्वारा कारखानों पर कब्ज़ा आम बात थी। सोवियत जैसे संगठन उभरने लगे और समृद्ध जमींदारों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया गया। इस प्रकार इटली में 1920 में साम्यवादी क्रांति का वास्तविक खतरा मौजूद था। लेकिन इसके बाद क्रांति का खतरा कम हो गया क्योंकि आपूर्तिकर्ताओं ने श्रमिकों को कच्चे माल की आपूर्ति बंद कर दी और इस प्रकार कारखानों पर कब्जा विफल होने लगा। साथ ही 1921 में कम्युनिस्ट पार्टी के गठन से भी क्रांति की संभावना कम हो गई क्योंकि इससे वामपंथी विभाजित (सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी) हो गए। फिर भी इटलीवासियों के बीच क्रांति का भय था। 1922 में, साम्यवादियों ने आम हड़ताल का प्रयास किया। इससे सरकार की विश्वसनीयता में गिरावट आई क्योंकि वह संपत्ति को सुरक्षा प्रदान नहीं कर पाई थी। ऐसे ही वातावरण में मुसोलिनी ने रोम मार्च का नेतृत्व किया।
- **मुसोलिनी की लोकप्रियता:** मुसोलिनी एक पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध था और आरंभ में समाजवादी विचारधारा से प्रभावित था। लेकिन जब प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान समाजवादियों ने युद्ध में इटली की भागीदारी का विरोध किया तो वह उनके विरूद्ध हो गया। तब उसने अपना समाचार पत्र निकाला। उसका दृष्टिकोण समाजवादी था और 1919 में उसने 'समाजवादी और गणतांत्रिक कार्यक्रम' के साथ इतालवी फासीवादी दल (Italian Fascist Party) की स्थापना की। उसने 1919-20 के दौरान श्रमिकों द्वारा कारखानों पर कब्जे का समर्थन किया, लेकिन जब कब्जे विफल होने लगे तो उसने अपना मार्ग बदल दिया। 1920 से, वह साम्यवादियों के विरूद्ध उत्तरोत्तर अतिवादी रुख अपनाता गया और उसके ब्लैक शर्ट दस्तों ने समाजवादी मुख्यालयों पर हमला करना आरंभ कर दिया। 1921 के अंत तक, विशेषकर कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के बाद, संपत्तिशाली वर्ग उसे एक उद्धारकर्ता के रूप में देखने लगा। उसने कैथोलिक चर्च का समर्थन प्राप्त करने के लिए 1921-22 में चर्च-समर्थक भाषण दिया। 1922 में उसने अपने दल के कार्यक्रम के गणतंत्रवादी भाग को छोड़ दिया जिससे मुसोलिनी के प्रति राजा का दृष्टिकोण नरम हो गया। इस प्रकार 1920-22 के बाद मुसोलिनी की नीतियों ने उसे सेना, चर्च, उद्योगपतियों और जमींदारों जैसे रूढ़िवादी और दक्षिणपंथी वर्गों में लोकप्रिय बनाया। इस हेतु समाजवादियों को भी दोषी ठहराया जाना चाहिए क्योंकि वे फासीवादी दस्तों द्वारा की जा रही हिंसा पर अँकुश लगाने के लिए सरकार के साथ काम करने में विफल रहे।

24.2. एसरबो कानून (Acerbo Law) ने सत्ता पर मजबूत पकड़ बनाने में मुसोलिनी की सहायता की (1923)

- इस कानून से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली समाप्त हो गई थी।
- संसद में अधिकतम मत प्राप्त करने वाले दल को स्वत: दो-तिहाई सीटें आवंटित हो जाती थीं।
- 1924 में फासीवादी दल ने भारी अंतर से चुनावों में विजय प्राप्त की क्योंकि लोग स्थिर सरकार चाहते थे और इस प्रकार उनमें से अधिकांश लोगों ने एक दल को मत दिया जो फासीवाद का समर्थक था।

VISION IAS

24.3. अधिनायकवादी राज्य की दिशा में कदम

मुसोलिनी के अधीन, संविधान में परिवर्तनों के माध्यम से इटली अधिनायकवादी राज्य की दिशा में बढ़ चला। इनमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं:

- प्रधानमंत्री अब केवल राजा के प्रति उत्तरदायी था न कि संसद के प्रति।
- नए कानूनों के लिए अब संसद की मंजूरी की आवश्यकता नहीं थी।
- मतदाताओं की संख्या 1 करोड़ से घटाकर सिर्फ 30 लाख कर दी गई, क्योंकि अब केवल समाज के समृद्ध वर्गों को ही मताधिकार दिया गया।
- संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से, मुसोलिनी ने इल ड्यूस (Il Duce) (नेता) की उपाधि धारण की।

24.4. निगमित राज्य या कॉर्पोरेटिव स्टेट

(Corporate State or Corporative State)

मुसोलिनी के अधीन, इटली निगमित राज्य बनने की दिशा में आगे बढ़ा। इसकी निम्नलिखित कुछ विशेषताएँ थीं:

- निगमित राज्य की अवधारणा का लक्ष्य वस्तुतः वर्ग-संघर्ष को ख़त्म करने के उद्देश्य से श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच सहयोग बढ़ाना था।
- श्रमिकों के व्यापार संघों और नियोक्ता संघों को "निगमों" (corporations) में वर्गीकृत किया गया, जहां दोनों समूहों के सदस्यों से आपस में मिलकर काम करने और अपने विवादों का समाधान करने की आशा की जाती थी।
- श्रमिकों को हड़तालों की अनुमति नहीं थी और इसी तरह नियोक्ता कारखानों में तालाबंदी लागू नहीं कर सकते थे। केवल, फ़ासीवादी दल द्वारा नियंत्रित व्यापार संघों को ही श्रमिकों की ओर से बातचीत करने की अनुमति दी गई।
- श्रमिकों की स्वतंत्रता की समाप्ति के चलते उनके लिए क्षतिपूर्ति संबंधी योजनाएं आरंभ की गईं जिनमें उन्हें निःशुल्क छुट्टियाँ दी गईं। उनकी मजदूरी बढ़ा दी गई और उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ उपाय किए गए।

24.5 लेटरन संधि/समझौता (Lateran Treaty- 1929)

- चर्च और मुसोलिनी दोनों को साम्यवाद का भय था। लेकिन चर्च 1870 से ही सरकार के भी विरूद्ध था, क्योंकि इटली के एकीकरण के दौरान, पोप के राज्यों (Papal states) (जिनकी राजधानी रोम में थी और जो सीधे पोप के शासन के अधीन थे) को बलपूर्वक इटली के राज्य में मिला लिया गया था। इसके उपरांत पोप अपने आप को वेटिकन का बंदी कहता था।
- लेटरन संधि वह संधि थी जिसके माध्यम से मुसोलिनी ने पोप के साथ समझौता किया और राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सर्वोच्चता को पुन: सुदृढ़ किया:
    - इटली ने वेटिकन सिटी को संप्रभु राज्य के रूप में मान्यता दी।
    - पोप को 1870 के बाद क्षेत्र और संपत्ति की हानि के कारण उसकी सभी हानियों के लिए बड़ी राशि का भुगतान किया गया।
    - मुसोलिनी ने कैथोलिक धर्म को राज्य धर्म के रूप में स्वीकार किया।
    - इस संधि द्वारा सभी स्कूलों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य बना दी गई।
    - बदले में, पोप ने इटली को मान्यता दी।

VISION IAS

24.6. परिवर्तन

स्थानीय सरकार

- चुनी हुई नगर परिषदों और महापौर के पद का उन्मूलन कर दिया गया। रोम से नियुक्त अधिकारियों द्वारा शहरों का शासन चलाया जाना था। स्थानीय फासीवादी दल के मुखिया {जिन्हें रास (ras) भी कहा जाता था} इन अधिकारियों जितने ही शक्तिशाली थे।

सेंसरशिप

- फासीवाद विरोधी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं पर या तो प्रतिबंध लगा दिया गया या उनके संपादकों को फासीवाद समर्थकों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। मीडिया को युद्ध का महिमामंडन करने और फासीवादी दल की उपलब्धियों का प्रचार-प्रसार करने का निर्देश दिया गया। व्यक्ति पूजा अर्थात् मुसोलिनी (इल ड्यूस) की भक्ति का प्रचार करने के लिए मीडिया का उपयोग किया गया।

शिक्षा व्यवस्था

- गुप्त पुलिस द्वारा शिक्षा पर निकटता से दृष्टि रखी गई। "विश्वास करो, पालन करो, लड़ो" के विचार को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया क्योंकि सब कुछ संघर्ष की दृष्टि से देखा जाता था। फासीवाद विरोधी शिक्षकों को तंत्र से निकाल दिया गया और बच्चों को युवा संगठनों में सम्मिलित होने के लिए विवश किया गया जो उनमें इल ड्यूस और चरम राष्ट्रवादी विचारधारा के पक्ष में मतारोपण करते थे।

24.7. इटली में मुसोलिनी के शासन का मूल्यांकन

मुसोलिनी के शासनकाल के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का आकलन निम्नलिखित तरीके से किया जा सकता है:

24.7.1. इटली वासियों के लिए फासीवाद के सकारात्मक पहलू

मुसोलिनी के शासन से इटलीवासियों को कुछ सकारात्मक लाभ हुए थे। उसने अर्थव्यवस्था और लोगों का जीवन सुधारने के लिए विभिन्न कदम उठाए। निम्नलिखित को मुसोलिनी के शासन के सकारात्मक लाभों के रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है:

- **उद्योग:** मुसोलिनी की सरकार ने जहां आवश्यक था सब्सिडी देकर उद्योगों को बढ़ावा दिया। 1930 तक लोहा और इस्पात का उत्पादन 1922 के स्तर से दोगुना हो गया। कपड़ा क्षेत्र में होनेवाला सुधार महत्वपूर्ण था। 1930 तक कृत्रिम रेशम का उत्पादन दस गुना बढ़ चुका था। इसी तरह, ऊर्जा क्षेत्र में सुधार दृष्टिगोचर होता था। कई जल विद्युत परियोजनाएं आरंभ की गईं और 1937 तक जल विद्युत उत्पादन दोगुना हो गया।
- **कृषि:** मुसोलिनी के अधीन इटली में गेहूं के उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गयी, जिसे अक्सर वैटल ऑफ़ व्हीट (wattle of wheat) कहा जाता है। इसे खाद्य पदार्थों के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए मुसोलिनी द्वारा आरंभ किया गया था। किसानों को गेहूं उगाने के लिए कई प्रोत्साहन दिए गए लेकिन इस सफलता की कहानी का नकारात्मक पक्ष यह था कि डेयरी उद्योग और अन्य फसलों की कीमत पर गेहूं उत्पादन में वृद्धि हुई थी, क्योंकि किसानों ने इन्हें कम आकर्षक पाया और गेहूं उत्पादन हेतु और अधिक भूमि का उपयोग किया।
- **भूमि सुधार कार्यक्रम** आरंभ किया गया। अधिकतम भूमि को उत्पादक गतिविधियों में शामिल करने के लिए कई गतिविधियां आरंभ की गईं। इसमें पहाड़ी क्षेत्रों में वनारोपण और दलदल सुखाने जैसी गतिविधियां सम्मिलित थीं। इस कार्यक्रम को आंशिक सफलता मिली क्योंकि 1939 तक योजना लक्ष्य का केवल 1/10 ही प्राप्त हो पाया था।
- **लोक निर्माण कार्यक्रम:** यह बहुत ही प्रभावशाली कार्यक्रम था और बेरोजगारी की चुनौती से निपटने और अवसंरचना के निर्माण में सफल रहा था।

VISION IAS

- **लोक मनोबल:** प्रचार में राष्ट्रवाद पर बल, आर्थिक सुधार, बेरोजगारी में कमी और बेहतर फसल उत्पादन से जनता का मनोबल बढ़ा। मुसोलिनी का शासन कानून और व्यवस्था की स्थिरता प्रदान करने में सक्षम रहा था।
- **"काम के बाद" संगठन (After work Organization):** यह संगठन श्रमिकों के लिए अवकाशकालीन गतिविधियां उपलब्ध कराने के लिए बनाया गया था। उदाहरण के लिए, यह संगठन समुद्री यात्राओं का आयोजन करता था और श्रमिकों को छुट्टियों पर जाने के लिए भत्ते दिए जाते थे। इससे श्रमिकों के बीच मनोबल और सामान्य सुख गुणांक और काम की संतुष्टि बढ़ाने में सहायता मिली।
- **विदेशी नीति में सफलता:** मुसोलिनी कम से कम आरंभ में कोर्फू घटना (1923), 1924 में फ्युम पर कब्जे और अबीसीनिया पर हमले के मामले में अपनी विदेश नीति में भी सफल रहा था। इन घटनाओं से इटली वासियों की प्रतिष्ठा बढ़ी क्योंकि इससे वे अपने आपको मजबूत शक्ति के नागरिक के रूप में देखने लगे।

24.7.2. इटली में फासीवाद के नकारात्मक पहलू

इन सभी सफलताओं के बावजूद, मुसोलिनी के शासन के अंतर्गत अभी भी कई समस्याएं अनसुलझी थीं। इनमें से कुछ समस्याएं भौतिक भूगोल में निहित थीं, जबकि अन्य या तो प्रशासनिक अक्षमता के कारण या अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के कारण थीं।

- **आर्थिक समस्याएं: -**
    - इटली में कोयला और तेल जैसे महत्वपूर्ण कच्चे माल की कमी बनी रही। इस प्रकार ऊर्जा सुरक्षा इटली के लिए हमेशा एक चुनौती रही। जलविद्युत में क्षमता निर्माण के लिए अधिक प्रयास किया जाना चाहिए था।
    - निर्यात को हानि पहुँची क्योंकि मुसोलिनी ने इटली की मुद्रा को मजबूत दिखाने के प्रयास में 'लीरा' को उसके वास्तविक मूल्य से काफी ऊँचा दर्शाया। इस प्रकार, बाजार पर राज्य नियंत्रण का विदेशी मुद्रा अर्जन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।
- **1929 का आर्थिक संकट:** इटली की अर्थव्यवस्था पर महामंदी का नकारात्मक प्रभाव पड़ा। इतालवी निर्यात गिरने लगा क्योंकि यूरोप और अमेरिका के निर्यात गंतव्य मंदी की जकड़ में थे और व्यापारिक बाधाएं खड़ी कर दी गई थीं। फिर भी, इल ड्यूस ने लीरा का अवमूल्यन करने की अनुमति नहीं दी जिससे निर्यात अप्रतिस्पर्धी हो गया। इसकी बजाय, मुसोलिनी ने मजदूरी और वेतन में कटौती की जिससे सधारण जनता को समस्या हुई। आर्थिक संकट के चलते बेरोजगारी फैल गई और लोगों की क्रयशक्ति और कम हो गई। यद्यपि "मंदी" के कारण निर्वाह की लागत कम हो रही थी, लेकिन वस्तुओं की कीमतों की तुलना में मजदूरी में तेज़ गिरावट आई, परिणामस्वरूप लोगों द्वारा "वास्तविक" मुद्रास्फीति अनुभव की गई।
- **असमानता:** इटली में आर्थिक समृद्धि में क्षेत्रीय असमानता भी थी। उत्तर समृद्ध था और वहां अधिकांश उद्योग अवस्थित थे जबकि दक्षिण गरीब था और वहां कृषि अर्थव्यवस्था थी। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आज भी दक्षिण इटली आर्थिक विकास के मामले में उत्तरी भाग से पीछे है।
- **सामाजिक सेवाएं:** मुसोलिनी सामाजिक सेवाओं के प्रबंध में विफल रहा। उदाहरण के लिए, 1943 तक सरकारी स्वास्थ्य बीमा की कोई योजना नहीं थीं और इस प्रकार मुसोलिनी का इटली कल्याणकारी राज्य नहीं था।
- **भ्रष्टाचार:** शासन अकुशल और भ्रष्ट था और काफी पैसा आधिकारियों की जेब में चला जाता था।
- **प्रशासन का अति-केंद्रीकरण:** एक प्रमुख समस्या यह थी कि मुसोलिनी काम प्रत्यायोजित नहीं करता था, जिससे वह काम के बोझ के तले दब गया। वह बहुत सारे आदेश देता था और अधिकारी उन आदेशों को लेते थे लेकिन कुछ करते नहीं थे क्योंकि मुसोलिनी ने कार्यान्वयन की निगरानी करने के लिए व्यापक तंत्र नहीं खड़ा किया था।

VISION IAS

24.8. मुसोलिनी के पतन के कारण

- मुसोलिनी का कार्यकाल तब समाप्त हो गया जब राजा ने उसे पदच्युत कर दिया। यह जानते हुए भी कि इटली दूसरे युद्ध में भागीदारी का बोझ नहीं उठा सकता, द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रवेश करना उसकी सबसे बड़ी भूल थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद होने वाली कठिनाइयों को देखते हुए अधिकांश जनता युद्ध में इटली की भागीदारी के विरूद्ध थी। साथ ही, 1938 में यहूदी-विरोधी नीतियाँ अपनाने और यहूदियों को सरकारी नौकरियों से निकालने पर मुसोलिनी ने लोकप्रियता खो दी। इससे सार्वजनिक धारणा पैदा हुई कि मुसोलिनी ने इटली को जर्मनी का पिछलग्गू राज्य बना दिया है। युद्ध में भागीदारी से आम जनता के लिए ढेर सारी कठिनाइयां पैदा हुईं। भोजन की कमी थी और जनता को करों के बढ़ते बोझ का सामना करना पड़ा जिन्हें युद्ध का वित्तपोषण करने के लिए उगाहा जा रहा था। युद्ध में इटली के प्रवेश करने के बाद वास्तविक मजदूरी में 30% गिरावट आई। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, कुछ प्रारंभिक सफलताओं के बाद इटली का सैन्य प्रदर्शन घटिया निकला। जब इतालवी सैनिकों ने उत्तरी अफ्रीका (1943) में ब्रिटिश बलों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया तो इटली को शर्मिंदगी का सामना करना पड़ा। शीघ्र ही मित्र राष्ट्रों ने सिसली (1943) पर कब्जा कर लिया लेकिन मुसोलिनी ने अब भी आत्मसमर्पण नहीं किया। इसके बाद महापरिषद मुसोलिनी के विरूद्ध हो गई और राजा ने उसे पदच्युत कर दिया(1943)।
- लेकिन इसके बाद हिटलर ने उसे बचा लिया (1943) और जर्मन सैनिकों की सुरक्षा में उसे उत्तरी इटली में शासक के रूप में पदस्थापित किया। 1945 में, जब मित्र राष्ट्र (ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका) उत्तर की ओर बढ़ने लगे तो मुसोलिनी ने स्विट्जरलैंड भागने का प्रयास किया, लेकिन अपने शत्रुओं (जिन्हें पार्टिजन्स भी कहा जाता है) द्वारा पकड़ लिया गया और गोली मारकर मृत्यु के घाट उतार दिया गया।

24.9. मुसोलिनी की प्रणाली कितनी अधिनायकवादी थी?

- अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, मुसोलिनी इस फासीवादी अर्थ में कि "कोई भी व्यक्ति या समूह नहीं होना चाहिए जो राज्य द्वारा नियंत्रित न हो" या जैसा नाजियों ने जर्मनी में किया था, पूरी तरह से अधिनायकवादी प्रणाली का निर्माण करने में विफल रहा था। मुसोलिनी ने कभी भी राजा विक्टर इमैन्यूएल या पोप का प्रभाव पूरी तरह से समाप्त नहीं किया। 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में जब उसने यहूदियों पर हमला करना आरंभ किया तो पोप मुसोलिनी का अत्यधिक आलोचक हो गया। साधारण जनता ने केवल तब तक फासीवाद को सहन किया जब तक कि उन्हें इससे लाभ मिला। निगम राज्य व्यापारियों पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण नहीं लागू कर पाया क्योंकि वे केवल अधीनता का दिखावा करते थे और फासीवादी दल के फंड में बड़ा अंशदान करके अपनी स्वतंत्रता खरीद लेते थे।

25. जर्मनी: वाइमर गणतंत्र और हिटलर का उदय

25.1. जर्मन क्रांति (नवंबर 1918-अगस्त 1919)

- यह नवंबर 1918 से लेकर अगस्त 1919 तक चलने वाले टकराव की अवधि थी जिसके परिणामस्वरुप जर्मनी में राजशाही का अंत हुआ और गणतंत्र की स्थापना हुई।
- प्रथम विश्वयुद्ध के अंत में जब जर्मनी हार की ओर बढ़ने लगा तब जनमत वहाँ के सम्राट कैसर के विरूद्ध हो गया। नवंबर 1918 में एक क्रांति हुई जिसके परिणामस्वरूप कैसर विल्हेम द्वितीय को गद्दी छोड़नी पड़ी और हॉलैंड निर्वासित होना पड़ा। जनवरी 1919 में हुए लोकतांत्रिक चुनावों के

VISION IAS

बाद वामपंथी सोशल डेमोक्रेट पार्टी सत्ता में आई। (सोशल डेमोक्रेट्: जिनके कुछ विचार मार्क्सवादी थे, लेकिन उनका मानना था कि हिंसात्मक क्रांति के बजाय शांतिपूर्ण साधनों और संसदीय लोकतंत्र के माध्यम से समाजवाद प्राप्त किया जा सकता है)। उसी समय जर्मनी में स्पार्टावादी विद्रोह (4 जनवरी 1919 से 19 जनवरी 1919) हुआ। यह अतिवादी कम्युनिस्टों की हिंसक क्रांति (आम हड़ताल और गली युद्ध) थी जो रूसी क्रांति (1917) से प्रेरित थी और उन्होंने बर्लिन सहित कई शहरों पर कब्जा कर लिया। स्पार्टावादी विद्रोह से सरकार की विश्वसनीयता का क्षरण हुआ क्योंकि इसे कुचलने के लिए सरकार को फ्री-कॉर्प्स (कम्युनिस्ट विरोधी भूतपूर्व सैन्य अधिकारियों द्वारा खड़ी की गई निजी सेना) की सहायता लेनी पड़ी। अगस्त 1919 में वाइमर में एक नया संविधान अपनाया गया (1919 में बर्लिन में उथल-पुथल थी, इसलिए संविधान सभा की बैठक वाइमर में हुई इसलिए इसका नाम "वाइमर गणतंत्र" पड़ा)। इस प्रकार वाइमर गणतंत्र अस्तित्व में आया और 1919 से लेकर 1933 तक बना रहा।

25.2. वाइमर गणतंत्र के विरूद्ध हुए विफल प्रयास

जर्मन समाज के कुछ वर्ग वाइमर गणतंत्र से घृणा करते थे और उन्होंने इसे उखाड़ फेंकने के कई प्रयास किए। वाइमर गणतंत्र की सरकार वर्साय की संधि पर सहमत हो गई थी और इससे चरम दक्षिणपंथी वर्ग अप्रसन्न थे। अतिवादी वामपंथी जर्मनी को एक कम्युनिस्ट देश के रूप में देखना चाहते थे। वाइमर गणतंत्र के विरूद्ध हुए कुछ विफल प्रयास निम्नलिखित हैं-

- कम्युनिस्टों द्वारा **स्पार्टावादी विद्रोह** (1919)
- दक्षिणपंथी वर्गों द्वारा **कप्प पुत्स्च** (Kapp Putsch-1920): पुत्स्च का अर्थ अवैध रूप से या बलपूर्वक सरकार को अचानक उखाड़ फेंकना है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि सरकार ने फ्री-कॉर्प्स को भंग करने प्रयास किया। परन्तु फ्री-कॉर्प्स ने विघटित होने से मना कर दिया और डॉ कप्प को चांसलर घोषित कर दिया। जर्मन सेना दक्षिणपंथी राष्ट्रवादियों के प्रति सहानुभूति रखती थी इसलिए उसने कोई कार्रवाई नहीं की। अंततः सरकार को कम्युनिस्टों की सहायता मिली जिन्होंने आम हड़ताल से बर्लिन को पंगु बना दिया। कप्प को त्यागपत्र देना पड़ा और फ्री-कॉर्प्स को भंग कर दिया गया और वाइमर गणतंत्र बच गया।
- **हिटलर का म्यूनिख बीयर हॉल पुत्स्च (1923):**
    - **ल्यूडेनडॉर्फ:** ल्यूडेनडॉर्फ प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी का बहुत ही महत्वपूर्ण जनरल था और बेल्जियम में लीज की लड़ाई में जर्मन विजय के लिए उत्तरदायी था। वह असीमित पनडुब्बी युद्ध का समर्थक था। उसने 1917 में रूस के साथ कठोर शर्तों पर हुई ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। ल्यूडेनडॉर्फ को प्रथम विश्वयुद्ध के बाद त्यागपत्र देने के लिए विवश होना पड़ा। उसकी राय थी कि सरकार में सम्मिलित वामपंथी तत्वों द्वारा सेना की पीठ में छूरा घोंपने के कारण जर्मनी युद्ध हारा था। वह सोशल डेमोक्रेट सरकार का बड़ा आलोचक था।
    - बीयर हॉल पुत्स्च वस्तुतः ल्यूडेनडॉर्फ की सहायता से म्यूनिख में बावेरियन राज्य सरकार का तख्तापलट करने का हिटलर का एक प्रयास था। उसके पश्चात एक राष्ट्रीय क्रांति के द्वारा बर्लिन की राष्ट्रीय सरकार को उखाड़ फेंकने की योजना भी बीयर हॉल पुत्स्च में शामिल थी। रुर क्षेत्र पर फ्रांसीसी कब्जे और परिणामस्वरूप जर्मन मुद्रा के अवमूल्यन की पृष्ठभूमि में यह पुत्स्च आरंभ किया गया था। यह पुत्स्च विफल हो गया और हिटलर पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। हिटलर ने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए इस मुकदमे द्वारा प्रदान किए गए मंच का उपयोग किया। पुत्स्च की विफलता से हिटलर को पहली बार राष्ट्रीय प्रचार मिला। उसे 5 वर्ष के कारावास का दण्ड मिला, लेकिन केवल 9 महीने ही वह जेल में रहा क्योंकि बावेरिया के अधिकारी उसके लक्ष्यों के प्रति सहानुभूति रखते थे। पुत्स्च का स्थायी परिणाम नाजी प्रचार में अत्यधिक वृद्धि थी।

VISION IAS

25.3. वाइमर गणतंत्र के तीन चरण

- **अस्थिरता (1919-23):** इस चरण के दौरान वाइमर गणतंत्र को उखाड़ फेंकने के विभिन्न प्रयासों के कारण वाइमर गणतंत्र अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। इन प्रयासों में स्पार्टावादी विद्रोह, कप्प पुत्स्च और बीयर हॉल पुत्स्च शामिल थे। वर्साय की संधि की कठोर शर्तों ने जर्मनी की अर्थव्यवस्था को अत्यंत दुर्बल बना दिया, सरकार की छवि को धूमिल कर दिया और लोगों के आत्मसम्मान को चोट पहुँचाई।
- **स्थिरता और आर्थिक विकास (1923- 29):** अपने विदेश मंत्री गुस्ताव स्ट्रेसमान के सक्षम नेतृत्व में जर्मनी ने ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ तनाव कम किया। जर्मनी को डेविस प्लान (1924) के अंतर्गत अमेरिकी ऋण मिला और उसका आर्थिक पुनरुद्धार आरंभ हुआ।
- **अस्थिरता (1929-33):** 1929 की महामंदी के कारण अमेरिकी अर्थव्यवस्था चरमरा गई, परिणामस्वरूप जर्मनी के लिए अमेरिकी ऋण की उपलब्धता समाप्त हो गई। इससे जर्मन अर्थव्यवस्था को हानि पहुंची। उसके निर्यात में गिरावट आई और मुद्रा का मूल्य गिर गया। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी में भी वृद्धि हुई। इसके साथ ही नाजी पार्टी जर्मनी की सभी समस्याओं के लिए सरकार को दोषी ठहराते हुए सरकार विरोधी प्रचार कर रही थी।

25.4. वाइमर गणतंत्र का पतन

वाइमर गणतंत्र के पतन के निम्नलिखित कारण थे:

- **सरकार की विश्वसनीयता में गिरावट:**
  - **वर्साय की संधि:** सरकार ने वर्साय की संधि स्वीकार कर ली थी, जो अपनी कठोर शर्तों के कारण बहुत अपमानजनक थी और इसके लिए राष्ट्रवादियों ने सरकार को कभी क्षमा नहीं किया।
  - **लोकतंत्र विरोधी भावनाएं:** फ्रांस और ब्रिटेन के विपरीत लोकतंत्र ने विचारधारा के रूप में जर्मनी की मुख्यधारा की चेतना में प्रवेश नहीं किया था। जनता में लोकतंत्र के प्रति सम्मान का पारंपरिक अभाव था क्योंकि जर्मन लोग अधिकारी वर्ग और सेना को देश के सही नेता के रूप में देखने के आदी थे। शिक्षक, वकील, सिविल सेवक और न्यायपालिका जैसे कई वर्ग वाइमर गणतंत्र के विरूद्ध थे।
  - **अस्थिरता:** वाइमर गणतंत्र स्थिर निर्णायक सरकार प्रदान करने में विफल रहा। अस्थिर गठबंधन वाली सरकारों का आना और जाना लगा रहा क्योंकि वाइमर संविधान ने आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली अपनाई थी। इस व्यवस्था से सभी राजनीतिक समूहों (सोशल डेमोक्रेट्स, कम्युनिस्ट, कैथोलिक सेंटर पार्टी, नेशनल सोशलिस्ट या नाजी) को उनके द्वारा प्राप्त मतों के अनुपात में सीटें मिलती थीं। इससे ऐसी स्थिति पैदा हुई जिसमें कोई भी दल कभी भी बहुमत में नहीं होता था। इस प्रकार कोई भी सत्ताधारी दल पूरी तरह से अपने कार्यक्रम लागू नहीं कर सकता था।
  - **अनुभवहीनता:** सरकार चलाने में राजनीतिक दलों की अनुभवहीनता का परिणाम राइखस्टैग (संसद) के सुचारु संचालन में कमी के रूप में सामने आया। वाइमर संविधान से पहले, वास्तविक शक्ति चांसलर के पद में निहित थी और राइखस्टैग के पास कम शक्तियाँ होती थीं। यह प्रणाली कई वर्षों से चल रही थी। लेकिन वाइमर संविधान ने राइखस्टैग में अधिक शक्तियां निहित कर दी और चांसलर की शक्तियों में कमी कर दी। चांसलर को अब राइखस्टैग के प्रति उत्तरदायी बनाया गया जिसके पास निर्णय लेने की अंतिम शक्ति थी। लेकिन दलों के बीच आम सहमति की कमी के कारण राइखस्टैग में लगातार अराजकता रही और इस तरह राइखस्टैग जन स्वीकार्यता नहीं प्राप्त कर सका।

VISION IAS

- **निजी सेनाएं:** राजनीतिक दलों की निजी सेनाओं ने सरकार के प्राधिकार को कम कर दिया। दलों के बीच असहमति इतनी कटु हो गई थी कि मनचाहा कार्य करवाने और प्रतिद्वंद्वी दलों से सुरक्षा के लिए उन्होंने अपनी निजी सेनाएँ खड़ी कर लीं।
- कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादी वैसे भी गणतंत्र में विश्वास नहीं करते थे और सोशल डेमोक्रेटों के साथ सहयोग करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। कम्युनिस्ट हिंसक तरीके से पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना चाहते थे, जबकि राष्ट्रवादी तानाशाही या सैन्य शासन के पक्ष में थे।

- **सड़कों पर हिंसा में वृद्धि** हुई क्योंकि निजी सेनाएँ एक-दूसरे (विशेषकर 1929 के बाद से) से लड़ने लगीं और कामगारों ने हिंसक हड़तालों का आयोजन किया। अन्य घटनाओं में स्पार्टावादी विद्रोह, कप्प पुत्स्च और म्यूनिख बीयर हॉल पुत्स्च सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त राजनीतिक हत्याओं का सिलसिला शुरू हो गया विशेषकर पूर्व फ्री-कॉर्प्स के लोगों द्वारा कम्युनिस्ट नेताओं की हत्या। दक्षिणपंथी दलों के विरोध के कारण सरकार अपराधियों पर लगाम नहीं लगा पा रही थी। न्यायालय भी पूर्व फ्री-कॉर्प के लोगों को आसान दण्ड देकर छोड़ देते थे क्योंकि न्यायपालिका भी दक्षिणपंथी राष्ट्रवादियों के प्रति सहानुभूति रखती थी। 1923-29 के दौरान जब समृद्धि का काल था तब हिंसा कम थी। लेकिन 1929 के आर्थिक संकट के बाद हिंसा बढ़ गई; विशेषकर नाजियों और कम्युनिस्टों के मध्य।
- **वाइमर गणराज्य की आर्थिक समस्याएं:**
  - युद्ध में हुए अत्यधिक व्यय के कारण 1919 में जर्मनी के दिवालिया होने की स्थिति थी। इस प्रकार वाइमर गणतंत्र को विरासत में बहुत ही खराब अर्थव्यवस्था मिली थी।
  - **प्रथम विश्वयुद्ध की क्षतिपूर्ति**: वर्साय की संधि द्वारा आरोपित युद्ध क्षतिपूर्ति की उच्च लागत से जर्मन मुद्रा मार्क का मूल्य गिर गया।
  - **युद्ध क्षतिपूर्ति**: 1921 तक जर्मनी को वार्षिक किश्तों के अस्थायी निलंबन का अनुरोध करना पड़ा। 1922 में जर्मनी वार्षिक भुगतान करने में विफल रहा। 1923 में फ्रांस ने महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र रूर पर कब्जा कर लिया। यहाँ पर जर्मन लोगों ने फ्रांस के लिए कुछ भी उत्पादन करने से मना कर दिया और निष्क्रिय प्रतिरोध के साथ इसका उत्तर दिया। इससे जर्मनी में मुद्रास्फीति बहुत बढ़ गई और मार्क का मूल्य गिर गया।
  - **1923-29:** डेविस प्लान (1924) और यंग प्लान (1929) के कारण 1923-29 तक का समय समृद्धि का वर्ष था। डेविस प्लान के माध्यम से जर्मनी को अमेरिकी ऋण मिलने लगा। अपनी क्षमतानुसार इस ऋण का वार्षिक भुगतान करने की उसे छूट प्राप्त थी। साथ ही फ्रांस ने रुर क्षेत्र खाली करने पर सहमति व्यक्त की। फलस्वरूप जर्मनी में आर्थिक पुनरुद्धार आरंभ हुआ। यंग प्लान (1929) के अनुसार जर्मनी द्वारा भुगतान की जाने वाली कुल युद्ध क्षतिपूर्ति 6600 मिलियन पाउंड से घटाकर 2000 मिलियन पाउंड कर दी गई।
  - जर्मनी पर 1929 के आर्थिक संकट का प्रभाव:
    - अमेरिका ने ऋण देना बंद कर दिया और कई अल्पावधिक ऋणों के पुनर्भुगतान की मांग की।
    - निर्यात बाजारों से कम मांग के चलते जर्मन निर्यात को चोट पहुंची।
    - अमेरिकी कार्रवाइयों से जर्मन मुद्रा में विश्वास का संकट पैदा हो गया और बैंकों में भीड़ लगने लगी।
    - संकट से निपटने वाले सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति स्ट्रेसमान की 1929 में मृत्यु हो गई।

VISION IAS

- कई कारखाने बंद हो गए और 1931 तक लगभग 4 लाख जर्मन बेरोजगार हो गए।
- नए चांसलर ब्रूनिंग (1930-32) ने पेंशन, मजदूरी और बेरोज़गारी भत्ता कम करके संकट का समाधान करने का प्रयास किया। इससे वाइमर गणतंत्र के प्रति कामगार वर्ग के समर्थन में भी कमी आई और दक्षिणपंथी पहले से ही उसके विरूद्ध थे। इस प्रकार 1932 तक वाइमर गणतंत्र पतन के कगार पर था।

- **हिटलर का प्रचार** लगातार सरकार के विरूद्ध लक्षित था। हिटलर वाइमर गणराज्य के अंतर्गत चांसलर (1933) बना अवश्य लेकिन वह वाइमर गणतंत्र और उसके संविधान में विश्वास नहीं करता था। उसने लगातार वर्साय संधि की शर्तें मानने वाले राजनेताओं को 'नवंबर अपराधी' के रूप में संदर्भित किया। हिटलर अपने प्रचार में कहता था कि नवंबर अपराधियों द्वारा जर्मनी की "पीठ में छूरा भोंका" गया था क्योंकि उन्होंने संधि पर हस्ताक्षर किया था। (नवंबर 1918 में सोशल डेमोक्रेटों ने जर्मन क्रांति के परिणामस्वरुप सत्ता पर कब्जा कर लिया था और मित्र देशों के साथ युद्धविराम पर हस्ताक्षर किया था)।

चित्र: हिटलर

25.5. हिटलर के उदय एवं नाजियों की लोकप्रियता के लिए उत्तरदायी कारण

हिटलर के उदय के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी थे:

- **जर्मनी के समक्ष आर्थिक समस्याएं:** आर्थिक समस्याओं और राइखस्टैग की अक्षमता के कारण हिटलर का प्रभाव बढ़ा। आर्थिक समस्याओं में वृद्धि के साथ राइखस्टैग में नाजियों द्वारा जीती गई सीटों की संख्या में भी वृद्धि होती गई क्योंकि लोगों ने कानून और व्यवस्था बनाए रखने और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के लिए नाजियों की ओर देखना आरंभ कर दिया था। जर्मनों

का मानना था कि नाजियों का अनुशासन उच्च आर्थिक विकास प्राप्त करने में उनके देश की सहायता करेगा।

- **साम्यवाद का डर:** जर्मनी में फैल रहे साम्यवाद के डर से न केवल निम्न मध्यम वर्ग के बीच बल्कि उन श्रमिकों के बीच भी नाजियों के लिए बड़े पैमाने पर समर्थन बढ़ा जो सोशल डेमोक्रेटों की बजाय नाजियों का समर्थन करने लगे थे। साम्यवाद के डर से समृद्ध ज़मींदारों और उद्योगपतियों का समर्थन भी हिटलर को मिला। इन्हीं उद्योगपतियों और जमींदारों ने हिटलर का वित्तपोषण किया; विशेषकर उसके सत्तारोहण के बाद।
- **नाजी प्रचार:** नाजी कुशल प्रचारक थे और जनता की मनोभावना गढ़ने और प्रभावित करने का यही उनका तरीका था। उनके प्रचार के निम्नलिखित तत्व थे:
  - नाजी जर्मनी की सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं और साथ ही वर्साय की अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए भी सरकार को दोषी ठहराते थे। उन्होंने "पीठ में छूरा भोंकने" की भावना को लोकप्रिय बनाया जिसके अनुसार जर्मनी को प्रथम विश्वयुद्ध में आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं थी और वह युद्ध जीत सकता था।
  - नाजियों ने 'नवम्बर अपराधियों' (वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर करने वाले सोशल डेमोक्रेट, मार्क्सवादियों, यहूदी और जेसुइट) से जर्मनी को मुक्ति दिलाकर राष्ट्रीय एकता, समृद्धि और पूर्ण रोजगार का वादा किया। नाजियों ने युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान न करके और वर्साय की संधि को न मानते हुए स्थिति को पलटने का वादा किया। इसके साथ ही पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और ऑस्ट्रिया में रहने वाले सभी जर्मनों को एक साथ राइख में लाने का भी वादा किया।
- हिटलर के पास असाधारण राजनीतिक योग्यता और वाक-पटुता के माध्यम से सार्वजनिक भावनाओं को प्रभावित करने की क्षमता थी। वह अनन्त ऊर्जा वाला व्यक्ति प्रतीत होता था और उसे बहुत मजबूत इच्छा शक्ति वाला व्यक्ति कहा जाता था।
- नाजी निजी सेना अर्थात Sturmabteilung अथवा S.A. (स्टॉर्म ट्रूपर्स) ने बेरोजगार युवाओं को कम वेतन और एक अधिक आकर्षक वर्दी का प्रलोभन दिया। इस प्रकार बहुत से बेरोजगार युवा S.A. की ओर आकर्षित हुए।
- वाइमर गणतंत्र और नाजियों की सरकार के बीच भारी अंतर था। जहां वाइमर सरकारें अनिर्णायक थीं और एकता से रहित एवं गुटबाजी से ग्रस्त थीं, वहीं नाजियों ने कानून और व्यवस्था, निर्णायक सरकार और राष्ट्रीय गौरव का पुनर्स्थापन सुनिश्चित किया।
- नाजी किसी भी राजनीतिक विकल्प या कम्युनिस्टों या कैथोलिक सेंटर पार्टी का विरोध भी कुचलने में सफल रहे।

25.6. हिटलर को चांसलर क्यों बनाया गया था?

1932 में दक्षिणपंथी (राष्ट्रवादी) सत्ता में आए। उन्होंने हिटलर की नाजी पार्टी को एक गठबंधन सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, जिसमें पहली बार उसे उप-चांसलर के पद का प्रस्ताव दिया गया परन्तु बाद में उसके आग्रह पर उसे चांसलर का पद देने पर सहमति बनी। दक्षिणपंथी राजनेता हिटलर को अपने साथ इसलिए जोड़ना चाहते थे क्योंकि:

- उन्हें नाजी नेतृत्व वाले पुत्स्च द्वारा हिंसात्मक रूप से उखाड़ फेंके जाने से डर लगता था।
- नाजियों को सम्मिलित किए जाने से उन्हें सुविधाजनक बहुमत प्राप्त हो सकता था, जो न केवल स्थिरता प्रदान करेगा अपितु राईखस्टैग की कम शक्तियों वाली पूर्व-वाइमर स्थिति में वापस लाने का मार्ग प्रशस्त कर सकता था।
- इससे उन्हें कम्युनिस्टों की लोकप्रियता को रोकने में सहायता प्राप्त होगी।
- कई लोगों का यह मानना था कि हिटलर को नियंत्रित करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय उसे अपने साथ मिला लेना है।

VISION IAS

25.7. हिटलर के पास शक्ति का संचय

1933 में चांसलरशिप प्राप्त होने के पश्चात, हिटलर ने नाजियों के लिए एकल पार्टी बहुमत से जीतने की आशा में आम चुनावों की मांग की।

- उसने नाजियों को लाभ पहुँचाने के लिए राज्य की मशीनरी का उपयोग किया। जब हिंसक SA और SS ने कम्युनिस्टों की हत्या की तो उसने पुलिस को उनके विरुद्ध कार्यवाही न करने के लिए कहा। उसने पुलिस के शीर्ष पदों पर भी नाजियों को नियुक्त किया।
- **राईखस्टैग का अग्निकांड (1933):** राईखस्टैग में कुछ उग्र कम्युनिस्टों ने आग लगा दी थी परन्तु यह कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सुनियोजित कार्य नहीं था। फिर भी हिटलर ने इस आगजनी का दोष कम्युनिस्ट पार्टी को दिया और इस घटना का उपयोग कम्युनिज्म के प्रति भय उत्पन्न करने और चुनावों में बड़े स्तर पर समर्थन प्राप्त करने के लिए किया।
- 1933 के चुनावों में हिटलर कुल 44 प्रतिशत वोटों से विजयी हुआ।
- **एनेबलिंग ला (कानून द्वारा सक्षम किया जाना) 1933:** इस कानून से हिटलर को निरंकुश शक्तियाँ प्राप्त हो गईं और वाईमर संविधान का अंत हो गया। इस कानून के अंतर्गत:
  - सरकारी कानूनों को चार वर्षों तक राईखस्टैग की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी। इसका आशय यह था कि हिटलर अब तानाशाह बन गया था और वाईमर गणराज्य का अंत हो गया था चांसलर या सरकार का कानून संविधान के विरुद्ध होकर भी वैध हो सकता था क्योंकि इन कानूनों को प्रभावी होने के लिए संसद की अनुमति की आवश्यकता नहीं थी।
  - इस कानून को पारित करने के लिए 2/3 बहुमत की आवश्यकता थी जिसे उसने बलपूर्वक प्राप्त कर लिया था। मतदान के दौरान SA सैनिकों को राईखस्टैग पर तैनात कर दिया गया और उसके बाहर SS सैनिकों ने "विधेयक या गोली (हत्या)" का नारा लगाया, जिससे वहां अत्यधिक भय वाला वातावरण उत्पन्न हो गया।
- एनेबलिंग विधेयक पारित होने के पश्चात हिटलर ने **"ग्लीकस्कालटंग की नीति"** (बलात समन्वय) की नीति का अनुसरण किया जिसने जर्मनी को एक सर्वाधिकारवादी / फासीवादी राज्य बना दिया। उसने विपक्ष को कुचलने के लिए कुख्यात गेस्टापो (गुप्त पुलिस) का भी उपयोग किया।

25.8. हिटलर का शासन या नाजीवादी कार्यप्रणाली

जर्मनी में हिटलर के शासन की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं:

- अन्य सभी पार्टियों को प्रतिबंधित कर दिए जाने के कारण जर्मनी एकल पार्टी राज्य बन गया था।
- प्रत्येक राज्य में एक नाजी विशेष आयुक्त (नियुक्त तानाशाह) नियुक्त किया गया था और राज्य की विधानसभाओं से उनकी शक्तियाँ छीन ली गईं थीं। वहां अब कोई राज्य या नगरपालिकाओं के चुनाव नहीं होने थे।
- सिविल सेवाओं से यहूदियों को या जो भी नाजियों के विरुद्ध था, उसका सफाया कर दिया गया था।
- ट्रेड यूनियनों को समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर नाजी पार्टी के कठोर नियन्त्रण वाला जर्मन श्रमिक मोर्चा प्रतिस्थापित कर दिया गया। सभी श्रमिकों को इसी मोर्चे का सदस्य होना अनिवार्य था। हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और सभी प्रकार की शिकायतों का निवारण अब सरकार का उत्तरदायित्व था।
- शिक्षा व्यवस्था पर कड़ी नजर रखी गई ताकि बच्चों के मस्तिष्क को शासन के अनुकूल बनाया जा सके –
  - लिंग, यहूदी-विरोधी प्रचार, जातीय श्रेष्ठता (अर्थात आर्य एकमात्र स्वामी जाति है) के सम्बन्ध में रूढ़िवादी दृष्टिकोण, हिटलर समर्थक प्रचार इस अनुकूलन की विशेषताएँ थीं।
  - गेस्टापो शिक्षकों पर निकट से नजर रखता था और बच्चे गेस्टापो से नाजी विरोधी शिक्षकों की शिकायत कर सकते थे।
  - यहूदी बच्चों को विद्यालयों से बाहर कर दिया गया था।

VISION IAS

- हिटलर यूथ (लड़कों के लिए) और लीग ऑफ़ जर्मन मेडेन्स (लडकियों के लिए): सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु प्राप्त करते ही इन संगठनों में सम्मिलित होना अनिवार्य था।
  - "फ़्युहरर सदैव सही हैं", "फ़्युहरर की आज्ञा का पालन करना चाहिए" आदि जैसे नारों को लोकप्रिय बनाया गया।
- मीडिया पर प्रचार मंत्रालय का नियन्त्रण था।
- देश के आर्थिक जीवन को घनिष्ट रूप से दो प्रमुख उद्देश्यों के लिए संगठित किया गया था – बेरोजगारी को घटाना और चालू खाते घाटे (CAD) को कम करने के लिए निर्यात में वृद्धि और जर्मनी को आत्मनिर्भर बनाने के लिए न्यूनतम आयात। इसकी विशेषताओं में सम्मिलित थे:
  - उद्योगों को यह बताना कि क्या उत्पादन करना है।
  - भोजन की कीमतों पर नियन्त्रण।
  - मुद्रास्फीति से बचने के लिए विदेशी मुद्रा के मूल्यों पर नियन्त्रण; उदाहरणार्थ मुद्रा को स्थिर किया गया।
  - स्वच्छता, सडक निर्माण और स्लम बस्तियों को हटाने जैसी सार्वजनिक कार्यों की बड़ी योजनाएँ।
  - तेल आयात को कम करने के लिए जैव ईंधन के उत्पादन के प्रयास किये गए।
  - व्यापारिक सहभागियों से आयात के बदले में उन्हें जर्मन सामान खरीदने के लिए विवश करना। ऐसा करने के लिए नकद भुगतान मना किया गया और जर्मनी में विदेशियों के बैंक खातों को जब्त किया गया।
- धर्म को राज्य के नियन्त्रण में लाया गया और हिटलर ने नन, पुजारियों को बंदी बना कर और उन्हें बंदी शिविरों में भेज कर उन पर कड़ी कार्यवाही की।
- इच्छामृत्यु अभियान: यहाँ नाजियों ने मानसिक रोगियों की हत्या की। यह नाजी पार्टी की "जातीय स्वच्छता" की नीति पर आधारित था, जिसमें यह विश्वास किया जाता था कि जर्मन लोगों को 'जातीय रूप से अस्वस्थ' और विकलांगता से मुक्त किया जाना है। यह सामाजिक डार्विनवाद में नाजियों के विश्वास का उदाहरण था, यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसमें 'प्राकृतिक चयन' और 'योग्यतम की उत्तरजीविता' की जैविक अवधारणाओं को राजनीति और समाजशास्त्र में लागू किया जाना है।
- हिटलर के अधीन जर्मनी एक पुलिस राज्य बन गया था।
- 1933 में यातना गृह प्रारम्भ किये गये।
- यहूदी विरोधी नीति:
  - नाजी प्रचार में यहूदियों को जर्मनी की हर समस्या के लिए दोषी ठहराया गया।
  - नौकरियों से यहूदियों को हटा दिया गया।
  - इन प्रचार अभियानों को न्यूरेम्बर्ग कानूनों (1935) द्वारा कानूनी स्थिति प्रदान की गई, जिसमें:
    - यहूदियों को जर्मन नागरिकता से वंचित कर दिया गया।
    - आर्य जाति की शुद्धता के संरक्षण के लिए यहूदियों को गैर-यहूदियों से विवाह करने से मना कर दिया गया।
    - जिस व्यक्ति का एक भी दादा-दादी/नाना-नानी यहूदी थे, उसे यहूदी की ही श्रेणी में रखा गया।
  - "अंतिम समाधान" यहूदियों का सर्वनाश था, जिसका उद्देश्य सभी यहूदियों को भूखा रख कर मारना या उनसे बंदी शिविरों में उनकी मृत्यु तक श्रम कराना और उन्हें विषैली गैस चैम्बरों में डाल कर मार देना था।

VISION IAS

- प्रत्येक वर्ष भव्य जुलूसों, परेड और रैलियों के द्वारा राज्य की शक्ति का दिखावटी प्रदर्शन।
- 1939 में हिटलर बेरोजगारी को समाप्त करने में सफल हुआ इस सफलता के निम्नलिखित कारण थे:
    - लोक निर्माण योजनाएँ
    - विशाल पार्टी नौकरशाही ने अतिरिक्त रोजगार के अवसर निर्मित किए।
    - यहूदी और नाजी विरोधियों को नौकरियों से हटा दिया गया था। इससे नए स्थान रिक्त हुए।
    - अनिवार्य सैन्य सेवा (कोंस्क्रिप्शन) 1935 में प्रारम्भ की गई थी, जिससे अतिरिक्त नौकरियाँ सृजित हुईं।
    - 1934 में पुन:शस्त्रीकरण प्रारम्भ किया गया जिससे उद्योगों में रोजगार को बढ़ावा मिला।
- हिटलर को सभी वर्गों से समर्थन प्राप्त हुआ अर्थात:
    - किसान – उत्पादन के उचित मूल्य निर्धारित किये गए। इसके अतिरिक्त खाद्य में आत्मनिर्भरता लाने के लिए किसानों को प्रोत्साहन दिया गया।
    - कामगार – “Strength Through Joy (स्ट्रेंथ थ्रू जॉय)” नामक संगठन ने रियायती छुट्टियाँ, निःशुल्क सिनेमा टिकट आदि वितरित किए गए।
    - व्यवसायियों ने हिटलर का समर्थन इसलिए किया क्योंकि उसने उन्हें कम्युनिस्टों से और प्रतिबंधित ट्रेड यूनियनों से सुरक्षा प्रदान की।
    - सेना हिटलर से इसलिए प्रसन्न थी क्योंकि उसने पुन:सशस्त्रीकरण और अनिवार्य सैन्य सेवा प्रारम्भ की थी। हिटलर ने SS का उपयोग करके “नाईट ऑफ़ लॉन्ग नाईव्स” में रोह्म (Rohm) की हत्या कर दी। रोह्म SA का मुखिया था, वह SA और सेना का विलय कर के एक जनरल बनना चाहता था। इसका सेना के जनरलों द्वारा विरोध किया जाता था। सेना के जनरल कुलीन वर्ग से थे और वे SA को अपराधियों का एक समूह मानते थे। इसके अतिरिक्त वे रोह्म को अपने समकक्ष नहीं देखना चाहते थे, क्योंकि वह कथित रूप से समलैंगिक था।
- पहले चर्चा की जा चुकी है कि हिटलर की विदेश नीति सफल थी। उदाहरण के लिए पुन: सशस्त्रीकरण और अनिवार्य सैन्य सेवा, अंग्रेज-जर्मन नौसेना समझौते (1935) के द्वारा स्ट्रेसा मोर्चे को भंग करना, आस्ट्रिया के साथ अन्सच्ल्स (1938), म्यूनिख सम्मेलन (1938) चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार (1939), USSR के साथ अनाक्रमण संधि आदि।

25.9. हिटलर के शासनकाल का आंकलन

- **सकारात्मक :** उसने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में बेरोजगारी, कानून और व्यवस्था में सफलता प्राप्त की। यदि हिटलर द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में सफल हो जाता तो वह पूर्णतः सफल होता।
- **नकारात्मक:**
    - आर्थिक सफलता केवल निम्नलिखित उपायों के माध्यम से प्राप्त की गई थी:
        - हिंसक उपाय।
        - रोजगार के अवसर यहूदियों को हटा कर बनाए गये थे।
        - लोक निर्माण योजनाओं के द्वारा रोजगार सृजन, श्रमिकों की वेतन वृद्धि और उन्हें रियायती अवकाश और अन्य सुविधाएँ प्रदान करने, सशस्त्रीकरण प्रारम्भ करने (1934), अनिवार्य सैन्य सेवा (1935) और किसानों को उनकी उपज का उच्च मूल्य प्रदान करने – जैसे उपायों ने व्यय में वृद्धि की जिससे राजकोषीय घाटे में वृद्धि हुई। इस प्रकार युद्ध अनिवार्य हो गया क्योंकि उपर्युक्त उपायों के व्यय को पूरा करने के लिए युद्ध ही एकमात्र समाधान था। युद्ध में विजय से हिटलर को पराजित क्षेत्रों से कच्चे माल की आपूर्ति हो सकती थी और तेजी से बढती हुई जर्मन जनसंख्या के लिए कृषि योग्य भूमि एवं लेबेन्स्रम (रहने का स्थान) प्राप्त हो सकता था।

VISION IAS

26. जापान: सैन्य फासीवाद (Japan: Military Fascism)

- जापान में फासीवाद 1931 से 1945 तक चला। इसके प्रमुख लक्षणों में – कम्युनिस्टों का क्रूरता से दमन, सेना का विरोध करने वाले नेताओं की हत्या, चरम राष्ट्रवाद की ओर ध्यान देने के साथ शिक्षा पर कठोर नियन्त्रण, कच्चा माल प्राप्त करने और निर्यात बाजार बढ़ाने के उद्देश्य से एशियाई क्षेत्रों पर कब्जा करने के लिए शस्त्रीकरण और युद्ध की आक्रामक नीति का अनुसरण था।
- 1930 के प्रारम्भ में जापान एक सैन्य तानाशाही में परिवर्तित हो गया था, जिसने उसके चीन में होने वाले साम्राज्यवादी अभियानों को बढ़ावा दिया। आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं ने जापान को सेना के नियन्त्रण में धकेल दिया। जापान ने 1921 के मध्य तक आर्थिक वृद्धि का लाभ उठाया था। इसे प्रथम विश्वयुद्ध (1914-19) से बहुत ही लाभ पहुंचा था, क्योंकि युद्ध के पश्चात यूरोपीय शक्तियाँ आर्थिक रूप से बहुत निर्बल हो चुकी थीं और वर्साय की संधि से सम्बन्धित विवादों में उलझी हुई थीं। यूरोपीय देशों की आर्थिक निर्बलता ने उनके निर्यात को कम प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया था। इसके अतिरिक्त उनकी सैन्य शक्ति भी पूरी तरह से समाप्त हो गई थी, इसलिए वे जापानी आक्रमण को रोकने में असमर्थ थे। केवल अमेरिका ही एक ऐसा शक्तिशाली देश था जो जापान के साम्राज्यवादी विस्तार को रोक सकता था। परन्तु वह अलगाववाद की नीति का अनुसरण कर रहा था, जिसके अंतर्गत वैश्विक मामलों में कोई हस्तक्षेप न करना और किसी भी कीमत पर सैन्य विवाद से बचना शामिल था। जापान ने इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाया। 1918 तक प्रथम विश्वयुद्ध की अवधि में जापान ने मित्र राष्ट्रों को जहाजरानी और अन्य सामान निर्यात कर के आर्थिक लाभ अर्जित किया। निर्यात बाजार में इसने यूरोपीय कम्पनियों का स्थान ले लिया था, विशेष रूप से एशिया में। आपूर्ति के जिन ऑर्डर्स को यूरोपीय कम्पनियाँ पूरा करने में असमर्थ थीं उसे जापान ने पूरा किया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय जापान की कपास का निर्यात तीन गुना हो गया था और इसके व्यावसायिक पोतों की संख्या दोगुना हो गई थी।
- जापान की सामाजिक स्थितियाँ भी उसकी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के लिए उत्तरदायी थीं। समाज के प्रभावशाली वर्ग जैसेकि सेना और रूढ़िवादी लोग लोकतंत्र के विरोधी थे और प्रायः सरकार की आलोचना करते रहते थे। चीन के प्रति सेना का दृष्टिकोण सरकार के नर्म और सौहार्द्रपूर्ण दृष्टिकोण के विपरीत था, क्योंकि उपनिवेशी साम्राज्य के विस्तार के लिए सरकार चीन के गृहयुद्ध का लाभ उठाने में विफल रही थी।
- आर्थिक स्थितियों की भी इसमें भूमिका थी। 1922 तक आर्थिक उछाल समाप्त हो गया था क्योंकि यूरोपीय देशों की आर्थिक स्थिति संभल गई थी और उन्होंने कुछ सीमा तक अपने खोए हुए निर्यात बाजार को भी प्राप्त कर लिया था। जापान में बेरोजगारी बढ़ी और किसान भारी मात्रा में हुए फसल उत्पादन के कारण धान की तेजी से घटती कीमतों की मार से प्रभावित थे। किसानों और श्रमिकों के विरोध को क्रूरता से दबा दिया गया था और इस प्रकार वे भी सरकार के विरुद्ध खड़े हो गए। जापान का निर्यात बुरी तरह से प्रभावित हुआ, क्योंकि आयातक देश आयात के लिए भुगतान करने की स्थिति में नहीं थे। ऐसी स्थिति में वैश्विक आर्थिक संकट ने जापान के लिए क्रन्तिकारी मोड़ का कार्य किया। मंचूरिया में चीनी कम्पनियाँ जापानी कम्पनियों का स्थान लेने का प्रयास कर रही थीं और जापानी व्यापार और व्यवसाय संकट में थे। 1931 की पृष्ठभूमि में यह असहनीय था। सेना ने 1931 में सरकार को बताये बिना मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया और 1932 में जब प्रधानमन्त्री ने आक्रमण का विरोध किया तो उस की हत्या कर दी गई। 1945 तक सेना ही देश को फासीवादी ढंग से चला रही थी। सम्राट की प्रतिष्ठा तो बहुत अधिक थी, परन्तु वे जापानी साम्राज्यवाद को नियंत्रित करने में विफल रहे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं सेना उनके आदेश का पालन ही न करे। इस प्रकार 1930 के दशक में जापान में साम्राज्यवाद के लिए सेना उत्तरदायी थी कोई चुनी हुई सरकार नहीं। इसके अतिरिक्त आर्थिक समस्याओं और छोटे क्षेत्रीय आकार ने भी जापान को साम्राज्यवाद की वृद्धि के लिए प्रेरित किया।

VISION IAS

27. स्पेन: फ्रैंको का फासीवाद (Spain: Franco's Fascism)

- 1885 से सम्राट अलफांसो-XIII के आधीन स्पेन एक संवैधानिक राजशाही था। यह कभी भी एक कुशल प्रशासन प्रदान करने में सक्षम नहीं रहा। 1921 में स्पैनिश मोरक्को के मूर्स द्वारा पराजय से शासन की प्रतिष्ठा को गहरा झटका लगा था 1923 में जनरल प्रिमो ने एक रक्तरहित तख्तापलट में सत्ता पर अधिकार कर लिया और 1925 में स्पेनिश मोरक्को में स्पेन के लिए युद्ध में विजय प्राप्त की। परन्तु वैश्विक आर्थिक मंदी (1929) के पश्चात हुए व्यापक विरोध प्रदर्शनों के कारण प्रिमो को त्यागपत्र देना पड़ा। आर्थिक संकट के कारण बेरोजगारी, पेसेटा (स्पेन की मुद्रा) के अवमूल्यन और सेना से समर्थन वापस लेने के कारण अंततः प्रिमो (जो फासीवादी नहीं था) को पद छोड़ना पड़ा। यहाँ तक कि सम्राट अलफांसो-XIII को भी 1931 में रक्तपात से बचने के लिए सिहांसन छोड़ना पड़ा और स्पेन एक गणतन्त्र बन गया। समाजवादियों और कट्टरपंथी मध्यवर्गीय लोगों की एक गठबंधन सरकार सत्ता में आ गई।

27.1. स्पेन के गृहयुद्ध (1936-39) से पूर्व की स्थिति

गणतन्त्र बनने के पश्चात हुए गृहयुद्ध की पूर्वसंध्या पर निम्नलिखित परिस्थितियाँ थीं:

- चर्च और नई रिपब्लिकन सरकार के बीच गहरा विद्वेष था।
- स्पेन के दो प्रान्त इससे स्वतंत्रता की मांग कर रहे थे।
- 1929 का आर्थिक संकट स्पेन में आर्थिक मंदी का कारण बना। कृषि वस्तुओं की कीमतें गिर गईं, वाइन और जैतून के तेल का निर्यात घट गया और भूमि पर कृषि होनी बंद हो गई थी।
- सैन्य जनरलों द्वारा तख्तापलट का भी खतरा था।
- स्पेन का गृहयुद्ध वामपंथी और दक्षिणपंथियों के बीच संघर्ष का परिणाम था। वामपंथ में सामान्य रूप से ट्रेड यूनियन (अराजकतावादी और श्रमिक-संघवादी), समाजवादी और कम्युनिस्ट सम्मिलित थे, जबकि दक्षिणपंथियों में चर्च, सेना, जमींदार और उद्योगपति सम्मिलित थे।
- दक्षिणपंथी और वामपंथी दोनों ही विरोध करते थे और इस प्रकार गणतन्त्र, जो मध्य मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास कर रहा था वह क्षीण हो रहा था (क्योंकि सरकार वामपंथी समाजवादियों और मध्यवर्गीय कट्टरपंथियों का गठ्बन्धन थी, इसलिए दोनों पक्षों की मांगों में संतुलन बनाए रखने का प्रयास कर रही थी)। उदाहरण के लिए दक्षिणपंथी सरकार के निम्नलिखित निर्णयों का विरोध कर रहे थे:
    - स्वाधीनता की मांग कर रहे दो प्रान्तों में से किसी एक को स्वशासन प्रदान करना।
    - धर्मनिरपेक्षता का कार्यान्वयन: चर्च और राज्य को अलग कर दिया गया था। पादरियों को सरकारी वेतनसूची से हटा दिया गया। शिक्षा पर से चर्च का नियन्त्रण हटा दिया गया था। इस प्रकार से चर्च की शक्तियों को कम कर दिया गया इसलिए चर्च और दक्षिणपंथी सरकार का विरोध कर रहे थे।
    - तख्तापलट के खतरे को दूर करने के लिए सेना के कई महत्त्वपूर्ण जनरलों को हटा दिया गया।
    - वामपंथियों की मांगों को पूरा करने के लिए बड़ी निजी सम्पदाओं (भूमि) का राष्ट्रीयकरण किया गया।
    - श्रमिकों की वेतन वृद्धि से उद्योगपति इनके विरोधी हो गये थे।
- वामपंथियों ने मध्यवर्गीय कट्टरपंथियों के साथ सहयोग करने के लिए समाजवादियों का विरोध किया। वे साम्यवादी राज्य की स्थापना के लिए पूंजीवाद के विरुद्ध एक हिंसक क्रांति चाहते थे, अतः उन्होंने हड़तालों, दंगों और दक्षिणपंथी नेताओं की हत्याएँ आरम्भ कर दीं।

VISION IAS

- 1933 में दक्षिणपंथी सत्ता में आए और उन्होंने पिछली गठबन्धन सरकार द्वारा उठाये गये सभी कदमों को पलट दिया। इससे वामपंथी गुट क्रोधित हो गया और उन्होंने स्वयं को **लोकप्रिय मोर्चे** के रूप में संगठित कर लिया और क्रान्तिकारी गतिविधियाँ बढ़ा दी गईं। दक्षिण पंथी सरकार और **जनरल फ्रैंको** के अधीन सेना ने लोकप्रिय मोर्चे का क्रूरता से दमन किया। उदाहरण के लिए, फ्रैंको ने हड़ताली खनिकों पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। इसी बीच दक्षिणपंथी फासीवादियों ने स्वयं को एक नई **फलांगे पार्टी** के रूप में संगठित कर लिया।
- गम्भीर दमन के कारण लोकप्रिय मोर्चा 1936 में सत्ता में आया। दक्षिणपंथी नेताओं में से एक की हत्या हो गयी और इससे गृहयुद्ध आरम्भ हो गया, जिसे सेना और फलांगे पार्टी (Falange party) द्वारा सरकार को पलटने और सैन्य तानाशाही स्थापित करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था।

27.2. स्पेन का गृहयुद्ध (1936-39)

- गृह युद्ध दक्षिणपंथी और वामपंथी शक्तियों के बीच लड़ा गया था। दक्षिणपंथी स्वयं को राष्ट्रवादी कहते थे और वामशक्तियाँ स्वयं को रिपब्लिकन कहती थीं।
- समस्या तब बढ़ गई जब जनरल फ्रैंको के अधीन राष्ट्रवादियों ने स्पेनिश मोरक्को में विद्रोह आरम्भ कर दिया।
- गृह युद्ध के दौरान इटली और जर्मनी ने राष्ट्रवादियों का टैंकों, सेनाओं, हवाई हमलों, भोजन आपूर्ति और कच्चे माल से सहायता की। जर्मनी ने 1937 में गुएर्निका शहर पर बमबारी की और इस कार्रवाई में 1600 निर्दोष नागरिकों की जान चली गयी।
- रूस ने रिपब्लिकन का समर्थन किया, वहीं ब्रिटेन और फ्रांस ने हस्तक्षेप करने से मना कर दिया। अमेरिका और यूरोप से फासीवादी स्वयंसेवक रिपब्लिकन के समर्थन के लिए स्पेन आए। **जवाहरलाल नेहरू** अपनी पुत्री इंदिरा गांधी के साथ 1938 में बर्सिलोना आए थे। बाद में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा, *यह 1938 का यूरोप था, श्री नेविले चैम्बरलिन तुष्टीकरण में लगे हुए थे और विश्वासघात के मारे कुचले राष्ट्रों के शवों पर, म्यूनिख में आयोजित अंतिम दृश्य की ओर बढ़ रहे थे। वहां मैंने एक संघर्षरत यूरोप में सीधी उड़ान से सीधा बार्सिलोना में प्रवेश किया। वहां मैं पांच दिन रुका और रात में हवा से सीधे गिरते हुए बमों को देखता था। वहां मैंने और कुछ भी देखा, जिसने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया; और वहां, इच्छा और विनाश के बीच कभी भी आ जाने वाली आपदा, मुझे यूरोप में कहीं और से अधिक अपने साथ शांति अनुभव कराती थी। वहां प्रकाश था, साहस और दृढ संकल्प और कुछ सार्थक करने का प्रकाश।"*
- गृहयुद्ध में राष्ट्रवादियों की निम्नलिखित कारणों से विजय हुई:
    - फ्रैंको का समर्थ नेतृत्व
    - वामपंथियों में एकता का अभाव (उदाहरण – अराजकतावादी और समाजवादी बर्सिलोना में एक दूसरे के विरुद्ध लड़े)
    - इटली और जर्मनी ने फ्रैंको को इस आशा से समर्थन दिया कि यूरोप में एक और फासीवादी सरकार बनेगी।

27.3. स्पेन में फासीवाद (1939-75)

गृहयुद्ध का अंत स्पेन में एक फासीवादी सरकार की स्थापना के साथ हुआ, जिसका अस्तित्व 1975 में फ्रैंको की मृत्यु तक रहा। इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं:

- फ्रैंको इतना अधिक चतुर था कि उसने स्पेन को द्वितीय विश्व युद्ध से बाहर रखा। इससे हिटलर बहुत निराश हुआ।

VISION IAS

- फ्रैंको का शासन हिटलर और मुसोलिनी के शासन जैसा ही था, जिसमें दमन, सैनिक अदालतें और सामूहिक फांसी जैसे लक्षण थे। उसने मुसोलिनी और हिटलर की भांति "कॉडीलो" (नेता) जैसे- इल ड्यूस और फ्यूहरर की उपाधि धारण की।
- 1960 के दशक में, कॉडिलो ने शासन की दमनकारी नीति को कम करने के लिए कुछ कदम उठाये। उदाहरण के लिए – सैनिक अदालतें समाप्त की गईं, कामगारों को हड़ताल का सीमित अधिकार दिया गया और संसद के लिए चुनाव प्रारम्भ किये गए।
- फ्रैंको का स्पेन पूरी तरह से फासीवादी नहीं था। उदाहरण के लिए:
    - फ्रैंको ने चर्च का समर्थन किया और उसकी शक्तियाँ उसे लौटा दीं (उदाहरणस्वरुप शिक्षा को फिर से चर्च के नियन्त्रण में लाना)। ऐसा किसी भी फासीवादी सरकार में सम्भव नहीं था, जिसमें सभी नियन्त्रण और शक्तियाँ सरकार के हाथों में होती हैं।
    - युद्ध-विरोधी रुख: फ्रैंको ने द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेने से मना कर दिया और युद्ध के समय में स्पेन निष्पक्ष रहा। यह युद्ध को एक महान राष्ट्र के जन्म के उपकरण के रूप में उपयोग करने की फासीवादी नीति के विरुद्ध है।
- 1977 में संवैधानिक राजशाही के साथ लोकतंत्र स्थापित करने के लिए पहले बहु-दलीय चुनाव आयोजित किये गये थे। 1986 में स्पेन यूरोपीय आर्थिक समुदाय में सम्मिलित हो गया और इसका पर्यटन उद्योग बहुत ही तेजी से विकसित हुआ।

28. फासीवादी दर्शन

- फासीवाद की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है, क्योंकि उनमें मार्क्स जैसा कोई भी फासीवादी लेखक नहीं था, जो इसका गहन अध्ययन करता और फासीवाद के सिद्धांतों का प्रतिपादन करता। इस प्रकार फासीवाद का कोई स्पष्ट सिद्धांत मौजूद नहीं है। वाम पंथियों के बीच एक प्रवृत्ति है कि वे किसी भी दक्षिणपंथी विचारों वाले व्यक्ति को फासीवादी कह देते हैं। (कई बार देश में बहुसंख्यक समूह के कट्टरवाद को फासीवाद कहा जाता है, वहीं अल्पसंख्यक के कट्टरवाद को अलगाववाद कहा जाता है)। जिन नेताओं पर फासीवाद का लेबल लगाया गया था, हम उनके द्वारा किये गए वास्तविक कार्यों के अध्ययन के पश्चात् ही इस प्रश्न के उत्तर तक पहुंच सकते हैं कि फासीवाद क्या है (जैसाकि उपर्युक्त मामलों की चर्चा की गयी है)। कुछ नेता जिन्हें फासीवादी कहा गया है, उनमें हिटलर (जर्मनी), मुसोलिनी (इटली), फ्रैंको (स्पेन), सालाजार (पुर्तगाल) और पेरान (अर्जेन्टीना) सम्मिलित हैं।

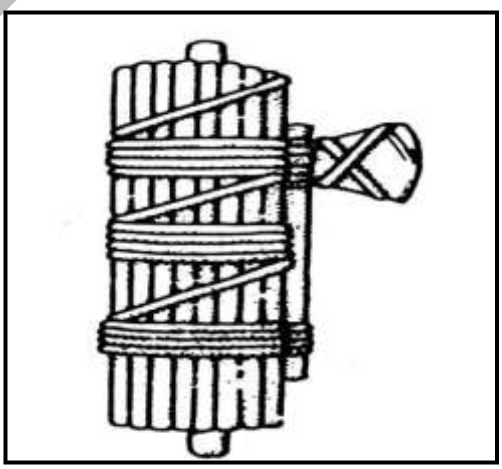

- 'फैसेस' या फासिस (Fasces) शब्द का अर्थ है छड़ों का एक बंडल, जिसमें एक कुल्हाड़ी बाहर निकली हुई है, जो प्राचीन रोमन कोंसुल की शक्ति का प्रतीक थी। एक महान राष्ट्र के निर्माण की

VISION IAS

दिशा में सभी वर्गों के लोगों का एकता के साथ कार्य करने के रूप में इस चित्र का विश्लेषण किया जा सकता है।

- **मुसोलिनी** 1923 से पूर्व अपने उद्देश्यों को परिवर्तित करता रहा। प्रारम्भ में वह श्रमिक-वर्ग का समर्थक था परन्तु बाद में वह साम्यवाद के विरुद्ध हो गया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उसका मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना था न कि फासीवाद का प्रचार। फिर भी फासीवाद को मुसोलिनी ने जिस प्रकार व्यवहार में उपयोग किया उसके मूलभूत सिद्धांत इस प्रकार हैं:
    - **चरम राष्ट्रवाद** के अवशेषों से एक महान राष्ट्र को निर्मित करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इसमें एक राष्ट्र के अन्य राष्ट्रों से अधिक श्रेष्ठ होने की अवधारणा का प्रचार भी सम्मिलित है।
    - **अधिनायकवादी सरकार:** जितना सम्भव हो सके राज्य लोगों के जीवन के कई पक्षों को नियंत्रित करता है। इसका कारण यह है कि राज्य की महानता सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है, क्योंकि राज्य किसी व्यक्ति के हितों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है।
    - **एकल पार्टी व्यवस्था:** मुसोलिनी के फासीवादी राज्य में प्रजातंत्र के लिए कोई स्थान नहीं था और साम्यवाद से इनकी विशेष रूप से शत्रुता थी। साम्यवाद से शत्रुता भी एक कारण था जिसने फासीवाद को लोकप्रियता दिलाई, क्योंकि इसने मध्यवर्ग के बीच साम्यवादी अधिग्रहण के भय को रोक दिया था। केवल एक ही पार्टी थी और वह थी फासीवादी पार्टी। राष्ट्र के कुलीन वर्ग फासीवादी पार्टी के सदस्य थे।
    - **चमत्कारी या करिश्माई नेता:** उस नेता के करिश्माई व्यक्तित्व पर बहुत बल दिया जाता था जो जनता के बीच मजबूत छवि बनाने के लिए अपने रोमांचकारी भाषणों और कुशल प्रचार से जनता के बीच सशक्त छवि प्रस्तुत करता था। उसे सर्वोच्च नेता या इल ड्यूस (Il Duce) के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।
    - **ऑटार्की (Autarchy):** इसके अंतर्गत आर्थिक स्वाधीनता को राष्ट्रीय नीति के रूप में माना जाता है। देश के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने से सभी उत्पादन देश के भीतर ही होंगे और बेरोजगारी समाप्त हो जाएगी। यदि देश में सभी आर्थिक उत्पादन हो रहे हैं तो देश हर नागरिक को रोजगार उपलब्ध करा कर उसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर सकेगा। आयात कम करने और निर्यात में वृद्धि करने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है ताकि देश अपनी आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर सके। इसलिए देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया गया और उसे प्राप्त करने के लिए – बाजार, राज्य और अर्थव्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण का समर्थन किया गया था।
- **फासीवाद का विकास क्यों हुआ?** कई विचारकों का तर्क है कि फासीवाद मध्यवर्गीय लोगों का आन्दोलन था, जिसे उन्होंने अपनी आर्थिक समृद्धि के उद्देश्य से चलाया था। इसी प्रकार कुछ लोगों का तर्क है कि पूंजीवाद के कारण फासीवाद उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि पूंजीवाद का आधारभूत लक्षण पूंजीपति वर्ग की समृद्धि है।

29. नाजीवाद (राष्ट्रीय समाजवाद) {Nazism (National Socialism)}

'नाजीवाद' या राष्ट्रीय समाजवाद का साम्यवाद (कम्युनिज्म) से कोई लेना देना नहीं है। इस शब्द का उपयोग फासीवाद के लिए ही किया जाता है, जोकि हिटलर के समय जर्मनी में प्रसिद्ध था। इसलिए नाजीवाद कुछ और नहीं है बल्कि यह एक प्रकार का फासीवाद ही है। नाजीवाद के कुछ मूलभूत सिद्धांतों को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया जा सकता है:

VISION IAS

- **समाजवाद/मार्क्सवाद/समाजवाद के विरुद्ध:** यद्यपि सत्ता में आने के पश्चात हिटलर श्रमिकों की स्थितियों में सुधार करने में सफल रहा था, परन्तु राष्ट्रीय समाजवाद में शब्द 'समाजवाद' का उपयोग नाज़ियों द्वारा श्रमिकों को अपनी पार्टी की ओर आकर्षित करने के लिए किया गया था।
- **चरम राष्ट्रवाद:** नाजीवाद को राष्ट्र के पुनर्जन्म के लिए समर्पित एक जीवन शैली के रूप में वर्णित किया गया था। नाजीवाद की मांग थी कि सभी वर्गों को राष्ट्र की महानता या गौरव के पुनर्निर्माण के लिए एकजुट होना चाहिए।
- **एकल नेता:** एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जिसमें सम्पूर्ण राष्ट्र का विश्वास हो ताकि वह देश के गौरव के निर्माण का नेतृत्व करने में सक्षम हो। इस प्रकार व्यक्तित्व को सुव्यवस्थित प्रचार के माध्यम से प्रोत्साहित किया जाता है। नेता रोमांचक भाषण देता है और सार्वजनिक रूप से अपनी छवि को एक हीरो के रूप में उभारता है। बच्चों के अन्दर स्वयं को फ्यूहरर (नेता) की सेवा में समर्पित करने की भावना फूंकने के लिए शिक्षा व्यवस्था का उपयोग एक उपकरण के रूप में किया जाता है।
- **एकल पार्टी प्रणाली:** ऐसा इसलिए था क्योंकि केवल नाजियों ने ही जर्मनी के गौरव का पुनर्निर्माण किया था। अतः सभी पार्टियों के साथ-साथ विशेष रूप से साम्यवादियों का सफाया होना चाहिए था।
- **सर्वसत्तावादी सरकार (Totalitarian Government):** एक सर्वसत्तावादी सरकार में जनता के जीवन के सभी पहलुओं से संबद्ध संगठन की दक्षता पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति का हित सदैव राष्ट्रीय हितों के पश्चात आता है। जनता के बीच इस संदेश को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रचार की भूमिका को मान्यता दी गई।
- **सैन्य शक्ति:** राष्ट्र को सैन्य रूप से सशक्त होना चाहिए। सम्पूर्ण राज्य को सैन्य स्तर पर संगठित किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए था क्योंकि युद्ध को राष्ट्र की महानता के पुनर्निर्माण के उपकरण के रूप में देखा गया था।
- **जातिवाद का सिद्धांत:** यह नाजीवाद का एक अनोखा और महत्वपूर्ण अंग था। इसका तर्क था कि सम्पूर्ण मानव जाति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, अर्थात आर्य और अनार्य। जर्मन लोग आर्य थे। वे लम्बे, नीली आँखों वाले, सुंदर और स्वामी जाति से सम्बन्धित होने के कारण विश्व पर शासन करने का भाग्य लेकर आए थे। स्लाव, एशियाई, अश्वेत और विशेषकर यहूदी लोगों के अनार्य होने के कारण उनके भाग्य में दासता लिखी थी। वे नीच और लालची थे।
- **आर्थिक आत्मनिर्भरता:** राष्ट्र को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए। इसका उद्देश्य बेरोजगारी को कम करना था। जहाँ तक सम्भव हो आयात पर निर्भरता नहीं होनी चाहिए। राज्य को स्वदेशी उद्योगों के विकास द्वारा आयात प्रतिस्थापन को लक्षित करना चाहिए और कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशी क्षेत्रों पर भी अधिकार करना चाहिए।

VISION IAS

30. नाजीवाद और इटली के फासीवाद में समानताएँ

हिटलर द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले नाजीवाद और इटली में मुसोलिनी के फासीवाद के सिद्धांतों में निम्नलिखित समानताएँ थीं:

- राष्ट्रवाद के पुनर्जन्म के लिए दोनों ही सिद्धांतों में चरम राष्ट्रवाद पर बल दिया जाता था।
- अधिनायकवादी सरकार, राज्य की सर्वोच्चता और एकल पार्टी प्रणाली अन्य समान विशेषताएँ थीं।
- आर्थिक आत्मनिर्भरता को राष्ट्रीय नीति के रूप में प्रयोग किया गया (इससे बेरोजगारी कम करने के उद्देश्य में सहायता प्राप्त होगी)।
- युद्ध का गुणगान, देश की सैन्य शक्ति के निर्माण पर ध्यान देना और राष्ट्र की महानता के पुनर्निर्माण के लिए युद्ध को एक उपकरण के रूप में प्रयोग करने की धारणा रखना।
- आवश्यक रूप से साम्यवाद विरोधी।
- राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सभी वर्गों के मध्य एकता।
- सुव्यवस्थित प्रचार के माध्यम से नेता के व्यक्तित्व को प्रोत्साहित करना।

31. नाजीवाद और फासीवाद में अंतर

- नाजीवाद की तुलना में फासीवाद को अस्पष्ट कहा जा सकता है क्योंकि नाजीवाद द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों में अधिक स्पष्टता है। एक अन्य अंतर यहूदियों के प्रति नीति के सम्बन्ध में भी है। इटली का फासीवाद 1938 तक यहूदी विरोधी नहीं था। इसके बाद ही मुसोलिनी ने हिटलर की यहूदी विरोधी नीति को अपनाया था।
- हिटलर और मुसोलिनी ने फासीवाद को व्यावहारिक रूप कैसे दिया और सम्बन्धित देशों में फासीवाद का विकास कैसे हुआ, इसमें भी कुछ अंतर थे। इन अंतरों को इस प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है:
    - जर्मनी में नाजीवाद का प्रसार इटली के फासीवाद से अधिक गहरा और व्यापक था।
    - आर्थिक आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के प्रति जर्मन नाजी व्यवस्था अधिक दक्ष और सफल थी और हिटलर बेरोजगारी को समाप्त करने में सफल रहा था। इसके विपरीत इटली में बेरोजगारी में वृद्धि हुई और यह आर्थिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति में विफल रहा।
    - उत्पीड़न के मामले में नाजी अधिक क्रूर थे और काफी सीमा तक उन्होंने मानवाधिकारों का उल्लंघन किया था। यहूदियों को व्यवस्थित रूप से मौत के घाट उतारने के लिए हिटलर ने यातना शिविरों की स्थापना की और यहाँ तक कि पोलैंड की गैर-यहूदी जनसंख्या को भी इन यातना शिविरों में भेजा गया। शिविरों में लोगों से अवैतनिक श्रम कराया जाता था और उन्हें भोजन से वंचित रखा जाता था। बहुत लोग भूख से मर गये और बहुतों को जहरीले गैस के कक्षों में भेजा गया। इसके विपरीत इटली में इतने बड़े स्तर पर कोई अत्याचार नहीं हुए।
    - मुसोलिनी चर्च के प्रति अपनी नीति में अधिक सफल रहा। 1929 में राजनीतिक क्षेत्र से हटने के लिए उसने पोप के साथ एक समझौता किया और उसके बदले में उसने पोप को धार्मिक क्षेत्र में स्वतंत्रता दी। दूसरी ओर, हिटलर इस प्रकार की कूटनीति के लिए अधीर था और वह समाज में चर्च का कोई भी प्रभाव नहीं चाहता था। चर्च के प्रति उसने बहुत ही कठोर नीति का पालन किया और चर्च को दबाने के नाजी प्रयासों में चर्च के कई सदस्यों को मार डाला गया।
    - हिटलर और मुसोलिनी की संवैधानिक स्थितियाँ भी भिन्न थीं। इटली में राजशाही अभी भी अस्तित्व में थी और राजा ने 1943 में मुसोलिनी को बर्खास्त करने का आदेश देकर उसके राज्य का अंत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके विपरीत जर्मनी में हिटलर से ऊँची कोई भी सत्ता नहीं थी जो उसे संवैधानिक रूप से पदच्युत या गिरफ्तार कर सके।

32. साम्यवाद और फासीवाद में समानताएं

यद्यपि दोनों ही अवधारणाएँ वामपंथी और दक्षिणपंथी एकरूपता के चरम छोर पर हैं। फिर भी उन्हें जिस प्रकार विभिन्न देशों में अपनाया गया था, हम उन्हीं में से कुछ समानताएँ खोजने का प्रयास कर सकते हैं:

- एक दलीय व्यवस्था।
- आत्मनिर्भरता पर ध्यान केन्द्रित करना (उदाहरण – खाद्य सुरक्षा और आयात घटाने पर बल देना)।
- राष्ट्र की महानता का निर्माण या राष्ट्र के पुनर्जन्म पर बल देना।
- अधिनायकवादी साम्राज्य अर्थात लोगों के सामाजिक और आर्थिक पक्षों को राज्य द्वारा संयोजित करना। राज्य ही निर्णय लेगा कि उद्योग क्या उत्पादन करेगा और राज्य ही देश की अर्थव्यवस्था को भी नियंत्रित करेगा।
- आक्रामक विदेश नीति – राष्ट्र के गौरव के पुनर्निर्माण के लिए फासीवादी युद्ध को एक उपकरण के रूप में मानते थे। साम्यवादी हिंसक आन्दोलन में विश्वास करते हैं और इस आन्दोलन के निर्यात द्वारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद पर बल देते हैं। स्टालिन ने आक्रामक विदेशी नीति का अनुकरण किया। उसने पूर्वी यूरोप को अपने प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित किया और विदेशी शक्तियों के विरुद्ध किये जा रहे संघर्ष में क्यूबा, अंगोला और वियतनाम आदि देशों का समर्थन भी किया।

VISION IAS

33. फासीवाद और साम्यवाद में अंतर

फासीवाद और साम्यवाद में बहुत से अंतर हैं परन्तु यहां कुछ को सूचीबद्ध किया गया है:

- विचारधारा में अंतर– अर्थात साम्यवाद वामपंथी विचारधारा का अनुकरण करता है वहीं फासीवाद दक्षिणपंथी विचारधारा को मानता है।
- नेता को सर्वोच्च माना जाता है और उसके व्यक्तित्व का महिमामंडन किया जाता है। उदाहरण के लिए हिटलर ने फ़्युहरर की उपाधि धारण की और उसे एक मसीहा के रूप में प्रचारित किया गया जो जर्मनी को उसके कष्टों से बाहर लाएगा। इसके विपरीत रूस और चीन जैसे देशों में साम्यवादी पार्टी को शीर्ष पर स्थापित किया गया है। जब माओ और स्टालिन जैसे नेताओं ने व्यक्तित्व को प्रोत्साहित किया तो पार्टी को विकृत करने के लिए उनकी आलोचना की गयी। एक आदर्श साम्यवादी व्यवस्था में पार्टी की सामूहिक इच्छा सर्वोपरि है न कि किसी एक नेता की।
- सैद्धांतिक रूप से साम्यवाद युद्ध के विरुद्ध है। साम्यवादी नेताओं ने फ़्रांस-प्रशा युद्ध (1870-71), रूस-जापान युद्ध (1904-05) और प्रथम विश्व युद्ध आदि का विरोध किया क्योंकि युद्ध को वे पूंजीवाद का उप-उत्पाद मानते थे। यद्यपि पहले का USSR और आज का चीन एक आक्रामक विदेश नीति का अनुसरण करते हैं – लेकिन वे महान राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए युद्ध को मान्यता नहीं देते हैं। स्टालिन ने अपनी आक्रामक विदेश नीति के पक्ष को उचित ठहराने के लिए साम्यवादी क्रांति को पूंजीवाद से बचाने की बात कही। इसके विपरीत द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवादी शक्तियों ने युद्ध को राष्ट्र के गौरव के पुनर्निर्माण के लिए अपरिहार्य उपकरण के रूप में देखा।
- दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं ने जिस आर्थिक व्यवस्था का अनुकरण किया वह दोनों के बीच प्रमुख अंतर बिंदु है। साम्यवादी धन के सामूहिक स्वामित्व पर विश्वास करते थे, वहीं फासीवादी धन के निजी स्वामित्व के पक्ष में थे (यद्यपि देश की अर्थव्यवस्था पर राज्य का नियन्त्रण दोनों ही व्यवस्थाओं की समान विशेषता है)।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Classroom Study Material

विश्व इतिहास : भाग 1B

VISIONIAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

25. 1914 में विश्व 4

25.1. यूरोप का अभी भी शेष विश्व पर प्रभुत्व 4

25.2. विश्व शक्तियों की राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक भिन्नता 4

25.3. 1880 के बाद साम्राज्यवादी विस्तार 4

26. यूरोप में होने वाले संघर्ष के कारण 5

27. प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व की कुछ प्रमुख घटनाएं 6

28. आर्कड्यूक की हत्या और प्रथम विश्व युद्ध में इसकी परिणति के लिए उत्तरदायी कारण 8

29. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान 11

30. वुडरो विल्सन के 14 सूत्र (1918) 13

31. मित्र शक्तियों का दृष्टिकोण और शांति समझौते 14

31.1. वर्साय की संधि 14

31.2. अन्य संधियाँ 15

31.2.1. सेंट जर्मेन की संधि (1919) और ट्रायनॉन की संधि (1920) 15

31.2.2. सेवर्स/सेव्रे की संधि (Treaty of Sevres; 1920) 16

31.3. शांति संधियों की समालोचना 16

32. प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव (1914-19) 18

33. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्र संघ) 21

33.1. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) के उद्देश्य 21

33.2. लीग की संविदा 21

33.3. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रमंडल) का संगठनात्मक ढांचा 21

33.4. राष्ट्रसंघ के प्रदर्शन का मूल्यांकन 22

33.4.1. राष्ट्रसंघ की सफलता 22

33.4.2. राष्ट्र संघ की विफलता/प्रभावहीनता के कारण 23

33.5. राष्ट्र संघ की विफलता का प्रभाव 26

33.6. राष्ट्रसंघ के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ की तुलना 26

33.7. संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रसंघ के बीच समानताएं : 27

34. 1919-29 तक का विश्व 28

35. प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार की दिशा में किए गए प्रयास 29

36. 1929 के बाद की घटनाएं 31

36.1. 1929 का आर्थिक संकट 31

VISION IAS

36.2. लॉसेन सम्मेलन (1932) 31
36.3. विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन 31
37. फ्रांस-जर्मनी संबंध (1919-33) 32
38. ब्रिटेन-सोवियत रूस संबंध (1919-33) 34
39. सोवियत रूस-जर्मनी संबंध (1919-33) 34
40. सोवियत संघ और फ्रांस के परस्पर सम्बन्ध (1919-33) 35
40.1. वर्साय की संधि 36
41. संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति 36
42. अंतर्राष्ट्रीय संबंध (1933-39) 38
42.1. एडोल्फ हिटलर और नाजी 44
42.1.1. हिटलर के उद्देश्य 45
42.1.2. हिटलर की सफलताएँ 45
VISION IAS

25. 1914 में विश्व

25.1. यूरोप का अभी भी शेष विश्व पर प्रभुत्व

- 1914 ई. में शेष विश्व पर यूरोप का प्रभुत्व कायम था, लेकिन यूरोप से बाहर संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान जैसी महत्वपूर्ण शक्तियाँ भी उपस्थित थीं। इसके अतिरिक्त यूरोप के भीतर सभी यूरोपीय देश शक्तिशाली नहीं थे। जर्मनी, फ्रांस और ब्रिटेन ही प्रमुख शक्तियाँ थे। शेष यूरोप अभी भी आर्थिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में था।
- 1914 तक, जर्मनी कच्चे लोहे और स्टील के उत्पादन के मामले में ब्रिटेन से आगे था, लेकिन कोयले के उत्पादन में पीछे था। वहीं दूसरी ओर फ्रांस, इटली, बेल्जियम और ऑस्ट्रिया-हंगरी जैसे देश ब्रिटेन और जर्मनी से काफी पीछे थे। रूस औद्योगीकरण आरंभ करने वाला अंतिम देश था। 1914 में रूसी उद्योगों का तेजी से विस्तार हो रहा था लेकिन फिर भी इसकी अर्थव्यवस्था प्रमुख रूप से कृषि अर्थव्यवस्था थी एवं जर्मनी और ब्रिटेन से बहुत पीछे थी। रूस राजनीतिक अशांति का भी सामना कर रहा था। 1905 में एक रूसी क्रांति हो चुकी थी और दूसरी 1917 में हुई थी।
- यूरोप से बाहर, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान ने 1870 के दशक के आसपास औद्योगीकरण आरंभ किया। 1914 में जर्मनी और ब्रिटेन की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका कच्चे लोहे, इस्पात और कोयले का अधिक उत्पादन कर रहा था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 1823 में मुनरो सिद्धांत अपनाया था और 1914 तक इसने लगभग सारे अमेरिकी महाद्वीप पर अपना वर्चस्व सुनिश्चित कर लिया था, लेकिन यूरोप के मामलों से यह काफी अलग-थलग था। जापान एक प्रमुख वस्त्र निर्यातक देश के रूप में उभर चुका था। 1904-05 के रूस-जापान युद्ध में रूस को हराकर जापान एक प्रमुख विश्व शक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुका था। जापानी साम्राज्यवाद चीन की ओर निर्देशित था। जापान के प्रति तुष्टीकरण की अमेरिकी नीति ने उसे प्रशांत क्षेत्र में मजबूत प्रतिद्वंद्वी बना दिया था। इस प्रकार 1914 तक, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान दोनों साम्राज्यवादी शक्तियों के रूप में उभर चुके थे।

25.2. विश्व शक्तियों की राजनीतिक व्यवस्था में व्यापक भिन्नता

- संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित थी। जर्मनी में निम्न सदन था लेकिन वास्तविक शक्ति चांसलर और कैसर (सम्राट) के पद में निहित थी। इटली में संवैधानिक राजतंत्र था, लेकिन मताधिकार केवल समृद्ध लोगों के लिए ही उपलब्ध था। मेइजी पुनर्स्थापना (1868) के बाद जापान ने 1889 में एक संविधान बनाया था, जिसमें निम्न सदन (डायट) का प्रावधान किया गया था। लेकिन डायट के पास सीमित शक्तियां थीं, मताधिकार केवल 3% आबादी को ही उपलब्ध था और वास्तविक शक्ति सेना, नौसेना, सम्राट (मेइजी) और प्रिवी कौंसिल के हाथों में थी।

25.3. 1880 के बाद साम्राज्यवादी विस्तार

- 1870 के दशक में औद्योगिक क्रांति के बाद, कई यूरोपीय राष्ट्र अपने औपनिवेशिक साम्राज्य में वृद्धि करने के लिए उत्सुक थे। 1914 तक प्रमुख यूरोपीय शक्तियाँ पूरे अफ्रीका का बंदरबांट कर चुकी थीं। यद्यपि, चीन मांचू राजवंश उखाड़ फेंके जाने के बाद 1911 से ही नाममात्र का एक गणराज्य था, लेकिन इसे संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी द्वारा एक अंतर्राष्ट्रीय उपनिवेश में परिवर्तित कर दिया गया था।

VISION IAS

26. यूरोप में होने वाले संघर्ष के कारण

निम्नलिखित तथ्यों को यूरोपीय शक्तियों के बीच होने वाले संघर्ष के कुछ प्रमुख कारणों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- अफ्रीका, एशिया और प्रशांत क्षेत्रों में **उपनिवेशों के लिए प्रतिद्वंद्विता**।
- **नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता:** यह औपनिवेशिक प्रतिद्वंद्विता का ही एक परिणाम था जोकि ब्रिटेन और जर्मनी के बीच सबसे अधिक देखने को मिला। जर्मनी ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद की दौड़ में विलंब से प्रवेश किया था। अपने औपनिवेशिक साम्राज्य के विस्तार के लिए यह अन्य औपनिवेशिक शक्तियों को धमकाने हेतु अपनी नौसेना का उपयोग करना चाहता था। जर्मनी राष्ट्रीय सुरक्षा का हवाला देकर अपनी नौसैनिक शक्ति बढ़ाने के लिए उत्सुक था जबकि अंग्रेजों ने यह तर्क देते हुए जर्मन नौसेना के गठन का विरोध किया कि केवल ब्रिटेन के पास नौसैनिक सर्वोच्चता का अधिकार है। ब्रिटेन का तर्क था कि अपने औपनिवेशिक साम्राज्य का निरंतर संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए वह नौसैनिक शक्ति के मामले में सर्वोच्चता का अधिकारी है, जो 20वीं शताब्दी तक सबसे विस्तृत और विशाल था।
- 1870 के फ्रांस-प्रशा युद्ध में जर्मनी द्वारा फ़्रांस के हाथों से **अल्सेस-लॉरेन के क्षेत्र को ले लेना** जर्मन-फ्रांस प्रतिद्वंद्विता का कारण थी।

चित्र: अल्सेस-लॉरेन क्षेत्र

- **बाल्कन में हैब्सबर्ग साम्राज्य की महत्वाकांक्षा पर रूस को संदेह** था। बाल्कन भूमध्य सागर के उत्तर पूर्व में स्थित क्षेत्र है। यहाँ स्लाव लोगों की जनसंख्या सर्वाधिक थी। रूसी ज़ार शासन / रोमनोव राजवंश स्लावों के समूह से संबंधित था और बाल्कन में उसकी अपनी महत्वाकांक्षाएं भी थीं।
- **सर्बियाई राष्ट्रवाद:** सर्बिया स्लाव लोगों द्वारा आबाद बाल्कन क्षेत्र को यूगोस्लाविया के रूप में एकीकृत करना चाहता था। इस प्रकार के यूगोस्लाविया के निर्माण हेतु हैब्सबर्ग साम्राज्य से कुछ भागों को अलग करने की आवश्यकता पड़ती, जिसमें स्लाव सहित विभिन्न नृजातीय समूहों के लोग निवास करते थे। एक बार जब स्लाव लोग यूगोस्लाविया के रूप में एकीकृत हो जाते तो अन्य समूह भी अलग होने की मांग करते। ऐसे एकल यूगोस्लाविया के विचार से हैब्सबर्ग साम्राज्य की अखंडता को खतरा उत्पन्न हो गया था।
- **यूरोप स्वयं दो गठबंधनों में विभाजित हो गया था: ट्रिपल एलायंस** जिसमें *जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी और इटली* थे और **ट्रिपल एंटेंट** जिसमें *ब्रिटेन, फ्रांस और रूस* सम्मिलित थे। लेकिन इन गठबंधनों में दृढ़ता नहीं थी। वास्तव में, प्रथम विश्व युद्ध में इटली ने ब्रिटेन और फ्रांस की ओर से युद्ध लड़ा था। प्रथम विश्व युद्ध **धुरी शक्तियों** (Central Powers) (जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी, ऑटोमन साम्राज्य और बुल्गारिया) और **मित्र राष्ट्रों** (Allied Powers) (इटली, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका) के बीच लड़ा गया था।

VISION IAS

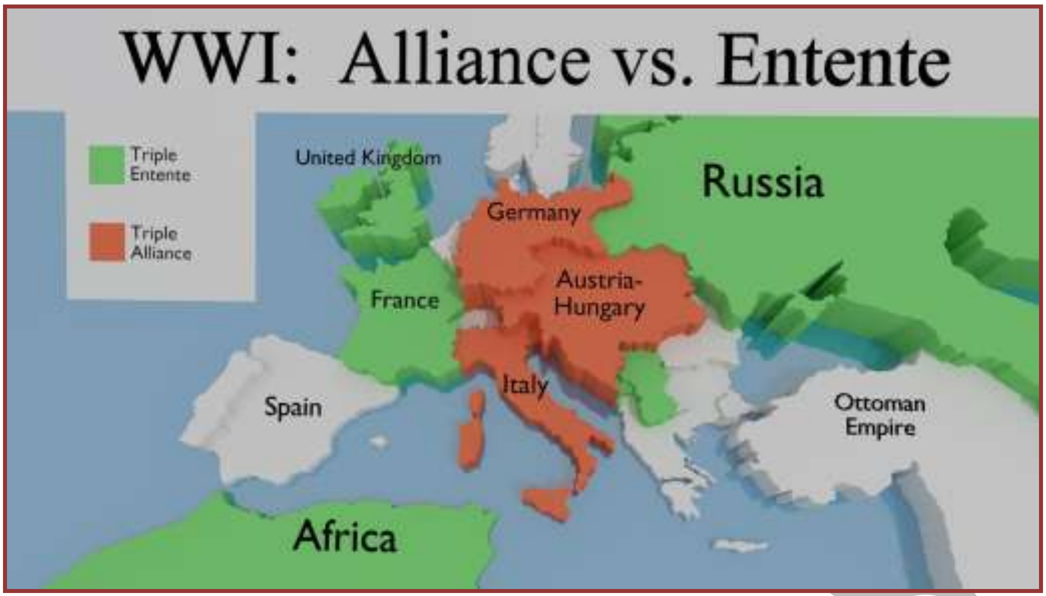

27. प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व की कुछ प्रमुख घटनाएं

- **मोरक्को संकट (1905-06):** 1904-05 में ब्रिटेन और फ्रांस ने एंटेंट कॉर्डियल (Entente Cordiale) पर इस शर्त के साथ हस्ताक्षर किया था कि सूडान और मिस्र पर ब्रिटेन के नियंत्रण को फ्रांस द्वारा मान्यता प्रदान की जाएगी और मोरक्को पर फ्रांस के विशेष अधिकारों को ब्रिटेन द्वारा मान्यता प्रदान की जाएगी। मोरक्को में बढ़ते फ्रांसीसी प्रभाव से जर्मनी बेचैन था। उसने मोरक्को की स्वतंत्रता बनाए रखने का वचन दिया और एक सम्मेलन बुलाया। लेकिन सम्मेलन में इटली, स्पेन, रूस और ब्रिटेन ने फ्रांस का समर्थन किया और फ्रांस को मोरक्को के बैंकों और पुलिस पर नियंत्रण प्राप्त हो गया। यह जर्मनी के लिए एक राजनयिक हार थी।
- **1907 का ब्रिटेन-रूस समझौता:** इस समझौते से एशिया में इनका विवाद समाप्त हो गया। अफगानिस्तान और तिब्बत को ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र मान लिया गया और ईरान को तीन क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया। उत्तरी ईरान को रूसी क्षेत्र के रूप में, केंद्रीय क्षेत्र को मध्यस्थ क्षेत्र के रूप में और दक्षिण भाग को ब्रिटिश क्षेत्र के रूप में मान्यता दे दी गई। रूस को इस समझौते के बाद अपने औद्योगिक विकास के लिए ब्रिटिश निवेश प्राप्त होने की भी आशा थी।
- **बोस्निया संकट (1908):** ऑस्ट्रिया-हंगरी ने दुर्बल ऑटोमन साम्राज्य से बोस्निया को हड़प लिया। बोस्निया में स्लाव लोगों की काफी बड़ी आबादी थी और इस प्रकार सर्बिया भविष्य के यूगोस्लाविया के अभिन्न अंग के रूप में बोस्निया को प्राप्त करने के लिए भी उत्सुक था। सर्बिया ने रूस से सहायता मांगी। रूस ने इस मुद्दे पर सम्मेलन आयोजित करने का प्रयास किया। लेकिन जब यह स्पष्ट हो गया कि सैन्य संघर्ष की स्थिति में जर्मनी हैब्सबर्ग साम्राज्य की सहायता करेगा तो कोई सम्मेलन आयोजित नहीं किया गया क्योंकि ब्रिटेन और फ्रांस ने सर्बिया से समर्थन वापस ले लिया था। वे जर्मनी के साथ सीधे सैन्य संघर्ष से बचना चाहते थे। रूस सर्बिया के पक्ष में कोई कार्रवाई करने के लिए सैन्य रूप से मजबूत नहीं था। इस अपमान के बाद रूस ने अपना सैन्यीकरण आरंभ किया ताकि यदि भविष्य में आवश्यकता उत्पन्न हो तो वह सर्बिया की सहायता कर सके। रूस अब बाल्कन में हैब्सबर्ग साम्राज्य की महत्वाकांक्षा को लेकर अधिक संदिग्ध था; और सर्बिया ऑस्ट्रिया-हंगरी का कटु प्रतिद्वंद्वी बन गया।
- **अगादीर संकट (1911):** जब फ्रांस ने मोरक्को में सैनिक तैनात कर दिए तो जर्मनी मोरक्को के फ्रांसीसी नियंत्रण में आ जाने को लेकर चिंतित हो उठा। उसने मोरक्को के निकट अगादीर द्वीप पर अपने युद्धपोत भेज दिए। उसने फ़्रांस को धमकी दी कि यदि वह अपने सैनिक वापस नहीं बुलाएगा

तो जर्मनी अगादीर पर कब्जा कर लेगा। ब्रिटेन को इस बात की चिंता थी कि यदि जर्मनी अगादीर पर कब्जा कर लेगा तो वह ब्रिटिश व्यापारिक मार्गों के लिए खतरा पैदा करने की स्थिति में आ जाएगा। ब्रिटेन ने पुन: फ्रांस का पक्ष लिया। समझौते के अंतर्गत, जर्मनी को फ्रांसीसी कांगो में एक छोटी सी पट्टी दे दी गई और बदले में जर्मनी को मोरक्को पर फ्रांसीसी नियंत्रण को मान्यता देने के लिए विवश किया गया। जर्मन जनमत फ्रांस और ब्रिटेन के विरूद्ध कटु हो गया और इस घटना ने ब्रिटेन और जर्मनी के बीच नौसैनिक प्रतिद्वंद्विता को और बढ़ावा दिया।

- **प्रथम बाल्कन युद्ध (1912):** बाल्कन लीग (मोंटेनेग्रो, सर्बिया, ग्रीस, बुल्गारिया) ने तुर्की पर आक्रमण कर दिया और यूरोप में ऑटोमन साम्राज्य (तुर्क साम्राज्य) के अधिकांश क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। जर्मनी और ब्रिटेन ने युद्ध विराम करने के लिए मध्यस्थता की। शांति समझौते के अंतर्गत, यूरोप में ऑटोमन साम्राज्य का क्षेत्र बाल्कन राज्यों के बीच विभाजित कर दिया गया। सर्बिया अप्रसन्न था क्योंकि वह अल्बानिया चाहता था जो उसे समुद्र तक पहुंच प्रदान करता लेकिन अल्बानिया को एक स्वतंत्र राज्य बना दिया गया। स्पष्ट रूप से सर्बिया के विरूद्ध ऑस्ट्रिया काम कर रहा था, जिसका माध्यम जर्मनी था।
- **द्वितीय बाल्कन युद्ध 1913:** यह युद्ध बुल्गारिया के विरूद्ध ग्रीस, रोमानिया, तुर्की और सर्बिया ने लड़ा था। बुल्गारिया ने सर्बिया पर आक्रमण कर दिया क्योंकि वह प्रथम बाल्कन युद्ध के अंत में मकदूनिया (मेसीडोनिया) का अधिकांश भाग सर्बिया को दिए जाने से अप्रसन्न था। युद्ध में अपनी हार के बाद बुल्गारिया ने प्रथम बाल्कन युद्ध से प्राप्त सभी क्षेत्रों को खो दिया। जर्मनी ने ऑस्ट्रिया-हंगरी को बुल्गारिया की सैन्य सहायता करने से रोक दिया था। वहीं दूसरी ओर, ब्रिटेन सर्बिया की सहायता के लिए नहीं आया। जर्मनी ने इसे रूसियों से अंग्रेजों के विलगाव के संकेत के रूप में लिया। द्वितीय बाल्कन युद्ध के परिणाम स्वरूप एक मजबूत सर्बिया उभरा, जो अब यूगोस्लाविया का लक्ष्य साकार करने के लिए हैब्सबर्ग साम्राज्य के क्रोट और सर्ब (दोनों स्लाव) को उकसाने के लिए कटिबद्ध था।

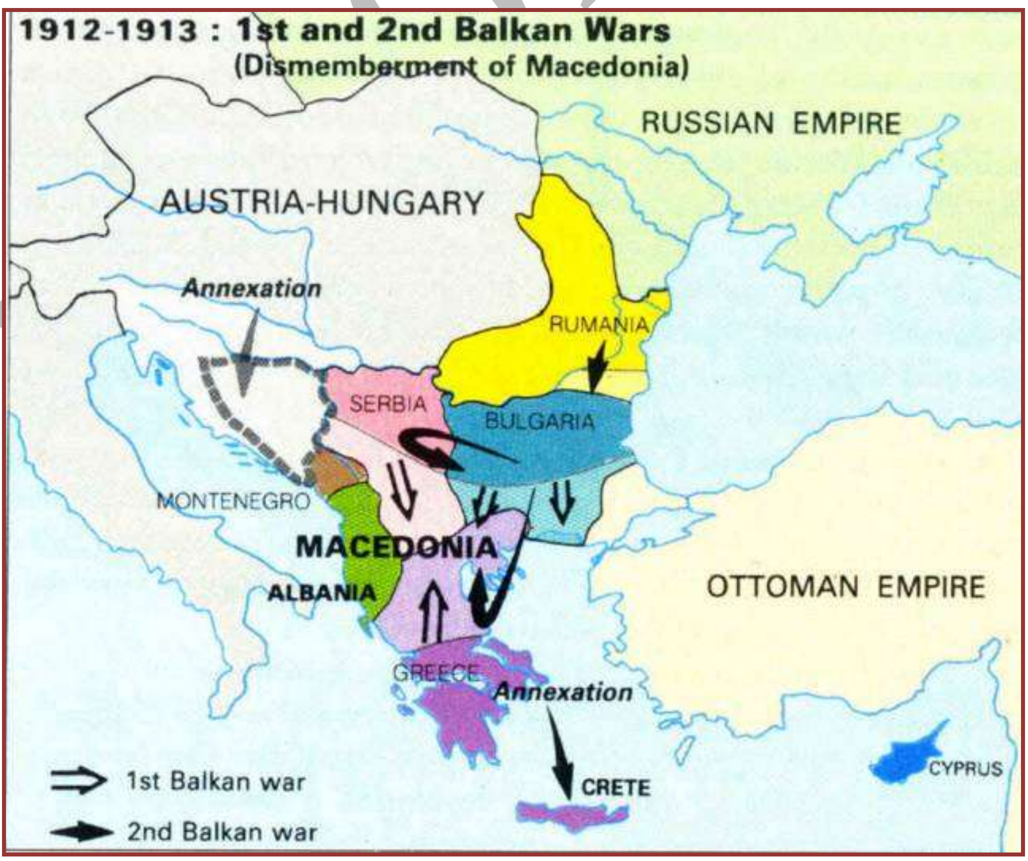

 ©Vision IAS

- **ऑस्ट्रिया के आर्कड्यूक फ्रैन्ज फर्डिनेंड की बोस्निया की राजधानी सेराजेवो में हत्या (28 जून 1914):** बोस्निया को हैब्सबर्ग साम्राज्य ने हड़प लिया था और बोस्नियाई लोग सर्बिया के साथ थे। एक गुप्त समाज ने हत्या की साजिश रची और बोस्नियाई सरकार इस षडयंत्र से अवगत थी लेकिन इसे रोकने के लिए उसने कुछ नहीं किया। यह घटना निश्चित रूप से एक आतंकवादी कृत्य थी। ऑस्ट्रिया-हंगरी ने इस घटना को सर्बिया पर कब्जे का प्रयास करने के एक अवसर के रूप में लिया। उसने सर्बिया के समक्ष कुछ मांगें रखीं और इसके लिए समय सीमा निर्धारित की। सर्बिया ने अधिकांश मांगों को स्वीकार कर लिया, लेकिन वह सभी मांगों पर सहमत नहीं था क्योंकि सभी मांगों को स्वीकार करने का अर्थ था हैब्सबर्ग साम्राज्य के समक्ष सर्बिया की संप्रभुता का आत्मसमर्पण। आक्रमण से डरकर सर्बिया ने सैन्य लामबंदी का आदेश दे दिया। समय सीमा समाप्त होने के बाद, ऑस्ट्रिया-हंगरी ने सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस हत्याकांड ने प्रथम विश्व युद्ध के तात्कालिक कारण के रूप में कार्य किया।

चित्र: आर्कड्यूक फ्रैन्ज फर्डिनेंड अपनी सेराजेवो यात्रा के दौरान

28. आर्कड्यूक की हत्या और प्रथम विश्व युद्ध में इसकी परिणति के लिए उत्तरदायी कारण

निश्चित रूप से सर्बिया और हैब्सबर्ग साम्राज्य के मध्य विवाद सर्बिया और ऑस्ट्रिया के बीच युद्ध के प्रस्फोट के लिए उत्तरदायी था, लेकिन इसे प्रथम विश्व युद्ध का एकमात्र कारण नहीं माना जा सकता। सर्बिया और ऑस्ट्रिया का युद्ध निम्नलिखित कारणों से विश्व युद्ध में परिणत हुआ:

- **गठबंधनों का संजाल:** यह उस गठबंधन प्रणाली को संदर्भित करता है, जिसमें यूरोप ने स्वयं को संगठित किया था। इसने प्रत्येक पक्ष के मित्रों का युद्ध में प्रवेश कराया। सर्बिया द्वारा सभी मांगों को पूरा करने में विफल रहने पर जब ऑस्ट्रिया ने सर्बिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी तो रूस ने सर्बिया के साथ अपने गठबंधन का सम्मान करते हुए पूर्ण लामबंदी का आदेश दिया। परिणामस्वरूप जर्मनी ने सैनिकों की लामबंदी की और रूस के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया क्योंकि रूस ने ऑस्ट्रिया के विरूद्ध सैनिकों की लामबंदी न करने की जर्मन मांग को ठुकरा दिया था। पुनः जर्मनी का ऑस्ट्रिया के साथ गठबंधन था। तत्पश्चात जर्मनी ने ऑटोमन साम्राज्य के साथ गठबंधन किया और फ्रांस के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया। जर्मनी का मानना था कि 1894 के फ़्रांसीसी-रूसी गठबंधन का सम्मान करते हुए फ़्रांस रूस के पक्ष में युद्ध में प्रवेश कर सकता है।

जर्मन युद्ध योजना को **श्लीफेन योजना** के रूप में भी जाना जाता है, जिसका उद्देश्य मात्र 6 सप्ताह में फ्रांस पर जर्मनी की विजय थी। ऐसा केवल तभी संभव था जब जर्मनी बेल्जियम से होकर फ्रांस पर हमला करता, जो फ़्रांस और जर्मनी के बीच अवस्थित था। चूँकि ब्रिटेन बेल्जियम का मित्र था और इसने उसकी तटस्थता की गारंटी दी थी, अत: उसने बेल्जियम पर हमला होने पर जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। जापान ने ब्रिटेन के साथ अपने गठबंधन का सम्मान करते हुए युद्ध में प्रवेश किया। इस प्रकार, गठबंधन प्रणाली के कारण सभी प्रमुख शक्तियां एक-दूसरे के साथ युद्धरत हो गईं। लेकिन यही एकमात्र कारण नहीं था क्योंकि इससे पहले भी ऐसे संघर्ष हो चुके थे और वे विश्व युद्ध में परिणत नहीं हुए थे।

- **साम्राज्यवाद:** अफ्रीका और सुदूर पूर्व में औपनिवेशिक प्रतिद्वंद्विता भी इसके लिए उत्तरदायी थी। फ़्रांस, ब्रिटेन और अन्य देशों ने जर्मनी की औपनिवेशिक महत्वाकांक्षाओं का गला घोंटते हुए मोरक्को संकट में उसके विरूद्ध गठबंधन बना लिया था। जापान प्रशांत महासागर क्षेत्र में अवस्थित जर्मनी के नियंत्रण वाले द्वीपों पर कब्ज़ा चाहता था। अतः इसने मित्र शक्तियों के पक्ष में युद्ध में प्रवेश किया। इटली ने और अधिक भू-क्षेत्र मिलने के वादे पर 1915 में मित्र शक्तियों की ओर से युद्ध में प्रवेश किया।
- जर्मनी और ब्रिटेन के बीच **नौसैनिक प्रतिद्वंदिता** से तनाव में वृद्धि हुई और दोनों प्रतिद्वंदी बन गए। समुद्री युद्ध में एक-दूसरे को हराकर दोनों शक्तियाँ सदैव के लिए अपना नौसैनिक वर्चस्व स्थापित करने की महत्वाकांक्षा रखती थीं।
- लेनिन ने लाभ के उद्देश्य से हो रही आर्थिक प्रतिद्वंद्विता को युद्ध के मूल कारण के रूप में देखा, अतः उसने पूंजीवाद को युद्ध के लिए दोषी ठहराया।
- रूस ने सर्बिया का समर्थन करके युद्ध की संभावना को और अधिक बढ़ा दिया। यदि रूस ने सर्बिया को ऑस्ट्रिया से अकेले निपटने दिया होता तो शायद जर्मनी ने युद्ध में प्रवेश नहीं किया होता। रूस हमेशा पूर्वी यूरोप में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहता था। लेकिन साथ ही उसकी कुछ वास्तविक चिंताएं भी थीं। ऑटोमन साम्राज्य पहले से ही जर्मनी और ऑस्ट्रिया के प्रभाव में था। यदि ऑस्ट्रिया सर्बिया को पराजित कर देता तो डारडेनल्स ऑस्ट्रिया और जर्मनी के नियंत्रण में आ जाता। डारडेनल्स काला सागर से होकर रूस के लिए निकास का मार्ग प्रदान करता था और इस प्रकार यह रूसी व्यापार के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था। अतः ऑस्ट्रिया और जर्मनी यदि इस पर नियंत्रण प्राप्त कर लेते तो वे रूसी व्यापार पर नियंत्रण प्राप्त कर सकते थे।
- **जर्मनी द्वारा ऑस्ट्रिया को दिया गया समर्थन** भी निर्णायक रूप से महत्वपूर्ण था। जर्मनी स्वयं को रूस, फ्रांस और ब्रिटेन से घिरा हुआ महसूस करता था। रूस और फ्रांस ने 1894 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। 1904 में इस क्षेत्र के पारंपरिक प्रतिद्वंदी ब्रिटेन और फ्रांस ने एंटेंट कॉर्डियल नामक एक मित्रता समझौते पर हस्ताक्षर किया था। इस समझौते के अंतर्गत इन्होंने अफ्रीका में उपनिवेशों के संबंध में अपने विवादों का निपटारा किया। 1907 में रूस और ब्रिटेन ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किया जिससे एशिया में उनका विवाद समाप्त हो गया। इस प्रकार 1907 तक जर्मनी इस क्षेत्र में अन्य प्रमुख शक्तियों के बीच बढ़ती निकटता के कारण बहुत चिंतित था। यद्यपि कि तकनीकी रूप से ये समझौते सैन्य समझौते न होकर क्षेत्रीय विवादों और व्यापार एवं निवेश से संबंधित समझौतों तक ही सीमित थे।
- बड़ी शक्तियों की **लामबंदी की योजना** से तनाव और आपसी संदेह में वृद्धि हुई। यूरोप में सर्बिया और आस्ट्रिया के झगड़े के अतिरिक्त भी कई आंतरिक विवाद थे। जब एक शक्ति सेनाओं की लामबंदी का आदेश देती थी तो प्रतिद्वंद्वी शक्तियों को भी अपनी लामबंदी करनी पड़ती थी, जिससे वे अपनी सीमाओं के लिए उत्पन्न होने वाले किसी भी संभावित सैन्य खतरे से निपटने में सक्षम हो सकें।

VISION IAS

- **गलत अनुमानों की त्रासदी:**
  - जर्मनी का मानना था कि 1894 में हुए फ्रांस-रूस समझौते के कारण फ्रांस निश्चित रूप से रूस के पक्ष में लड़ेगा।
  - द्वितीय बाल्कन युद्ध में ब्रिटेन के निष्क्रिय रूख के बाद जर्मनी को यह लगा कि ब्रिटेन रूस या फ्रांस की सहायता के लिए नहीं आएगा।
  - इसके अतिरिक्त जर्मनी का यह अनुमान गलत था कि श्लीफ़ेन योजना उसे शीघ्र ही विजय दिला देगी।
  - जर्मनी का यह अनुमान भी गलत सिद्ध हुआ कि ऑस्ट्रिया का समर्थन करके वे तटस्थता के लिए रूस को धमकाने में सक्षम होंगे।
  - ऑस्ट्रिया का यह अनुमान गलत था कि जर्मनी द्वारा उसका समर्थन करने से रूस सर्बिया की सहायता करने नहीं आएगा।
  - जर्मनी और रूस के राजनेताओं का यह मानना था कि लामबंदी अनिवार्य रूप से युद्ध में परिणत नहीं होगी।
- कई पश्चिमी देशों में यह **सांस्कृतिक विश्वास** था कि युद्ध अच्छा, आवश्यक और गौरवशाली होता है। इस प्रकार दूसरों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता की भावना ने युद्ध के पक्ष में लोगों को लामबंद किया।

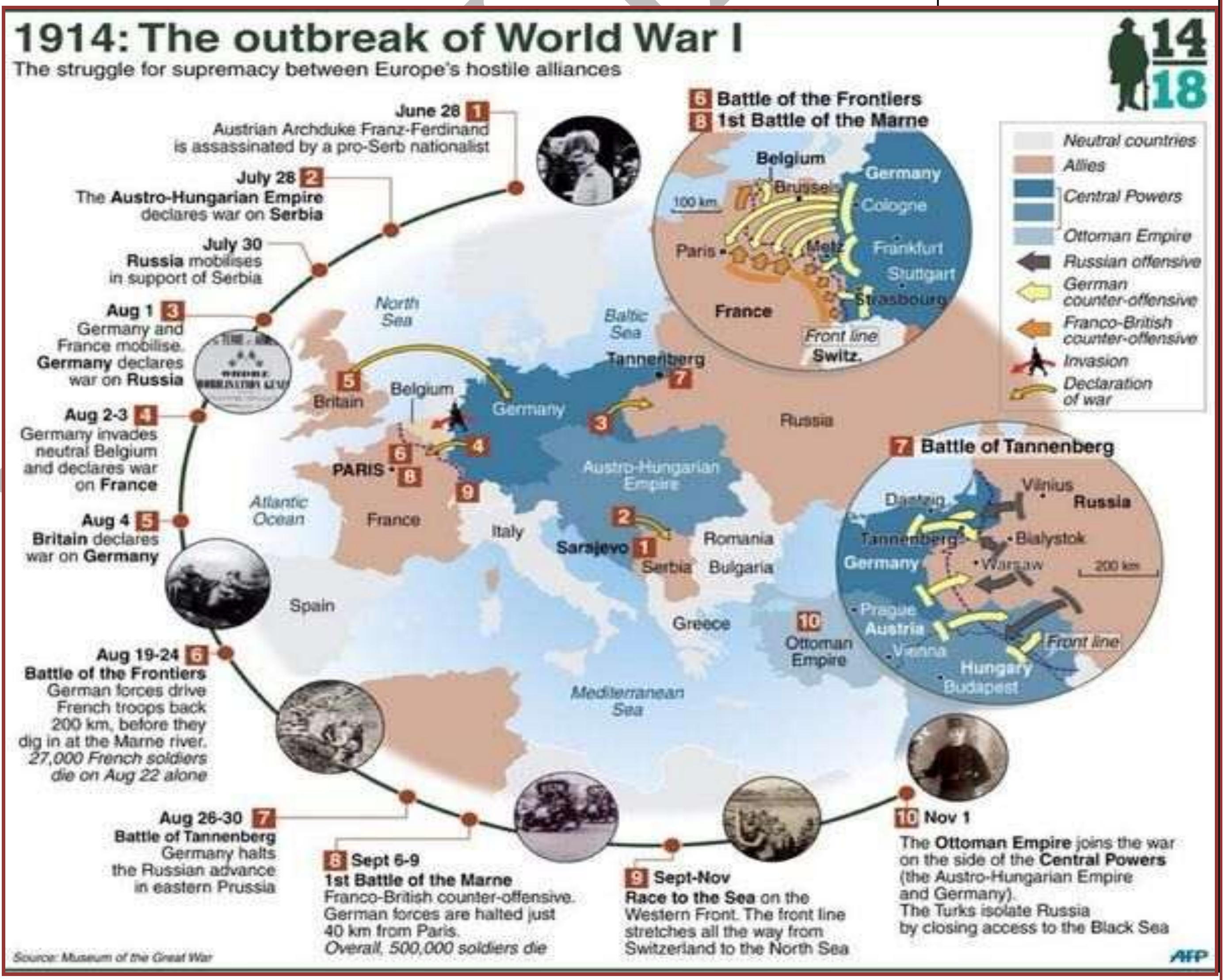

29. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान

जर्मनी द्वारा छह सप्ताह के नियोजित समय में फ्रांस को पराजित करने में विफल रहने के कारण श्लीफेन योजना असफल रही। इसके पश्चात् यह स्पष्ट हो गया था कि यह लम्बे समय तक खिंचने वाला युद्ध है। खाई युद्ध (Trench Warfare) और समुद्री-युद्ध (war at the sea), प्रथम विश्वयुद्ध की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएं थी।

- **खाई युद्ध** मुख्य रूप से फ्रांस में हुआ था जिसमें दोनों पक्षों की सेनाएं खाईयां (खंदकें) खोदती थीं। सैनिक इन खाईयों में बैठ कर गोलीबारी करते थे। जब कभी सैनिक टुकडियां खाईयों के बाहर शत्रु के विरुद्ध कार्यवाही करती थीं तो खुले मैदान में शत्रु के समक्ष आ जाने से वे शत्रु का सहज लक्ष्य बन जाती थीं। इस प्रकार से, बड़ी संख्या में दोनों पक्षों के सैनिक हताहत हुए। शीघ्र ही दोनों पक्षों की खाईयों में तैनात सैनिकों के लिए गतिरोध उत्पन्न हो गया। खाईयों में रहने वाले सैनिकों का जीवन काफी दयनीय था। जलभराव से कई रोग उत्पन्न होने लगे, जिनके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो रही थी।

©Vision IAS

चित्र: खाई युद्ध (Trench Warfare)

- **समुद्री-युद्ध:**
  - **अवरोध की नीति (Blockade Policy):** इस नीति का अनुसरण मुख्य रूप से ब्रिटेन और जर्मनी ने किया। यह तीन तरीकों को लक्षित करती थी:
    - प्रतिद्वंदी के व्यापारिक मार्गों को अवरुद्ध करना ताकि वह वस्तुओं (शस्त्र, राशन आदि) की आपूर्ति के अभाव में व्याकुल होकर आत्मसमर्पण के लिए विवश हो जाए।
    - अपने व्यापारिक मार्गों को सुरक्षा प्रदान करना ताकि जो देश दूसरे देश के लिए अवरोध उत्पन्न कर रहा है वह स्वयं ही असुरक्षित न हो जाए और उसको वस्तुओं की निर्बाध आपूर्ति होती रहे।
    - सैनिक टुकड़ियों का आवागमन।

    ब्रिटेन जर्मनी के कई युद्धपोतों को नष्ट करने में सफल रहा।
  - **मित्र देशों द्वारा की गई नाकेबंदी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर दीं** क्योंकि अंग्रेजों ने जर्मनी को होने वाली किसी भी प्रकार की आपूर्ति को रोकने के लिए सभी पोतों को रोक कर उनकी तलाशी ली। इससे स. रा. अमेरिका के व्यापारिक पोतों की गति भी धीमी हो गई। इसके अतिरिक्त अमेरिका दोनों पक्षों के साथ व्यापार करना चाहता था अतः उसने मित्र देशों द्वारा की गई नाकेबंदी को अस्वीकार कर दिया।
  - **जर्मनी ने विस्फोटक समुद्री सुरंगों और पनडुब्बियों की सहायता लेकर खुद पर होने वाले हमलों का प्रतिकार किया।** 'जर्मन युद्धपोतों को ब्रिटिश नौसेना के हाथों अत्यधिक क्षति पहुँचने के बाद उसके पास विस्फोटक समुद्री सुरंगों और पनडुब्बियों से हमला करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचा था। परन्तु इससे संयुक्त राज्य अमेरिका क्रोधित हो गया, क्योंकि उसके कुछ पोत डूब गये थे और एक घटना में एक पोत पर उपस्थित कई अमेरिकी नागरिक मारे गए थे। इस घटना के बाद से स. रा. अमेरिका में जनता की राय अंग्रेजों के पक्ष में हो गई थी।

- **जुट्लैंड का युद्ध (1916):** यह एक समुद्री युद्ध था और इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन का विस्तृत समुद्री क्षेत्र पर नियंत्रण हो गया। इससे जर्मनी के पास पनडुब्बियों के उपयोग के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा था और मित्र राष्ट्रों की नाकेबंदी के लिए अनियंत्रित पनडुब्बी युद्ध प्रारम्भ हो गया।
- **1917 में अटलांटिक महासागर में जर्मनी द्वारा अनियंत्रित पनडुब्बी युद्ध:** जर्मन नाकेबंदी का उद्देश्य अंग्रेजों की आपूर्ति लाईनों को अवरुद्ध करना था। फलतः इसने अटलांटिक महासागर में "सभी" पोतों पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। इस नीति के अंतर्गत तटस्थ पोत और मित्र राष्ट्रों के पोतों में कोई अंतर नहीं किया गया। इसने स. रा. अमेरिका को और अधिक क्रोधित कर दिया। परन्तु जर्मनी यह सोच रहा था कि अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने से पहले ही वह मित्र शक्तियों को भूखा रख कर आत्मसमर्पण के लिए विवश कर देगा। अनियंत्रित पनडुब्बी युद्ध वह प्रमुख कारण था जिसके परिणामस्वरूप स. रा.अमेरिका मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में शामिल हो गया।

30. वुडरो विल्सन के 14 सूत्र (1918)

वुडरो विल्सन के 14 सूत्रों ने न्यूनाधिक मात्रा में मित्र राष्ट्रों के युद्ध उद्देश्यों को ही रूपरेखा प्रदान की। संक्षेप में उनके 14 सूत्र इस प्रकार थे:

- गुप्त कूटनीतिक समझौतों की समाप्ति।
- सभी राष्ट्रों के लिए युद्ध और शांति दोनों ही स्थितियों में मुक्त समुद्री आवागमन।
- जहाँ तक संभव हो सभी आर्थिक प्रतिबंधों को समाप्त किया जाए तथा राष्ट्रों के बीच व्यापार के लिए समान परिस्थितियों की स्थापना की जाए।
- हथियारों में सर्वांगीण कटौती। शस्त्रों को उस न्यूनतम स्तर तक कम कर दिया जाए जितना राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए पर्याप्त हो।
- स्थानीय जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए सभी औपनिवेशिक दावों का स्वतंत्र और निष्पक्ष समाधान किया जाए।
- रूस के सभी अधिकृत प्रदेशों को खाली करवाया जाए।
- बेल्जियम को सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाए।
- फ़्रांस को शत्रु से मुक्त करवाकर स्वतंत्रता दिलवाई जाए तथा अल्सेस-लॉरेन के प्रदेश उसको वापस दिलवाए जाएं।
- राष्ट्रीयता के स्पष्ट आधार पर इटली की सीमाओं का पुनर्निर्धारण किया जाए।
- ऑस्ट्रिया-हंगरी की जनता के लिए स्वशासन।
- रोमानिया, सर्बिया और मॉन्टेनेग्रो को मुक्त करवाकर उसकी प्रभुसत्ता सुनिश्चित की जाए तथा सर्बिया को सागर तट की सुविधा प्राप्त करवाई जाए।
- ऑटोमन साम्राज्य के गैर-तुर्की लोगों के लिए स्वायत्त विकास के अवसर उपलब्ध करवाए जाएं तथा डारडेनल्स को स्थाई रूप से खोल दिया जाए।
- समुद्र तक सुरक्षित पहुंच के साथ एक स्वतंत्र पोलैंड की पुनर्रचना की जाए।
- राजनीतिक स्वतंत्रता तथा प्रादेशिक अखंडता की रक्षा के लिए राष्ट्रों के एक सामान्य संघ की स्थापना की जाए।

विल्सन ने ब्रिटेन और फ़्रांस के दबाव में जर्मनी के लिए दो और बिंदु जोड़ दिए यथा जर्मनी का निःशस्त्रीकरण और जर्मनी द्वारा अधिकृत क्षेत्रों में नागरिकों की क्षति के लिए क्षतिपूर्ति का प्रावधान। युद्ध की समाप्ति पर इन 14 सिद्धांतों को शांति और शांति-वार्ता के आधार के रूप में सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया, परन्तु व्यवहार में शान्ति स्थापकों द्वारा इन सभी 14 सिद्धांतों का पूर्ण पालन नहीं किया गया।

VISION IAS

31. मित्र शक्तियों का दृष्टिकोण और शांति समझौते

- ब्रिटेन जर्मनी के साथ एक उदार संधि चाहता था क्योंकि उसे लगता था कि एक समृद्ध जर्मनी ब्रिटिश निर्यात के लिए एक बाजार के रूप में उपलब्ध होगा। फ्रांस जर्मनी के साथ एक कठोर संधि चाहता था ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निकट भविष्य में यह फ्रांस की सीमाओं के लिए संकट न बने। स. रा. अमेरिका भी जर्मनी के साथ एक उदार संधि चाहता था। परन्तु वह जर्मनी द्वारा रूस के साथ कठोर संधि पर हस्ताक्षर किए जाने से और फ्रांस तथा बेल्जियम से जर्मन सेनाओं के पीछे हटने के दौरान वहां के नागरिक ढांचों को जर्मनों द्वारा नष्ट किए जाने के कारण अत्यंत निराश था। अंततः एक समझौता हुआ जिसमें जर्मनी को युद्ध की पूरी लागत का भुगतान नहीं करना था, परन्तु नागरिकों और उनकी सम्पत्तियों की क्षति की लागत के लिए क्षतिपूरक भुगतान करना था।

31.1. वर्साय की संधि

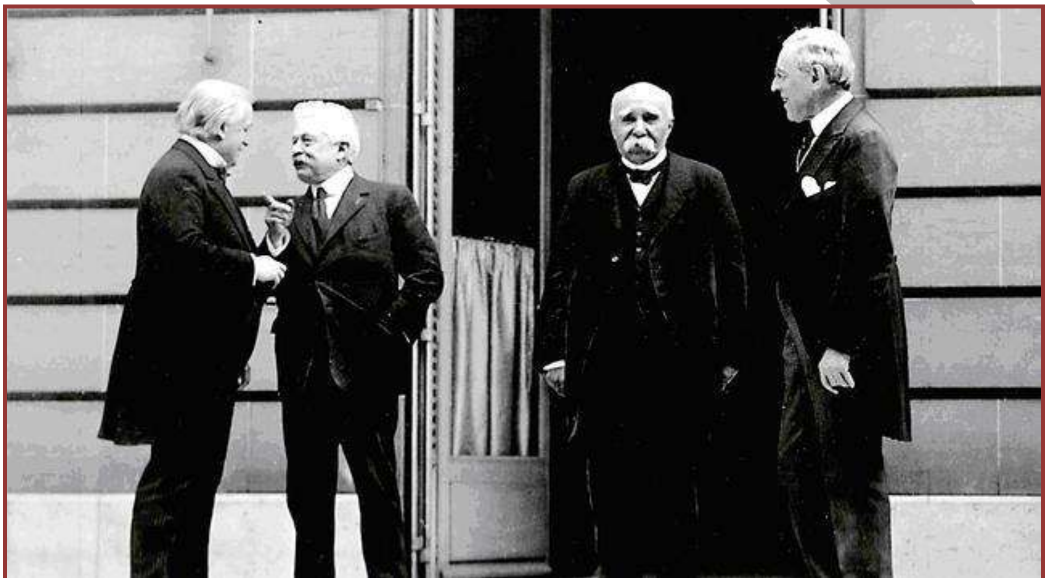

चित्र: लॉयड जॉर्ज- इंग्लैंड, वेटोरिओ ऑर्लैंडो-इटली, जॉर्ज क्लेमेंसो-फ्रांस, वुड्रो विल्सन-स.रा. अमेरिका (L-R) प्रथम विश्व युद्ध के बाद पेरिस शांति सम्मेलन के दौरान

इस संधि पर मित्र राष्ट्रों तथा जर्मनी ने 28 जून, 1919 को हस्ताक्षर किए। इसके निम्नलिखित मुख्य बिंदु थे:

- **जर्मनी को यूरोप में अपने क्षेत्र गंवाने पड़े:** जर्मनी से अल्सेस-लॉरेन के प्रदेश वापस लेकर फ्रांस को लौटा दिए गए। एस्टोनिया, लाटविया और लिथुआनिया को स्वाधीन राष्ट्र बना दिया गया। जर्मन क्षेत्रों के कुछ भाग डेनमार्क, बेल्जियम, पोलैंड और लिथुआनिया को दिए गए। सार और डैंज़िग में जर्मन जनसंख्या थी, परन्तु उनको लीग ऑफ़ नेशंस (राष्ट्र संघ) के अधीन कर दिया गया। सार को 15 वर्ष तक राष्ट्रसंघ के अधीन रहना था और उसके पश्चात् एक जनमत संग्रह से यह निर्णय होना था कि यह फ्रांस या जर्मनी किसी के साथ भी शामिल हो सकता था। तब तक के लिए सार प्रदेश की कोयला खानों से 15 वर्ष तक कोयला प्राप्त करने का अधिकार फ्रांस को दे दिया गया। डैंज़िग पश्चिमी प्रशा का एक प्रमुख बन्दरगाह था। इसे एक स्वतंत्र नगर के रूप में परिवर्तित किया गया और एक संधि द्वारा डैंज़िग के बंदरगाह को प्रयोग करने का अधिकार पोलैंड को प्राप्त हो गया।
- ऑस्ट्रिया में जर्मन जनसंख्या अधिक थी, परन्तु फिर भी **ऑस्ट्रिया और जर्मनी के बीच संघ निर्माण को प्रतिबंधित किया गया।**

- **जर्मनी के अफ़्रीकी उपनिवेशों** को उससे ले लिया गया और उन्हें राष्ट्र संघ की मैंडेट प्रणाली के अधीन रख दिया गया। इन मैंडेट प्रदेशों का शासन मैंडेटरी शक्तियों को तब तक चलाने का अधिकार दिया गया जब तक वे स्वशासन के योग्य न हो जाएं। इस प्रकार जर्मनी से केवल यूरोप में ही उसके प्रदेश नहीं छीने गए बल्कि यूरोप के बाहर भी उसके समस्त उपनिवेशों से उसे वंचित कर दिया गया।

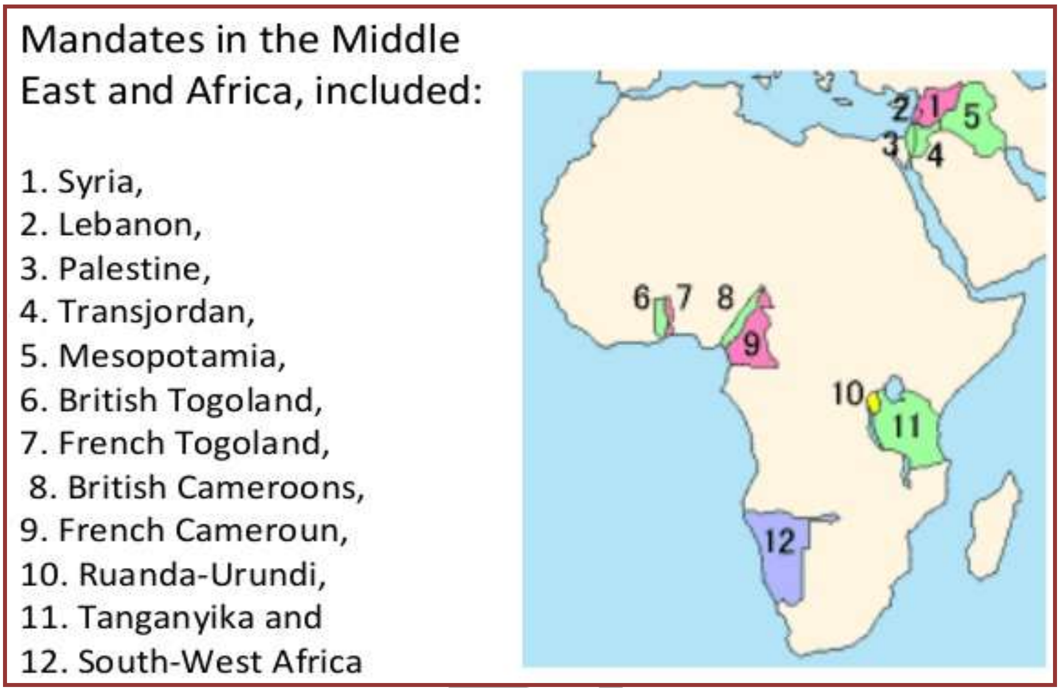

- **जर्मनी का निःशस्त्रीकरण:** जर्मनी को अनिवार्य सैन्य सेवा आरम्भ करने से प्रतिबंधित कर दिया गया। राइनलैंड (जर्मनी) को फ़्रांस और जर्मनी के बीच मध्यस्थ क्षेत्र बनाया गया और जर्मनी का स्थाई रूप से असैन्यीकरण किया गया। जर्मनी को केवल छह युद्धपोत और अधिकतम एक लाख सैनिक रखने की अनुमति थी। इसे वायुयान, टैंक और पनडुब्बियां रखने की भी अनुमति नहीं थी। इस प्रकार जर्मनी के विरुद्ध कठोर निःशस्त्रीकरण लागू कर इसे सैनिक रूप से पंगु बना दिया गया।
- **युद्ध अपराध अनुच्छेद:** प्रथम विश्व युद्ध के लिए अकेले जर्मनी और उसके सहयोगियों को उत्तरदायी घोषित किया गया।
- **युद्ध क्षतिपूर्तियाँ:** विल्सन युद्ध हर्जाने के विरुद्ध थे, अतः जर्मनी से युद्ध का पूरा हर्जाना लेने का विचार त्याग दिया गया। बहुत मंत्रणा के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि जर्मनी को 6600 मिलियन पाउंड का भुगतान करना होगा। परन्तु इसे घटा कर 2000 मिलियन पाउंड कर दिया गया क्योंकि पहली राशि अनुपातहीन रूप से अधिक थी और जर्मनी इतनी बड़ी राशि के भुगतान की स्थिति में नहीं था। इस क्षतिपूर्ति का मुख्य उद्देश्य यह था कि जर्मनी लम्बे समय तक अपनी अर्थव्यवस्था में ही उलझा रहे और निकट भविष्य में वह कभी भी फ़्रांस और ब्रिटेन के लिए संकट न बन सके।

VISION

31.2. अन्य संधियाँ

31.2.1. सेंट जर्मेन की संधि (1919) और ट्रायनॉन की संधि (1920)

- सेंट जर्मेन की संधि मित्र राष्ट्रों द्वारा 1919 में ऑस्ट्रिया के साथ संपन्न की गई और ट्रायनॉन की संधि 1920 में हंगरी के साथ की गई। इन संधियों के निम्नलिखित परिणाम निकले:
  - हैब्सबर्ग साम्राज्य की तुलना में ऑस्ट्रिया और हंगरी का आकार घट कर बहुत ही छोटा हो गया।
  - अन्य यूरोपीय देशों के बीच क्षेत्रों का बंटवारा आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर किया गया। इस प्रकार इन क्षेत्रों के लोग अपनी राष्ट्रीयता से संबंधित सरकार के अंतर्गत रहने लगे।
  - ऑस्ट्रिया और हंगरी का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया।

31.2.2. सेवर्स/सेव्रे की संधि (Treaty of Sevres; 1920)

यह संधि टर्की (तुर्की) के साथ की गई थी। इसमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण बिंदु थे:

- तुर्की को भू-क्षेत्र की बहुत अधिक हानि हुई। ईस्टर्न थ्रेस और स्मिर्ना ग्रीस को देना पड़ा। इटली को भी कुछ क्षेत्र प्राप्त हुए।
- डारडेनल्स जलडमरूमध्य को स्थाई रूप से खोल दिया गया (इस प्रकार काला सागर से निकास का मार्ग प्रदान किया गया)।
- ऑटोमन साम्राज्य के उपनिवेशों को मैंडेट में परिवर्तित किया गया और उन्हें ब्रिटेन तथा फ़्रांस को दे दिया गया। सीरिया फ़्रांस का मैंडेट बना और ब्रिटिश मैंडेट में ट्रांस जॉर्डन, इराक और फिलिस्तीन को शामिल किया गया।

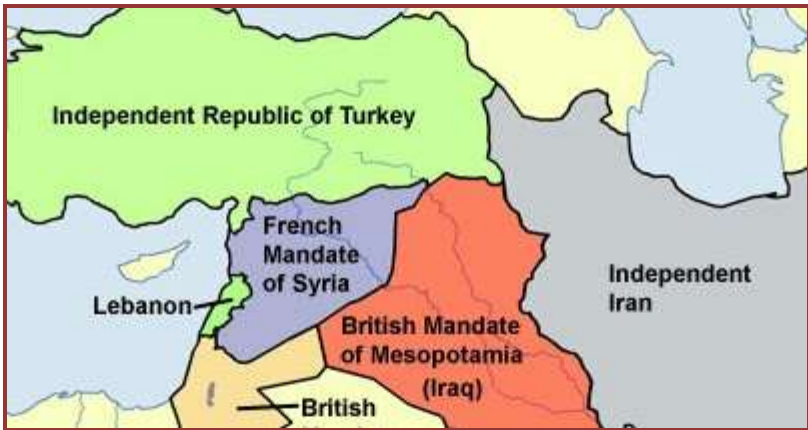

31.3. शांति संधियों की समालोचना

स्वशासन के सिद्धांत, नृजातीयता के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, सम्पूर्ण विश्व के निःशस्त्रीकरण के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना ऐसे मुख्य सिद्धांत थे जिन्हें मित्र शक्तियों ने शांति संधियों के लक्ष्यों के रूप में अग्रेषित किया था। इसे वुडरो विल्सन के 14 सूत्रों में देखा जा सकता है। जब इन सिद्धान्तों के आधार पर वर्साय की संधि का मूल्यांकन किया जाता है तो उसका औचित्य नहीं ठहराया जा सकता। यह एक उपकरण मात्र बन कर रह गया था, जिसे बाद में हिटलर के फासीवादी शासन ने द्वितीय विश्व युद्ध छेड़ने के लिए उपयोग किया था। इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित हैं:

- **वर्साय की संधि एक आरोपित (दबावयुक्त) शांति थी,** क्योंकि जर्मनों को वार्ताओं का अंग बनने की अनुमति नहीं थी। वे केवल अपने विचार और आलोचनाएँ लिखित रूप में प्रेषित कर सकते थे। उनकी सभी आलोचनाओं की उपेक्षा की गई थी। केवल एक ही उपबंध (खंड) के अंतर्गत क्षेत्र की हानि के लिए जर्मनी को क्षतिपूर्ति का भुगतान किया गया। पश्चिमी प्रशा के ऊपरी सिलेसिया का औद्योगिक क्षेत्र एक मतदान के पश्चात् जर्मनी को सौंप दिया गया था। परन्तु तब सहयोगी शक्तियों ने तर्क दिया कि ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि (Treaty of Brest Litovsk) भी तो रूस पर थोपी गई शांति थी।
- **जर्मनी के निःशस्त्रीकरण के उपबंध** ने उसे लगभग निःशक्त बना दिया था और जर्मनी पर लगाई गयी क्षतिपूर्ति भी सर्वथा अनुचित थी। विल्सन के 14 सूत्रों में 'हथियारों की व्यापक कटौती' का प्रावधान था, परन्तु केवल जर्मनी का ही निःशस्त्रीकरण हुआ और अन्य किसी भी यूरोपीय शक्ति ने निःशस्त्रीकरण प्रारम्भ नहीं किया। सैन्यबल और शस्त्रों पर लगाई गई सीमा के कारण जर्मनी में कानून और व्यवस्था बनाए रखना भी कठिन हो गया था।

- **राष्ट्रीयता, नृजातीयता और आत्म-निर्णय का सिद्धांत:** यूरोप की आंतरिक सीमाओं के पुनर्गठन और हैब्सबर्ग साम्राज्य से अलग एक नए स्वतंत्र राज्य बनाने का औचित्य सिद्ध करने के लिए मित्र शक्तियों द्वारा प्रतिपादित यह एक प्रमुख सिद्धांत था। परन्तु इसका पूरी तरह पालन नहीं किया गया था:
    - **जर्मन:** जर्मन जनसंख्या के साथ जर्मन क्षेत्र का महत्वपूर्ण भाग नव निर्मित राष्ट्रों को दे दिया गया था। पोलैंड में एक मिलियन से अधिक जर्मन जनसंख्या थी। आस्ट्रिया और जर्मनी के बीच एकीकरण प्रतिबंधित था, जबकि आस्ट्रिया में कई नृजातीय जर्मन रहते थे। क्रमशः आस्ट्रिया और हंगरी के साथ हुई सेंट जर्मेन और ट्रायनॉन की संधियों के पश्चात् सुडेटनलैंड के जर्मन निवासी अब चेकोस्लोवाकिया का अंग थे। इस प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् संपन्न संधियों के कारण कई जर्मन निवासी जर्मनी के बाहर रह रहे थे और द्वितीय विश्व युद्ध से पहले हिटलर ने इसका उपयोग जर्मनी की आक्रामकता और विस्तार को सही ठहराने के लिए किया था।
    - **तुर्की:** सेवर्स की संधि आत्म-निर्णय के सिद्धांत का उल्लंघन करती थी, क्योंकि इसके अंतर्गत ग्रीस को दिया जाने वाला क्षेत्र, विशेषकर स्मिर्ना का क्षेत्र तुर्की की मुख्य भूमि पर था। इसके परिणामस्वरूप तुर्की में राष्ट्रवाद का उदय हुआ और मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में राष्ट्रवादियों ने सेवर्स की संधि को अस्वीकार कर दिया। ग्रीक वासियों को स्मिर्ना से भगा दिया गया और मुस्तफा कमाल पाशा ने संधि पर फिर से पुनर्विचार के लिए विवश कर दिया। स्मिर्ना और तुर्क साम्राज्य के कुछ अन्य प्रदेश **लोसेन की संधि (1923)** के अंतर्गत तुर्की को लौटा दिए गए।
    - **अरब:** टी. ई. लॉरेंस एक अंग्रेज अधिकारी था, जिसने अरब वासियों को तुर्क वासियों के विरुद्ध भड़काने में मुख्य भूमिका निभाई थी। उसने ऑटोमन साम्राज्य के विरुद्ध 1916-18 तक हुए विद्रोह का नेतृत्व किया। प्रथम विश्व युद्ध में मित्र शक्तियों को समर्थन देने के पश्चात् अरब वासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति की आशा थी, परन्तु उनकी आशाएँ अपूर्ण रहीं। फिलिस्तीन के अंदर एक यहूदी राज्य की रचना की बातों से अरब वासी भी अप्रसन्न थे।
    - **भारतीय:** अंग्रेजों की ओर से कई भारतीय सैनिकों ने युद्ध में भाग लिया था, फिर भी भारत को कोई वास्तविक स्वायत्तता प्राप्त नहीं हुई थी। मित्र शक्तियों के युद्ध के उद्देश्यों में स्वशासन और आत्म-निर्णय सम्मिलित थे। 1919 का भारत सरकार अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा। तुर्की को छिन्न-भिन्न किया जाना भी मुस्लिम लोगों के लिए एक बड़ी शिकायत थी। अंग्रेजों ने भारतीयों को प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने के बदले में ऑटोमन साम्राज्य के प्रति उदार व्यवहार का वचन दिया था, परन्तु उन्होंने अपना वचन नहीं निभाया। जलियांवाला बाग नरसंहार और रौलेट एक्ट के रूप में औपनिवेशिक उत्पीड़न के साथ इन कारकों ने भारत में खिलाफत और असहयोग आन्दोलन के लिए एक चिंगारी के रूप में कार्य किया।

चित्र: प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय सैनिक

- **आर्थिक व्यवहार्यता का सिद्धांत:** विडम्बना यह है कि मित्र शक्तियों ने 'आर्थिक व्यवहार्यता' के सिद्धांत का उपयोग यह सिद्ध करने के लिए किया कि नवनिर्मित राज्यों में जर्मन जनसंख्या वाले क्षेत्रों की जरूरत है, लेकिन आस्ट्रिया और जर्मनी के बीच एकीकरण की उपेक्षा की गई थी। जबकि आर्थिक रूप से यह बहुत ही व्यवहार्य था।
- **उपनिवेशों की हानि:** जर्मनी द्वारा अपने अफ़्रीकी उपनिवेशों की हानि पर आपत्ति स्वाभाविक थी। यह वितरण निष्पक्ष नहीं था और केवल मित्र शक्तियों की साम्राज्यवादी आकांक्षाओं को संतुष्ट करने वाला था। **लीग ऑफ़ नेशंस** (राष्ट्रसंघ) ने इन उपनिवेशों को केवल मित्र शक्तियों के सदस्यों को मैंडेट के रूप में सौंप दिया था। मैंडेट प्रणाली वास्तव में जर्मनी के उपनिवेशों का अधिग्रहण ही था। ब्रिटेन को पूर्वी अफ़्रीका के जर्मन क्षेत्र मिले और फ़्रांस को कैमरून और टोगोलैंड के अधिकांश भाग प्राप्त हुए तथा इन दोनों उपनिवेशों के शेष भाग ब्रिटेन को सौंप दिए गए। साउथ अफ़्रीका को दक्षिणी पश्चिमी अफ़्रीका के जर्मन क्षेत्र प्राप्त हुए।
- **युद्ध अपराध उपबंध:** यह बहुत ही स्पष्ट है कि सभी साम्राज्यवादी शक्तियाँ प्रथम विश्व युद्ध के लिए उत्तरदायी थीं। परन्तु युद्ध अपराध उपबंध में प्रथम विश्व युद्ध का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व जर्मनी और उसके सहयोगियों पर थोपा जाना सर्वथा अनुचित था। इसने जर्मनी को अपमानित करने का कार्य किया। मित्र शक्तियों ने इस बात पर बल दिया कि कानूनी रूप से जर्मनी से युद्ध की क्षतिपूर्ति वसूली जाए।
- **युद्ध की क्षतिपूर्ति:** इस भयावह युद्ध की क्षतिपूर्ति के परिणामस्वरूप जर्मनी को अपमानित होना पड़ा। 6600 मिलियन पाउंड की धनराशि बहुत अधिक थी और इसका उद्देश्य निकट भविष्य में जर्मनी को आर्थिक रूप से निर्बल बनाए रखना था।
- **क्षेत्र में कटौती:** आस्ट्रिया और हंगरी को क्षेत्र और जनसंख्या के मामले में घटा कर बहुत ही छोटा कर दिया गया था। आस्ट्रिया की अधिकांश औद्योगिक सम्पदा चेकोस्लोवाकिया और पौलेंड को प्राप्त हो गयी। शीघ्र ही यह आर्थिक संकट से घिर गया जिसके कारण उसे लीग ऑफ़ नेशंस (राष्ट्र संघ) से ऋण लेना पड़ा था।
- **मुक्त व्यापार अनुच्छेद की अवहेलना:** राष्ट्रों के बीच मुक्त व्यापार विल्सन के 14 सूत्रों का एक भाग था। परन्तु अधिकांश नवनिर्मित राष्ट्र-राज्यों ने व्यापार में अवरोध खड़े किए जिसके कारण ऑस्ट्रिया की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना बहुत ही कठिन सिद्ध हुआ।
- **रूस को शांति समझौतों से बहुत अधिक लाभ नहीं हुआ** था क्योंकि वार्ताओं के लिए कम्युनिस्ट शासन को आमंत्रित ही नहीं किया गया था।

32. प्रथम विश्व युद्ध के प्रभाव (1914-19)

- **शांति संधियाँ:** इन्होंने जर्मनी को केवल अस्थाई रूप से ही क्षीण किया था, क्योंकि निःशस्त्रीकरण और भारी युद्ध क्षतिपूर्ति जैसे कुछ उपबंधों को कार्यान्वित करना असम्भव था। शीघ्र ही जर्मनी ने रूस की सहायता से अपना शस्त्रीकरण करना पुन: प्रारम्भ कर दिया था और क्षतिपूर्ति के भुगतान में भी आनाकानी करने लगा था।
    - इन संधियों ने केवल असंतोष और चरम राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता के बीज बोने का कार्य किया, जिसका परिणाम द्वितीय विश्व युद्ध था।
    - इन संधियों ने यूरोप को राज्यों के दो समूहों में विभाजित कर दिया। जहाँ एक समूह शांति की व्यवस्था को संशोधित करना चाहता था वहीं दूसरा समूह शांति व्यवस्था के संरक्षण के लिए प्रयासरत था।
    - स. रा. अमेरिका ने शांति व्यवस्था की पुष्टि नहीं की थी और कभी भी लीग ऑफ़ नेशन्स में सम्मिलित नहीं हुआ क्योंकि वहां के जन-सामान्य ने विल्सन की निंदा की थी। भविष्य में किसी भी प्रकार के सैन्य गठजोड़ को रोकने के लिए स. रा. अमेरिका अपनी अलगाव की नीति पर लौट आया।

VISION IAS

- इटली अपने आप को ठगा हुआ अनुभव कर रहा था क्योंकि उसे 1915 में युद्ध में प्रवेश करने के लिए वह सभी क्षेत्र प्राप्त नहीं हुए जिनके लिए उसे गुप्त संधि में वचन दिया गया था।

- **लीग ऑफ़ नेशन्स** (राष्ट्र संघ) की रचना विश्व शांति और सामाजिक कार्य सुनिश्चित करने के लिए की गई थी।
- **रूस ने कम्युनिस्ट विचारधारा को अपना लिया:** प्रथम विश्व युद्ध बोल्शेविक विद्रोहियों के उद्भव में सहायक रहा। युद्ध में रूस की भागीदारी के कारण वहां की जनता आर्थिक संकट का सामना करने पर विवश थी, अतः बोल्शेविक विद्रोही युद्ध में रूस की भागीदारी के विरुद्ध थे। 1917 की रूसी क्रांति के दो चरण थे। फरवरी की क्रांति (1917) में सैनिक विद्रोहों और नागरिक अशांति के कारण जार को सत्ता से बाहर कर दिया गया था। एक अंतरिम सरकार की स्थापना की गई, परन्तु यह वादे के अनुसार चुनाव आयोजित करने में विफल रही। जर्मनी की सहायता से लेनिन निर्वासन को छोड़कर रूस वापस आ गया और अक्टूबर क्रांति (1917) का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसने अस्थाई सरकार को उखाड़ फेंका। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविक सत्ता में आए और जर्मनी के साथ 1917 में एक अलग शांति संधि (ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि) पर हस्ताक्षर किए गए। यह संधि रूसियों के प्रति बहुत ही कठोर थी। जब जर्मनी ने वर्साय की संधि को अनैतिक और अत्यधिक कठोर होने की बात की तो रूस ने इस बात को जर्मनी के विरुद्ध उपयोग किया गया।

चित्र: लेनिन

- **अमेरिका का सामरिक शक्ति के रूप में उदय:** स. रा. अमेरिका ने युद्ध में 1917 में प्रवेश किया जब अटलांटिक महासागर में जर्मनी द्वारा पोतों की नाकेबंदी (1917) में अमेरिका सहित सभी देशों के व्यापारिक पोतों को निशाना बनाना प्रारंभ कर दिया गया। जिम्मरमैन योजना (Zimmerman Plan) एक अन्य कारक थी जिसने अमेरिका के जनमानस की राय को युद्ध में प्रवेश करने के पक्ष में परिवर्तित कर दिया। यह योजना जर्मन राजनयिक जिम्मरमैन के मस्तिष्क की उपज थी। इस योजना में मैक्सिको को अमेरिका पर आक्रमण करने के लिए सहमत करना था। इसके पूर्व स. रा. अमेरिका निरंकुश ज़ार की ओर से युद्ध में प्रवेश नहीं करना चाहता था। स. रा. अमेरिका की अनिच्छा के पीछे अमेरिकी क्रांति की भावना थी, परन्तु रूस में ज़ार के शासन के पतन से यह बाधा भी समाप्त हो गयी थी। निम्नलिखित कारकों ने स. रा. अमेरिका की प्रथम विश्व युद्ध में वास्तविक विजेता के रूप में उभरने में सहायता की थी:
  - युद्ध स. रा. अमेरिका की भूमि पर नहीं लड़ा गया था। इसलिए स. रा. अमेरिका आधारभूत ढांचे को होने वाली सामान्य क्षति और युद्ध के परिणामस्वरूप पुनर्निर्माण पर होने वाले आर्थिक व्यय से बच गया।

- अमेरिका ने सैन्य हस्तक्षेप केवल प्रथम विश्व युद्ध के अंतिम चरण में ही किया था। इस प्रकार युद्ध में अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में इसने अपने न्यूनतम सैनिकों को ही खोया, जिन्हें बमबारी और खाई युद्ध से नहीं निबटना पड़ा था।
- स. रा. अमेरिका ने मित्र शक्तियों को युद्ध के दौरान तथा जर्मनी को युद्ध के पश्चात् वर्साय की संधि के अंतर्गत उन पर लगाई गई क्षतिपूरक लागत की भरपाई के लिए ऋण दिए। इस प्रकार अमेरिका ने प्रथम विश्व युद्ध के माध्यम से बहुत सा धन अर्जित किया। इसकी युद्ध मशीनों अर्थात सैन्य उद्योगों ने युद्ध के समय और युद्ध के पश्चात् हथियार बेच कर सबसे अधिक लाभ अर्जित किया। 1929 की आर्थिक मंदी में घिरने से पूर्व का दशक स. रा. अमेरिका के लिए सबसे अधिक समृद्ध समय था।
- वर्साय की वार्ताओं में राष्ट्रपति वुडरो विल्सन द्वारा निभाई गयी अग्रणी भूमिका प्रथम विश्व युद्ध के समय और इसके बाद स. रा. अमेरिका की महत्ता और उसके बढ़ते वर्चस्व की परिचायक है।

इस प्रकार यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध की संध्या पर अमेरिका एक प्रमुख औद्योगिक अर्थव्यवस्था था परन्तु विश्व मंच पर इसके एक वास्तविक वैश्विक शक्ति के रूप में आगमन को प्रथम विश्व युद्ध ने ही उत्प्रेरित किया था।

- युद्ध के कारण **यूरोपीय अर्थव्यवस्था को संकट का सामना करना पड़ा** और वे पुनर्निर्माण के लिए स. रा. अमेरिका के ऋण पर निर्भर हो गये।
- **ऑटोमन (तुर्क) साम्राज्य का विभाजन:** प्रथम विश्व युद्ध में पराजय के चलते ऑटोमन साम्राज्य का विघटन हो गया, तत्पश्चात एक नये राष्ट्र के रूप में तुर्की का उदय हुआ।
- **हैब्सबर्ग साम्राज्य का विघटन:** प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति से पूर्व ही आस्ट्रिया एवं हंगरी स्वयं ही अलग हो गये थे। इस प्रकार हैब्सबर्ग साम्राज्य का अंत हो गया।
- **नए राष्ट्र राज्यों का उदय:** जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है; तुर्की, आस्ट्रिया और हंगरी जैसे नए राष्ट्र-राज्यों का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया और पौलैंड का भी गठन हुआ। सर्बिया ने युगोस्लाविया के अंतर्गत स्लाव लोगों को एकजुट करने के अपने स्वप्न को पूरा किया, जिसे सर्बिया और मॉन्टेनेग्रो का विलय कर के बनाया गया था। एस्टोनिया और लिथुआनिया को भी स्वाधीन राष्ट्र बनाया गया। ब्रेस्ट लिटोवस्क की संधि (1917) के पश्चात् जर्मनी ने उन्हें रूस से ले लिया था।

©Vision IAS

- **साम्राज्यवाद का अस्तित्व बना रहा:** जर्मन उपनिवेशों को मैंडेट में परिवर्तित कर दिया गया था। भविष्य में एक उपयुक्त तिथि को उन्हें स्वाधीन करने के लिए तैयार करने हेतु उन्हें मैनडेट्स के रूप में विजयी राष्ट्रों को सौंप दिया गया था। ब्रिटेन को जर्मनी के अफ़्रीकी उपनिवेश प्राप्त हो गए। ऑटोमन साम्राज्य के क्षेत्र इराक, सीरिया, ट्रांस-जॉर्डन और फिलिस्तीन को फ़्रांस और ब्रिटेन के बीच मैंडेट के रूप में वितरित कर दिया गया था।
- **नए हथियारों का इस्तेमाल:** प्रथम विश्व युद्ध में कई नए प्रकार के हथियारों का उपयोग किया गया था। कांटेदार तार, मशीन गन, टैंक, विषैली गैस आदि का उपयोग किया गया था। इसने विश्व को शांति से और दूर कर दिया और भविष्य में होने वाले युद्धों को बहुत ज्यादा खतरनाक बना दिया।
- **प्रथम विश्व युद्ध ने युद्ध के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया:** बहुत अधिक संख्या में नागरिकों के मारे जाने से अब कई विचारकों ने युद्ध की निंदा की। प्रथम विश्व युद्ध से पहले युद्ध को गौरवशाली कहा जाता था और प्रकाशित साहित्य में रूमानियत के पुट की प्रधानता होती थी। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् हेमिंग्वे जैसे लेखकों ने युद्ध को अमानवीय करार देते हुए उसकी निंदा करनी आरम्भ कर दी थी। अधिकांश लोगों ने प्रथम विश्व युद्ध को त्रासदी के रूप में देखा, जिसका होना कोई आवश्यक नहीं था। इसने केवल ऐसी सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ उत्पन्न कीं जिसने द्वितीय विश्व युद्ध की सम्भावनाओं को बढ़ा दिया।

33. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्र संघ)

- लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) का उद्भव मित्र शक्तियों के युद्ध उद्देश्यों में निहित था। वुडरो विल्सन के 14 सूत्रों में एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था के निर्माण की परिकल्पना की गई थी जो विश्व शांति को बनाए रखने के लिए कार्य करेगी। ब्रिटेन ने भी इस तरह के एक संगठन का निर्माण विश्व युद्ध के दौरान अपने युद्ध लक्ष्य के रूप में किया था। इस अनुच्छेद ने जनवरी 1920 में लीग ऑफ़ नेशन्स का रूप धारण किया, जिसका मुख्यालय जेनेवा में था। इसी दिन वर्साय की संधि भी प्रभाव में आई थी।

33.1. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) के उद्देश्य

लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) के निम्नलिखित उद्देश्य थे:

- **भविष्य में हो सकने वाले युद्धों को रोकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटान करना**। इसे सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत के माध्यम से प्राप्त करना था। सभी सदस्य राष्ट्र सामूहिक रूप से उस देश के विरुद्ध कार्यवाही करेंगे जो युद्ध को छेड़ने का प्रयास करता है। आक्रमणकारी राष्ट्र के विरुद्ध कार्यवाही सामूहिक रूप से आर्थिक प्रतिबन्ध के रूप में होगी, यदि आवश्यक हुआ तो सैनिक कार्यवाही भी की जाएगी। इस प्रकार लीग का प्राथमिक लक्ष्य अंतर्राष्ट्रीय शांति को बनाए रखना था।
- **आर्थिक और सामजिक कार्य:** लीग ऑफ़ नेशन्स का उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक आर्थिक विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना था। इस प्रयोजन के लिए राष्ट्रसंघ में विभिन्न संगठन बनाए गये थे।

33.2. लीग की संविदा

- यह उन नियमों की सूची थी, जिनसे राष्ट्रसंघ को संचालित किया जाना था। इन नियमों को एक अंतर्राष्ट्रीय समिति द्वारा बनाया गया था, जिसमें विश्व के महत्त्वपूर्ण नेता सम्मलित थे।

33.3. लीग ऑफ़ नेशन्स (राष्ट्रमंडल) का संगठनात्मक ढांचा

- **सदस्यता:** 42 सदस्य राष्ट्रों के साथ इसका आरम्भ हुआ था। 1926 तक जब जर्मनी को इसकी सदस्यता प्रदान की गयी तो सदस्यों की कुल संख्या 55 तक पहुंच गई थी।

VISION IAS

- **सुरक्षा परिषद:** राष्ट्रसंघ में सुरक्षा परिषद जैसी एक संयुक्त सुरक्षा परिषद थी। आरम्भ में इसमें आठ सदस्य थे, चार स्थाई सदस्य और चार अस्थाई सदस्य। अस्थाई सदस्यों को तीन वर्ष की अवधि के लिए महासभा द्वारा चुना गया था। 1926 तक इस परिषद के तेरह सदस्य थे, जिनमें अस्थाई सदस्यों की सीटों की संख्या को बढ़ा कर अब 9 कर दिया गया। चार स्थाई सदस्य फ़्रांस, इटली, जापान और ब्रिटेन थे। परिषद में सभी निर्णय सर्वसम्मति से होने थे। राष्ट्रसंघ के इस सुरक्षा परिषद का अधिदेश (मुख्य कार्य) राजनीतिक मुद्दों से निबटना था।
- **शांति बनाए रखने का कार्य:** वे सभी विवाद जो युद्ध का कारण बन सकते थे, उन्हें परिषद को भेजा जाना था। कोई भी सदस्य जो युद्ध छेड़ता है उसे शेष सदस्यों की सामूहिक कार्यवाही का सामना करना पड़ता था। सुरक्षा परिषद को उन नौसेनिक, वायु और सैन्य संसाधनों की अनुशंसा का अधिकार होगा जिनका योगदान प्रत्येक सदस्य को आक्रमणकारी के विरुद्ध कार्यवाही के लिए करना होगा।
- **महासभा:** राष्ट्रसंघ के सदस्यों द्वारा महासभा का गठन किया गया। महासभा की बैठकें वार्षिक रूप से होती थी और सभी निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते थे। महासभा के सभी सदस्यों का एक वोट था। महासभा लीग की नीति निर्माणकारी संस्था थी और इस प्रकार इसे सामान्य नीति के मुद्दों पर निर्णय करने का अधिदेश प्राप्त था। यह राष्ट्रसंघ की वित्तीय व्यवस्था को भी नियंत्रित करती थी और इसे किसी शांति संधि में संशोधन करने का अधिकार भी प्राप्त था। महासभा के विशेष अधिकारों में; नये सदस्यों का प्रवेश, परिषद के अस्थाई सदस्यों का आवधिक चुनाव, स्थायी न्यायालय के न्यायाधीशों की परिषद का चुनाव और बजट पर नियन्त्रण सम्मिलित था। व्यवहार में महासभा के पास राष्ट्रसंघ की गतिविधियों के सामान्य निर्देशन की शक्ति थी।
- **अंतर्राष्ट्रीय न्याय का स्थायी न्यायालय:** इसकी स्थापना हेग (नीदरलैंड) में की गई थी। इसका अधिदेश केवल राष्ट्रों के बीच कानूनी विवादों को निपटाना था न कि राजनैतिक विवादों का निपटान। इसमें विभिन्न राष्ट्रीयताओं के पन्द्रह न्यायाधीश थे। यह आज भी संयुक्त राष्ट्र संघ के भाग के रूप में कार्यरत है और इसे अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के रूप में जाना जाता है।
- **सचिवालय:** इसकी स्थापना एक सहायक इकाई के रूप में की गई थी। यह कागज़ी कार्यवाही, रिपोर्ट्स और एजेंडा तैयार करने का कार्य करता था।
- **आयोग और समितियाँ:** कई आयोगों की स्थापना की गयी थी जिसमें प्रत्येक आयोग एक विशिष्ट समस्या से निबटता था। जैसे- 'मैंडेट्स', निःशस्त्रीकरण, सैन्य मामलों आदि से सम्बंधित मुद्दों से निपटने के लिए कुछ महत्वपूर्ण आयोगों का गठन किया गया था। दूसरी ओर कुछ महत्वपूर्ण समितियाँ स्वास्थ्य, श्रम, महिलाओं के अधिकारों, नशीली दवाओं, बालकल्याण आदि विषयों से सम्बन्धित थीं।

33.4. राष्ट्रसंघ के प्रदर्शन का मूल्यांकन

- राष्ट्रसंघ की सफलता या असफलता का निर्धारण हम पहले उल्लेख किए गए राष्ट्र संघ के दो प्रमुख उद्देश्यों से सम्बन्धित प्रदर्शन के विश्लेषण के आधार पर कर सकते हैं। यदि राष्ट्र संघ के प्रदर्शन का संक्षेप में मूल्यांकन किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि यह अंतर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए एक प्रमुख मंच होने और शांतिपूर्ण विश्व सुनिश्चित करने के अपने उद्देश्य में विफल रहा है। परन्तु पूरे विश्व में इसने सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। विशेषकर श्रमिकों के कल्याण के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य और प्रथम विश्वयुद्ध के शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए राष्ट्रसंघ का योगदान सराहनीय था।

33.4.1. राष्ट्रसंघ की सफलता

राष्ट्रसंघ दो क्षेत्रों में सफल रहा था:

- **अपने आयोगों और समितियों के माध्यम से आर्थिक और सामाजिक कार्य:**
  - **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO):** यह राष्ट्रसंघ का प्रमुख संगठन नहीं था, अपितु उसका एक अभिकरण था। (यह 1946 में संयुक्त राष्ट्र का प्रथम विशिष्ट अभिकरण बना।) ILO सबसे सफल संगठन था। ILO के लक्ष्यों में सम्मिलित था - अधिकतम कार्य दिवस और न्यूनतम

VISION IAS

मजदूरी तय करना, यह सुनिश्चित करना कि सदस्य राष्ट्र बेरोजगारी लाभ और वृद्धावस्था पेंशन प्रदान करें। इसके कार्यों में विभिन्न सदस्य राष्ट्रों के प्रदर्शन के संबंध में सूचना का प्रचार-प्रसार करना और श्रमिकों के कल्याण के क्षेत्र में कार्रवाई के लिए सरकारों को प्रेरित करना सम्मिलित था।

- **शरणार्थी संगठन:** इसने रूस में युद्धबंदियों को रूस से बाहर अपने घर लौटने में सहायता की। 1933 में नाजी उत्पीड़न से बचने के लिए भाग रहे यहूदियों की अलग-अलग देशों में फिर से बसने में सहायता की। इस प्रकार के दयालुतापूर्ण कार्य से लीग ने उन्हें सुरक्षा प्रदान की।
- **स्वास्थ्य संगठन:** इसने विभिन्न महामारियों का कारण पता लगाने की दिशा में अच्छा कार्य किया। यह विशेष रूप से रूस में टाइफस महामारी से लड़ने में सफल रहा, जिसमें यूरोप के शेष हिस्सों में फैलने की संभाव्यता थी।
- **मैंडेट आयोग**: इसके ऊपर मैंडेट (ऑटोमन साम्राज्य और जर्मनी के पूर्व उपनिवेश) के रूप में सदस्य राष्ट्रों को सौंपे गए प्रदेशों के शासन की निगरानी करने का उत्तरदायित्व था। सार (SAAR) प्रदेश में शासन की निगरानी करने के लिए स्थापित पृथक आयोग बहुत कुशल था और इसने 1935 में वहां सफलतापूर्वक जनमत संग्रह आयोजित किया। जनमत संग्रह के बाद सार प्रदेश जर्मनी को लौटा दिया गया। हालांकि मैंडेट आयोग ने अच्छी तरह कार्य किया, लेकिन यह तर्क दिया जा सकता है कि इसने पूर्ववर्ती अफ्रीकी उपनिवेशों में उपनिवेशवाद के विरूद्ध कुछ विशेष नहीं किया, जिन्हें मैंडेट में परिवर्तित कर दिया गया था। मैंडेट को स्वशासन के लिए तैयार किया जाना था लेकिन आयोग यह सुनिश्चित करने में विफल रहा कि औपनिवेशिक शक्तियाँ मैंडेट के शासन में स्थानीय लोगों की भागीदारी के लिए प्रावधान करें।

- **छोटे अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निपटारा:** यहां राष्ट्रसंघ को आंशिक सफलता ही मिली। इसने ग्रीस को बुल्गारिया पर आक्रमण करने के लिए क्षतिपूर्ति का भुगतान करने हेतु विवश किया। जब तुर्की ने ब्रिटेन के मैंडेट मोसुल प्रांत पर दावा करना आरंभ किया तो राष्ट्रसंघ ने ब्रिटेन के पक्ष में निर्णय दिया। राष्ट्रसंघ ने पेरू और कोलंबिया के बीच क्षेत्रीय विवाद का समाधान किया। इसके साथ ही 1921 में, जब जर्मनी और पोलैंड के बीच ऊपरी सिलेसिया (एक औद्योगिक क्षेत्र) के संबंध में विवाद पैदा हो गया तो राष्ट्रसंघ ने सफलतापूर्वक दोनों पक्षों के लिए समझौते पर पहुँचना संभव बनाया और ऊपरी सिलेसिया दोनों के बीच बांट दिया गया।

स्पष्ट है कि इन विवादों में से किसी से भी विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न नहीं हुआ। हालाँकि इन विवादों में जब भी कोई प्रमुख शक्ति संबद्ध होती थी तो राष्ट्रसंघ का निर्णय सदैव प्रमुख शक्ति के पक्ष में होता था।

33.4.2. राष्ट्र संघ की विफलता/प्रभावहीनता के कारण

- **मित्र राष्ट्रों का संगठन:** राष्ट्रसंघ को मित्र राष्ट्रों- विशेषकर फ्रांस और ब्रिटेन के संगठन के रूप में देखा जाने लगा था, जिसकी स्थापना अन्यायपूर्ण शांति संधियों के कार्यान्वयन के लिए की गई थी। इसलिए यह सभी देशों को संतुष्ट करने में विफल रहा।
  - तुर्की और इटली दोनों शांति संधियों से असंतुष्ट थे। जहां तुर्की उन क्षेत्रों को ग्रीस को सौंपे जाने से व्यथित था, जिन्हें वह अपना अभिन्न अंग मानता था; वहीं इटली 1915 में मित्र राष्ट्रों के पक्ष में युद्ध में प्रवेश करने के एवज में प्रादेशिक लाभ न मिलने के कारण असंतुष्ट था।
  - हस्ताक्षरित शांति संधियाँ आत्म-निर्णय के सिद्धांत के विरूद्ध थीं। उदाहरण के लिए शांति संधियों के बाद लाखों जर्मन जर्मनी से बाहर चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड में रह रहे थे। इसी तरह कई तुर्क अब ग्रीस के निवासी थे।

VISION IAS

- **राजदूतों का सम्मेलन (Conference of Ambassadors):** राष्ट्र संघ के गठन होने और इसके पूरी तरह से क्रियाशील होने तक शांति संधियों के संबंध में विवादों का समाधान करने के लिए एक अस्थायी निकाय के रूप में इस निकाय की स्थापना की गई थी। लेकिन राष्ट्रसंघ के गठन के बाद भी यह निकाय अस्तित्व में बना रहा। इससे राष्ट्रसंघ की वैधता और प्राधिकार को चोट पहुंची। कई बार राजदूतों के सम्मेलन ने राष्ट्रसंघ के निर्णयों की अवहेलना की। उदाहरण के लिए कोर्फू घटना (1923); जिससे इटली और ग्रीस संबंधित थे।
- **निःशस्त्रीकरण की विफलता:** केवल जर्मनी का ही वर्साय की संधि के अंतर्गत निःशस्त्रीकरण किया गया था। राष्ट्रसंघ अन्य प्रमुख शक्तियों को निःशस्त्रीकरण के लिए मनाने में विफल रहा। ब्रिटेन और फ्रांस स्व-निःशस्त्रीकरण नहीं चाहते थे। जब 1932-33 में विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन आयोजित किया गया तो हिटलर ने फ्रांस के साथ शस्त्रीकरण की समानता की मांग की। लेकिन फ्रांस ने अस्वीकार कर दिया क्योंकि उसे डर था कि जर्मनी समकक्ष सैन्य शक्ति बन जाएगा और शीघ्र ही उसकी सीमाओं के लिए खतरे के रूप में उभर आएगा। हिटलर ने विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन को छोड़ने के बहाने के रूप में इसका उपयोग किया। शीघ्र ही वह राष्ट्रसंघ की निंदा करने लगा और साथ ही जर्मनी ने इसकी सदस्यता त्याग दी।
- **सामूहिक सुरक्षा का मजाक:** राष्ट्रसंघ प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शांति संधियों के माध्यम से स्थापित सीमाओं के किसी भी उल्लंघन की रोकथाम करने में विफल रहा।
    - **1923 का प्रस्ताव:** इसने प्रत्येक सदस्य को सामूहिक सुरक्षा सिद्धांत की प्राप्ति हेतु सैन्य संसाधनों की आपूर्ति करने के निर्णय की स्वतंत्रता प्रदान की। इस स्वतंत्रता ने किसी सदस्य राष्ट्र के द्वारा युद्ध के किसी भी कृत्य को रोकने के सभी राष्ट्रों के उत्तरदायित्व को प्रभावहीन बना दिया।
    - **जेनेवा प्रोटोकॉल की विफलता (1924):** ब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों ने जेनेवा प्रोटोकॉल का प्रस्ताव किया था। राष्ट्रसंघ की सभा ने सर्वसम्मति से "अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का प्रलेख" स्वीकार किया। इसमें विवादों की अनिवार्य मध्यस्थता का प्रावधान किया गया था। इसने राष्ट्रसंघ के सदस्यों को आक्रमण से पीड़ित राष्ट्र की तत्काल सैन्य सहायता उपलब्ध कराने हेतु प्रतिबद्ध किया। जेनेवा प्रोटोकॉल में यह व्यवस्था थी कि सदस्य राष्ट्र स्वयं को "राष्ट्र संघ के पक्ष में अपनी संप्रभुता पर महत्वपूर्ण सीमाबंधन के लिए सहमति देने हेतु तैयार हों"। लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका ने (अपनी अलगाव की नीति के कारण) इस प्रस्ताव की निंदा की और ब्रिटेन की अगली कंजर्वेटिव सरकार ने इस प्रोटोकॉल से ब्रिटिश समर्थन वापस ले लिया। इस प्रकार इस प्रोटोकॉल की पुष्टि कभी नहीं हो पाई।
    - **1929 के आर्थिक संकट** से गरीबी और बेरोजगारी में वृद्धि हुई और परिणामस्वरूप पूरे विश्व में दक्षिणपंथी सरकारें सत्ता में आ गईं। ये सरकारें अधिक आक्रामक थीं और उन्होंने राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा का उल्लंघन किया। उदाहरण के लिए, जापान ने 1931 में मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया, 1935 में इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया, 1936 का स्पेन का गृहयुद्ध फ्रैंकों के पक्ष में मुसोलिनी और हिटलर द्वारा सैन्य हस्तक्षेप का साक्षी बना। 1937 में जापान ने चीन पर आक्रमण कर दिया और हिटलर ने 1938 में ऑस्ट्रिया को हड़प लिया। इन सभी प्रकरणों में राष्ट्रसंघ शक्तिहीन सिद्ध हुआ और ऐसे सैन्य आक्रामणों को रोकने में विफल रहा। 1931 में मंचूरिया पर जापानी आक्रमण के प्रकरण में राष्ट्रसंघ का यह निर्णय था कि जापान को मंचूरिया को खाली कर देना चाहिए। जापान ने इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया और परिणामस्वरूप इसने 1933 में राष्ट्रसंघ की सदस्यता त्याग दी। जापान के विरूद्ध सैन्य या आर्थिक प्रतिबंधों पर चर्चा तक नहीं की गई क्योंकि महामंदी के

VISION IAS

कारण ब्रिटेन और फ्रांस आर्थिक दबाव में थे। इसी तरह जब अबीसीनिया ने 1935 में इटली के आक्रमण के विरूद्ध राष्ट्रसंघ में अपील की तो राष्ट्रसंघ ने प्रतिबंध लगाया, लेकिन केवल आधे मन से। इटली को अभी भी कोयला, तेल और इस्पात जैसी महत्वपूर्ण वस्तुएँ आयात करने की अनुमति दी गई और इस प्रकार ये प्रतिबंध इटली को अबीसीनिया से पीछे हटने के लिए विवश करने में विफल रहे।

उपर्युक्त चर्चा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं तथा विश्व राजनीति पर 1929 के आर्थिक संकट के निम्नलिखित प्रभाव पड़े:

- दक्षिणपंथी सरकारों; विशेषकर जापान, इटली और जर्मनी में फासीवादी शासन व्यवस्थाओं ने विश्व आर्थिक संकट का लाभ उठाया क्योंकि उन्हें पता था कि आर्थिक चिंताओं के कारण ब्रिटेन और फ्रांस जैसे राष्ट्रसंघ के महत्वपूर्ण सदस्य कार्यवाही नहीं करेंगे।
- युद्ध रोकने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका फासीवादी शासन व्यवस्थाओं के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपना रहे थे। यह विनाशकारी साबित हुआ और धीरे-धीरे फासीवादी शासन व्यवस्थाएँ विश्व शांति को चुनौती देने के लिए शक्तिशाली होती गईं।
- साथ ही यह स्पष्ट है कि राष्ट्रसंघ के समर्थक राष्ट्रों सहित प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वयं के आर्थिक हितों को लेकर चिंतित था। चाहे यह अलगाव की अमेरिकी नीति हो या जेनेवा प्रोटोकॉल का ब्रिटिश परित्याग हो, प्रमुख शक्तियाँ ऐसा कोई उत्तरदायित्व नहीं उठाना चाहती थीं जिससे कोई प्रत्यक्ष क्षेत्रीय या आर्थिक लाभ न हो। यहां तक कि राष्ट्रसंघ में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ब्रिटेन और फ्रांस ने भी तब तक कार्यवाही नहीं की जब तक कि उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस आदि जैसी अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक और सैन्य शक्तियों का समर्थन नहीं मिल गया। इस काल में राष्ट्रीय आर्थिक चिंताएं और राजनीतिक लाभ विश्व शांति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हो गए थे।
- **राष्ट्र संघ वास्तव में कोई प्रतिनिधि संगठन नहीं था** और इसकी सदस्यता सीमित थी। इसका परिणाम राष्ट्रसंघ के कार्यों के लिए धन की कमी के रूप में भी सामने आया। 1920 में राष्ट्रसंघ के गठन के समय तीन प्रमुख विश्व शक्तियाँ अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियत रूस और जर्मनी इसके सदस्य नहीं थे। इस प्रकार यह फ्रांसीसियों और अंग्रेजों का संगठन बनकर रह गया था, फलतः एक वास्तविक विश्व संगठन कहलाने के लिए इसके पास वैधता का अभाव था। जर्मनी को कहीं 1926 में जाकर प्रवेश दिया गया, जबकि सोवियत रूस को 1934 में सदस्यता मिली। संयुक्त राज्य अमेरिका कभी भी राष्ट्रसंघ में सम्मिलित नहीं हुआ और न ही उसने शांति संधियों की पुष्टि ही की। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी जनता ने वुडरो विल्सन और उसके चौदह सूत्रों को अस्वीकार कर दिया और अमेरिका अलगाव की अपनी नीति पर वापस लौट गया। रिपब्लिकन राष्ट्रसंघ को एक विश्व सरकार के रूप में देखते थे, जिससे अमेरिका की राष्ट्रीय संप्रभुता और स्वतंत्रता के लिए खतरा था। वे भविष्य के किसी भी सैन्य संघर्ष में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे या यूरोपीय मामलों में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे। 1933 तक जापान राष्ट्रसंघ से बाहर निकल चुका था और इसके तुरंत बाद ही हिटलर के समय जर्मनी ने भी राष्ट्रसंघ को छोड़ दिया। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध की पूर्व संध्या पर राष्ट्र संघ खंडहर बन गया था और विफल हो चुका था।
- **सारांश:** जहां भी राष्ट्रसंघ का निर्णय किसी भी प्रमुख शक्ति के विरूद्ध होता था, राष्ट्रसंघ ऐसे विवादों में अपने निर्णय लागू कराने में विफल रहता था। जापान, इटली और जर्मनी जैसी आक्रामक शासन व्यवस्थाओं ने राष्ट्रसंघ की अवहेलना की। ब्रिटेन और फ्रांस ने राष्ट्रसंघ को प्रभावी बनाने के लिए कुछ विशेष नहीं किया। इस हेतु 1929 का आर्थिक संकट भी अपने तरीके से उत्तरदायी था। राजदूतों के सम्मेलन ने राष्ट्रसंघ का प्राधिकार कम किया। जर्मनी, अमेरिका, सोवियत रूस जैसी महत्वपूर्ण शक्तियाँ इसके सदस्य नहीं थे। राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा कमजोर थी और यह वास्तविक सामूहिक सुरक्षा प्रदान करने में विफल रहा।

VISION IAS

33.5. राष्ट्र संघ की विफलता का प्रभाव

- मंचूरिया और अबीसीनिया में आक्रमण के विरूद्ध इसकी निष्क्रियता के कारण धीरे-धीरे छोटे राज्यों ने राष्ट्र संघ में अपना विश्वास खो दिया।
- फासीवादी शासन व्यवस्थाओं को प्रोत्साहन मिला। हिटलर वर्साय की संधि का उल्लंघन करने को लेकर आश्वस्त हो गया।
- द्वितीय विश्व युद्ध नहीं रोका जा सका।

33.6. राष्ट्रसंघ के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ की तुलना

संयुक्त राष्ट्र संघ	**राष्ट्रसंघ**
द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1945 में स्थापित	प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1920 में स्थापित
संयुक्त राष्ट्र चार्टर	राष्ट्रसंघ प्रसंविदा
स. रा. अमेरिका और सोवियत रूस की सक्रिय भागीदारी	स. रा. अमेरिका सम्मिलित नहीं हुआ। सोवियत रूस का भी बहुत बिलंब से प्रवेश हुआ (1934)
स. रा. अमेरिका और सोवियत रूस का वर्चस्व	ब्रिटेन और फ्रांस का वर्चस्व
स. रा. अमेरिका, सोवियत रूस, चीन और ब्रिटेन के प्रस्तावों पर संयुक्त राष्ट्र का चार्टर आधारित है	स. रा. अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा तैयार की गई थी क्योंकि रूस को वर्साय की संधि में आमंत्रित नहीं किया गया था।
संयुक्त राष्ट्र का उद्देश्य विश्व शांति, सभी के व्यक्तिगत मानवाधिकारों की सुरक्षा और सामाजिक-आर्थिक विकास है।	राष्ट्रसंघ में व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा सम्मिलित नहीं थी।
संयुक्त राष्ट्र महासभा का निर्णय सर्वसम्मति के सिद्धांत पर आधारित नहीं है।	राष्ट्रसंघ की महासभा सर्वसम्मति के सिद्धांत के आधार पर निर्णय लेती थी। इसका परिणाम निरंतर गतिरोध निकला।
संयुक्त राष्ट्र में विकासशील देशों की बहुत अधिक भागीदारी है।	राष्ट्रसंघ में उपनिवेशों की कोई भागीदारी नहीं थी।
संयुक्त राष्ट्र अधिका प्रतिनिधित्व वाला संगठन है। लगभग सभी राष्ट्र इसके सदस्य हैं। पूर्व के उपनिवेशों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद यह तृतीय विश्व का कहीं अधिक प्रतिनिधि बन गया है। सोवियत रूस के विघटन के बाद नए राज्यों का उद्भव हुआ और परिणामस्वरूप इसकी सदस्यता में और अधिक वृद्धि हुई।	सभी राष्ट्रों की सदस्यता के अभाव के चलते राष्ट्रसंघ कम प्रतिनिधित्व वाला संगठन था।
निर्णयों के प्रभावी होने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में मतदान सर्वसम्मति से होने की आवश्यकता नहीं है।	राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में मतदान सर्वसम्मति से होना आवश्यक था।

VISION IAS

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस और चीन हैं। अस्थायी सदस्यों की संख्या 10 है जो 2 वर्षों के लिए चुने जाते हैं।	राष्ट्रसंघ की परिषद के स्थायी सदस्य फ्रांस, ब्रिटेन, जापान और इटली थे। 1926 में अस्थायी सदस्यों की संख्या 9 थी जबकि 1920 में जब राष्ट्रसंघ का गठन हुआ था तो इनकी संख्या 4 थी। इन्हें 3 वर्षों के लिए चुना जाता था।

- आर्थिक और सामाजिक विकास कार्यों के प्रति अधिक समय और धन समर्पित किए जाने के कारण संयुक्त राष्ट्र अधिक सफल रहा। साथ ही, राष्ट्रसंघ की तुलना में सामाजिक-आर्थिक विकास के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र का दायरा भी काफी अधिक व्यापक है। ILO को छोड़कर, संयुक्त राष्ट्र की सभी विशेषज्ञ एजेंसियों की स्थापना 1945 के बाद हुई। संयुक्त राष्ट्र सुशासन पर अधिक केंद्रित है। उदाहरण के लिए इसने सतत विकास लक्ष्यों जैसे विकास संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सदस्य राष्ट्रों के साथ कार्यक्रम तैयार किया है और इस दिशा में प्रमुख कार्य कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र महत्वपूर्ण निर्णायक कार्रवाई करने में सक्षम रहा है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र महासभा (UNGA) को सर्वसम्मति वाले मतों की आवश्यकता नहीं होती है। 1950 के **यूनाइटिंग फॉर पीस रेजोल्यूशन** (1950 के कोरियाई युद्ध के दौरान) के प्रावधानों के चलते संयुक्त राष्ट्र महासभा (UNGA) अब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) के वीटो को भी रद्द कर सकता है। उल्लेखनीय है कि साम्यवादी चीन को UNO में प्रवेश न दिए जाने के कारण सोवियत रूस UNSC का बार-बार बहिष्कार कर रहा था, इसीलिए यह प्रावधान लाया गया था। कुछ विश्लेषकों का तर्क है कि प्रस्ताव पर मतदान नहीं करने का अर्थ वीटो करना है। इस प्रकार UNGA से परामर्श किया गया और UNGA ने यह धारा (**यूनाइटिंग फॉर पीस रेजोल्यूशन**) पारित की जिसने वीटो को रद्द करना संभव बनाया और इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र कोरिया युद्ध में हस्तक्षेप कर सका। प्रस्ताव में कहा गया कि "ऐसी किसी भी स्थिति में जहां सुरक्षा परिषद, अपने पांच स्थायी सदस्यों में मतैक्य की कमी के कारण अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने में विफल रहती है, महासभा तुरंत उस मामले पर विचार करेगी और ऐसी कोई भी अनुशंसा कर सकती है जो वह अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा पुनर्स्थापित करने के लिए आवश्यक समझे।"
- इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की उसके राष्ट्रसंघ के समकक्ष की तुलना में बहुत अधिक प्रतिष्ठा है। कोफी अन्नान (1997-2006) अपनी संघर्ष समाधान की क्षमता के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गए थे। यहां तक कि यदि संयुक्त राष्ट्र युद्ध नहीं भी रोक पाया तो भी वह विभिन्न अवसरों पर युद्धविराम के लिए मध्यस्थता करके त्वरित समाप्ति में सफल रहा।
- वैश्विक शासन के युग में संयुक्त राष्ट्र और अधिक महत्वपूर्ण बन गया है और क्योंकि उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण तथा पर्यावरण और अन्य ग्लोबल कॉमन्स की सुरक्षा जैसी वैश्विक चिंताओं के मुद्दों के कारण विश्व अधिक एकीकृत हो गया है।

33.7. संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रसंघ के बीच समानताएं :

- विश्व शांति और सामाजिक-आर्थिक विकास का समान उद्देश्य
- सुरक्षा परिषद में सदस्यों की वीटो शक्तियाँ

अपनी स्वयं की स्थायी सेना का अभाव और इस प्रकार सैनिकों के योगदान के लिए सदस्यों पर निर्भरता

साझा कमजोरियां:

- महाशक्तियों का उपकरण मात्र होने का आरोप

VISION IAS

- पश्चिम समर्थक
- शक्तिशाली राष्ट्रों के अधीन होना

अमेरिका और यूरोप पर वित्तीय निर्भरता: संयुक्त राष्ट्र मुख्य रूप से अमेरिकी वित्त पोषण पर निर्भर है, जबकि राष्ट्रसंघ ब्रिटेन और फ्रांस पर निर्भर था।

34. 1919-29 तक का विश्व

- **तुर्की राष्ट्रवादः** तुर्की सेवर्स की संधि (1920) से अप्रसन्न था क्योंकि उसे ग्रीस के हाथों अपना बहुत सा प्रदेश खोना पड़ा था। इस संधि के उपरांत तुर्की की जनसंख्या का एक हिस्सा ग्रीस के कब्जे वाले क्षेत्र में चला गया। इसने राष्ट्रवाद के उदय का मार्ग प्रशस्त किया और मुस्तफा कमाल पाशा ने ग्रीस को उसके कब्जे वाले इलाकों से बाहर खदेड़ दिया।
- **शांति संधियों से इटली की अप्रसन्नता:** इटली प्रथम विश्व युद्ध के बाद प्राप्त क्षेत्रीय लाभों से अप्रसन्न था। जब 1915 में मित्र देशों की ओर से सम्मिलित होने के लिए उसे राजी किया गया था तो उसे बहुत कुछ देने का वादा किया गया था। अतः जब 1922 में मुसोलिनी इटली में सत्ता में आया तो इटली ने युगोस्लाविया से फ्यूम छीन लिया। कोर्फू की घटना 1923 में घटित हुई। कोर्फू ग्रीस का एक द्वीप था। अल्बानिया और ग्रीस के बीच क्षेत्रीय विवाद के समाधान के लिए स्थापित सीमा आयोग के अंतर्गत काम कर रहे कुछ इतालवी श्रमिकों को मार दिया गया। प्रत्युत्तर में, इटली ने ग्रीस पर बमबारी की और कोर्फू पर कब्जा कर लिया और इटली ने मांगी गई क्षतिपूर्ति का भुगतान होने के बाद ही उसे छोड़ा।
- **यूरोप पर अमेरिकी युद्ध ऋण:** अमेरिका प्रथम विश्व युद्ध से बहुत लाभान्वित हुआ था। उसने खूब हथियार बेचे और मित्र शक्तियों को ऋण दिया। ब्रिटेन, फ्रांस और अन्य मित्र देशों को आशा थी कि अमेरिका उन्हें ऋण पर कुछ रियायत प्रदान करेगा। लेकिन अमेरिका ने युद्ध ऋण के पूर्ण पुनर्भुगतान की मांग जारी रखी।
- **जर्मन युद्ध क्षतिपूर्ति का प्रश्न:** ब्रिटेन और फ्रांस आर्थिक दबाव से जूझ रहे थे। उन्हें युद्ध के बाद अमेरिका का युद्ध ऋण चुकाना था और अपने यहां अवसंरचना के पुनर्निर्माण के लिए भी धन का निवेश करना था। जर्मनी भी युद्ध से तहस-नहस हो गया था और युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करना उसके लिए बहुत कठिन हो गया था। उसे उदार व्यवहार और भुगतान की जाने वाली राशि पर पुनर्विचार की आशा थी। ब्रिटेन भुगतान की शर्तें सरल करने के पक्ष में था, क्योंकि इससे जर्मन अर्थव्यवस्था में तेजी से सुधार होता, जिससे उसके लिए युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करना वास्तव में संभव होता। इसके साथ ही समृद्ध जर्मनी ब्रिटिश वस्तुओं के लिए निर्यात बाजार के रूप में काम करता। वहीं दूसरी ओर, फ्रांस कठोर नीति अपनाए हुए था और चाहता था कि जर्मनी युद्ध क्षतिपूर्ति का पूरा भुगतान करे। ऐसा दो कारणों से था। पहला, यह निकट भविष्य में जर्मनी को आर्थिक रूप से कमजोर रखने की फ्रांसीसी रणनीति थी जिससे वह फ्रांसीसी सीमाओं के लिए खतरा न पैदा कर सके। दूसरा, फ्रांस अमेरिका से लिए गए ऋणों का पुनर्भुगतान करने के लिए वास्तव में जर्मन युद्ध क्षतिपूर्ति पर निर्भर था।
- **रूसी गृह युद्ध (1918-20):** बोल्शेविकों ने सत्ता में आने के बाद दूसरे देशों में साम्यवादियों की सहायता करने के लिए अपने एजेंटों को भेजकर शेष विश्व में साम्यवादी क्रांति का निर्यात करने का प्रयास किया। इससे रूस लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था वाले अधिकांश देशों का शत्रु बन गया। रूस में लेनिन ने क्रांति के बाद लोकतांत्रिक चुनावों के माध्यम से गठित विधानसभा को भंग कर दिया और साम्यवादी शासन की स्थापना करके सत्ता हड़प ली। यह लोकतंत्र चाहने वाले अन्य समूहों के बीच असंतोष का प्रमुख कारण बन गया। पश्चिमी राष्ट्रों और जापान ने रूसी गृहयुद्ध में बोल्शेविकों से लड़ने के लिए सेनाएँ भेजीं। यह गृहयुद्ध बोल्शेविकों और अन्य समूहों (जिन्हें व्हाइट्स के रूप में जाना जाता था) के बीच लड़ा गया। शेष यूरोप में साम्यवादी क्रांति विफल हो गई थी, लेकिन रूस में सफल रही क्योंकि बोल्शेविक गृहयुद्ध (1918-20) में विजेता के रूप में उभरे थे।

VISION IAS

35. प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार की दिशा में किए गए प्रयास

- **राष्ट्रसंघ (लीग ऑफ़ नेशन्स)**: बातचीत के माध्यम से विवादों के समाधान के जरिए विश्व शांति स्थापित करने के उद्देश्य से 1920 में राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत के अंतर्गत आक्रमणकारी राष्ट्र के विरूद्ध सेना का उपयोग और आर्थिक प्रतिबंध अपरिहार्य था। राष्ट्रसंघ छोटे विवादों का समाधान करने में सफल रहा परन्तु बड़ी शक्तियों की आक्रामकता की रोकथाम करने में यह विफल रहा।
- **आंग्ल-रूसी व्यापार संधि (1921)**: रूसी गृहयुद्ध (1918-20) के बाद, ब्रिटेन और रूस के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। शेष यूरोप में साम्यवादी क्रांति विफल रही थी, पश्चिमी शक्तियाँ रूसी गृहयुद्ध में बोल्शेविकों को हराने में असफल रहीं थीं और रूस गृहयुद्ध से थक गया था। अब वह ब्रिटेन से निवेश और मित्रता चाहता था।
- **वाशिंगटन सम्मेलन (1921-22):** सुदूर पूर्व में बढ़ते जापानी प्रभाव को रोकने के लिए वाशिंगटन सम्मेलन अमेरिका द्वारा आयोजित किया गया था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, जापान मित्र शक्तियों के पक्ष में लड़ा था और उसने चीन के कियाचाओ द्वीप और शांतुंग प्रांत पर कब्जा कर लिया था। साथ ही उसने प्रशांत महासागर में स्थित जर्मनी के अधिकार वाले सभी द्वीपों पर भी कब्जा कर लिया था। इस प्रकार, प्रथम विश्व युद्ध के बाद जापान प्रशांत क्षेत्र में अमेरिका का प्रतिद्वंद्वी बनकर उभरा था और उसने मजबूत नौसेना का विकास कर लिया था जो अमेरिकी हितों को खतरे में डाल सकती थी। वाशिंगटन सम्मेलन के माध्यम से अमेरिका जापान के साथ युद्ध और नौसैनिक प्रतिद्वंदिता रोकना चाहता था। इस सम्मेलन के बाद सहमति व्यक्त की गई कि जापान चीन के कियाचाओ द्वीप और शांतुंग प्रांत से हट जाएगा। बदले में, जापान को जर्मनी के अधिकार वाले प्रशांत महासागर के द्वीपों पर कब्ज़ा बनाए रखने की अनुमति दी गई। इसके साथ ही, ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका ने जापान की सीमा के समीप नौसैनिक बेस का निर्माण न करने पर सहमति व्यक्त की। अमेरिका, जापान, ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा चीन पर तटस्थ रहने की गारंटी दी गई। इसके साथ ही इन शक्तियों ने सुदूर पूर्व में एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्रों का सम्मान करने पर भी सहमति व्यक्त की। यह समझौता अमेरिका, ब्रिटेन और जापान के नौसैनिक बेड़े पर सीमा आरोपित करता था जिनकी नौसेना 5:5:3 के अनुपात में होनी थी, अर्थात जापानी नौसेना ब्रिटेन और अमेरिका की नौसेना का ⅗ वां भाग होती।

वाशिंगटन सम्मेलन का प्रभाव:

- हालांकि जापान की नौसेना का आकार ब्रिटेन और अमेरिका की नौसेना का 3/5 था फिर भी जापान प्रशांत क्षेत्र में सर्वोच्च शक्ति के रूप में उभरा क्योंकि जापानी नौसेना प्रशांत क्षेत्र में संकेंद्रित थी, जबकि ब्रिटेन और अमेरिका की नौसैनाएँ सभी महासागरों में फैली थीं।
- 1930 के दशक में जापान द्वारा चीन पर आक्रमण करने पर जब अमेरिका ने जापान के विरूद्ध हस्तक्षेप करने से मना कर दिया तो ब्रिटेन और फ्रांस ने भी कोई कार्यवाही नहीं की क्योंकि उन्हें लगा कि अमेरिका के बिना जापान के विरुद्ध युद्ध करने में उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ेगी।
- **जेनोवा सम्मेलन (1922):** जेनोवा सम्मेलन ब्रिटेन द्वारा आयोजित किया गया था। निम्नलिखित समस्याओं का समाधान करना इस सम्मेलन का उद्देश्य था:
  - **फ्रांस-जर्मनी की शत्रुता**: जर्मनी फ्रांस को युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान रोकने की धमकी दे रहा था।
  - **अमेरिकी युद्ध ऋण:** अमेरिका ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान संबद्ध मित्रशक्तियों को मुक्त रूप से ऋण दिया था और युद्ध के बाद कमजोर अर्थव्यवस्था के कारण, ब्रिटेन और फ्रांस के लिए पुनर्भुगतान करना मुश्किल हो रहा था।
  - ब्रिटेन रूस के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करना चाहता था।

VISION IAS

जेनोवा सम्मेलन का परिणाम: जेनोवा सम्मेलन उपरोक्त समस्याओं का समाधान करने में विफल रहा क्योंकि फ्रांस जर्मनी से पूर्ण युद्ध क्षतिपूर्ति की मांग कर रहा था। इसके साथ ही, अमेरिका ने सम्मेलन में भाग लेने से मना कर दिया और सभी ऋणों का पूर्ण भुगतान करने की मांग की। युद्ध क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर फ्रांस द्वारा लचीलापन न दिखाने के कारण जर्मनी ने सम्मेलन का परित्याग कर दिया। रूस ने भी सम्मेलन का परित्याग कर दिया क्योंकि ब्रिटेन ने मांग की कि प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ज़ार शासन द्वारा लिए गए युद्ध ऋणों का भुगतान बोल्शेविक करें।

जेनोवा सम्मेलन का प्रभाव

- जर्मनी और रूस ने एक अलग समझौते **{रैपलो (Rapallo) समझौता 1922}** पर हस्ताक्षर किया जिसके माध्यम से उन्होंने एक दूसरे को दी जाने वाली किसी भी युद्ध क्षतिपूर्ति को रद्द कर दिया।
- फ्रांस ने 1923 में रूर क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और लगभग 40 मिलियन पाउंड कीमत की वस्तुओं को जब्त कर लिया। रुर एक महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र था। फ्रांस इस पर कब्ज़ा कर जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए विवश करना चाहता था। इस घटना के उपरांत वहां के जर्मन निवासियों ने निष्क्रिय प्रतिरोध का मार्ग अपनाया और वहां किसी भी प्रकार का कार्य करने से मना कर दिया। इससे न केवल फ्रांसीसी कब्जा विफल हो गया बल्कि जर्मन अर्थव्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा। वस्तुओं की आपूर्ति में कमी के कारण जर्मनी में मुद्रास्फीति में अत्यधिक वृद्धि हुई और इस कारण जर्मन फ्रैंक का इतना अवमूल्यन हुआ कि वस्तुतः वह मूल्यहीन हो गई।
- **डेविस योजना (Dawes Plan-1924):** इस योजना का उद्देश्य रुर पर फ्रांसीसी कब्ज़े से उत्पन्न समस्याओं और इसके फलस्वरूप जर्मनी में आई गैलोपिंग मुद्रास्फीति एवं जर्मन फ्रैंक के भारी अवमूल्यन का समाधान करना था। अमेरिका ने इसका नेतृत्व किया और डेविस योजना के अंतर्गत यह सहमति व्यक्त की गई कि जर्मनी पर्याप्त समृद्ध होने तक प्रतिवर्ष उतनी ही धनराशि का भुगतान करेगा जितना वह वहन कर सकता है। लेकिन जर्मनी द्वारा भुगतान की जाने वाली कुल राशि में कोई कमी नहीं की गई। जर्मनी को अपनी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए अमेरिकी ऋण भी मिला। इसके साथ ही, फ्रांस ने रुर से हट जाने पर सहमति व्यक्त की। डेविस योजना सफल रही और अमेरिकी ऋणों के कारण जर्मनी की अर्थव्यवस्था सुधरने लगी। डेविस योजना के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सुधार आया और इसने 1925 की लोकार्नो की संधियों के लिए जमीन तैयार की।
- **लोकार्नो की संधियाँ (1925):** इसमें सम्मिलित होने वाली मुख्य शक्तियों में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और इटली थे। पोलैंड, बेल्जियम और चेकोस्लोवाकिया इसमें शामिल होने वाले अन्य देश थे। इन संधियों को यूरोप में शांति और मित्रता के नए युग की पूर्व-संध्या के रूप में देखा गया। लोकार्नो संधियों के अंतर्गत हस्ताक्षरकर्ता देशों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद शांति संधि द्वारा निर्धारित सीमाओं को मान्यता प्रदान करने पर सहमति व्यक्त की। इसका अर्थ यह था कि राष्ट्रों ने एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करने का वचन दिया और यदि किसी एक देश पर आक्रमण होता तो अन्य राष्ट्र आक्रामक देश के विरूद्ध एवं पीड़ित राष्ट्र के पक्ष में हस्तक्षेप करते। जर्मनी ने फिर से पुष्टि की कि वह वर्साय की संधि के अनुसार राइनलैंड को विसैन्यीकृत रखना जारी रखेगा।

लोकार्नो संधियों का प्रभाव

- यूरोप में इन संधियों को लोकार्नो भावना या फ्रांस और जर्मनी के बीच लोकार्नो हनीमून के रूप सराहा गया। 1926 में जर्मनी को राष्ट्रसंघ में प्रवेश करने की अनुमति दी गई,। यूरोप में आर्थिक समृद्धि आई और मित्रता का वातावरण बना। स्ट्रेसमैन (जर्मनी), ब्रियान्ड (फ्रांस) और चेम्बरलेन (ब्रिटेन) ने 1929 तक अनवरत मुलाकात की।
- **कमियाँ:** ब्रिटेन और जर्मनी ने पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया के साथ लगी जर्मन सीमाओं की गारंटी नहीं दी। यह वह क्षेत्र था जहां विवाद होने की संभावना सर्वाधिक थी। इस समस्या की उपेक्षा करके, ब्रिटेन ने यह संदेश दिया कि यदि जर्मनी पोलैंड या चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करेगा तो वह हस्तक्षेप नहीं करेगा। लोकार्नो भावना भ्रम थी, क्योंकि यह आर्थिक समृद्धि पर इतना अधिक निर्भर थी कि जब 1929 की महामंदी में आर्थिक समृद्धि का काल समाप्त हो गया तो पुरानी शत्रुताएं पुनः जागृत हो गईं।

VISION IAS

- **केलॉग-ब्रियान्ड संधि (1928)**
  - यह अमेरिका एवं फ्रांस की अगुवाई वाली पहल थी और इसमें 65 देशों ने भाग लिया था जिन्होंने राष्ट्रीय नीति के उपकरण के रूप में युद्ध की निंदा करते हुए एक समझौते पर हस्ताक्षर किया।
  - **प्रभाव**: इस संधि का बहुत महत्व नहीं था क्योंकि आक्रमणकारी के विरूद्ध प्रतिबंधों का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। जापान ने भी इस समझौते पर हस्ताक्षर किया था लेकिन शीघ्र ही उसने 1931 में मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया।
- **यंग योजना (1929):** इसका उद्देश्य जर्मन युद्ध क्षतिपूर्ति के प्रश्न का समाधान करना था। इस योजना के अनुसार, भुगतान की जाने वाली कुल राशि पूर्व के 6600 मिलियन पाउंड से घटाकर 2000 मिलियन पाउंड कर दी गई। इसके साथ ही, इस नव निर्धारित राशि का 59 वर्षों के दौरान भुगतान किया जाना था। अमेरिका द्वारा संचालित यंग योजना का कारण यह था कि डेविस योजना ने जर्मनी द्वारा भुगतान की जाने वाली कुल राशि अपरिवर्तित छोड़ दी थी और जर्मनी उक्त राशि में कमी चाहता था। इसके अतिरिक्त फ्रांस भी लोकार्नो भावना के कारण अब समझौता करने के लिए तैयार था।

36. 1929 के बाद की घटनाएं

- वर्ष 1929 विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु है क्योंकि 1929 के बाद यूरोप ने द्वितीय विश्व युद्ध की दिशा में आगे बढ़ना आरंभ कर दिया था। स्ट्रेसमान की मृत्यु (1929), वॉल स्ट्रीट का क्रैश होना (1929) और 1933 में हिटलर का सत्तासीन होना (वह चांसलर बन गया) जैसी 1929 के दौरान और बाद में होने वाली घटनाओं के कारण लोकार्नो भावना समाप्त हो गई।

36.1. 1929 का आर्थिक संकट

- 1929 का आर्थिक संकट जर्मनी में भारी बेरोजगारी लाया। 1932 तक जर्मनी में 6 मिलियन बेरोजगार पुरुष थे। इससे नाजियों के विकास को बढ़ावा मिला और वाईमर गणतंत्र का पतन हो गया। नाजियों के उदय के साथ, जर्मनी के प्रति फ्रांसीसी व्यवहार कठोर हो गया क्योंकि नाजियों ने चरम राष्ट्रवादी प्रचार के आधार पर सफलता प्राप्त की थी। नाज़ी सभी जर्मन क्षेत्रों को राइख के अंतर्गत लाना चाहते थे।

36.2. लॉसेन सम्मेलन (1932)

- इस सम्मेलन में ब्रिटेन और फ्रांस ने जर्मनी को शेष बचे युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करने की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया। ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि महामंदी के चलते 1932 तक छह मिलियन जर्मन लोग बेरोजगार हो चुके थे।

36.3. विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन

- विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन 1932-33 में आयोजित किया गया। राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा के अंतर्गत सभी सदस्यों ने शस्त्रीकरण में कमी करने पर सहमति व्यक्त की, लेकिन वर्साय की संधि के अनुसार केवल जर्मनी का निःशस्त्रीकरण होना था। जर्मनी ने मांग की कि या तो सभी का निःशस्त्रीकरण होना चाहिए या शस्त्रीकरण के मामले में उसे कम से कम फ्रांस के समान स्थिति दी जानी चाहिए। ब्रिटेन और इटली जर्मनी के साथ सहानुभूति रखते थे। अंत में, जब फ्रांस टस से मस नहीं हुआ, तो हिटलर ने जर्मनी को इस सम्मेलन के साथ-साथ राष्ट्रसंघ से भी बाहर निकाल लिया (दोनों 1933 में)।

VISION IAS

37. फ्रांस-जर्मनी संबंध (1919-33)

वर्साय की संधि के लिए होने वाली बातचीत के दौरान फ्रांस ने कठोर संधि पर बल दिया। फ़्रांस ने भविष्य में जर्मन आक्रमण को रोकने के लिए निम्नलिखित तीन रणनीतियों का अनुसरण किया:-

- **जर्मनी को आर्थिक और सैन्य रूप से कमजोर रखना**। इसमें निम्नलिखित तत्व सम्मिलित थे:
    - फ़्रांस ने इस बात का दबाव बनाया कि जर्मनी युद्ध क्षतिपूर्ति का पूर्ण भुगतान करे।
    - जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति का भुगतान करने पर बाध्य करने के लिए रुर पर कब्जा (1923): रुर पर कब्जे का ब्रिटेन ने प्रबल विरोध किया क्योंकि ब्रिटेन जर्मनी के साथ उदार व्यवहार करने के पक्ष में था। ब्रिटेन का मानना था कि समृद्ध जर्मनी यूरोप की स्थिरता और ब्रिटेन के निर्यात के लिए बेहतर होगा।
    - 15 वर्षों तक सार क्षेत्र के कोयले का उपयोग।
    - फ्रांस ने वर्साय की संधि का प्रारूप तैयार करने के दौरान जर्मनी के निःशस्त्रीकरण और राइनलैंड के विसैन्यीकरण पर बल दिया था।

    जब ब्रिटेन जिनेवा प्रोटोकॉल से पीछे हट गया और संयुक्त राज्य अमेरिका ने अलगाव की नीति को पुनः अपना लिया और किसी भी युद्ध की स्थिति में फ्रांस को समर्थन देने का अग्रिम वचन देने से मना कर दिया तो फ्रांस ब्रिटेन और अमेरिका से नाराज हो गया।
- **संधियों पर हस्ताक्षर**: भविष्य में किसी भी जर्मन आक्रमण की रोकथाम के लिए फ्रांस ने 1921 से लेकर 1927 तक यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड और रोमानिया के साथ संधियों पर हस्ताक्षर किया। इन संधियों को सामूहिक रूप से **लिटिल एंटेंट** के रूप में जाना जाता है। लेकिन **लिटिल एंटेंट** कमज़ोर भागीदारों के कारण बहुत महत्वपूर्ण नहीं था। फ्रांस को व्यग्रतापूर्वक रूस जैसे सहयोगी की आवश्यकता थी क्योंकि इससे जर्मनी को एक साथ दो सीमाओं पर व्यस्त रखना संभव होता। लेकिन, रूस इस समय साम्यवादियों के अधीन था जो जर्मनी की तुलना में अधिक खतरनाक समझा जा रहा था। सोवियत रूस ने फ्रांस के साम्यवादियों की सहायता करने के लिए गुप्त एजेंट भेजकर 1917 में अपनी साम्यवादी क्रांति का निर्यात करने का प्रयास किया था।

- **मेल-मिलाप / मैत्री**: डेविस योजना (1924), लोकार्नो की संधियाँ (1925), यंग योजना (1929) और लॉसेन सम्मेलन (1932) आदि के माध्यम से मेल-मिलाप और मैत्री का प्रयास किया गया। स्ट्रासमान 1923 से लेकर 1929 तक जर्मन विदेश मंत्री था। वह बहुत ही महत्वपूर्ण नेता था और प्रथम विश्व युद्ध के बाद के मुश्किल दशक के दौरान उसने जर्मन विदेश नीति का संचालन किया था। फ्रांस और जर्मनी के बीच के संबंध डेविस योजना (1924) तक कड़वे बने रहे। डेविस योजना के बाद वाईमर गणतंत्र के अंतर्गत जर्मनी में आर्थिक सुधार हुआ और परिणामस्वरूप दोनों राष्ट्रों के

बीच तनाव कम हुआ। मेल-मिलाप के दृष्टिकोण के साथ समस्या यह थी कि लोकार्नो भावना के विकास के पीछे का व्यक्ति स्ट्रासमान भी प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मन इच्छाओं की पूर्ति और जर्मन शिकायतों का निवारण चाहता था। स्ट्रासमान के नेतृत्व में जर्मनी अभी भी निम्नलिखित व्यवस्था प्राप्त करना चाहता था, हालांकि इन्हें प्राप्त करने के लिए उसने आक्रामक रुख नहीं अपनाया:

- पोलिश गलियारा और डेनजिंग बंदरगाह
- ऑस्ट्रिया के साथ संघ का निर्माण
- चेकोस्लोवाकिया से सुडेटनलैंड
- वर्साय की संधि का संशोधन अर्थात जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति राशि में कमी, निःशस्त्रीकरण खंड की समाप्ति और राइनलैंड का पुनर्सैन्यीकरण।

राइनलैंड

1929 के संकट के बाद, नाजियों का प्रभाव बढ़ गया और इसलिए जर्मनी में चरम राष्ट्रवाद भी बढ़ गया। फ्रांस का व्यवहार जर्मनी के विरूद्ध कठोर हो गया और उसने सोवियत रूस जैसे संभावित भावी सहयोगियों के निकट आना आरंभ किया:

- **ऑस्ट्रिया जर्मन सीमा-शुल्क संघ (1931)**: इसका प्रस्ताव जर्मनी ने किया था और इसका अत्यधिक आर्थिक महत्व था। फ्रांस ने हेग में अंतर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय में अपील की, जिसने सीमा-शुल्क संघ के विरूद्ध निर्णय दिया।
- **विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन (1932-33)**: सम्मेलन में जर्मनी ने सभी देशों द्वारा निःशस्त्रीकरण के लिए सहमति न व्यक्त करने पर फ्रांस के समान मात्रा में हथियार रखने के अधिकार की मांग की। फ़्रांस ने इस पर असहमति व्यक्त की और परिणामस्वरूप हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी निःशस्त्रीकरण सम्मेलन और राष्ट्र संघ दोनों से बाहर निकल गया।

38. ब्रिटेन-सोवियत रूस संबंध (1919-33)

निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत इस संबंध को निरूपित किया जा सकता है:

- 1907 के ब्रिटेन-रूस समझौते से द्विपक्षीय तनाव में कमी आई और अधिक से अधिक व्यापार एवं निवेश का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- **लेफ्ट-राईट विभाजन:** यह कहा जा सकता है कि जब भी लेबर पार्टी सत्ता में होती थी तो दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय संबंध अच्छे होते थे और जब कंजर्वेटिव सत्ता में आते थे तो सम्बन्ध रूखे हो जाते थे। ऐसा वामपंथी रूस और दक्षिणपंथी कंजर्वेटिवों की विचारधारा में अंतर के कारण होता था।
- रूसी गृहयुद्ध (1918-20) में ब्रिटेन की भागीदारी।
- **व्यापार समझौता (1921)**: लेनिन रूसी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने के लिए व्यापार और निवेश चाहता था। इसके साथ ही इस समझौते द्वारा एक प्रकार से साम्यवादी सरकार को ब्रिटेन से मान्यता प्राप्त हो गई।
- **जेनोवा सम्मेलन (1922):** यहां ज़ार शासन द्वारा उठाए गए युद्ध कालीन ऋणों के प्रश्न पर रूस और ब्रिटेन के बीच दरार चौड़ी हो गई।
- **अस्थिर राजनयिक संबंध:** 1927 में ब्रिटेन और भारत में कोमिंटर्न की गतिविधियों के संबंध में पता चलने पर ब्रिटेन की कंज़र्वेटिव सरकार ने रूस के साथ राजनयिक संबंध समाप्त कर दिए। 1929 में लेबर पार्टी की सरकार ने सोवियत रूस के साथ राजनयिक संबंध पुन: स्थापित किए।
- **हिटलर का उदय:** 1933 में हिटलर के चांसलर बनने के बाद, दोनों (ब्रिटेन-रूस) राष्ट्रों के बीच सकारात्मकता में वृद्धि हुई। हिटलर के अधीन जर्मनी ने रूसी सीमाओं के लिए खतरा पैदा किया और साथ ही नाजी प्रचार साम्यवादियों की आलोचना में बहुत अतिवादी था। ऐसा इसलिए था क्योंकि जर्मनी में साम्यवादी नाजियों के प्रमुख विरोधी समूह थे और 1917 के बाद, बोल्शेविकों ने जर्मनी में साम्यवादी क्रांति उकसाने का प्रयास किया था।

39. सोवियत रूस-जर्मनी संबंध (1919-33)

1930 तक रूस और जर्मनी के बीच संबंध सामान्यत: अच्छे थे, इसका श्रेय स्ट्रेसमैन के नेतृत्व को दिया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, सोवियत रूस कम से कम एक पूंजीवादी देश के साथ अच्छे संबंध रखना चाहता था। इनके संबंधों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु थे:

- **व्यापार संधि (1921):** 1921 में सोवियत रूस और जर्मनी के बीच एक व्यापार संधि पर हस्ताक्षर किया गया और आगे चलकर जर्मन उद्योगपतियों को रूस में व्यापारिक रियायतें मिलीं।

VISION IAS

- **रैपलो समझौता 1922**: इसके निम्नलिखित प्रावधान थे:
    - रूस और जर्मनी के बीच पूर्ण राजनयिक संबंध पुन: स्थापित किया गया।
    - रूस और जर्मनी के बीच विशेष संबंध।
    - एक दूसरे को भुगतान की जाने वाली किसी भी युद्ध क्षतिपूर्ति को रद्द कर दिया गया।
    - **जर्मन शस्त्रीकरण आरंभ हुआ**: जर्मनी को वायुयान और गोला-बारूद के निर्माण के लिए रूस में कारखानों का निर्माण करने की अनुमति दी गई। इससे जर्मनी के लिए शस्त्रीकरण से संबंधित वर्साय की संधि की धारा को विफल बनाना संभव हुआ। जर्मन अधिकारियों ने ऐसे हथियारों का उपयोग सीखने के साथ रूस में प्रशिक्षण लेना आरंभ किया जो वर्साय की संधि के कारण जर्मनी में निषिद्ध थे।
    - रूस और जर्मनी के बीच इस सौहार्द्र के कई कारण थे। रूस और जर्मनी दोनों पोलैंड को कमजोर रखना चाहते थे। रूस चाहता था कि भविष्य में पश्चिम से होने वाले किसी भी आक्रमण के विरूद्ध जर्मनी मध्यस्थ राज्य के रूप में कार्य करे। इसका कारण यह था कि पश्चिमी शक्तियाँ साम्यवादी रूस की विरोधी थीं। इसके साथ ही, रूस कम से कम एक पूंजीवादी देश के साथ अच्छे संबंध रखना चाहता था।
- **बर्लिन की संधि (1926)**: इसने रैपलो समझौते का नवीनीकरण 1931 तक के लिए कर दिया। जर्मनी ने सोवियत रूस पर किसी अन्य शक्ति द्वारा आक्रमण किए जाने पर तटस्थ रहने का वचन दिया। इसके साथ ही दोनों ने सहमति व्यक्त की कि उनमें से कोई भी एक दूसरे के विरूद्ध आर्थिक प्रतिबंधों का उपयोग नहीं करेगा।
- **1930 के दशक के बाद:**
    - 1930 के दशक के बाद दोनों देशों के मध्य संबंधों में नकारात्मकता आ गई क्योंकि रूसी जर्मनी में नाजियों के बढ़ते प्रभाव के विरूद्ध थे और नाजी साम्यवादियों के कट्टर विरोधी थे।
    - रूस ने ऑस्ट्रिया-जर्मनी सीमा-शुल्क संघ (1931) के विचार का विरोध किया क्योंकि उसने इसे बढ़ते जर्मन राष्ट्रवाद के संकेत के रूप में देखा जिससे भविष्य में रूसी सीमाओं के लिए खतरा पैदा हो सकता था।
    - स्टालिन धीरे-धीरे पोलैंड, ब्रिटेन और फ्रांस की ओर झुकने लगा था।
    - 1934 के बाद, हिटलर ने रूस के साथ संबंध सुधारने का प्रयास किया। उसने 1939 में रूस के साथ अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर किया।
- **अनाक्रमण संधि (1939):** इस संधि पर रूस और जर्मनी ने हस्ताक्षर किया था और दोनों ने एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करने का वचन दिया था। जर्मनी द्वारा पोलैंड पर आक्रमण करने पर सोवियत रूस के तटस्थ बने रहने की स्थिति में सोवियत रूस और जर्मनी के बीच पोलैंड को आधा-आधा विभाजित करने का एक अनुच्छेद भी इस समझौते में शामिल था। यह हिटलर की एक रणनीतिक जीत थी क्योंकि इसने ब्रिटेन को सोवियत संघ के साथ गठबंधन पर हस्ताक्षर करने से रोक दिया। चूंकि ब्रिटेन ने पोलैंड की सुरक्षा की गारंटी दी थी अतः इस प्रकार के गठबंधन से पोलैंड की रक्षा करना ब्रिटेन के लिए और अधिक आवश्यक हो गया था।

40. सोवियत संघ और फ्रांस के परस्पर सम्बन्ध (1919-33)

निम्नलिखित कारणों से 1930 तक दोनों के बीच अप्रिय सम्बन्ध थे:

- **वर्साय की संधि:** फ्रांसीसी विरोध के कारण वर्साय की संधि वार्ताओं में रूस को आमंत्रित नहीं किया गया था। ऐसा इसलिए था क्योंकि 1917 के पश्चात् बोल्शेविकों ने फ़्रांस के कम्युनिस्टों को फ़्रांस में क्रांति के लिए उकसाने का प्रयास किया था।

VISION IAS

- **रूसी गृह युद्ध (1918-20):** फ्रांस ने बोल्शेविकों के साथ युद्धरत व्हाइट्स के पक्ष में अपनी सैनिक टुकड़ियां भेजी थीं।
- **रूस-पोलैंड युद्ध (1920):** फ्रांस ने पोलैंड की सहायता के लिए अपनी सैनिक टुकड़ियाँ भेजी थीं जो बाद में रूसियों को वारसा (पोलैंड की राजधानी) से वापिस धकेलने में सक्षम रहीं।
- **लिटिल एंटेंट (1921-27):** लिटिल एंटेंट के अंतर्गत फ्रांस-पोलैंड संधि (1912 में हस्ताक्षरित) जितनी जर्मनी के विरुद्ध थी उतनी ही यह रूस के विरुद्ध भी थी।

1930 के पश्चात् जर्मनी में नाजियों के उदय के कारण फ्रांस-रूस सम्बन्धों में सकारात्मक वृद्धि हुई थी।

40.1. वर्साय की संधि

प्रमुख विषय 1:
वर्साय की संधि जर्मनी के गौरव को आहत करती है और नाजीवाद के विकास को गति प्रदान करती है।

- यह संधि "तीन बड़ों" अर्थात अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस को संतुष्ट करती हुई प्रतीत होती है, क्योंकि उनकी दृष्टि में यही शांति थी। इन्हें यह लगता था कि यह संधि जर्मनी को निर्बल तो बनाए रखेगी, परन्तु इतना सशक्त भी रखेगी कि वह समाजवाद के प्रसार को रोक सके। साथ ही यह फ्रांसीसी सीमा को जर्मन आक्रमण से सुरक्षित भी रखेगी। राष्ट्रसंघ जैसे संगठन की स्थापना भी हो गयी थी जिससे विश्व भर में युद्ध की समाप्ति हो जाएगी।
- परन्तु, इसके कारण सम्पूर्ण जर्मनी में क्रोध व्याप्त हो गया, क्योंकि ऐसा लग रहा था कि एक राष्ट्र के रूप में जर्मनी के साथ अनुचित व्यवहार हुआ था। इन सबसे अधिक जर्मनी पर युद्ध के कारण के रूप में दोषारोपण करने वाले अनुच्छेद और उसके परिणामस्वरूप इस संधि में लगाये गए आर्थिक दंड पर जर्मनी में घृणा व्याप्त थी। जर्मनी के सामान्य नागरिकों का यह मत था कि अगस्त 1914 में की गई जर्मन सरकार की गलतियों के लिए उन्हें दंडित किया जा रहा था, जबकि सरकार ने युद्ध की घोषणा की थी न कि लोगों ने।
- संधि की अपमानजनक शर्तें जर्मनी को वर्षों तक भड़काती रहीं और इसने विभिन्न प्रकार से नाजीवाद के उदय में सहायता प्रदान की।

41. संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति

प्रमुख विषय 2:

- संयुक्त राज्य ने अमेरिका पृथकतावाद की नीति अपनाया और यूरोपीय राजनीतिक मामलों से दृष्टि फेर लिया।
- अमेरिका की आर्थिक मंदी विश्व आर्थिक संकट में तब्दील हो गयी जिसने शीघ्र हीं कई यूरोपीय देशों को अपने चपेट में ले लिया और आने वाले वर्षों में यूरोप के राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित किया।

- **वाशिंगटन सम्मेलन (1921-22):** सुदूर पूर्व में जापान के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए अमेरिका द्वारा वाशिंगटन सम्मेलन का आयोजन किया गया था। वाशिंगटन सम्मेलन के आयोजन के पीछे प्रमुख उद्देश्य यह था कि इसके द्वारा अमेरिका जापान के साथ युद्ध और नौसैनिक दौड़ को रोकना चाहता था। इस सम्मेलन के पश्चात् यह सहमति बनी कि जापान किआचाओ द्वीप (Kiachow Island) और चीन के शानतुंग प्रान्त से सेना हटा लेगा और उसके बदले में जापान को जर्मन प्रशांत द्वीपों को अपने पास रखने की अनुमति प्राप्त हो गयी। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका; जापान की सीमा के समीप नौसैनिक बेस न बनाने के लिए भी सहमत हो गए।

VISION IAS

अमेरिका, जापान, ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा चीन की तटस्थता की गारंटी दी गई। इन शक्तियों ने सुदूर पूर्व में एक दूसरे की संपत्तियों का सम्मान करने के लिए भी अपनी सहमति दी। इस समझौते में अमेरिका, ब्रिटेन और जापान के समुद्री बेड़ों की सीमा भी निर्धारित की गई, जिसे क्रमशः 5:5:3 के अनुपात में रखा जाना था। इसके कारण अमेरिका और ब्रिटेन के मध्य तनाव उत्पन्न हुआ, क्योंकि अंग्रेज ब्रिटिश नौसेना पर सीमा लगाए जाने से प्रसन्न नहीं थे। 1930 में जापान ने वाशिंगटन समझौते के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की लेकिन शीघ्र ही इसने नौसेना पर लगाई गयी सीमा का उल्लंघन किया।

- **पृथकतावाद की नीति:** प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका बहुत अधिक उलझा हुआ था। युद्ध के पश्चात् रिपब्लिकन को सत्ता प्राप्त हुई और उन्होंने पृथकतावाद की नीति का अनुसरण किया। रिपब्लिकन के अंतर्गत अमेरिका ने राष्ट्रसंघ में सम्मिलित नहीं होने का निर्णय लिया। इसने किसी भी शांति संधि की पुष्टि नहीं की और फ्रांस की सीमाओं की गारंटी देने से भी मना कर दिया। पृथकतावाद की इस नीति का कारण यह था कि अमेरिकी युद्ध से तंग आ गए थे और उन्हें यूरोपीय राष्ट्रों के प्रति संदेह भी था कि वे शांतिपूर्वक रहेंगे। वे नहीं चाहते थे कि अमेरिका किसी भी प्रकार के सैन्य विवाद में सम्मिलित हो। पुनः उन्होंने राष्ट्रसंघ के विचार को भी अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे इसे एक अतिरिक्त सरकार के रूप में देखते थे। इसी आधार पर उन्होंने फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा तैयार किये गये जेनेवा प्रोटोकॉल का विरोध किया, जो सब के लिए सामूहिक सुरक्षा प्रदान कर सकता था। इसके अंतर्गत सदस्य राष्ट्रों को "राष्ट्रसंघ के पक्ष में उनकी सार्वभौमिकता पर महत्त्वपूर्ण सीमाएं लगाने की सहमति देनी थी।"
- पृथकतावाद की नीति के परिणामस्वरूप इसने फासीवादी शासकों द्वारा 1930 के दशक में किए गए विभिन्न आक्रामक गतिविधियों के प्रति निष्क्रियता का प्रदर्शन किया। जापान द्वारा 1931 में मंचूरिया पर किये गए आक्रमण के विरुद्ध अमेरिका ने किसी भी तरह की कार्यवाही नहीं की। यहाँ तक कि ब्रिटेन और फ्रांस ने भी कोई कार्यवाही नहीं की। जब जापान ने मंचूरिया से बाहर निकलने से मना कर दिया तो राष्ट्रसंघ कुछ भी नहीं कर सका।
- **वाल स्ट्रीट के ध्वस्त होने एवं इसके विश्व आर्थिक संकट में परिवर्तित होने के कारण:**
  - **यूरोपीय देशों का युद्ध ऋण:** यूरोपीय देश युद्ध ऋण चुका पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। ब्रिटेन और फ़्रांस को अमेरिका से ऋण माफ़ी की अपेक्षा थी क्योंकि अमेरिका को प्रथम विश्व युद्ध से बहुत लाभ प्राप्त हुआ था। इसने यूरोप के पूर्व-निर्यात बाजारों पर अधिकार कर लिया था। परन्तु अमेरिका ने पूर्ण भुगतान पर बल दिया। जब तक फ़्रांस ने रूर पर अधिकार नहीं किया था, अमेरिका मित्रराष्ट्रों द्वारा अमेरिका के ऋण का भुगतान करने और जर्मनी द्वारा मित्रराष्ट्रों को युद्ध क्षतिपूर्ति किये जाने में कोई सम्बन्ध नही देख पा रहा था। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने विदेशी व्यापार शुल्कों की दरें बहुत ऊंची रखी थीं। इन कारकों ने यूरोपीय अर्थव्यवस्था को आघात पहुंचाया।
  - यद्यपि अमेरिका ने प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् पृथकतावाद की नीति पर लौटने का प्रयास किया, परन्तु शीघ्र ही उसे यह आभास हुआ कि वह अपनी सीमाओं के बाहर होने वाली घटनाओं से आँख नहीं चुरा सकता क्योंकि इन घटनाओं से उसकी अर्थव्यवस्था प्रभावित हो रही थी। 20वीं शताब्दी का दूसरा दशक यूरोपीय अर्थव्यवस्था के लिए बहुत समृद्ध था अतः अमेरिका ने यूरोप में अपना निवेश और व्यापार बढ़ाने का प्रयास किया। यूरोप की आर्थिक समृद्धि और राजनीतिक स्थिरता अमेरिका के व्यापारिक हितों, निवेशों और मित्रराष्ट्रों को दिए गये ऋणों की वापसी के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी और अमेरिका यूरोपीय राष्ट्रों में घट रही घटनाओं की उपेक्षा भी नहीं कर सकता था। 1923 में रूर औद्योगिक क्षेत्र पर फ़्रांस के अधिग्रहण से जर्मनी में मुद्रास्फीति तेजी से बढने लगी, क्योंकि जर्मनी के श्रमिकों ने अपने निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप में काम करना बंद कर दिया था। परिणामस्वरूप जर्मन अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति के असंतुलन द्वारा हुए फ्रैंक के तीव्र अवमूल्यन ने जर्मन अर्थव्यवस्था को उथलपुथल कर दिया था। फ़्रांस को अमेरिकी ऋणों को चुकाना कठिन लग रहा था। इस घटना के पश्चात् ही अमेरिका को जर्मनी द्वारा युद्ध क्षतिपूर्ति और

VISION IAS

मित्रराष्ट्रों द्वारा अमेरिकी ऋण चुकाए जाने में सम्बन्ध समझ में आया। इस प्रकार अमेरिका डेविस योजना (1924) के माध्यम से जर्मनी की सहायता के लिए आगे आया, जिसने जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति भुगतान में सहायता की और फ़्रांस ने रूर पर अधिकार छोड़ने के लिए सहमति दे दी। जब एक विवाद के कारण मैक्सिको ने अमेरिकी स्वामित्व वाले तेल के कुओं का अधिग्रहण करने की धमकी दी तब मैक्सिको में संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। अमेरिकी सरकार ने हस्तक्षेप किया और समझौता हो गया। इस प्रकार अपनी सीमाओं के बाहर बढ़ रहे आर्थिक हितों के कारण अमेरिका को अपनी पृथकतावाद की नीति से हटना पड़ा।

- **ऋणों का मकड़ जाल:** जैसेकि पहले चर्चा की जा चुकी है, अमेरिका ने प्रथम विश्व युद्ध के समय मित्र राष्ट्रों को धन उधार दिया था। मित्र शक्तियाँ स्वयं अमेरिका से प्राप्त अपने ऋण चुकाने के लिए जर्मनी द्वारा की जाने वाली युद्ध क्षतिपूर्ति पर निर्भर थीं। इस प्रकार जब जर्मनी ने युद्ध क्षतिपूर्ति के भुगतान में चूक करना प्रारम्भ किया तो अमेरिका को जर्मनी की सहायता के लिए *डेविस योजना* (1924) और *यंग योजना* (1929) के माध्यम से ऋण प्रदान करने पड़े। इस प्रकार से ऋणों के मकड़जाल से बन गये थे, जहाँ अमेरिका जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति के लिए ऋण देता था, जिससे वह ब्रिटेन और फ़्रांस को भुगतान करता था, जिससे फिर ये देश अमेरिका को ऋण वापसी के रूप में उसी धन का भुगतान करते थे। संयुक्त राज्य अमेरिका के संकट का प्रमुख कारण ऋणों का यह मकड़ जाल था जो उसे तेजी से भीषण आर्थिक मंदी की ओर ले जा रहा था। एक बार जब अमेरिका जर्मनी को और अधिक ऋण देने की स्थिति में नहीं था तो उसने यूरोपीय देशों से अपने ऋणों के तुरंत भुगतान की मांग की जिससे पूरे यूरोपीय राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। 1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी का अमेरिका ही उत्तरदायी था।

प्रमुख विषय 3: 1930 के दशक में जर्मनी, इटली और जापान की धुरी शक्तियों की फासीवादी शासनों द्वारा आक्रामक गतिविधियों में वृद्धि देखी गई। दमदार आक्रामकता और चतुर कूटनीति के एक चतुर मिश्रण के माध्यम से धुरी शक्तियाँ पड़ोसी देशों के छोटे-छोटे क्षेत्रों को हथियाने के साथ-साथ अपनी सैन्य शक्तियों का भी विस्तार कर रहे थे।

42. अंतर्राष्ट्रीय संबंध (1933-39)

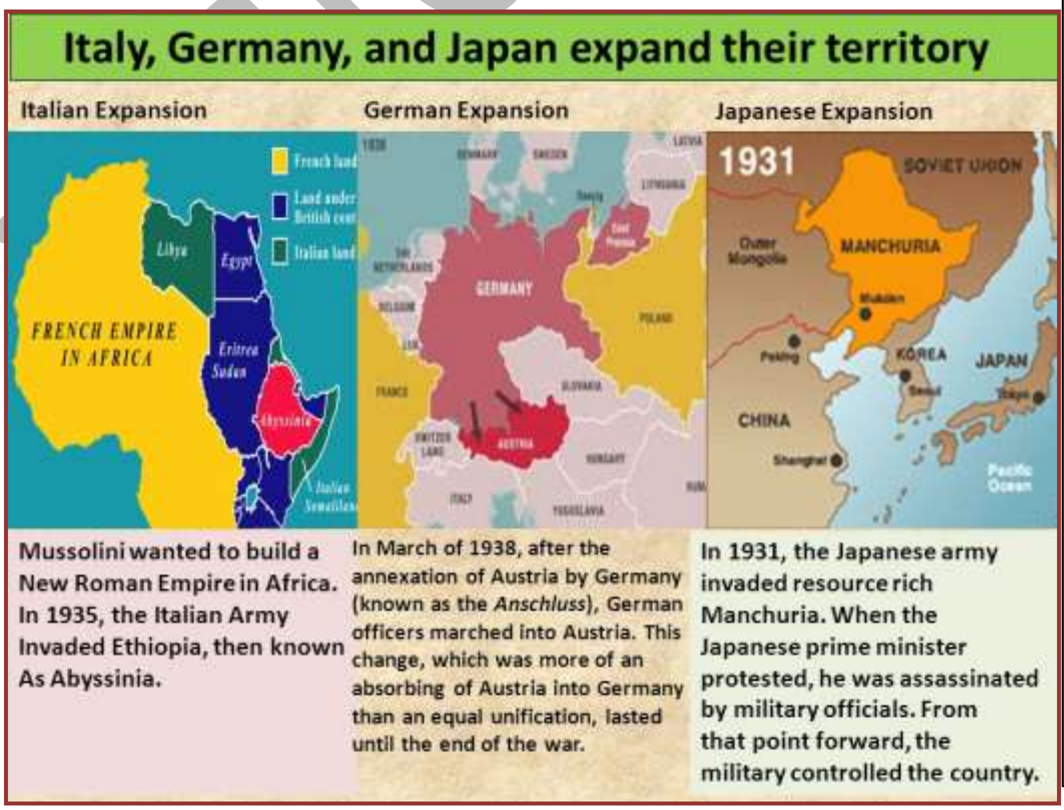

VISION IAS

- **भूमिका:** 1933-39 की अवधि इटली, जर्मनी और जापान जैसे फासीवादी शासनों द्वारा शासित आक्रामकता की अवधि थी। यह ऐसा समय था जिसमें जर्मनी ने वर्साय की संधि का उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया था। लोकार्नो की भावना जो ब्रिटेन, फ़्रांस और जर्मनी के बीच सम्बन्धों का सकारात्मक लक्षण थी, 1929 की महान आर्थिक मंदी और स्ट्रेसमैन (जर्मन विदेश मंत्री, जिन्होंने जर्मनी और फ़्रांस के बीच सामंजस्य स्थापित किया था) की मृत्यु के पश्चात् समाप्त हो गयी थी। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में जापान, इटली और जर्मनी में राष्ट्रवाद अपने चरम पर पहुंच गया था।
- **घटनाक्रम को संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है:**
    - जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण किया (1931) और राष्ट्रसंघ जापान को पीछे हटने के लिए विवश नहीं कर सका।
    - 1933 में जर्मनी ने स्वयं को विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से बाहर कर लिया। 1933 में ही जापान और जर्मनी ने अपने आप को राष्ट्रसंघ से बाहर कर लिया। धीरे-धीरे राष्ट्र संघ के अधिकार घटते रहे और 1939 तक यह एक मृतप्राय संगठन बन गया था।
    - 1935 में जर्मनी ने अनिवार्य सैन्य सेवा प्रारम्भ कर दी।
    - जर्मनी द्वारा अनिवार्य सैन्य सेवा प्रारम्भ किए जाने के विरोध में इटली, ब्रिटेन और फ़्रांस के बीच स्ट्रेसा फ्रंट (1935) बना।
    - 1935 के आंग्ल-जर्मन नौसैनिक समझौते से जर्मनी को पनडुब्बियाँ बनाने की अनुमति प्राप्त हो गई और स्ट्रेसा फ्रंट समाप्त हो गया।
    - मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर दिया (1935)।
    - 1936 में राइनलैंड का पुनर्सैन्यीकरण।
    - रोम-बर्लिन धुरी (1936)
    - हिटलर और जापान के बीच 1936 में कोमिंटर्न विरोधी समझौते पर हस्ताक्षर
    - स्पेन का गृह युद्ध (1936)।
    - जापान ने 1937 में चीन पर पूर्ण रूप से आक्रमण कर दिया।
    - अंसचल्स (Anschluss)-हिटलर ने 1938 में ऑस्ट्रिया पर अधिकार कर लिया।
    - म्युनिख सम्मेलन (1938) – हिटलर को चेकोस्लोवाकिया से इस वचन पर सुडेटेनलैंड प्राप्त हो गया कि वह चेकोस्लोवाकिया के किसी अन्य क्षेत्र पर अपना दावा नहीं करेगा।
    - हिटलर ने म्यूनिख संधि को भंग करके चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया।
    - हिटलर ने डैंनज़िंग के स्वतंत्र शहर की मांग की। पोलैंड इसके विरुद्ध था। ब्रिटेन और फ़्रांस ने जर्मनी के आक्रमण की स्थिति में पोलैंड की सहायता करने के लिए सहमति प्रदान कर दी।
    - हिटलर ने 1939 में रूस के साथ परस्पर आक्रमण न करने के लिए संधि की और पोलैंड पर आक्रमण कर दिया।
    - ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और द्वितीय विश्व युद्ध का आरम्भ हो गया।
- **जापानी आक्रमण:** इस अवधि में जापान की तीन महत्वपूर्ण आक्रामक गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं। इसने 1931 में मंचूरिया पर आक्रमण किया, 1933 में चीन के उत्तरी-पूर्वी भाग पर आक्रमण किया और 1937 में चीन पर सम्पूर्ण आक्रमण का आदेश दे दिया, जिसके परिणामस्वरुप द्वितीय चीन-जापान युद्ध (1937-45) हुआ। यह युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध में परिणत हो गया, जो 1945 तक चला।

VISION IAS

जापान का प्रसार

- **मंचूरिया पर आक्रमण (1931):** यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि जापान ने मंचूरिया पर आक्रमण (1931) क्यों किया? आर्थिक मंदी के कारण जापान अत्याधिक आर्थिक तनाव से ग्रस्त था। इसके निर्यात नाटकीय ढंग से कम हो गये थे और भरपूर फसल के उत्पादन के कारण चावल के मूल्यों में कमी आ गयी थी। जापान के लोग अत्याधिक आर्थिक कठिनाइयों से जूझ रहे थे। मंचूरिया में च्यांग काई शेक का प्रभाव भी बढ़ रहा था। जिसके कारण मंचूरिया में जापानी हितों के लिए संकट उत्पन्न हो रहा था। रूस-जापान युद्ध (1904-05) के पश्चात् जब जापान को दक्षिणी मंचूरिया और आर्थर बन्दरगाह पर विशेष अधिकार प्राप्त हुए थे तो जापान ने मंचूरिया के उद्योगों और आधारभूत ढांचे के विकास की योजनाओं में (विशेषरूप से दक्षिणी मंचूरिया में) निवेश किया था। (*1931 तक मंचूरिया के रेलवे और बैंकिंग व्यवस्था पर जापान का नियन्त्रण हो गया था)। अतः सेना ने जापानी सरकार की आपत्तियों की अवहेलना करते हुए मंचूरिया पर आक्रमण कर दिया।
- **मंचूरिया पर आक्रमण के परिणाम:** जापान ने मंचूरिया को स्वाधीन मान्चुको राज्य के रूप में घोषित कर दिया और वहां एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। राष्ट्रसंघ का मत था कि मंचूरिया क्षेत्र के प्रशासन को उसके नियन्त्रण में लाया जाना चाहिए, परन्तु जापान ने इसकी उपेक्षा की। संघ कुछ भी नहीं कर सका क्योंकि अमेरिका जापान से युद्ध नहीं चाहता था और ब्रिटेन तथा फ़्रांस ने बिना अमेरिका के समर्थन के किसी भी कार्यवाही से मना कर दिया। इस प्रकार से यह पश्चिमी शक्तियों द्वारा जापान के तुष्टीकरण का एक कार्य बन गया।
- **उत्तरी-पूर्वी चीन पर आक्रमण (1933):** 1933 में जापान चीन के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों की ओर बढ़ा। इसका कोई औचित्य नहीं था और यह विशुद्ध रूप से एक आक्रामक कार्यवाही थी। 1935 तक जापान कुओमिन्तांग सरकार (KMT) और माओ-ज़ेडोंग (माओत्से तुंग) की चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (CCP) के बीच छिड़े गृहयुद्ध का लाभ उठाते हुए चीन के बहुत बड़े क्षेत्र पर अधिकार करने में सफल रहा था।

©Vision IAS

- **चीन पर आक्रमण (1937):** 1936 में जर्मनी के साथ कोमिनटर्न विरोधी संधि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् जापान ने चीन पर आक्रमण करने की योजना बनाई। जापान ने पीकिंग में चीनी और जापानी सैनिकों के बीच हुई छोटी सी घटना को आक्रमण के लिए एक बहाना बना लिया। 1938 तक शंघाई और नानकिंग (च्यांग काई शेक की राजधानी) जापानियों के नियन्त्रण में आ गये थे। परन्तु, इससे सम्पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि 1936 तक CCP और KMT के बीच जापानी आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए एक युद्धविराम समझौते पर सहमति हुई थी। इससे पूर्व च्यांग काई शेक ने जापानियों से निबटने के स्थान पर माओ को हराने पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रखा था जिससे 1936 तक की जापानी सफलता की व्याख्या हो जाती है। इसके अतिरिक्त रूस ने भी चीन की सहायता की, परन्तु वह इसमें पूरी तरह सम्मिलित नहीं हुआ क्योंकि वह स्वयं भी जापान से पूर्णतः उलझना (चौतरफा युद्ध) नहीं चाहता था।
- **निष्कर्ष:** द्वितीय विश्व युद्ध की पूर्व संध्या पर पूर्वी चीन का अधिकांश क्षेत्र जापान के नियन्त्रण में था, वहीं च्यांग काई शेक और माओ का नियन्त्रण मध्य और पश्चिमी भागों पर था। यह तर्क दिया जा सकता है कि यद्यपि राष्ट्रसंघ ने जापान की निंदा की परन्तु यह इतना सशक्त नहीं था कि जापान के विरुद्ध कोई कठोर कार्यवाही कर सके, क्योंकि:
  - अमेरिका पृथकतावाद की नीति का अनुसरण कर रहा था।
  - रूस (संयुक्त समाजवादी सोवियत गणतन्त्र-USSR) जापान के साथ पूर्णतः उलझना नहीं चाहता था।
  - ब्रिटेन और फ़्रांस हिटलर से ही निबटने में अत्यधिक व्यस्त थे।

मुसोलिनी की विदेश नीति:

- **1919-24:** मुसोलिनी ने 1922 में सत्ता ग्रहण की और तुरंत ही एक आक्रामक विदेश नीति लागू करनी प्रारम्भ कर दी। उसने **1923 की कोर्फू घटना** (*पहले चर्चा की जा चुकी है) को लेकर ग्रीस पर बमबारी की, जहाँ इटली द्वारा ग्रीस को युद्ध की सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति के लिए विवश किया गया। यहीं पर राजदूतों के सम्मेलन में राष्ट्रसंघ के मत को अस्वीकृत कर दिया गया। **फ्यूम:** 1924 में इटली ने फ्यूम पर आक्रमण किया और उसपर अधिकार कर लिया। 1920 के पश्चात् से फ्यूम युगोस्लाविया और इटली के बीच विवाद की जड़ बना हुआ था। एक समझौते के रूप में रपालो की संधि (1920) पर हस्ताक्षर किए गये, जिसमें फ्यूम के स्वतंत्र नगर को इटली और फ़्रांस द्वारा संयुक्त रूप से उपयोग किये जाने का प्रावधान किया गया था। 1920-24 तक इसका अस्तित्व एक स्वतंत्र नगर का था। इसके पश्चात् इटली ने अपने सैनिक बल वहां भेज दिए और युगोस्लाविया ने इटली द्वारा फ्यूम के अधिग्रहण को मान्यता प्रदान कर दी।
- **1924-34:** इस अवधि में इटली की विदेश नीति की दो महत्वपूर्ण चिंताएं थीं। **पहली** – इटली-फ़्रांस प्रतिद्वंद्विता, क्योंकि फ़्रांस युगोस्लाविया का सहयोगी था (*लिटिल एंटेन्ट* को स्मरण करें) और भूमध्यसागर और बाल्कन में इटली भी प्रभाव बनाने के लिए फ़्रांस के साथ प्रतिस्पर्धा कर रहा था। **दूसरी**, इटली को यह आशंका थी कि जर्मनी आस्ट्रिया पर अधिकार कर सकता है, जो इटली के उत्तर-पूर्व में था और इटली और जर्मनी के बीच एक तटस्थ राज्य का कार्य करता था।
- **लोकार्नो सन्धियाँ और इटली:** इटली 1925 की लोकार्नो संधि में प्रतिभागी था। लोकार्नो सन्धियों पर राष्ट्रसंघ के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हस्ताक्षर किये गये थे:
  - जर्मनी ने राइनलैंड के असैन्यीकरण की पुन: पुष्टि की थी।
  - इसके अतिरिक्त, जर्मनी, फ़्रांस और बेल्जियम ने एक दूसरे की सीमाओं का सम्मान करने का वचन दिया। इटली और ब्रिटेन ने इसका उत्तरदायित्व लिया था। तीनों में से (फ़्रांस, बेल्जियम, जर्मनी) किसी के द्वारा भी आक्रमण की स्थिति में अन्य सभी आक्रमण के पीड़ित की सहायता करेंगे।

VISION IAS

- जर्मनी, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया के बीच एक समझौता हुआ था, जिसमें सीमा विवादों के मुद्दों के लिए मध्यस्थता न्यायाधिकरण या स्थायी अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा मध्यस्थता की अनुमति थी। परन्तु जर्मनी ने पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया के साथ अपनी सीमाओं की कोई गारंटी नहीं दी थी। पोलैंड या चेकोस्लोवाकिया में से यदि किसी पर भी जर्मनी का आक्रमण हुआ तो फ़्रांस ने उनकी सहायता के लिए अपनी सहमति दी थी। परन्तु जब लोकार्नो संधि में प्रदान की गयी गारंटी के अनुरूप इटली-आस्ट्रिया की सीमाओं की गारंटी की कोई व्यवस्था नहीं दी गई तो इटली को बहुत निराशा हुई।

- **बाल्कन क्षेत्र में इटली:** इस दशक में इटली ने अल्बानिया, बुल्गारिया और ग्रीस से अच्छे सम्बन्ध बना कर बाल्कन क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास किया। अल्बानिया जोकि इटली का दक्षिणी पड़ोसी था, दोनों के बीच परस्पर आर्थिक और सैन्य संधियों के कारण इटली के आर्थिक प्रभाव में आ गया। अल्बानिया युगोस्लाविया का विरोधी था। ऐसा इसलिए था; क्योंकि सर्बिया, जो अब युगोस्लाविया का अंग था प्रथम बाल्कन (1912) युद्ध के पश्चात् अल्बानिया का क्षेत्र चाहता था। परन्तु शांति समझौते के समय अल्बानिया को एक स्वाधीन राज्य बना दिया गया था। अल्बानिया पर इटली के प्रभाव से इटली को एड्रियाटिक सागर पर नियन्त्रण प्राप्त हो गया था।

- **इटली और ब्रिटेन:** इटली ने ब्रिटेन से भी, विशेषकर उपनिवेशों के प्रश्न पर अच्छे सम्बन्ध विकसित करने का प्रयास किया। उसने इराक के मोसुल प्रान्त पर ब्रिटेन के दावे का समर्थन किया, जिसमें टर्की भी अपना हित देखता था। राष्ट्रसंघ ने इस विवाद में ब्रिटेन का पक्ष लिया और 1926 में टर्की इस निर्णय से सहमत हो गया। इसके बदले में ब्रिटेन ने सोमालीलैंड इटली को दे दिया। इसके अतिरिक्त इटली ने सोवियत संघ (USSR) के साथ 1933 में अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर कर लिए। इस प्रकार से इस दशक में इटली ने स्वयं को आक्रामक विदेशी नीति के स्थान पर कूटनीति में अधिक व्यस्त रखा।
- **1934 के पश्चात्:** प्रारम्भिक विरोध के पश्चात् मुसोलिनी का झुकाव हिटलर की ओर हो गया और इटली ने कई आक्रामक कार्यवाहियाँ कीं।

- **आस्ट्रिया, जर्मनी और इटली:** मुसोलिनी ने व्यापारिक समझौतों पर हस्ताक्षर करके आस्ट्रिया की नाजी-विरोधी सरकार के समर्थन द्वारा नाज़ी जर्मनी के विरुद्ध आस्ट्रिया को सशक्त करने का प्रयास किया। 1934 में नाजी प्रदर्शनकारियों ने आस्ट्रिया के चांसलर की हत्या कर दी। इसके पश्चात् मुसोलिनी ने जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया पर अधिकार करने के किसी भी प्रयास को पहले से ही रोकने के लिए इटली-आस्ट्रिया सीमा पर सैन्यबल भेज दिए। इसके साथ ही जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया को अपने नियन्त्रण में लेने का पहला प्रयास विफल रहा और फ़्रांस-इटली के सम्बन्धों में सुधार हुआ।
- **स्ट्रेसा मोर्चा (1935):** इसका उद्देश्य लोकार्नो संधियों की पुष्टि करना तथा आस्ट्रिया की स्वतंत्रता को घोषित करना था। इसके हस्ताक्षरकर्ता जर्मनी द्वारा भविष्य में वर्साय संधि में परिवर्तन करने के किसी भी प्रयास का विरोध करने के लिए भी सहमत हुए थे। 1935 में हिटलर के कांस्क्रिपशन (अनिवार्य सैन्य सेवा) निर्णय की निंदा करने के लिए इटली के साथ फ़्रांस और ब्रिटेन भी सम्मिलित हो गये। यह अनिवार्य सैन्य सेवा का निर्णय वर्साय की संधि का उल्लंघन था। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन और फ़्रांस ने इटली की सीमाओं की गारंटी भी दी। इससे मुसोलिनी को बहुत राहत प्राप्त हुई, जो आस्ट्रिया में जर्मनी की महत्वाकांक्षा के प्रति आशंकित था।
- **आंग्ल-जर्मन नौसेना समझौता (1935)** के अंतर्गत हिटलर को पनडुब्बियाँ बनाने की अनुमति प्राप्त हो गयी। इस घटना के पश्चात् मुसोलिनी का ब्रिटेन से विश्वास उठ गया। फ़्रांस भी ब्रिटेन से निराश था और आंग्ल-जर्मन समझौते से स्ट्रेसा मोर्चा भंग हो गया। हिटलर के लिए यह कूटनीतिक विजय थी। इसके पश्चात् हिटलर की सफलता से मुसोलिनी बहुत प्रभावित हुआ और हिटलर समर्थक बन गया।
- **अबीसीनिया पर आक्रमण (1935):** इसके तुरंत बाद मुसोलिनी ने अबीसीनिया (इथियोपिया) पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे:
  - 1896 में अबीसीनिया के साथ हुए युद्ध में इटली को जो क्षति पहुंची थी वह इसका प्रतिशोध लेना चाहता था। मुसोलिनी सोचता था कि इस विजय से देश के भीतर उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।
  - मुसोलिनी स्थानीय समस्याओं से जन सामान्य का ध्यान हटाना चाहता था और अपनी लोकप्रियता में वृद्धि करना चाहता था। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि इटली अभी तक महान वैश्विक मंदी के प्रभाव का सामना कर रहा था।
  - इटली को एक निर्यात बाजार प्राप्त हो जायेगा और उसे अपनी आर्थिक समस्याओं से जूझने में सहायता मिलेगी।

स्ट्रेसा मोर्चे को पुनर्जीवित करने के प्रयास में ब्रिटेन और फ़्रांस ने अबीसीनिया संकट के लिए मीडिया में इटली की निंदा नहीं की। इसके अतिरिक्त यह प्रथम अवसर था जब राष्ट्रसंघ ने किसी देश को आक्रामक घोषित कर उसके विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय लिया हो। परन्तु इटली को प्रतिबंधित करने का निर्णय आधे मन से किया गया और यह औपचारिकता मात्र बन कर रह गई। इटली के आर्थिक प्रतिबंधों में कोयला, इस्पात और तेल के निर्यात को प्रतिबंधित नहीं किया गया था। ये वस्तुएँ इटली में प्रमुखता से आयात होती थीं और इनके व्यापार को प्रतिबंधित किये बिना कोई भी प्रतिबंध सशक्त नहीं हो सकते थे। वे इटली को अबीसीनिया से बाहर जाने के लिए विवश करने में विफल रहे। ब्रिटेन और फ्रांस, दोनों ही आर्थिक और सैन्य रूप से उस युद्ध के लिए तैयार नहीं थे जो इटली के तेल और कोयला निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने के कारण हो सकता था। इस प्रकार ब्रिटेन और फ़्रांस ने तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण किया। राष्ट्रसंघ अबीसीनिया की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने में विफल रहा। राष्ट्रसंघ और इसकी सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा की साख में कमी आई। प्रतिबन्ध इतने कठोर नहीं थे फिर भी मुसोलिनी इनसे क्रोधित था। स्ट्रेसा मोर्चा मृतप्राय हो गया था और मुसोलिनी का झुकाव हिटलर की ओर होने लगा था। हिटलर द्वारा इटली के आक्रमण की निंदा न करने से उसे इटली में मुसोलिनी के रूप में एक सहयोगी प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया था। इसके बदले में मुसोलिनी ने 1938 में जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया पर किए गए अधिकार के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की।

- **स्पेन के गृह युद्ध में इटली की भूमिका (1936):** स्पेन का गृह युद्ध दक्षिण और वाम पंथों के बीच हुआ था। दक्षिण पंथ का नेता फ्रैंको था। मुसोलिनी ने स्पेन में अपनी सेनाएं फ्रैंको के पक्ष में युद्ध लड़ने के लिए भेजीं। इसके लिए मुसोलिनी ने इस बहाने का उपयोग किया कि वह यूरोप में

VISION IAS

साम्यवाद के प्रसार को रोकना चाहता था। परन्तु फ्रैंको को समर्थन देने के पीछे उसके वास्तविक उद्देश्य इस प्रकार थे:

- फ़्रांस को धमकाने के लिए मुसोलिनी स्पेन में अपना नौसैनिक अड्डा बनाना चाहता था।
- मुसोलिनी यूरोप में एक और फासीवादी राज्य चाहता था जो उसके सहयोगी के रूप में कार्य करे और शक्ति संतुलन इटली के पक्ष में झुक जाए।

- **रोम-बर्लिन धुरी:** 1936 में मुसोलिनी ने रोम-बर्लिन धुरी की घोषणा के साथ ही हिटलर से हाथ मिला लिया। इसका अर्थ यह था कि यूरोप के सभी शांतिप्रिय देश इटली और जर्मन गठबन्धन की काल्पनिक रेखा से निर्मित धुरी के चारों ओर घूमते रहेंगे। इस प्रकार से इटली और जर्मनी का मुख्य उद्देश्य जितना संभव हो सके उतने राज्यों को इस गठबन्धन व्यवस्था के प्रभाव के अंतर्गत लाना था।
- **कोमिन्टर्न विरोधी समझौता:** 1937 में इटली कोमिन्टर्न विरोधी समझौते में सम्मिलित हो गया जिसमें अब जापान, इटली और जर्मनी सदस्य थे। इस समझौते पर हस्ताक्षर करने से इटली के लोगों के बीच मुसोलिनी की लोकप्रियता घट गयी क्योंकि जनसामान्य इसे अंतर्राष्ट्रीय मामलों में एक आक्रामक दिखावे के रूप में देखता था। इटली की जनता को यह भय था कि कहीं मुसोलिनी इटली को एक और युद्ध में न धकेल दे।
- **म्यूनिख सम्मेलन (1938):** इसके परिणामस्वरूप जर्मनी को जर्मन जनसंख्या वाला क्षेत्र सुडेटनलैंड (चेकोस्लोवाकिया) प्राप्त हुआ। सम्मेलन में भाग लेने के फलस्वरूप घरेलू मोर्चे पर मुसोलिनी की लोकप्रियता में वृद्धि हुई क्योंकि यह सम्मेलन युद्ध से बचाव का प्रतीक था।
- **अल्बानिया पर आक्रमण (1939):** मुसोलिनी ने 1939 में अल्बानिया पर आक्रमण कर दिया। यह एक अनावश्यक आक्रामक कार्यवाही थी। इसका कारण यह था कि अल्बानिया पहले से ही इटली के आर्थिक प्रभाव में था तथा दोनों देशों के बीच मित्रवत सम्बन्ध थे और इसके अधिग्रहण से कोई वास्तविक लाभ भी नहीं मिलने वाला था। यहाँ इसका विशेष उद्देश्य केवल हिटलर की सफलताओं के समकक्ष पहुंचना था जिसने हाल ही (1938) में आस्ट्रिया पर अधिकार किया था। हिटलर के साथ लोकप्रियता की इस दौड़ में मुसोलिनी पिछड़ा हुआ नहीं दिखना चाहता था तथा वह उसके समकक्ष स्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा रखता था।
- **इस्पात का समझौता (Pact of Steel- 1939):** यह समझौता इटली और जर्मनी के बीच किया गया था। इस संधि के द्वारा इटली पूर्ण रूप से जर्मनी का सहयोगी बन गया था और युद्ध की स्थिति में उसने पूर्ण सैन्य समर्थन देने का वचन दिया था।

42.1. एडोल्फ हिटलर और नाजी

चित्र: नाज़ी समर्थकों के साथ हिटलर

- 1933-39 तक की घटनाओं का आगे विवरण देने से पहले इस प्रश्न का उत्तर देना प्रासंगिक है कि "हिटलर के उद्देश्य क्या थे?"

42.1.1. हिटलर के उद्देश्य

- हिटलर 1933 में चांसलर बन गया था। हिटलर ने यह पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि यदि नाजी पार्टी सत्ता में आई तो उसके उद्देश्य क्या होंगे। हिटलर जर्मनी को एक महान शक्ति बनाना चाहता था और उसकी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करना चाहता था। उसके उद्देश्यों के पहले समूह में निम्नलिखित लक्ष्यों को रखा जा सकता है:
  - वर्साय की संधि को समाप्त करना।
  - शक्तिशाली सेना का निर्माण करना।
  - सभी जर्मन मूल के लोगों को थर्ड राइख़ के अंतर्गत लाने के लिए आस्ट्रिया एवं पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया के कुछ भागों का अधिग्रहण करना, इन दोनों क्षेत्रों में काफी बड़ी मात्रा में जर्मन जनसंख्या अल्पसंख्यकों के रूप में निवास करती थी।
  - सार क्षेत्र, डेनजिंग बन्दरगाह और पोलैंड गलियारे को वापस प्राप्त करना।
- चूँकि इनमें से अधिकांश उद्देश्यों को 1938 तक बिना किसी युद्ध के प्राप्त कर लिया गया था तो अब प्रश्न यह उठता है कि द्वितीय विश्व युद्ध को क्यों रोका नही जा सका। यह प्रश्न हमें हिटलर के लक्ष्यों के दूसरे समूह की ओर ले जाता है, जिन पर विद्वानों में कुछ असहमति है। ये उद्देश्य इस प्रकार थे:
  - लेबेन्स्रम (Lebensraum अर्थात् रहने का स्थान): कुछ विद्वानों का तर्क है कि आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया एवं पोलैंड के कुछ भागों पर अधिकार का लक्ष्य, हिटलर के लक्ष्यों का आरम्भ मात्र था, उसके पश्चात् उसका उद्देश्य सम्पूर्ण चेकोस्लोवाकिया और पोलैंड पर अधिकार करना था। वह रूस में यूराल पर्वत तक अधिकार करना चाहता था। जर्मनी के इन मंसूबों के भय से रूस ने अपने कई कारखानों को यूराल के पूर्व में स्थानांरित कर दिया। इन क्षेत्रों पर जर्मनी के अधिग्रहण से जर्मनी को **लेबेन्स्रम या रहने का स्थान** प्राप्त हो जाता। इससे जर्मनी की खाद्य सुरक्षा भी सुनिश्चित हो जाती और यह ऐसे क्षेत्र का कार्य करता, जहाँ भविष्य में बढ़ी हुई जर्मन जनसंख्या को बसाया जा सकता था। इस प्रकार की योजना का एक अतिरिक्त लाभ साम्यवाद का विनाश भी होता।
  - अगला चरण था- अन्य यूरोपीय शक्तियों के अफ़्रीकी उपनिवेशों पर विजय और अटलांटिक महासागर में नौसैनिक अड्डों की स्थापना।
- कुछ विद्वानों का तर्क है कि हिटलर एक विश्व युद्ध नहीं, अपितु पोलैंड के साथ सीमित युद्ध चाहता था। हिटलर को यह पता नहीं था कि ब्रिटेन पोलैंड की रक्षा करने के वचन के प्रति गम्भीर है। चेकोस्लोवाकिया की तुलना में पोलैंड सैन्य रूप से कमजोर था और जब हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार किया तो ब्रिटेन ने तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण किया। इससे पहले म्यूनिख सम्मेलन (1938) में ब्रिटेन ने सुडेटनलैंड को वस्तुतः हिटलर को भेंट में दे दिया था। यदि ब्रिटेन जर्मन विस्तार को रोकना चाहता तो पोलैंड की तुलना में चेकोस्लोवाकिया एक बेहतर सहयोगी हो सकता था।

42.1.2. हिटलर की सफलताएँ

- **विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन (1932-33)**: जब फ्रांस शस्त्रीकरण में जर्मनी को समान स्थिति दिए जाने पर सहमत नहीं हुआ तो हिटलर ने जर्मनी को विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन से अलग कर लिया। ब्रिटेन जर्मनी की मांग के प्रति सहानुभूति रखता था, क्योंकि उसे जर्मन मांग उचित लगती थी। इसमें जर्मनी की एक कुटनीतिक विजय थी, क्योंकि इस सम्मेलन के बाद हिटलर को जर्मनी का पुनः शस्त्रीकरण करने का बहाना मिल गया था।
- **पोलैंड के साथ दस वर्षीय अनाक्रमण संधि (1934):** पोलैंड सदा से ही जर्मनी की चालों के प्रति सशंकित था। उसे डर था कि जर्मनी पोलिश गलियारे को वापस लेने का प्रयास करेगा, जिसमें निम्नलिखित क्षेत्र सम्मिलित थे:

VISION IAS

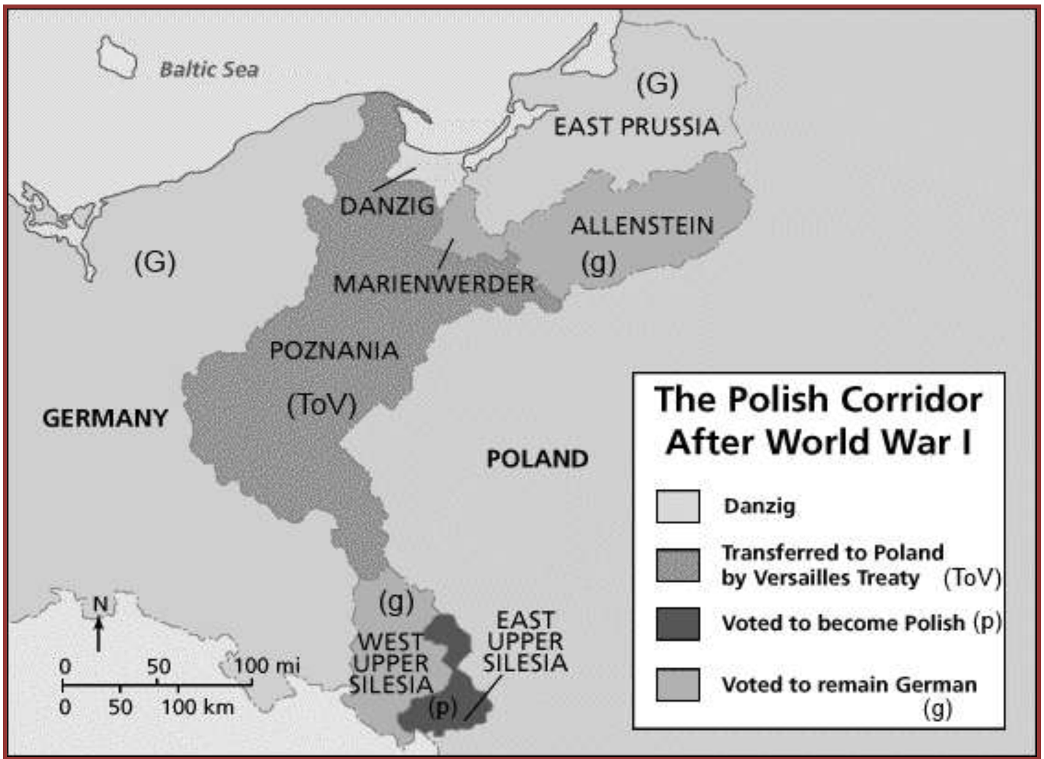

जैसा कि मानचित्र से स्पष्ट है, पोलिश गलियारे ने पूर्वी प्रशा को जर्मनी के शेष भागों से अलग कर दिया था और यह स्थिति जर्मनी की असंतुष्टि का कारण बनी। मित्र राष्ट्रों द्वारा युद्ध उद्देश्य के रूप में किये गए वादे के अनुसार बाल्टिक सागर तक पहुँच प्रदान करने के लिए वर्साय की संधि में पोलैंड को पोलिश गलियारा प्रदान किया गया था। पोलिश गलियारा प्राप्त हो जाने के पश्चात् पोलिश लोगों द्वारा किये गए दमन के कारण इस क्षेत्र से अल्पसंख्यक जर्मन लोगों का अत्यधिक पलायन हुआ। इस क्षेत्र की जनसंख्या में पोलिश लोग बहुसंख्यक थे। चूँकि पोलिश गलियारा पोलैंड को बाल्टिक सागर तक पहुंच प्रदान करता था अतः पोलैंड की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए पोलिश गलियारा बहुत महत्वपूर्ण था। डेनजिंग शहर पोलैंड और जर्मनी दोनों ही से स्वतंत्र था।

इस दस वर्षीय अनाक्रमण संधि के प्रभाव निम्नलिखित थे :

- ब्रिटेन ने इसे हिटलर की शांतिपूर्ण भावना के प्रमाण के रूप में लिया।
- इस संधि ने लिटिल एंटेट (लघु सुदृढ़ संघ) को नष्ट कर दिया, जिस पर सहयोगियों के एक समूह के रूप में फ्रांस, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया और पोलैंड ने हस्ताक्षर किए थे। जर्मनी के आक्रमण की स्थिति में निवारक के रूप में लिटिल एंटेन्ट पोलैंड पर बहुत अधिक निर्भर था।
- इस संधि में चेकोस्लोवाकिया और आस्ट्रिया के विरुद्ध जर्मन आक्रमण की स्थिति में पोलिश तटस्थता की गारंटी दी गई थी। इस प्रकार यह जर्मनी की रणनीतिक जीत थी। उसका इरादा पहले चेकोस्लोवाकिया से सुडेटनलैंड लेना और फिर आस्ट्रिया पर अधिकार करना था। पोलैंड को संघर्ष से बाहर रख कर उसने अपने इन लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में अपनी स्थिति को सुदृढ़ कर लिया।
- इस संधि ने फ्रांस और रूस के सम्बन्धों में सुधार किया क्योंकि दोनों ही जर्मनी की महत्वाकांक्षाओं से खतरा अनुभव करते थे।

- **सार क्षेत्र (1935):** वर्साय की संधि के अंतर्गत यह वादा किया गया था कि 15 वर्ष पश्चात् (1920 से) सार में जनमत संग्रह कराया जायेगा। तब तक इसकी कोयला खदानों का उपयोग फ़्रांस द्वारा किया जायेगा। लीग ऑफ़ नेशन्स के मैंडेट कमीशन ने सफलता पूर्वक जनमत संग्रह आयोजित किया और जब 90% लोगों ने जर्मनी के पक्ष में मत दिया तो उसे यह क्षेत्र सौंप दिया गया। पोलैंड के साथ गैर-आक्रामक संधि (1934) के पश्चात् हिटलर ने फ़्रांस को शांत करने के लिए कहा कि सार के हस्तांतरण के पश्चात् फ़्रांस और जर्मनी के सभी गिले-शिकवे समाप्त हो गये हैं।
- **कांस्क्रिपशन (Conscription-1935)**: कांस्क्रिपशन का अर्थ अनिवार्य सैन्य सेवा है। वर्साय की संधि में जर्मनी द्वारा इसे आरम्भ किये जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। परन्तु हिटलर ने

 ©Vision IAS

1935 में अनिवार्य सैन्य सेवा प्रारम्भ कर दी। ऐसा करने के पीछे उसका बहाना था कि ब्रिटेन ने अभी ही अपनी वायु सेना की शक्ति में वृद्धि की है और फ़्रांस ने अनिवार्य सैन्य सेवा की अवधि 12 महीने से बढ़ा कर 18 महीने कर दी है। यहाँ यह स्पष्ट है कि फ़्रांस और ब्रिटेन भी भविष्य की किसी भी सम्भावित आक्रामकता का सामना करने के लिए अपनी सेना को तैयार कर रहे थे। अनिवार्य सैन्य सेवा प्रारम्भ करने के पश्चात् हिटलर ने घोषणा की कि वह 6 लाख की संख्या में सैन्यबल तैयार करेगा। यह पुनः वर्साय की संधि का उल्लंघन था, जिसमें इसकी सीमा 1 लाख सैनिक निर्धारित की गयी थी। ब्रिटेन, फ़्रांस और इटली जो हिटलर की चालों के प्रति सशंकित थे, उन्होंने अपने आप को 1935 में स्ट्रेसा मोर्चे (Stresa Front) के रूप में संगठित कर लिया, जिसने हिटलर की अनिवार्य सैन्य सेवा की निंदा की और आस्ट्रिया पर अधिकार करने की किसी भी जर्मन योजना के विरुद्ध आस्ट्रिया की सीमाओं की रक्षा करने की गारंटी दी।

- **ब्रिटिश-जर्मन नौसैनिक संधि (1935):** यह फिर से हिटलर की कूटनीतिक जीत थी, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप स्ट्रेसा मोर्चे को भंग (1935) कर दिया गया था। ब्रिटेन अपने सहयोगियों से परामर्श किये बिना ही इस समझौते पर आगे बढ़ गया था। इस संधि के अंतर्गत हिटलर ने जर्मन नौसेना को ब्रिटेन की नौसेना के 35% तक सीमित करने का प्रस्ताव रखा। इस संधि पर सहमत होने के पीछे ब्रिटेन का यह विचार था कि जब जर्मनी ने अनिवार्य सैन्य सेवा आरम्भ कर ही दी है तो इस संधि के माध्यम से अब ब्रिटेन जर्मनी के शस्त्रीकरण को नियंत्रित करने में सफल हो जाएगा। चूँकि ब्रिटेन युद्ध नहीं चाहता था अतः उसके अनुसार एक शांत जर्मनी सुनिश्चित करने का यह सर्वश्रेष्ठ उपाय था। ब्रिटिश-जर्मन नौसैनिक संधि के प्रभाव से ही जर्मनी के शस्त्रीकरण में अत्यधिक वृद्धि हुई। 1938 तक, जर्मनी के पास 8 लाख एक्टिव और रिज़र्व सैनिक, 5000 वायुयान, 47 यु-बोट (पनडुब्बियाँ) और 21 विशाल पोत थे, जिनमे युद्ध-पोत, क्रूजर और डिस्ट्रॉयर थे।
- **राइनलैंड का पुनः सैन्यीकरण (1936):** ब्रिटेन और फ़्रांस के एबीसीनिया के संकट में व्यस्त होने का लाभ उठाते हुए हिटलर ने राइनलैंड में सैन्यबल भेज दिया। यह वर्साय संधि का और लोकार्नो संधियों (1925) में स्ट्रेसमेन की वचनबद्धता का उल्लंघन था।
- **रोम-बर्लिन धुरी (1936):** यह इटली और जर्मनी के बीच एक संधि थी। इसका आशय यह था कि यूरोप के सभी शांतिप्रिय देश इटली और जर्मनी के मध्य एक काल्पनिक रेखा के इर्द-गिर्द घुमते रहेंगे।
- **कोमिंटर्न विरोधी संधि (1936)**: यह गठबंधन बनाने की दिशा में एक कदम था। जर्मनी और जापान इसके मूल हस्ताक्षरकर्ता थे। 1937 में इटली भी इस कोमिंटर्न विरोधी संधि में सम्मिलित हो गया। इस गठबंधन का लक्ष्य सम्बन्धित देशों में साम्यवाद के प्रसार को रोकना था। यह फ़्रांस और ब्रिटेन के लिए एक संकेत भी था कि सदस्यों का आक्रामक रुख रूस की ओर अधिक था न की फ़्रांस और ब्रिटेन की ओर।
- **स्पेन का गृह युद्ध (1936):** जर्मनी ने फ्रैंको के पक्ष में युद्ध में भाग लिया। हिटलर ने स्पेन पर बमबारी का आदेश दिया, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में निर्दोष नागरिकों को जान गंवानी पड़ी। इससे ब्रिटेन और फ़्रांस भयभीत हो गये और इस प्रकार के किसी भी विनाशक युद्ध को टालने के लिए हिटलर को प्रसन्न रखने का प्रयास करने लगे।
- **आस्ट्रिया के साथ अंसचल्स (Anschluss) (1938)**: अंसचल्स का अर्थ है संघ। आस्ट्रिया में लाखों की संख्या में जर्मन निवास करते थे। वर्साय की संधि में जर्मनी और आस्ट्रिया के एकीकरण को प्रतिबंधित कर दिया गया था। 1931 में जर्मनी ने इस एकीकरण की दिशा में पहला कदम आस्ट्रिया-जर्मनी के मध्य सीमा शुल्क संघ की स्थापना करने के सुझाव के रूप में उठाया। फ़्रांस ने अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में अपील की, जिसने सीमा शुल्क एकीकरण के विरुद्ध निर्णय दिया। रूस और इटली भी सीमा शुल्क एकीकरण के विरुद्ध थे क्योंकि यह जर्मन राष्ट्रवाद का प्रतीक था। 1934 में हिटलर ने आस्ट्रिया पर अधिकार करने का पहला प्रयास किया। इस प्रयास को इटली ने विफल कर दिया, क्योंकि जब आस्ट्रिया के नाजियों ने आस्ट्रिया के चांसलर की हत्या कर दी और जर्मनी आस्ट्रिया पर आक्रमण करने वाला था तो इटली ने आस्ट्रिया की सीमाओं पर स्थित ब्रेनर पास (दर्रे)

VISION IAS

पर अपनी सेना भेज दी। इटली से युद्ध होने के भय से हिटलर आगे नहीं बढ़ा। परन्तु शीघ्र ही उसने इटली के विरोध को निष्प्रभावी करने के प्रयास किए। जब मुसोलिनी ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया (1935) तो हिटलर ने कोई आपत्ति नहीं की। इसके अतिरिक्त 1936 में उसने रोम-बर्लिन धुरी बनाकर के इटली को अपना सहयोगी बना लिया। अबीसीनिया पर अधिकार करने पर हिटलर द्वारा प्रतिबन्ध न लगाए जाने के बदले में इटली ने आस्ट्रिया पर अधिकार के अपने दावों को वापस ले लिया। 1938 में अंततः अंसचल्स संपन्न हुआ। आस्ट्रिया के नाजियों ने आस्ट्रिया में सरकार के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन किया। जर्मनी ने आस्ट्रिया के सम्मुख 10 मांगें प्रस्तुत कीं, जिनमें से एक मांग थी की गृह मंत्री के पद पर एक नाजी को नियुक्त किया जाए। चांसलर ने शीघ्र ही आस्ट्रिया एवं जर्मनी के एकीकरण के प्रश्न पर जनमत संग्रह आयोजित किया। चांसलर कुछ हद तक एक नकारात्मक परिणाम के लिए आश्वस्त था। परिणामों की अनिश्चितता से हिटलर ने आस्ट्रिया पर आक्रमण की धमकी दी। उसने कहा कि वह "वियना को आस्ट्रिया का स्पेन बना देगा" परिणामस्वरूप चांसलर ने त्यागपत्र दे दिया, जिसके बाद आस्ट्रिया की नाजी सरकार ने आस्ट्रिया पर अधिकार करने के लिए हिटलर को आमंत्रित किया। ब्रिटेन और फ़्रांस ने मौखिक रूप से विरोध किया। उन्हें जर्मनी के साथ युद्ध का भय था और स्पेन के गृह युद्ध (1936) में हिटलर द्वारा निर्दोष नागरिकों पर की गई बमबारी को देखते हुए वह युद्ध से होने वाली नागरिकों की जान की संभावित क्षति को रोकना चाहते थे।

विलय का प्रभाव:

- चेकोस्लोवाकिया के लिए यह एक गम्भीर खतरा था, जिस पर अब तीन दिशाओं से आक्रमण हो सकता था अर्थात दक्षिण से (आस्ट्रिया), पश्चिम और उत्तर से (जर्मनी)।
- शीघ्र ही जर्मनी ने म्यूनिख सम्मेलन (1938) में सुडेटनलैंड की मांग की और उसे प्राप्त कर लिया और इस प्रकार चेकोस्लोवाकिया के बहुत से उद्योग जर्मनी को चले गए।

- **म्यूनिख सम्मेलन (1938)**: इसके परिणामस्वरूप जर्मन जनसंख्या वाला क्षेत्र सुडेटनलैंड (चेकोस्लोवाकिया) जर्मनी को प्राप्त हो गया। चेकोस्लोवाकिया में लोकतंत्र के कारण हिटलर चेकोस्लोवाकिया से घृणा करता था, क्योंकि इसकी रचना वर्साय की संधि से हुई थी। जर्मनी के लिए लेबेन्स्राम के अपने स्वप्न को पूरा करने हेतु हिटलर चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार करना चाहता था। उसे विशेषरूप से सुडेटनलैंड चाहिए था, क्योंकि यह औद्योगिक रुप से बहुत समृद्ध था और वहां जर्मन जनसंख्या भी अधिक थी। हिटलर ने यह तर्क देना प्रारम्भ किया कि सुडेटनलैंड में सरकार जर्मन लोगों से भेदभाव करती है। यह इस तर्क पर आधारित था कि अन्य समूहों की तुलना में जर्मन लोगों में बेरोजगारी अधिक थी। सुडेटनलैंड में नाजियों ने विशाल विरोध प्रदर्शन आयोजित किए। ऐसा महसूस किया जा रहा था कि सुडेटनलैंड पर अधिकार करने के लिए हिटलर चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करेगा और इसलिए म्यूनिख में एक सम्मेलन आयोजित किया गया। म्यूनिख सम्मेलन में, इटली, फ़्रांस और जर्मनी ने भाग लिया। USSR और चेकोस्लोवाकिया को आमंत्रित भी नहीं किया गया था। सम्मेलन का यह निर्णय था कि जर्मनी सुडेटनलैंड पर तो अधिकार कर सकता है परन्तु वह चेकोस्लोवाकिया पर इससे अधिक दावा नहीं करेगा। ब्रिटेन और फ़्रांस ने चेकोस्लोवाकिया को यह भी बता दिया कि यदि वे म्यूनिख समझौते को स्वीकार नहीं करते तो जर्मनी द्वारा आक्रमण की स्थिति में वे उसकी सहायता के लिए नहीं आएंगे। यह लोकार्नो संधियों के विरुद्ध था। हालांकि लोकार्नो संधि में जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया के साथ अपनी सीमाओं को लेकर कोई गारंटी नहीं दी थी परन्तु फ़्रांस ने पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया पर जर्मनी के आक्रमण की स्थिति में उनकी सहायता के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की थी। ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा सहायता से इनकार करने के फलस्वरूप चेकोस्लोवाकिया म्यूनिख संधि पर सहमत हो गया। सुडेटनलैंड को गंवा कर उसने अपने भारी उद्योगों का 70% और जर्मनी के विरुद्ध अपनी किलेबंदी को खो दिया था। परिणामस्वरूप सरकार के प्रभाव में कमी और आर्थिक समस्याओं के कारण स्लोवाकिया ने भी अलगाव की मांग प्रारम्भ कर दी। शीघ्र ही, कानून और व्यवस्था की समस्याएं भी खड़ी होने लगी थीं।
- **शेष चेकोस्लोवाकिया का अधिग्रहण (1939):** म्यूनिख सम्मेलन के पश्चात् उत्पन्न परिस्थितियों में, हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति को कानून व्यवस्था बहाल करने के लिए जर्मन सैनिकों से

VISION IAS

अनुरोध करने के लिए विवश किया। शीघ्र ही जर्मन सेना चेकोस्लोवाकिया में प्रवेश कर गई और उस पर अधिकार कर लिया। ब्रिटेन और फ़्रांस ने केवल मौखिक विरोध ही किया। ब्रिटेन ने कहा कि शेष चेकोस्लोवाकिया पर गारंटी लागू नहीं होती है, क्योंकि उसने स्वयं ही जर्मन सेनाओं को आने का अनुरोध किया था और तकनीकी रूप से यह आक्रमण नहीं था।

- **पोलैंड पर आक्रमण (1939)**: चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार के पश्चात्, ब्रिटेन ने यह निर्णय लिया कि अब जर्मनी का और अधिक तुष्टीकरण नहीं किया जाएगा। पोलैंड का अधिग्रहण अनुचित था। अब तक हिटलर ने अपने सभी क्षेत्रीय अधिग्रहणों को जातीयता और वर्साय की संधि के आधार पर उचित ठहराया था। गैर-जर्मन जनसंख्या वाले क्षेत्र के अधिग्रहण की यह पहली कार्यवाही थी। जब हिटलर ने घोषणा की, कि उसे डेनजिंग चाहिए तो ब्रिटेन और फ़्रांस ने पोलैंड की रक्षा के लिए अपनी प्रतिबद्धता दोहराई। हिटलर पोलिश गलियारे के मध्य से रेल और सड़क मार्ग चाहता था, ताकि शेष जर्मनी को पूर्वी प्रशा से जोड़ा जा सके। यद्यपि यह मांग अनुचित नहीं थी, क्योंकि डेनजिंग में 95% जर्मन जनसंख्या रहती थी और पूर्वी प्रशा से कनेक्टिविटी तार्किक थी, परन्तु यह माँग चेकोस्लोवाकिया की हार के तुरंत बाद उठी थी, इसलिए पोलैंड इसके पश्चात् होने वाले सम्पूर्ण आक्रमण की आशंका से भयभीत था। ब्रिटेन ने पोलैंड वासियों पर दबाव बनाने का प्रयास किया, परन्तु उन्होंने जर्मन मांगों को अस्वीकार कर दिया। हिटलर ने रूस को तटस्थ रखने के लिए 1939 में रूस के साथ एक अनाक्रमक संधि पर हस्ताक्षर किये और पोलैंड पर पूर्ण आक्रमण कर दिया। इसके साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया।

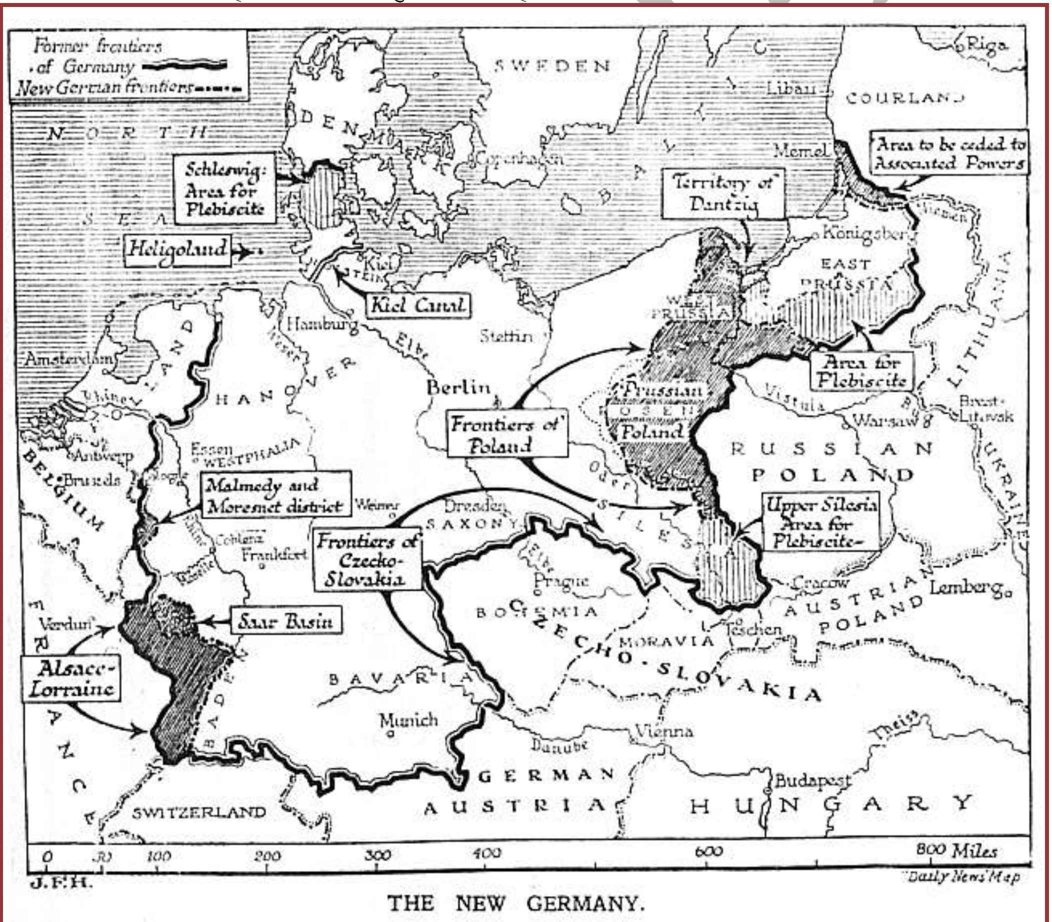

चित्र: जर्मन विस्तार

प्रमुख विषय 4: ब्रिटेन और कुछ सीमा तक फ़्रांस ने भी पुनरुत्थानशील जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई। इटली और जापान भी अपने आक्रामक कृत्यों के परिणामों से बच निकलते हैं, क्योंकि राष्ट्रसंघ विस्तारवादी प्रवृत्तियों की धमकियों से निबटने में पूर्णतः विफल रहा।

जर्मनी द्वारा वर्साय की संधि का उल्लंघन और जापान एवं इटली का आक्रामक कार्यवाहियों के लिए प्रतिबंधों से बच निकलना सीधे तौर पर तुष्टीकरण की नीति का परिणाम था। इस नीति का अनुसरण करने के निम्नलिखित कारण हैं:

- **युद्ध को टालना**: अन्य शक्तियाँ युद्ध से बचना चाहती थीं, क्योंकि वे आर्थिक और सैन्य रूप में सशक्त नहीं थीं इसलिए वे उस प्रकार के युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकती थीं। इस प्रकार के युद्ध का परिणाम सम्भवतः गतिरोध ही होता। ब्रिटेन और फ़्रांस अपने नगरों पर बमबारी और नागरिकों की मृत्यु से भयभीत थे, जिसका विभत्स प्रदर्शन जर्मनी द्वारा स्पेन के गृह-युद्ध (1936) में किया जा चुका था।
- **आर्थिक संकट (1929):** अन्य यूरोपीय शक्तियाँ शस्त्रीकरण के अत्यधिक खर्च का वहन नहीं कर सकती थीं। वे अभी पूरी तरह से आर्थिक संकट से उबर नहीं पाईं थीं।
- **जनमत:** ब्रिटेन के लोग युद्ध के विरुद्ध थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् युद्ध के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में नाटकीय परिवर्तन आया था। व्यवसायी भी युद्ध के विरुद्ध थे क्योंकि यह उनके आर्थिक हितों को ठेस पहुँचाता था। एक युद्ध पूरी अर्थव्यवस्था को सैन्य उत्पादन के अनुकूल बना देता है और बमबारी से मूलभूत ढांचों एवं औद्योगिक हितों को हानि पहुँचती है।
- **सहानुभूति:** कई समूह यह महसूस कर रहे थे कि जर्मनी और इटली की शिकायतें वास्तविक थीं। इसने जर्मनी और इटली से निबटने के लिए सैन्य बल का प्रयोग रोक दिया। विशेषकर, ब्रिटेन में कई नेताओं का दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण था और संभावित युद्ध को रोकने के लिए इसके कई नेता स्वयं ही वर्साय संधि की कठोर शर्तों को संशोधित करने की मांग कर रहे थे। इस प्रकार अंग्रेज़ वर्साय की संधि को ही युद्ध के वास्तविक कारण के रूप में देख रहे थे और इसलिए उन्होंने जर्मनी की उन मांगों के प्रति सहमति जताई, जो संधि के कठोरतम शर्तों को निरस्त करने के लिए लक्षित की जा रही थी। इसलिए उन्होंने तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण किया।
- **राष्ट्रसंघ की विफलता**: राष्ट्रसंघ निष्प्रभावी सिद्ध हुआ और इसका संकेत 1937 में निर्वाचित प्रधानमन्त्री चैम्बरलेन के कथन से मिलता है कि "अंतर्राष्ट्रीय कानून का सम्मान करने के लिए वार्ता के माध्यम से विभिन्न नेताओं के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क महत्त्वपूर्ण है।" उसने जर्मनी के साथ विवादों को सुलझाने के लिए युद्ध के स्थान पर कूटनीति का समर्थन किया।
- **आर्थिक सहयोग:** ब्रिटेन के लिए जर्मनी एक निर्यात बाजार था और इसलिए ब्रिटिश यह मानते थे कि आर्थिक सहयोग दोनों देशों के हित में है। ब्रिटेन का विश्वास था कि यदि वह जर्मनी की आर्थिक बहाली में सहायता करेगा तो जर्मनी ब्रिटेन के प्रति मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रखेगा।
- **साम्यवादी रूस का भय** नाजियों के भय से कहीं अधिक था। यह विशेष रूप से ब्रिटेन और फ़्रांस के रूढ़िवादी समूहों के सम्बन्ध में सत्य था। उन्होंने नाजी जर्मनी को पश्चिम की ओर बढ़ने वाले साम्यवादी विस्तार के प्रतिरोधक के रूप में देखा। इसलिए उन्होंने जर्मन शस्त्रीकरण का विरोध नहीं किया।
- **विलम्ब करना**: कुछ विद्वानों का तर्क है कि अंग्रेजों ने तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण स्वयं का शस्त्रीकरण करने के लिए समय प्राप्त करने के लिए किया। आर्थिक संकट के कारण आर्थिक समस्याओं और प्रथम विश्व युद्ध के परिणामों के कारण, ब्रिटेन और फ़्रांस में कुछ नेताओं का यह मत था कि तुष्टीकरण की प्रक्रिया जितनी अधिक लम्बी होगी, उतना ही समय उन्हें शस्त्रीकरण के लिए मिल सकेगा। चैम्बरलेन ने तुष्टीकरण की नीति के साथ साथ शस्त्रीकरण में भी वृद्धि की। उसका यह मत था कि शस्त्रीकरण और तुष्टीकरण की दोहरी तलवार एक निवारक का कार्य करेगी।

प्रमुख विषय 5 : तुष्टीकरण की नीति फासीवादियों की सहायता करती है, परन्तु इसके कारण गलत पूर्वानुमान भी हो जाता है, जो अंततः द्वितीय विश्व युद्ध की ओर ले जाता है। जर्मनी को रोकने के लिए यूरोपीय शक्तियों का प्रयास अंततः निरर्थक सिद्ध हुआ।

तुष्टीकरण के अन्य पक्ष

- इसने फासीवादी शक्तियों के बीच एक धारणा उत्पन्न किया जिसके कारण गलत अनुमान लगाए गए। हिटलर ब्रिटेन और फ़्रांस की सुस्ती और निर्बलता के विषय में आश्वस्त था। उसने सोचा था

VISION IAS

कि यदि जर्मनी; पोलैंड (जिसकी सुरक्षा की गारंटी अंग्रेजों ने दी थी) पर आक्रमण भी करता है, तो भी कोई कुछ कार्यवाही नहीं करेगा।

- **जर्मनी को रोकने के लिए अन्य शक्तियों के प्रयास:**
    - फ़्रांस तुष्टीकरण के विरुद्ध था। उसने जर्मनी को आस्ट्रिया-जर्मनी कस्टम एकीकरण (1931) के प्रस्ताव के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय स्थायी न्यायालय में खींचा था। इसने जर्मनी के अनिवार्य सैन्य सेवा (1935) के विरुद्ध स्ट्रेसा मोर्चा बनाया। स्ट्रेसा मोर्चे ने जर्मन आक्रमण को रोकने के लिए आस्ट्रिया की सीमाओं की गारंटी दी थी।
    - 1934 में इटली ने अंसचल्स (Anschluss) के पहले प्रयास को रोका था।
    - फ़्रांस ने यह सुनिश्चित किया था कि USSR 1934 में राष्ट्रसंघ में प्रवेश करे। इसे जर्मनी के विरुद्ध उपयोग किया गया था। फ़्रांस इटली तथा सोवियत संघ के साथ मिलकर एक जर्मन विरोधी गठबन्धन बनाना चाहता था।
    - इटली ने 1933 में USSR के साथ एक अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर किया था। परन्तु रूस-फ़्रांस गठबन्धन में सैन्य सहयोग के लिए कोई प्रावधान नहीं था क्योंकि फ़्रांस का नेतृत्व कम्युनिस्टों पर विश्वास नहीं करता था। ऐसा इसलिए था क्योंकि मास्को ने लम्बे समय तक कम्युनिस्टों को यह निर्देश दे रखा था कि वे फ़्रांस के अन्य वामपंथी दलों के साथ सहयोग न करें।
- **होअरे-लवाल संधि (Hoare-Laval pact- 1935):** यह ब्रिटेन और फ़्रांस के बीच एक गुप्त संधि थी। इस संधि का उद्देश्य अबीसीनिया का विभाजन करना और इसका अधिकांश भाग इटली को देना था। यह समझौता असफल हो गया क्योंकि इसकी जानकारी लीक हो गई थी जोकि ब्रिटेन और फ़्रांस की जनता में आक्रोश का कारण बनी।
- **फ़्रांस ने तुष्टीकरण की नीति का अनुसरण क्यों किया?:** फ़्रांस तुष्टीकरण को रोकने में विफल रहा और कई बार स्वयं भी तुष्टीकरण की नीति पर चला, क्योंकि फ़्रांस दक्षिणपंथियों और वामपंथियों में विभाजित हो चुका था। दक्षिणपंथी साम्यवादी रूस के विरुद्ध प्रतिरोधक के रूप में हिटलर का समर्थन करते थे।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

विश्व इतिहास : भाग 2B

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

34. शीत युद्ध (Cold War) ____ 5

35. प्रस्तावना ____ 5

36. शीत युद्ध के प्रुमख कारण ____ 5

37. शीत युद्ध के लिए किसे उत्तरदायी ठहराया जाए? ____ 6

38. शीत युद्ध का उद्भव (स्टालिन युग: 1945-53) ____ 7

39. शीत युद्ध का अंत ____ 47

40. 1945 के पश्चात् यूरोप (Europe after 1945) ____ 49

40.1. यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन ____ 50

40.2. यूरोपीय परिषद (COUNCIL OF EUROPE, 1949) ____ 51

40.3. यूरोपीय आर्थिक समुदाय ____ 51

40.4. अन्य विविध संगठन/पहल ____ 52

41. ब्रिटेन और EEC ____ 53

41.1. ब्रिटेन EEC में शामिल क्यों नहीं हुआ? ____ 53

41.2. 1961 के बाद ब्रिटेन इसमें क्यों सम्मिलित होना चाहता था? ____ 54

41.3. 1961 के पश्तात् जनरल डी गॉल (फ्रेंच राष्ट्रपति) ने ब्रिटेन के प्रवेश को क्यों अवरुद्ध किया? ____ 54

41.4. ब्रिटेन ने 1973 में EEC में प्रवेश किया? ____ 54

42. फ्रांस और इटली की स्थिति ____ 54

42.1. फ़्रांस की स्थिति ____ 54

42.2. इटली की स्थिति ____ 55

43. पूर्वी यूरोप की परिस्थितियां ____ 55

44. 1990 के दशक में यूरोप की स्थिति ____ 56

45. यूरोपीय संघ (European Union: EU) ____ 56

45.1. यूरोपीय संघ में किस प्रकार सम्मिलित हुआ जाता है? ____ 58

45.2. 2008 के आर्थिक संकट से उत्पन्न चुनौती ____ 58

46. यूरोज़ोन (Eurozone) ____ 58

46.1. यूरो क्षेत्र बनाम आर्थिक और मौद्रिक संघ ____ 59

46.2. यूरो जोन में सम्मिलित होने के अभिसरण मानदंड ____ 59

47. शेन्जन समूह (Schengen Group) ____ 59

विऔपनिवेशीकरण एवं अन्य घटनाएँ ____ 60

48. उपनिवेशवाद एवं अफ्रीका ____ 60

48.1. भूमिका ____ 60

VISION IAS

48.2. 1945 में औपनिवेशिक शक्तियां ____ 60

48.3. अफ्रीका में विऔपनिवेशीकरण के कारक ____ 60
48.3.1. राष्ट्रवादी आंदोलन ____ 60
48.3.2. द्वितीय विश्व युद्ध ____ 61
48.3.3. बाहरी दबाव ____ 61

48.4. अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 62
48.4.1. अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य के विऔपनिवेशीकरण के कारण ____ 62
48.4.2. विऔपनिवेशीकरण की ब्रिटिश नीति ____ 62
48.4.3. 1957 तक पश्चिम अफ्रीका बनाम पूर्व और मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश नीति ____ 62
48.4.4. पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 63
48.4.5. पूर्वी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 64
48.4.6. मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 64

48.5. अफ्रीका में फ़्रांसीसी साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 66
48.5.1. ट्यूनीशिया और मोरक्को ____ 67
48.5.1.1. ट्यूनीशिया (1956) ____ 67
48.5.1.2. मोरक्को (1956) ____ 67
48.5.2. फ्रेंच वेस्ट अफ्रीका और फ्रेंच इक्वेटोरियल अफ्रीका ____ 67
48.5.3. अल्जीरिया (1962) ____ 67
48.5.4. फ़्रांसीसी समुदाय (French Community) ____ 68

48.6. अफ्रीका में बेल्जियम के साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 69

48.7. अफ्रीका में स्पेन के साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 70

48.8. अफ्रीकी महाद्वीप में पुर्तगाली साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण ____ 70

48.9. अफ्रीका में इतालवी साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण (इथियोपिया, लीबिया, इरिट्रिया, सोमालिया) ____ 71
48.9.1. स्वतंत्रता पश्चात् अशांति ____ 72

49. अंग्रेजों द्वारा अफ्रीका के बाहर किए गए विऔपनिवेशीकरण के प्रयास ____ 72

49.1. भारत ____ 72

49.2. वेस्ट इंडीज (कैरीबिया), मलाया (दक्षिण पूर्व एशिया) और साइप्रस (मध्य पूर्व) ____ 72

50. हॉलैंड द्वारा विऔपनिवेशीकरण ____ 74

50.1. ईस्ट इंडीज़ में उपनिवेश और उनका विउपनिवेशिकरण ____ 74

51. विऔपनिवेशीकरण से संबंधित कुछ अन्य पहलू एवं विचार ____ 75

52. पूर्ववर्ती उपनिवेशों में आज की स्थिति ____ 77

52.1. अफ्रीका ____ 77

52.2. मध्य अमेरिका ____ 78
52.2.1. एकल बाजार और साझा बाजार में अंतर ____ 78

52.3. दक्षिण-पूर्वी एशिया ____ 78

53. मध्य-पूर्व में संघर्ष (Conflicts in the Middle East) ____ 79

VISION IAS

53.1. मध्य पूर्व में उपनिवेशों की समाप्ति ____ 81
53.1.1. मध्य पूर्व में नव-उपनिवेशवाद के कारण ____ 81
53.2. ईरान (1945 के पश्चात्) ____ 81
53.2.1. भूमिका ____ 81
53.2.2. शीत युद्ध के समय ____ 81
53.2.3. ईरान में नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति ____ 82
53.2.4. गुट निरपेक्ष आंदोलन (NAM) और ईरान ____ 82
53.3. अरब एकता एक संक्षिप्त इतिहास ____ 82
53.3.1. अरब एकता का अभाव ____ 83
53.4. मध्य पूर्व में नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति ____ 83
54. इराक-ईरान युद्ध (1980-88) ____ 84
55. खाड़ी युद्ध (1990-91) ____ 85
56. अरब-इजरायल संघर्ष ____ 86
56.1. 1948 में इजराइल का गठन क्यों हुआ? ____ 86
56.2. 1948 अरब-इजरायल युद्ध ____ 87
56.3. स्वेज युद्ध - 1956 ____ 88
56.3.1. स्वेज युद्ध के कारण ____ 88
56.3.2. 1956 के स्वेज युद्ध के परिणाम ____ 89
56.4. छह दिवसीय युद्ध (1967) ____ 90
56.4.1. परिणाम ____ 90
56.5. योम किप्पर युद्ध या अक्टूबर युद्ध (1973) ____ 91
56.5.1. युद्ध के कारण ____ 91
56.5.2. परिणाम ____ 91
56.6. कैम्प डेविड समझौता या मिस्र-इजराइल शांति संधि (1979) ____ 92
57. नव-उपनिवेशवाद ____ 93
57.1. भारत में नव-उपनिवेशवाद क्यों नहीं? ____ 94
VISION IAS

34. शीत युद्ध (Cold War)

35. प्रस्तावना

- शीत युद्ध वस्तुतः द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के पश्चात् 1991 में USSR (यूनियन ऑफ़ सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक्स अर्थात् सोवियत संघ) के विघटन तक की घटनाओं का एक क्रम था, जिसमें दो महाशक्तियों {USSR और USA (यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका)} के बीच आर्थिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, राजनीति, सैन्य क्षेत्र और विचारधारा के स्तर पर प्रभुता के लिए प्रतिस्पर्धा बनी हुई थी। इस दौरान प्रत्येक पक्ष ने बिना किसी वास्तविक युद्ध के स्वयं को सशक्त और दूसरे को कमजोर करने की नीतियाँ अपनायी।
- इसे "शीत युद्ध" इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस अवधि में USA और USSR ने कोई भी प्रत्यक्ष युद्ध नहीं किया। इस अवधि में जो भी युद्ध हुए वे तीसरे पक्षों के बीच लड़े गये और ये युद्ध स्थानीय स्तर तक सीमित रहे। इस प्रकार इन युद्धों का कोई व्यापक प्रसार नहीं हुआ।
- शीत युद्ध के समय विश्व दो भागों में विभाजित हो गया था; पहला, USSR के नेतृत्व में साम्यवादी विश्व और दूसरा, USA के नेतृत्व में पूंजीवादी विश्व। इस अवधि के दौरान यूरोप भी साम्यवादी पूर्वी यूरोप और पूंजीवादी पश्चिमी यूरोप में विभाजित हो चुका था।

36. शीत युद्ध के प्रुमख कारण

शीत युद्ध के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

- **द्वि-ध्रुवीय विश्व:** द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत प्रतिस्पर्धी सैन्य, राजनीतिक और आर्थिक हितों सहित, राज्य/समाज/सरकार की दो विभिन्न विचारधाराओं वाली दो समान महाशक्तियों का उदय।
- **पुराने संदेहों की उच्च भूमिका एवं वैचारिक मतभेद:** रूसी क्रांति (1917) के पश्चात् बोल्शेविकों ने ब्रिटेन और फ्रांस सहित उनके उपनिवेशों, शेष यूरोप और अमेरिका में स्थानीय साम्यवादी क्रांतिकारियों की सहायता के लिए अपने गुप्त एजेंटों को भेज कर साम्यवाद को विस्तारित करने का प्रयास किया। यही कारण था कि पूंजीवादी देश USSR पर विश्वास नहीं करते थे। परिणामस्वरूप, रूस को वर्साय की संधि में आमंत्रित ही नहीं किया और पूंजीवादी पश्चिमी देशों ने लम्बे समय तक USSR की सरकार को मान्यता देने से इंकार कर दिया। **रूसी गृह-युद्ध (1918-20)** के समय पश्चिमी शक्तियों (USA, फ़्रांस तथा ब्रिटेन) और जापान ने बोल्शेविकों के विरुद्ध **"व्हाइट्स"** (मेंशेविक, सोशल रेवोल्युशनरी पार्टी, कैडेट्स) के पक्ष में लड़ने के लिए अपने सैनिक भेजे। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1944 तक ब्रिटेन और फ़्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध दूसरा मोर्चा खोलने (अर्थात् जर्मनी पर पश्चिम से आक्रमण करने का रूस का प्रस्ताव, ताकि जर्मनी को दो मोर्चों पर लड़ने के लिए विवश किया जा सके) में विलम्ब किया। उल्लेखनीय है कि 1941 में USSR पर जर्मन आक्रमण के पश्चात् से ही स्टालिन यह मांग कर रहा था। स्टालिन का मानना था कि ब्रिटेन और फ़्रांस जानबूझ कर दूसरा मोर्चा खोलने में विलम्ब कर रहे थे, क्योंकि वे USSR और साम्यवाद को नष्ट करना चाहते थे।
- **विभिन्न वर्गों के आपसी हितों का संघर्ष:** प्रत्येक देश में विभिन्न वर्गों के आपसी हितों का टकराव भी इसके लिए उत्तरदायी था, क्योंकि प्रत्येक वर्ग के हित दांव पर लगे हुए थे। श्रमिक साम्यवाद का समर्थन करते थे, जबकि सम्पत्तिधारक वर्ग पूंजीवाद का समर्थन करता था। पूंजीवादियों को भय था कि साम्यवाद के प्रसार से निजी सम्पत्ति का अंत होगा और समृद्ध वर्गों की राजनीतिक शक्तियाँ समाप्त हो जाएंगी। इस संदर्भ में इन दोनों महाशक्तियों को स्थानीय समर्थन भी मिला। इस समर्थन के बिना USSR और USA तीसरे देशों के आंतरिक मामलों में लगातार और सफलतापूर्वक हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे।

 ©Vision IAS

- **रक्षात्मक दृष्टिकोण:** शीत युद्ध का अनुसरण एक आक्रामक दृष्टिकोण के बजाये एक रक्षात्मक दृष्टिकोण के रूप में किया गया था। इसके पीछे मूल भावना यह थी कि स्वयं अपनी व्यवस्था (पूंजीवाद या साम्यवाद) और सीमाओं को सुरक्षित रखा जाए। दोनों महाशक्तियों ने इस प्रक्रिया में यथासम्भव मध्यवर्ती पूंजीवादी / साम्यवादी देशों के निर्माण का प्रयास किया।
- **नेताओं की भूमिका:** स्टालिन ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय फिनलैंड, पोलैंड, रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया और जर्मनी के यथासम्भव अधिक से अधिक क्षेत्रों पर अधिकार करने का प्रयास किया। इससे पश्चिमी शक्तियाँ चौकन्नी हो गईं। रूजवेल्ट की तुलना में **ट्रूमैन** USSR के प्रति अधिक संशकित था। **रूजवेल्ट** ने 1941 के लेंड लीज एक्ट के अंतर्गत द्वितीय विश्व युद्ध के समय रूस को हथियार, कच्चा माल, खाद्यान आदि प्रदान किया था। रूजवेल्ट की मृत्यु (अप्रैल 1945) के पश्चात् ट्रूमैन अमेरिका के राष्ट्रपति बने। उसने स्टालिन को विश्वास में लिए बिना जापान पर परमाणु बम से हमला कर दिया (1945)। स्टालिन को परमाणु बम की सटीक प्रकृति के संबंध में नहीं बताया गया था, जबकि चर्चिल को इसके बारे में सूचित किया गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ट्रूमैन ने जापानी क्षेत्रों और इसके उपनिवेशों के बंटवारे में रूस को भाग लेने की अनुमति नहीं दी। स्टालिन और चर्चिल जैसे नेताओं के वक्तव्यों ने अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तनाव में वृद्धि की। उदाहरण के लिए **स्टालिन** ने तर्क दिया कि "पूंजीवाद पर अंतिम विजय तक पश्चिम के साथ सह-अस्तित्व असम्भव है।" **ट्रूमैन सिद्धांत** को शीत युद्ध के मुख्य कारणों में से एक माना जाता है।
- **डोमिनो प्रभाव (Domino Effect):** साम्यवाद पूंजीवादी देशों के लिए एक खतरा था और इसलिए इन देशों के नेताओं को साम्यवाद का भय था। आइजनहावर (1953-61) को डोमिनो प्रभाव का भय था, जिसके अंतर्गत यदि एक देश को साम्यवादी बनने की अनुमति दी गई तो पड़ोसी देश भी उसका अनुकरण करेंगे जो पूंजीवाद, लोकतंत्र और अमेरिका के आर्थिक एवं सैन्य हितों के लिए एक खतरे के रूप में था। डोमिनो प्रभाव के इस डर ने वियतनाम युद्ध (1961-75) में अमेरिका को भागीदार बनने के लिए विवश किया, क्योंकि चीन और उत्तर कोरिया के पश्चात् वियतनाम के एक साम्यवादी देश में परिवर्तित होने से जापान में साम्यवाद के व्युत्पन्न होने का भय व्याप्त हो जाता। उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका जापान को एक उन्नत पूंजीवादी अर्थव्यस्था बनाने के लिए बहुत अधिक सहायता प्रदान कर रहा था। यह एक ऐसा क्षेत्र था जो साम्यवाद के अधिक प्रभाव में आ रहा था।
- **मनोवैज्ञानिक भय:** बड़े स्तर पर साम्यवादी प्रचार के कारण जनता के बीच मनोवैज्ञानिक भय भी व्याप्त हो गया था क्योंकि शीत युद्ध के समय किये गये कार्यों को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ था।
- **संयुक्तराष्ट्र संघ की विफलता:** महत्वपूर्ण समस्याओं का समाधान न प्रस्तुत कर पाने और निष्पक्षता के अभाव एवं संयुक्तराष्ट्र को उपलब्ध शक्तियों की कमी के कारण प्रमुख महाशक्तियों का संयुक्तराष्ट्र में विश्वास नहीं था।

37. शीत युद्ध के लिए किसे उत्तरदायी ठहराया जाए?

इस संबंध में तीन दृष्टिकोण हैं: परंपरागत (Traditional), संशोधनवादी (Revisionist) और उत्तर-संशोधनवादी (Post-Revisionist)।

- **परंपरागत दृष्टिकोण (Traditional View):** परंपरागत दृष्टिकोण के अंतर्गत स्टालिन को शीत युद्ध के लिए दोषी माना जाता है। वह सोवियत संघ के बाहर साम्यवाद का प्रसार और पूंजीवाद को नष्ट करना चाहता था। इस दृष्टिकोण के समर्थकों का मानना है कि नाटो (नार्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन: NATO, 1949) का गठन और कोरियाई युद्ध (1950-53) में दक्षिण कोरिया की ओर से USA का हस्तक्षेप वस्तुतः "मुक्त विश्व" (पूंजीवादी देश अपने को मुक्त विश्व कहते थे) की साम्यवाद के विरुद्ध आत्मरक्षा के लिए एक लड़ाई थी।
- **संशोधनवादी दृष्टिकोण (Revisionist View):** वियतनाम युद्ध (1961-75) में अमेरिका की आक्रामक विदेश नीति की आलोचना और कम्बोडिया में पोल पॉट (1975-79) जैसे क्रूर शासकों को अमेरिकी समर्थन के कारण यह दृष्टिकोण प्रमुख बन गया। इसके बाद यह तर्क दिया जाने लगा

VISION IAS

था कि स्टालिन ने केवल आत्मरक्षा में कार्यवाही की थी और ट्रूमैन (1945-53 तक अमेरिकी राष्ट्रपति) ही वास्तविक दोषी था, जिसने अनावश्यक रूप से रूस को शत्रुता के लिए उकसाया। इस दृष्टिकोण के अनुसार द्वितीय विश्व युद्ध के कारण रूस को भारी क्षति हुई थी और आत्मरक्षा को ध्यान में रखते हुए USSR ने पूर्वी यूरोप में मित्रवत सरकारों के गठन का प्रयास किया था। अतः USA और पश्चिमी देशों को पूर्वी यूरोप को रूसी प्रभाव क्षेत्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए था (जिसकी चर्चिल ने 1944 में सहमति दी थी)।

- **उत्तर-संशोधनवादी दृष्टिकोण (Post-Revisionist View):** यह दृष्टिकोण उन तथ्यों पर आधारित था जो सरकारी दस्तावेजों की गोपनीयता की अवधि के समाप्त होने के पश्चात् प्रकाश में आये थे। इस दृष्टिकोण के अनुसार अमेरिका/पश्चिमी देश और सोवियत संघ दोनों ही शीत युद्ध के लिए उत्तरदायी थे। अमेरिकी आर्थिक नीतियों, जैसे- मार्शल सहायता (1947 की मार्शल योजना के अंतर्गत), को जानबूझ कर USSR की कीमत पर यूरोप में अमेरिकी प्रभाव बढ़ाने के लिए बनाया गया था। साम्यवाद के प्रसार के लिए स्टालिन के पास कोई दीर्घकालिक योजना नहीं थी, परन्तु वह अवसरवादी था और सोवियत प्रभाव को बढ़ाने के लिए किसी भी उपलब्ध अवसर का लाभ उठाना चाहता था। इसके अतिरिक्त दोनों महाशक्तियां परस्पर विश्वास विकसित करने में विफल रहीं और उच्च पारस्परिक संदेह के कारण किसी भी ओर से की गयी कार्यवाही को दूसरे द्वारा आक्रामकता के रूप में लिया गया।

यूरोपीय इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं के माध्यम से शीत युद्ध के विकास का अवलोकन

38. शीत युद्ध का उद्भव (स्टालिन युग: 1945-53)

याल्टा सम्मेलन (फरवरी 1945)

- द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से कुछ समय पहले जब मित्र राष्ट्रों को अपनी विजय सुनिश्चित लगने लगी थी तब इसका आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन के आयोजन का एक प्रमुख उद्देश्य यह था कि धुरी राष्ट्रों/शक्तियों (Axis Powers) से कैसे निबटा जाए। इसमें रूजवेल्ट (अमेरिका), चर्चिल (ब्रिटेन) और स्टालिन (USSR) ने भाग लिया था। सम्मेलन के दौरान निम्नलिखित समझौते किए गए थे:

चित्र: याल्टा सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों के नेता: **बाएं से-** ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल, यू. एस. राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूज़वेल्ट, और सोवियत नेता जोसेफ स्टालिन

VISION IAS

- ○ स्टालिन ने सभी पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने का वचन दिया। इसे **"स्वतंत्र यूरोप की घोषणा"** (Declaration of Liberated Europe) भी कहा जाता है। इस घोषणा के अनुसार, ये तीनों सहयोगी शक्तियाँ स्वतंत्र चुनावों के माध्यम से लोकतांत्रिक संस्थानों की स्थापना के लिए स्वतंत्र देशों की सहायता करेंगे।
- ○ **संयुक्त राष्ट्र संघ** का गठन किया जाएगा (अक्टूबर 1945 में इसकी स्थापना भी हुई) जो राष्ट्र संघ (लीग ऑफ़ नेशन्स) का स्थान लेगा।
- ○ **अधिकृत क्षेत्र (Occupation Zones):** आस्ट्रिया, वियना, जर्मनी और बर्लिन को ब्रिटेन, अमेरिका और सोवियत संघ के अधिकृत क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा (फ्रांस के लिए अधिकृत क्षेत्र बाद में तैयार किये गये थे)। ऐसा इसलिए था क्योंकि आस्ट्रिया और जर्मनी में भावी शासकीय प्रणाली (पूंजीवादी या साम्यवादी) पर निर्णय नहीं हुआ था। स्टालिन केवल सहयोगी राष्ट्रों की सेनाओं की यहाँ पर उपस्थिति के लिए सहमत हुआ था।
- ○ **पोलैंड के संबंध में:** पोलैंड से जर्मन वासियों को निकाल कर रूस ने वहां एक पोलिश साम्यवादी सरकार की स्थापना की थी, जबकि लंदन में पहले से ही एक निर्वासित पोलिश सरकार थी। यह सहमति हुई कि लंदन में निर्वासित पोलिश सरकार के कुछ सदस्य पोलिश साम्यवादी सरकार में सम्मिलित होंगे। परन्तु स्टालिन द्वारा पोलैंड को ओडर और नीस (Oder & Neisse) नदी के पूर्व में स्थित सभी जर्मन क्षेत्र दिए जाने की मांग को ब्रिटेन और अमेरिका द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।
- ○ **जापान के संबंध में:** स्टालिन जापान के विरुद्ध युद्ध में इस शर्त पर सम्मिलित हुआ था कि उसे तेल से समृद्ध सम्पूर्ण सखालिन द्वीप (सखालिन द्वीप का आधा क्षेत्र जापान द्वारा 1904-05 के रूस-जापान युद्ध के पश्चात् हड़प लिया गया था। भारत की OVL ने यहाँ निवेश किया है), क्यूराइल द्वीप और चीन के मंचूरिया के कुछ भाग प्राप्त होंगे।

पोट्सडैम सम्मेलन (जुलाई-अगस्त 1945)

- यह सम्मेलन अधिकृत जर्मनी में आयोजित किया गया था और इसमें स्टालिन, ट्रूमैन तथा चर्चिल ने भाग लिया था। चर्चिल का स्थान बाद में क्लीमेंट एटली ने लिया क्योंकि ब्रिटेन में लेबर पार्टी सत्ता में आ गयी थी। सम्मेलन के समय द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी की पराजय हो चुकी थी परन्तु जापान पर अभी तक परमाणु बम नहीं गिराया गया था। पोट्सडैम सम्मेलन में निम्नलिखित समझौते किये गये थे:
  - ○ **जर्मन निरस्त्रीकरण:** यह सहमति हुई थी कि जर्मनी को निरस्त्र कर दिया जायेगा। सैन्य उपकरणों का उत्पादन करने वाले सभी औद्योगिक प्रतिष्ठानों को नष्ट या नियंत्रित करके जर्मनी की युद्ध क्षमता को नष्ट करना था।
  - ○ **जर्मन अर्थव्यवस्था:**
    - ▪ यह सुनिश्चित किया जाना था कि जर्मनी में जीवन स्तर यूरोप के औसत जीवन स्तर से अधिक नहीं होना चाहिए और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किस प्रकार के और कितनी

संख्या में उद्योगों को विघटित किया जायेगा यह निर्णय बाद में किया जाना था। इसमें जर्मनी में इस्पात उत्पादन की सीमा निर्धारित करना, जर्मनी के भारी उद्योगों के स्तर को 1938 के स्तर का 50% करना और अन्य कई उपाय सम्मिलित थे। परन्तु बाद में सहयोगी राष्ट्रों ने इस नीति को त्याग दिया और यूरोप में पूंजीवाद को बढ़ावा देने के लिए मार्शल योजना (1947) के द्वारा पूर्वी जर्मनी की समृद्धि के लिए कार्य किया।

- अधिकांश जर्मन क्षतिपूर्ति USSR को प्राप्त हुई क्योंकि उसे अधिकतम क्षति पहुंची थी। साथ ही USSR को गैर-खाद्य वस्तुओं को जर्मनी में इसके अधिकृत क्षेत्र एवं पश्चिमी क्षेत्र से ले जाने का अधिकार प्राप्त हुआ। लेकिन इस संबंध में USSR को पश्चिमी क्षेत्र की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ी।

- **जर्मन सीमाएं:**
  - **अधिकृत क्षेत्र (Occupation Zones):** जर्मनी और ऑस्ट्रिया तथा उनकी सम्बन्धित राजधानियों (बर्लिन और वियना) को 4 अधिकृत क्षेत्रों में विभाजित किया गया। याल्टा सम्मेलन में इसे सैद्धांतिक रूप में स्वीकार किया गया था और पोट्सडैम सम्मेलन के द्वारा कार्यान्वित किया गया।
  - **ओडर-नीस रेखा (Oder-Neisse line):** जर्मनी की पूर्वी सीमा को अस्थाई रूप से पश्चिम की ओर ओडर-नीस रेखा पर स्थानांतरित किया जाना था। इस प्रकार ओडर-नीस रेखा अस्थाई थी और इस बात पर सहमति हुई कि जर्मनी की पूर्वी सीमा को अंतिम रूप बाद में दिया जायेगा {1990 में 'जर्मनी से सम्बन्धित अंतिम निपटान संधि' (Treaty of Final Settlement with respect to Germany) के तहत इसे अंतिम रूप दिया गया}। इस प्रकार जर्मनी का आकार उसकी 1937 की सीमाओं से तीन चौथाई कम हो गया था। नई सीमा रेखा से पूर्व में अवस्थित क्षेत्र को पोलैंड को दिया जाना था, जिसमें पूर्वी प्रशा, सिलेसिया, पश्चिमी प्रशा और पोमेरानिआ के दो तिहाई भाग सम्मिलित थे। ये क्षेत्र मुख्यतः कृषि संपन्न क्षेत्र थे, जिसमें ऊपरी सिलेसिया अपवाद था जो जर्मनी के भारी उद्योग का दूसरा बड़ा केंद्र था।

  - **जर्मन अधिग्रहण को रद्द करना:** द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके पहले जिन क्षेत्रों का जर्मनी ने अधिग्रहण किया था उन्हें वापस ले लिया गया, जिनमें सुडेटनलैंड, आस्ट्रिया और पोलैंड के पश्चिमी भाग सम्मिलित थे।
- **नाजीवाद से मुक्ति:** नाजी पार्टी को भंग किया जाना था और नाजियों पर युद्ध अपराधियों के रूप में अभियोग चलाया जाना था। यह अभियोग **न्यूरेमबर्ग मुकदमा (Nuremberg trials)** के नाम से विख्यात हुआ।
- **जनसांख्यिकीय परिवर्तन:** इसके कारण ओडर-नीस रेखा के बाहर (अर्थात् पोलैंड, हंगरी और चेकोस्लोवाकिया) अर्थात् पूर्वी सीमा के बाहर रहने वाले जर्मनों का एक प्रकार से मानवीय निष्कासन हुआ।

परन्तु यहां कई मुद्दों पर असंतोष और असहमति थी:

- जर्मनी के इन चार क्षेत्रों के एकीकरण की सम्भावना और उसके समय के मुद्दे पर सहमति का अभाव था।
- ओडर-नीस रेखा के पूर्व में स्थित जर्मन क्षेत्रों पर रूसी सैनिकों ने अधिकार कर लिया और साम्यवादी पोलिश सरकार द्वारा इसके प्रशासन का संचालन किया जा रहा था। ब्रिटेन और अमेरिका इससे अप्रसन्न थे, यद्यपि वे कुछ समय के लिए जर्मन सीमाओं को पश्चिम की ओर ओडर-नीस रेखा तक ले जाने के लिए सहमत हो गए थे।
- जापान के संदर्भ में भी असहमति थी और परमाणु बम से उसपर हमले के रहस्य को गुप्त रखा गया था: पोट्सडैम सम्मेलन के समय स्टालिन को यह नहीं बताया गया था कि अमेरिका जापान पर परमाणु बम से हमले की योजना बना रहा है, हालांकि चर्चिल को विश्वास में लिया गया था। उल्लेखनीय है कि इस सम्मेलन के दो दिन पश्चात् बम गिरा दिया गया था।

1945 के पश्चात् यूरोप

Figure: Europe after 1945

पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का विस्तार

- **वाक् युद्ध (War of words):** फरवरी 1946 में स्टालिन ने कुख्यात भाषण दिया, जिसमें उसने तर्क दिया कि "पूंजीवाद पर अंतिम विजय तक पश्चिम के साथ सह-अस्तित्व असम्भव है"। इसका अर्थ था कि भविष्य में सोवियत रूस और पूंजीवादी पश्चिमी देशों के बीच युद्ध अनिवार्य था। इसके प्रतिउत्तर में, चर्चिल ने मार्च 1946 में अपनी अमेरिकी यात्रा के दौरान "लौह आवरण" वाला भाषण (Iron Curtain speech) दिया। यहाँ उसने पूर्वी यूरोप में छाए 'लौह आवरण' की बात

की। उसने साम्यवाद के खतरे का सामना करने के लिए पश्चिमी देशों के एक गठबंधन की मांग की। स्टालिन और ब्रिटिश संसद में लेबर पार्टी के सदस्यों ने चर्चिल को एक और युद्ध भड़काने वाला कह कर आलोचना की।

लौह आवरण (Iron Curtain) क्या था?

- लौह आवरण वस्तुतः पूर्वी एवं पश्चिमी यूरोप के बीच सभी कार्यक्षेत्रों में अर्थात् आर्थिक और व्यापारिक संबंध, राजनीतिक संबंध और व्यक्ति से व्यक्ति के सम्पर्क में पारस्परिक क्रिया के अभाव का एक प्रतीक था।
- चर्चिल ने स्टालिन के फरवरी 1946 के भाषण के प्रतिउत्तर में 5 मार्च 1946 को अमेरिका में दिए गए अपने भाषण में इसका प्रयोग किया था। जब स्टालिन ने पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों को विशेषकर चेकोस्लोवाकिया तक मार्शल सहायता (1947) पहुंचने से रोक दिया, तब लौह आवरण एक वास्तविकता लगने लगा था।
- पूर्वी यूरोप का एकमात्र लोकतांत्रिक देश चेकोस्लोवाकिया जब एक सैन्य तख्ता पलट के द्वारा साम्यवादी बन गया तो लौह आवरण की सशक्त उपस्थिति दिखाई देने लग गयी थी। आगे की घटनाएं, जैसे- पश्चिमी बर्लिन की घेराबंदी (1948-49) और बर्लिन की दीवार (1961-89) यूरोप में लौह आवरण के अस्तित्व की पुष्टि करते थे।

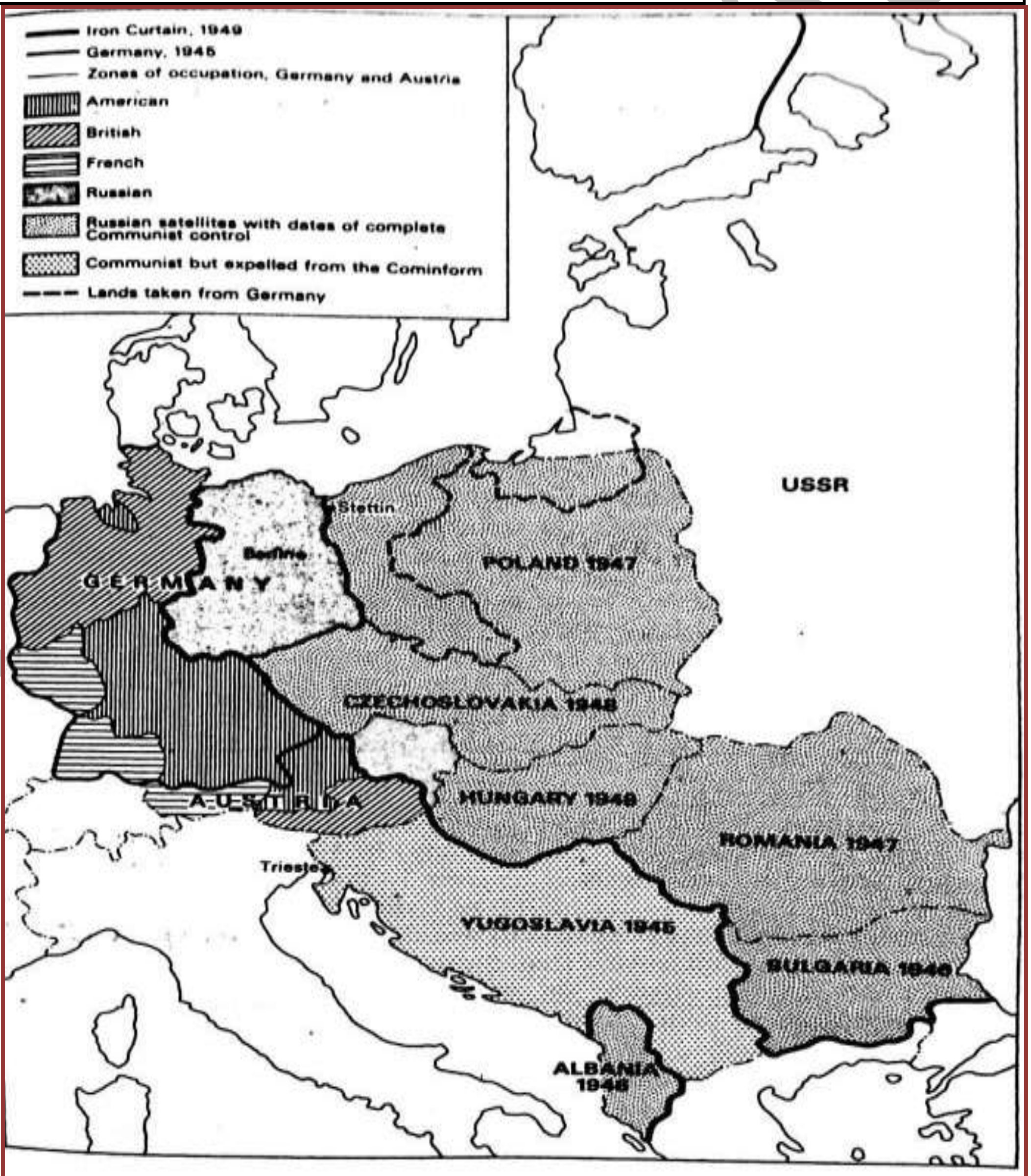

Figure: Central and Eastern Europe during Cold War

- **स्टालिन ने साम्यवाद का विस्तार किया:** पोट्सडैम सम्मेलन और जापान पर परमाणु हमले की घटना के उपरांत स्टालिन ने पूर्वी यूरोप में राजनीतिक रूप से हस्तक्षेप किया। फलस्वरूप पोलैंड, बुल्गारिया, अल्बानिया एवं रोमानिया में साम्यवाद समर्थक शासन स्थापित हो गया। कुछ मामलों में विरोधियों को बंदी बनाया गया और उनकी हत्या तक कर दी गई। 1947 तक चेकोस्लोवाकिया को छोड़ कर पूर्वी यूरोप के सभी राष्ट्रों में साम्यवादी सरकारें थी। चुनावों में धांधली हुई, गठबंधन सरकारों में गैर-साम्यवादी सदस्यों को निष्कासित कर दिया गया और इन राज्यों में साम्यवादी पार्टी को छोड़ कर अन्य सभी पार्टियों को भंग कर दिया गया। यह सब गुप्त पुलिस के कारण और रूसी सेना की देखरेख में हुआ। पूंजीवादी पश्चिमी देश इससे क्रुद्ध हो गए, क्योंकि इससे स्टालिन ने याल्टा सम्मेलन के दौरान पूर्वी यूरोप में 'निष्पक्ष चुनावों" के वचन का उल्लंघन किया था। परन्तु स्टालिन के पक्ष में यहाँ यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि चर्चिल पूर्वी यूरोप को रूसी प्रभाव क्षेत्र के रूप में मानने के लिए सहमत हुआ था।
- युगोस्लाविया में टीटो ने जर्मनी को पराजित करने के लिए साम्यवादियों का नेतृत्व किया था, सोवियत संघ की सेनाओं ने नहीं। टीटो एक लोकप्रिय नेता था और 1945 में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनावों में विजयी हुआ था। टीटो के आधीन जिस सरकार का गठन हुआ था वह एक साम्यवादी सरकार थी। लेकिन टीटो युगोस्लाविया के आंतरिक मामलों में और विदेश नीति में सोवियत हस्तक्षेप के विरुद्ध था।

ट्रूमैन सिद्धांत (Truman Doctrine, March 1947)

यूरोप की घटनाओं से परेशान होकर अमेरिका ने जिस नीति को अपनाया उसे ट्रूमैन सिद्धांत के नाम से जाना गया, जिसके द्वारा अमेरिका ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् अलगाव की नीति पर वापस नहीं लौटेगा, जैसा उसने प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् किया था। ट्रूमैन सिद्धांत का आशय था कि अमेरिका "रोकथाम की नीति" (Policy of Containment) (अर्थात् साम्यवाद के प्रसार को रोकने की नीति) को अपनाएगा, जिसके अंतर्गत वह न केवल यूरोप में अपितु पूरे विश्व में साम्यवाद को 'रोकने' के लिए प्रतिबद्ध है। ट्रूमैन सिद्धांत से सम्बन्धित कुछ पहलू इस प्रकार हैं:

- इसका उद्देश्य साम्यवाद को मुक्त विश्व (पूंजीवादी देश स्वयं को यही कहना पसंद करते थे) में फैलने से "रोकना" था।
- इसका प्रारम्भ ग्रीस में होने वाली घटनाओं के कारण हुआ जहाँ ब्रिटेन ने द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी को पराजित कर वहां राजशाही बहाल कर दी थी। परन्तु अब साम्यवादियों के नेतृत्व में एक गृह-युद्ध छिड़ गया था। यहां के साम्यवादियों को अल्बानिया, बुल्गारिया और युगोस्लाविया की साम्यवादी सरकारों का समर्थन मिलने लगा था। ब्रिटेन यहां के साम्यवादियों से लड़ता लड़ता थक चुका था। अतः इसने अमेरिका से मदद के लिए गुहार लगाई और 1947 में ग्रीस से वापसी कर ली। परिणामस्वरूप राष्ट्रपति ट्रूमैन ने ट्रूमैन सिद्धांत की घोषणा कर दी, जिसमें कहा गया था कि, "हमलावर अल्पसंख्यकों या बाहरी हस्तक्षेप के विरुद्ध अमेरिका स्वतंत्र लोगों का समर्थन करेगा"। अमेरिका ने इस भार को अपने ऊपर ले लिया और उसके पश्चात् साम्यवादियों के विरुद्ध संघर्ष में ग्रीक लोगों की सहायता की। इस प्रकार 1947 में अमेरिका का ग्रीस में हस्तक्षेप शीत युद्ध का आरम्भ था।
- *रोकथाम की नीति* ने आने वाले वर्षों में निम्नलिखित रूप धारण किए:
    - मार्शल योजना (1947) के अंतर्गत आर्थिक सहायता जैसे उपाय।
    - नाटो (1949) जैसे सैन्य गुटों का निर्माण।
    - सैन्य श्रेष्ठता के लक्ष्य को प्राप्त करने में हथियारों की होड़ और अन्तरिक्ष की दौड़ में नेतृत्व स्थापित करने के प्रयास करना।
    - तीसरे देशों में राजनीतिक हस्तक्षेप और चुनावों में धांधली के द्वारा यह सुनिश्चित करना कि पूजीवादी सरकारें ही सत्ता में आएं। इसका उद्देश्य अमेरिका के आर्थिक और सामरिक हितों की सुरक्षा करना था। इसे हम निम्नलिखित के माध्यम से समझ सकते हैं:

VISION IAS

- **इटली:** 1948 के चुनावों में CIA ने अधिकारिक रूप से यह स्वीकार किया कि इसने क्रिश्चियन और अन्य साम्यवादी विरोधी प्रत्याशियों को 1 मिलियन डॉलर की सहायता दी थी, जो पूंजीवाद समर्थक बहुदलीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को पसंद करते थे। सभी अनुमानों के अनुसार इटली की साम्यवादी पार्टी चुनावों में विजयी होने ही वाली थी, परन्तु CIA की सहायता से क्रिस्चियन डेमोक्रेटिक पार्टी ने सहज अंतर से विजय प्राप्त की।
- **मध्य अमेरिका:** निकारागुआ में 1981-90 तक अमेरिका ने CIA के माध्यम से वामपंथी सरकार को अपदस्थ करने में विद्रोहियों की सहायता की। 1980 में अल साल्वाडोर में अमेरिका ने एक सर्वाधिकारवादी शासन (authoritarian regime) की सहायता की थी, जिसे वामपंथी गुरिल्लाओं से खतरा था।
- **दक्षिण अमेरिका:** यहां की दक्षिणपंथी सरकार को अमेरिकी समर्थन से बहुत अधिक हिंसा और अस्थिरता देखने को मिली।
- **लेबनान और जॉर्डन:** 1950 के दशक के अंत में इजराइल को पश्चिमी देशों के समर्थन और साथ ही स्वेज युद्ध (1956) में स्पष्ट तौर पर (इन पूंजीवादी देशों के) समर्थन के कारण अरब देश पश्चिमी देशों के विरोध में आ गए। अमेरिका और ब्रिटेन ने लेबनान तथा जॉर्डन में इन देशों की पश्चिम समर्थक सरकारों को गिरने से बचाने के लिए अपनी सेनाएं भेजीं।
- **ईरान:** ईरान में 1941 से मोहम्मद रजा पहलवी का शासन था। 1951 में, ईरान की संसद (मजलिस) ने ब्रिटिश नियंत्रण वाली कम्पनी, एंग्लो ईरानी तेल कम्पनी के राष्ट्रीयकरण का आदेश दिया और मोहम्मद मुस्सादिक को ईरान का प्रधानमंत्री बनाया गया। लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित प्रधानमंत्री मुस्सादिक के विरुद्ध तख्ता पलट में CIA ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और उसके पश्चात् ईरान के शाह पहलवी को अपना निरंकुश शासन स्थापित करने में सहायता की। तख्ता पलट की कार्यवाही इसलिए की गयी थी, क्योंकि अमेरिका को यह लग रहा था कि मुस्सादिक सोवियत संघ से निकट गठबंधन में संलिप्त था। उसके पश्चात् शाह का अमेरिका से निकट का संबंध हो गया। उसने ईरान को बगदाद संधि (1955) से जोड़ा। यह ईरान, इराक, तुर्की, पाकिस्तान और अमेरिका के बीच एक सैन्य संधि थी। उसने इरान में तेल के भंडार विकसित करने के लिए अमेरिकी तेल कम्पनियों को रियायतें प्रदान की। अन्ततः शाह को 1979 में एक इस्लामिक क्रांति में सत्ताच्युत कर दिया गया, क्योंकि उसने शिया मौलवियों से झगड़ा कर लिया था जो ईरानी समाज की पश्चिमी शैली में आधुनिकीकरण के लिए किये गये सुधारों के विरुद्ध थे।

मार्शल योजना (Marshall Plan: जून 1947)

- आधिकारिक रूप से इसे यूरोपीय सुधार कार्यक्रम कहा जाता था। इसका उद्देश्य यूरोप को आर्थिक रूप से मदद कर उसे समृद्ध बनाना व यूरोप में USA के प्रभाव में वृद्धि कर साम्यवाद के प्रसार को रोकना था।
- आधिकारिक रूप से यह "भूख, निर्धनता और अराजकता को दूर करने" का भी एक प्रयास था। 1947-51 तक मार्शल योजना के अंतर्गत पश्चिमी यूरोप को 1,30,000 मिलियन डॉलर दिए गए थे। मार्शल योजना के निम्नलिखित प्रभाव थे:
  - पश्चिमी यूरोप जो युद्ध से तबाह हो गया था उसकी स्थिति में इसके कारण तेजी से सुधार हुआ।
  - इसके कारण पश्चिमी जर्मनी और पश्चिमी बर्लिन की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। दूसरी ओर सोवियत संघ के अधीन पूर्वी जर्मनी की आर्थिक स्थिति और बदतर हो गई। सोवियत संघ ने

VISION IAS

पूर्वी जर्मनी की समृद्धि के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया और सोवियत संघ के विकास के लिए उसका शोषण किया।
- मार्शल सहायता के दीर्घकालिक परिणाम भी हुए, जैसे- बर्लिन की दीवार का ढहना (1961-89) और अंततः पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का अंत।
- इससे अमेरिकी निर्यात में वृद्धि हुई, क्योंकि जीवन स्तर में सुधार और पश्चिमी यूरोप में आर्थिक विकास से अमेरिकी व्यवसायों को एक वृहद् बाजार प्राप्त हुआ।

ट्रूमैन सिद्धांत और मार्शल योजना को स्टालिन का प्रतिउत्तर

- मार्शल सहायता या मार्शल योजना के अंतर्गत उपलब्ध सहायता तकनीकी रूप से सभी इच्छुक यूरोपीय राष्ट्रों को उपलब्ध थी, परन्तु स्टालिन ने सोवियत प्रभाव वाले राज्यों (अर्थात् पूर्वी यूरोपीय देश) को मार्शल योजना के अंतर्गत सहायता स्वीकार करने के लिए मना किया था।
- स्टालिन ने मार्शल योजना को "डॉलर साम्राज्यवाद" का एक रूप बताया तथा इसकी निंदा की। साथ ही उसने इसे पश्चिमी यूरोप में अमेरिकी प्रभाव बढ़ाने वाली और सोवियत प्रभाव के क्षेत्र में (अर्थात् पूर्वी यूरोप) अमेरिकी हस्तक्षेप वाली एक योजना करार दिया।
- इस प्रकार अमेरिका के ट्रूमैन सिद्धांत और मार्शल योजना के प्रतिउत्तर में स्टालिन ने **मोलोटोव योजना (Molotov Plan, 1947), कॉमिन्फॉर्म (Cominform, 1947) एवं कॉमकॉन (Comecon, 1949)** की घोषणा की।
  - **मोलोटोव योजना (1947):** इसका उद्देश्य सोवियत संघ के पिछलग्गू देशों को सहायता प्रदान करना था।
  - **कॉमिन्फॉर्म (कम्युनिस्ट इन्फोर्मेशन ब्यूरो 1947-56):** यह कॉमिन्टर्न (1919-43) का परवर्ती था और यूरोप की सभी साम्यवादी पार्टियां इसमें सम्मिलित थीं। कॉमिन्फॉर्म का उद्देश्य पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ के पिछलग्गू देशों में सोवियत संघ का नियंत्रण बढ़ाना था। एक साम्यवादी राष्ट्र होना ही काफी नहीं था, अपितु इसके तहत रूसी शैली वाले साम्यवादी राष्ट्र की परिकल्पना की गयी अर्थात् इन देशों के साम्यवादी पार्टियों को सोवियत संघ के आदेशों का पालन करना पड़ता था। इसके अंतर्गत हम निम्नलिखित उपायों को देखते हैं:
    - पूर्वी यूरोप का औद्योगीकरण, एकसूत्रीकरण और केन्द्रीकरण किया जाना था।
    - सदस्य राष्ट्रों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे मुख्य रूप से कॉमिन्फॉर्म देशों से ही व्यापार करेंगे। गैर-साम्यवादी देशों से सभी प्रकार के सम्पर्कों को हतोत्साहित करने की संकल्पना भी इसमें निहित थी।
    - युगोस्लाविया ने जब इस पर आपत्ति की तो इससे उसका निष्कासन कर दिया गया।
    - 1956 में जब निकिता ख्रुश्चेव सत्ता में आया तो कॉमिन्फॉर्म को भंग कर दिया। उसने अपने 1956 के विख्यात भाषण में यह तर्क दिया कि साम्यवाद की ओर कई मार्ग जाते हैं, इसलिए अन्य साम्यवादी देशों पर रूसी शैली थोपने की आवश्यकता नहीं है।
  - **कॉमकॉन (Comecon - काउंसिल फॉर म्युचुअल इकोनॉमिक असिस्टेंस - 1949-1991):** इसका गठन कॉमिन्फॉर्म की आर्थिक नीतियों में समन्वय करने के लिए किया गया था।

चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादियों का सत्ता में आना (1948)

पूर्वी यूरोप में चेकोस्लोवाकिया एकमात्र बहुदलीय लोकतांत्रिक देश था। यहाँ की 1946 में निर्वाचित सरकार वस्तुतः साम्यवादी और दक्षिणपंथी पार्टियों के गठबंधन की सरकार थी। चेकोस्लोवाकिया को आशा थी कि वह पश्चिमी और पूर्वी यूरोप के बीच एक सेतु का कार्य करेगा। 1948 में चुनाव होने थे और साम्यवादियों की विजय की कोई भी संभावना नहीं थी क्योंकि सोवियत संघ के दबाव में मार्शल सहायता को अस्वीकार करने के कारण यहां का जनमत उनके (साम्यवादियों) विरुद्ध था। चुनाव से

VISION IAS

पहले साम्यवादियों ने एक सशस्त्र तख्तापलट कार्यवाही की। इसी बीच सोवियत संघ ने आस्ट्रिया में अपने नियंत्रण वाले क्षेत्र से चेकोस्लोवाकिया के साथ आस्ट्रियाई सीमा पर अपनी सेना भेज दी, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तख्तापलट की कार्यवाही निर्विघ्न पूरी हो जाए। इस चुनाव में साम्यवादी विजयी हुए, क्योंकि केवल साम्यवादियों को ही चुनाव लड़ने की अनुमति दी गयी थी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने विरोध किया परंतु यह कोई कार्यवाही न कर सकी क्योंकि यह रूसी संलिप्तता सिद्ध नही कर सकी (सोवियत संघ का तर्क था कि तख्तापलट एक आंतरिक मामला था)। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि यदि कोई पिछलग्गू देश पूंजीवादी राष्ट्र बनने का प्रयास करेगा तो सोवियत संघ वहां हस्तक्षेप करेगा।

जर्मनी का विभाजन

याल्टा सम्मेलन (1945) के पश्चात् जर्मनी और बर्लिन को ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका एवं सोवियत संघ के नियंत्रणाधीन 4 अधिग्रहीत क्षेत्रों में विभाजित किया गया।

पश्चिमी बर्लिन की नाकेबंदी और एयरलिफ्ट (1948-49)

अमेरिका, फ्रांस और ब्रिटेन ने जर्मनी में अपने अधिग्रहित क्षेत्रों में आर्थिक सुधारों का प्रयास किया, वहीं सोवियत संघ ने ठीक इसके विपरीत कार्य किया। इसके निम्नलिखित परिणाम देखने को मिले:

- नीति में इस अंतर के कारण जर्मनी के पश्चिमी क्षेत्रों और रूस द्वारा अधिग्रहित क्षेत्रों की समृद्धि में जमीन आसमान का अंतर व्याप्त हो गया। इससे सोवियत संघ पर दबाव बना और इसके नियंत्रण वाले क्षेत्र के निवासियों के असंतोष में वृद्धि हुई।
- अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने पश्चिमी क्षेत्रों में नई मुद्रा प्रारम्भ की। सोवियत संघ के लिए एक ही शहर में दो मुद्राओं को चलाना असम्भव लग रहा था। शीघ्र ही अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने सोवियत संघ पर चार क्षेत्रों का विलय करके एक एकीकृत जर्मनी के लिए दबाव बनाना प्रारम्भ कर दिया। पूर्वी जर्मनी सोवियत संघ के हाथों से फिसला जा रहा था। फलतः सोवियत संघ ने इसका प्रतिउत्तर कुख्यात पश्चिमी बर्लिन के नाकेबंदी से दिया (1948-49)।

 ©Vision IAS

सोवियत संघ की इस नाकेबंदी को हम निम्नलिखित तरीके से विस्तार में समझ सकते हैं:

- **यह क्या था:** 1948 में सोवियत संघ ने पश्चिमी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी के बीच सभी मार्गों (रेल, सड़क, नहर) को बंद कर दिया। इसे ही पश्चिमी बर्लिन की नाकेबंदी के रूप में जाना गया।
  - **उद्देश्य:** इस नाकेबंदी के माध्यम से सोवियत संघ पश्चिमी बर्लिन वासियों को भूखा मारना चाहता था। इसके द्वारा वह अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस को बर्लिन से वापस जाने के लिए विवश करना चाहता था, ताकि सोवियत संघ पूरे बर्लिन पर अपना अधिकार कर ले।
  - **क्यों:** सोवियत संघ ने यह कार्यवाही इसलिए की क्योंकि उसे पूर्वी जर्मनी/पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी जर्मनी/पश्चिमी बर्लिन के समृद्धि स्तर में अंतर होने के कारण पूर्वी बर्लिन पर नियंत्रण रखने के कठिनाई हो रही थी। पश्चिमी देशों के नियंत्रणाधीन शहरों में विभिन्न आर्थिक नीतियों और मार्शल योजना के अंतर्गत पर्याप्त सहायता दिए जाने के कारण सोवियत संघ क्रुद्ध हो गया था। जब पश्चिमी शक्तियों ने नई मुद्रा प्रारम्भ की तो सोवियत संघ को एक ही शहर में दो मुद्राएँ चलाना असम्भव लग रहा था।
  - **एयरलिफ्ट (Airlift) का उपयोग:** बर्लिन की नाकेबंदी को निष्प्रभावी करने के लिए अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों ने अपने वायुयानों द्वारा लगभग एक वर्ष तक खाद्य सामग्री को पश्चिमी बर्लिन में पहुँचाया। इस प्रकार नाकेबंदी असफल हो गई और सोवियत संघ को नाकेबंदी समाप्त करना पड़ा।

चित्र: 1948 के बर्लिन एयरलिफ्ट का एक दृश्य

VISION IAS

- **युद्ध की संभावना:** किसी भी आपातकालीन स्थिति से निबटने के लिए अमेरिका ने अपने बमवर्षक विमानों को ब्रिटिश हवाई अड्डों पर तैनात कर दिया था।
- **प्रभाव:** पश्चिमी बर्लिन की नाकेबंदी (1948-49) के पश्चात् निम्नलिखित परिणाम सामने आए:
  - अमेरिका एवं रूस के बीच संबंध और कटुतापूर्ण हो गए। अब यह निश्चित हो चुका था कि निकट भविष्य में जर्मनी विभाजित ही रहने वाला था।
  - अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों को जर्मन फेडरल रिपब्लिक (1949) के रूप रूप में एकीकृत कर दिया। सोवियत रूस ने भी इसका अनुसरण करते हुए अपने नियंत्रण वाले क्षेत्र को जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक (1949) के रूप में घोषित कर दिया। इससे जर्मनी का दो राज्यों में विभाजन हो गया।
  - अमेरिका ने पश्चिमी बर्लिन की नाकेबंदी के पश्चात् 1949 में नाटो (North Atlantic Treaty Organization: NATO) का गठन किया क्योंकि इस दौरान पूंजीवादी देशों ने स्वयं को किसी भी सैन्य संघर्ष के लिए तैयार नहीं पाया था। ब्रसेल्स रक्षा संधि (1948) नाटो का अग्रदूत थी और इसमें ब्रिटेन, फ्रांस, हॉलैंड, लक्जमबर्ग तथा बेल्जियम सम्मिलित थे। इस संधि के अंतर्गत, जिसमें ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, कनाडा, इटली, नॉर्वे, डेनमार्क, पुर्तगाल, बेल्जियम, हॉलैंड, लक्जमबर्ग और आयरलैंड सम्मिलित थे, सदस्य राष्ट्रों ने अपनी रक्षा सेनाओं को नाटो के अधीन कर दिया। इसे सामूहिक सुरक्षा (collective security) के सिद्धांत पर कार्य करना था। सामूहिक सुरक्षा के इस सिद्धांत में यह निहित था कि यदि एक राष्ट्र पर आक्रमण होता है तो शेष सभी देश उसकी रक्षा के लिए कूद पडेंगे। कोई भी सदस्य राष्ट्र अपने क्षेत्र में गैर-सदस्य देशों के सैनिक अड्डे की अनुमति नहीं देगा। 1952 में ग्रीस और तुर्की भी नाटो का अंग बन गए, जबकि पश्चिमी जर्मनी 1955 में इसमें सम्मिलित हुआ।
  - नाटो का गठन एक महत्वपूर्ण मोड़ था क्योंकि नाटो के साथ अमेरिका ने पहली बार किसी सैन्य कार्यवाही के लिए पहले से ही अपनी सेना देने का वचन दिया था और अपनी *"किसी गठजोड़ में न उलझने"* (no entangling alliances) की नीति को त्याग दिया था।

अपने पूर्वी समकक्ष क्षेत्र की तुलना में पश्चिमी जर्मनी की आर्थिक समृद्धि के कारण

- **पश्चिमी जर्मनी में पश्चिमी राष्ट्रों की नीति:** अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने पश्चिमी जर्मनी और पश्चिमी बर्लिन के आर्थिक सुधार के लिए निम्नलिखित प्रयास किए:
  - अमेरिका ने 1947 में मार्शल सहायता प्रारम्भ की।
  - 1948 में इन तीनों शक्तियों ने जर्मनी में अपने अधिग्रहीत क्षेत्रों को एक आर्थिक इकाई के रूप में एकजुट कर लिया था।
  - 1949 में बर्लिन की नाकेबंदी (1948-49) की असफलता के पश्चात् अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस ने पहल करते हुए अपने तीनों क्षेत्रों को एकीकृत पश्चिमी जर्मनी या जर्मन फेडरल रिपब्लिक के रूप में विलय कर दिया (1949)।
- **पूर्वी जर्मनी में सोवियत संघ की आर्थिक नीति:** स्टालिन द्वितीय विश्व युद्ध में रूस की तबाही के लिए जर्मनी से क्षतिपूर्ति वसूलने हेतु अडिग था।
  - उसने पूर्वी जर्मनी के साथ एक पिछलग्गू के समान व्यवहार किया और इसके अधिकांश संसाधनों का दोहन कर के रूस में जमा कर दिया।
  - स्टालिन ने पूर्वी जर्मनी के आर्थिक सुधार के लिए कोई ध्यान नहीं दिया। इसे केवल एक कच्चे माल के स्रोत और रूसी माल के लिए निर्यात बाजार के रूप में उपयोग किया।

VISION IAS

- एक और समस्या यह थी कि सोवियत संघ इतना समृद्ध नहीं था जितना अमेरिका। अतः यह भारी मात्रा में सहायता प्रदान नहीं कर सकता था। उसे अपने खुद के देश की समृद्धि के लिए संसाधनों की आवश्यकता थी। इस प्रकार मोलोटोव योजना मार्शल योजना का मुकाबला नहीं कर सकती थी।

अंतत: पूर्वी जर्मनी में दिसम्बर 1989 में साम्यवाद का अंत हुआ और जर्मनी का पुनः एकीकरण हो गया।

शीत युद्ध के जिस चरण का अब हम अध्ययन करने जा रहे हैं, सम्भवत: वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस चरण में दो देशों के बीच बहुत अधिक तनाव उत्पन्न हुआ था।

हथियारों की होड़ का प्रारम्भ होना

- सोवियत संघ ने जब 1949 में परमाणु बम विकसित कर लिया तब हथियारों की होड़ तीव्र गति से आरम्भ हो गई। उसके पश्चात् अमेरिका ने एक और अधिक शक्तिशाली हाईड्रोजन बम की योजना बनाई और निर्मित कर लिया। 1953 तक सोवियत संघ ने भी हाईड्रोजन बम विकसित कर लिया था।

सुदूर पूर्व में सोवियत संघ

- जर्मनी के आत्मसमर्पण के तीन माह और हिरोशिमा पर बम गिराने के तीन दिनों के पश्चात्, अगस्त 1945 में स्टालिन ने याल्टा सम्मेलन (फरवरी 1945) में हुई सहमति के अनुसार कार्य करते हुए सखालिन और जापान की कठपुतली सरकार अर्थात् मांचुकुओ (Manchukuo) राज्य पर आक्रमण कर दिया। इसे सोवियत-जापान युद्ध के रूप में जाना गया। सोवियत संघ ने KMT (कुओमिंतांग) को मंचुरिया में प्रवेश करने से रोक दिया और इसे माओ की CCP (चाइनीज कम्युनिस्ट पार्टी) लिए आरक्षित कर दिया। बाद में सोवियत संघ ने सखालिन और क्यूराईल द्वीपों को अपने अधीन कर लिया, परन्तु चीन की मुख्य भूमि का नियंत्रण डेमोक्रेटिक पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना को सौंप दिया। आज क्यूराईल द्वीप रूस और जापान के बीच झगड़े की जड़ बना हुआ है। जापान के साथ हुई सैन फ्रांसिस्को शांति संधि (San Francisco Peace Treaty, 1951) में कहा गया कि जापान को क्यूराईल द्वीप पर अपने सभी दावे छोड़ देने चाहिए। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस संधि में क्यूराईल द्वीपों पर सोवियत संघ के संप्रभु अधिकारों को भी मान्यता नहीं दी गयी है। रूस का कहना है कि क्यूराईल द्वीपों पर सोवियत प्रभुत्व को द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर हुए समझौते में मान्यता दी गयी थी।

सोवियत संघ और चीन ने फ्रांस के विरुद्ध इंडो-चाइना की स्वाधीनता संघर्ष (1946-54) का समर्थन किया था, वहीं अमेरिका ने आर्थिक और सैन्य सहायता से साथ फ्रांस का समर्थन किया था।

चीन: 1949 में जब माओत्से-तुंग की CCP ने गृह-युद्ध में च्यांग काई शेक की KMT को हरा दिया तब चीन का उदय एक साम्यवादी राज्य के रूप में हुआ। इसके उपरांत च्यांग काई शेक ताईवान चला गया और वहाँ उसने निर्वासन में एक सरकार की स्थापना कर ली और पूरे चीन पर अपने प्रभुत्व का दावा करने लगा। सोवियत संघ और चीन ने 1950 में एक परस्पर सहायता और मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किए। इन घटनाओं ने अमेरिका को चौकन्ना कर दिया। जब उत्तर कोरिया ने दक्षिण कोरिया पर आक्रमण किया तो इस स्थिति में अमेरिका एक और साम्यवादी सरकार का उदय नहीं चाहता था। उसने संयुक्तराष्ट्र सुरक्षा परिषद की अनुमति से दक्षिण कोरिया के पक्ष में हस्तक्षेप किया। दूसरी ओर चीन ने साम्यवादी उत्तर कोरिया की ओर से सैन्य हस्तक्षेप किया।

मैक्कार्थिज्म (McCarthyism, 1950-54)

- मैक्कार्थिज्म का उद्गम एक विवाद के रूप में उस समय हुआ जब सोवियत संघ ने सफलता पूर्वक 1949 में परमाणु बम का परीक्षण किया और कोरियाई युद्ध (1950-53) के दौरान इसका आगे परीक्षण करता रहा। कुछ विश्लेषकों का तर्क है कि सोवियत संघ ने अमेरिकी प्रशासन के लोगों के

VISION IAS

साथ मिलीभगत कर परमाणु बम की तकनीक प्राप्त करने में सफलता पायी थी। मैकार्थी एक अमेरिकी सिनेटर था, जिसने गुप्तचर दृष्टिकोण को आगे रखने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् वह साम्यवाद विरोधी प्रचार से जुड़ा हुआ था और उसे अमेरिकी प्रशासन में हर स्थान पर रूसी गुप्तचर होने का संदेह था। साम्यवादियों के प्रति वह इतना सशंकित हो गया था कि उसने अमेरिका की हरेक समस्या के पीछे गुप्तचर दृष्टिकोण को उभारना प्रारम्भ कर दिया।

- मैकार्थिज्म वह शब्द है जिसका उपयोग द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के समय का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जब अमेरिका के कई वर्गों को यह संदेह था कि अमेरिकी सरकार में स्टालिन के गुप्तचर प्रवेश कर गए हैं। कोई भी व्यक्ति जो साम्यवादी नीतियों के बारे में बात करता था या अमेरिकी विदेश नीति में साम्यवादियों के विरुद्ध कठोर कदम के खिलाफ बात करता था तो उस पर साम्यवादी या सोवियत संघ के समर्थक होने का ठप्पा लगा दिया जाता था। प्रत्येक असफलता और अमेरिकी प्रशासन की किसी भी अक्षमता का दोष सोवियत गुप्तचरों पर मढ़ दिया जाता था। मैकार्थी ने अपने हर आलोचक को साम्यवादी कह कर निंदा की। उसने परमाणु प्रक्षेपण की जांच के लिए सीनेट में पूछताछ के दौरान सेना के जनरलों को भी साम्यवादी समर्थक कह दिया। सीनेट की बहुमत ने एक प्रस्ताव पारित कर मैकार्थी की निंदा की। राष्ट्रपति आइजनहावर (1953-61) ने जब सीनेट की कार्यवाही का समर्थन किया तो मैकार्थी ने उसकी भी आलोचना की जिसे उसकी भारी भूल करार दिया जाता है। इस प्रकार 1954 तक मैकार्थी की अमेरिका में बहुत बदनामी हुई। 1956 में निकिता ख्रुश्चेव के भाषण और उसके परिणामस्वरूप अमरीका और सोवियत संघ के सम्बन्धों में आए सुधार के उपरांत मैकार्थिज्म समाप्त हो गया। हालांकि गुप्तचरों का भय पूरे शीत युद्ध के दौरान चलता रहा। अमेरिका एवं रूस के सम्बन्धों में पूरे शीत युद्ध के दौरान उतार चढ़ाव देखने को मिलता रहा। सोवियत संघ में भी अमेरिकी गुप्तचरों का भय व्याप्त था। 1960 में सोवियत संघ ने अमेरिकी U2 गुप्तचर विमान को रूस के मुख्य भूमि क्षेत्र में मार गिराया। इस घटना ने अमेरिकी एवं सोवियत सम्बन्धों को और खराब कर दिया था।
- वर्तमान में *मैकार्थिज्म शब्द को बिना उचित साक्ष्य की उपस्थिति में अनिष्ठा, उलटाव या राजद्रोह के आरोप लगाने के लिए किया जाता है।* इसका अर्थ "अनुचित आरोप लगाना या पक्षपात पूर्ण अन्वेषक तकनीकों का उपयोग करना, विशेष रूप से मतभेदों को या राजनीतिक आलोचना को दबाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है"।

स्टालिन के पश्चात् शीत युद्ध में शिथिलता (Partial Thaw in Cold War post-Stalin, 1953)

- 1953 में स्टालिन की मृत्यु के उपरांत संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत संघ के बीच के तनावपूर्ण संबंधों में थोड़ी शिथिलता (नरमी/पिघलाव) आई।

इस शिथिलता (thaw) के कारणः

- सोवियत संघ में निकिता ख्रुश्चेव और बुलगानिन जैसे नए नेताओं का उदय, जो अमेरिका के साथ संबंधों में सुधार चाहते थे।
- 1953 तक अमेरिका और सोवियत संघ, दोनों ने हाइड्रोजन बम बना लिया था। इस प्रकार परमाणु युद्ध से बचने हेतु दोनों पक्षों के लिए आपसी संबंधों में सुधार वांछित हो गया था।
- ख्रुश्चेव के नेतृत्व में रूस ने साम्यवाद के प्रसार के लिए अपनी नीतियों में बदलाव किया। साम्यवाद को अभी भी बढ़ावा दिया जाना था लेकिन पूंजीवादी राष्ट्रों को युद्ध में पराजित करके नहीं, बल्कि सोवियत आर्थिक प्रणाली की श्रेष्ठता को साबित करके। ख्रुश्चेव ने तटस्थ राज्यों का रूझान साम्यवाद की ओर करने के लिए उन्हें मिलने वाली सहायता बढ़ा दी।

VISION IAS

- 1954 तक अमेरिका में मैकार्थी अविश्वस्त साबित हो चुके थे जिसके कारण कम्युनिस्ट-विरोधी प्रचार में गिरावट आई। इससे आपसी संबंधों में सुधार के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने में सहायता मिली।

इस शिथिलता को चिह्नित करने वाले घटनाक्रमः

- कोरियाई युद्ध 1953 तक समाप्त हो चुका था। साथ ही 1954 तक वियतनाम और फ्रांस के बीच पहला हिन्द-चीन युद्ध (Indo-China War, 1946-54) भी समाप्त हो गया था।
- 1955 में रूस ने कुछ रियायतें बरतीं:
  - सोवियत संघ ने फिनलैंड में अपने सैन्य ठिकानों को त्याग दिया।
  - इसने अपना वीटो हटा लिया, जिससे 16 नए राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। सोवियत संघ आयरलैंड, पुर्तगाल, इटली, ऑस्ट्रिया, श्रीलंका और अन्य कई देशों को प्रवेश नहीं करने दे रहा था क्योंकि ये देश पश्चिम-समर्थक थे। आयरलैंड के सोवियत संघ के साथ राजनयिक संबंध नहीं थे। अमेरिका ने माओ की पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट दिए जाने के लिए पक्ष में अपना वीटो किया था। 1955 में एक समझौता किया गया जिससे पश्चिम-समर्थक देशों के साथ-साथ सोवियत अनुषंगी राज्यों को भी संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त हुई।
  - ख्रुश्चेव ने टीटो से मुलाकात कर यूगोस्लाविया के साथ संबंधों को सुधारने का प्रयास किया। यूगोस्लाविया ने कॉमिन्फॉर्म देशों पर लगाए गए व्यापार प्रतिबंधों का विरोध किया था जिसके कारण इसे 1948 में कॉमिन्फॉर्म से निष्कासित कर दिया गया था।
  - 1956 में कॉमिन्फॉर्म को भंग कर दिया गया था और इस प्रकार सोवियत अनुषंगी देशों को व्यापार और आर्थिक नीतियों के मामले में अधिक स्वत्रंता मिल गई थी। यह 1956 में ख्रुश्चेव के भाषण के अनुरूप था जिसमें उसने प्रत्येक साम्यवादी देश द्वारा अपने अनुसार समाजवाद का पालन करने के पक्ष में तर्क दिया था।

ऑस्ट्रिया के संबंध में समझौता (1955)

- ऑस्ट्रिया को जर्मनी की तरह हीं चार अधिकृत क्षेत्रों में विभाजित किया गया था। परंतु जर्मनी के विपरीत ऑस्ट्रिया को अपनी सरकार बनाने की अनुमति दी गई थी क्योंकि इसे एक आक्रमणकारी के बजाए नाजी आक्रामकता का शिकार देश माना गया था। इसकी आर्थिक स्थिति जर्मनी के समान ही थी। पश्चिमी देश यहां के अपने नियंत्रणाधीन क्षेत्रों में आर्थिक सुधार का प्रयास कर रहे थे जबकि सोवियत संघ इसके संसाधनों का दोहन कर रहा था।
- सोवियत संघ और पश्चिमी देशों ने 1955 की ऑस्ट्रियाई राज्य संधि (Austrian State Treaty of 1955) के माध्यम से ऑस्ट्रिया को लेकर होने वाले अपने विवादों का समाधान किया। सोवियत संघ दो कारणों से संधि पर सहमत हुआ था। पहला, ऑस्ट्रियाई सरकार स्टालिन की मृत्यु के बाद अब अधिक नम्र सोवियत संघ को मनाने में सक्षम थी। दूसरा, सोवियत संघ को पश्चिम ऑस्ट्रिया और पश्चिम जर्मनी के बीच एक संभावित विलय का भय था। इस प्रकार ऐसी किसी भी घटना को रोकने के लिए सोवियत संघ एक संयुक्त ऑस्ट्रिया के निर्माण के लिए सहमत हो गया।

ऑस्ट्रियाई राज्य संधि (Austrian State Treaty, 1955)

- ऑस्ट्रिया को इसकी 1937 की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए एक स्वतंत्र देश बना दिया गया। हालांकि इसके साउथ टायरॉल (South Tyrol) को इटली को दे दिया गया, जिससे ऑस्ट्रिया अप्रसन्न था। 1915 में साउथ टायरॉल को, जो तब ऑस्ट्रिया में था, इटली को देने का वादा किया गया था। 1919 में इटली ने उस पर कब्जा कर लिया था। वहां बहुसंख्यक जर्मन भाषी होने पर भी

VISION IAS

जर्मनी ने इसे अपने राज्य में मिलाने का प्रयास नहीं किया, क्योंकि इटली उसका एक साथी राष्ट्र था। बाद में मित्र राष्ट्रों ने भी ऐसा नहीं किया क्योंकि इटली 1943 में उनसे संबद्ध हो चुका था।

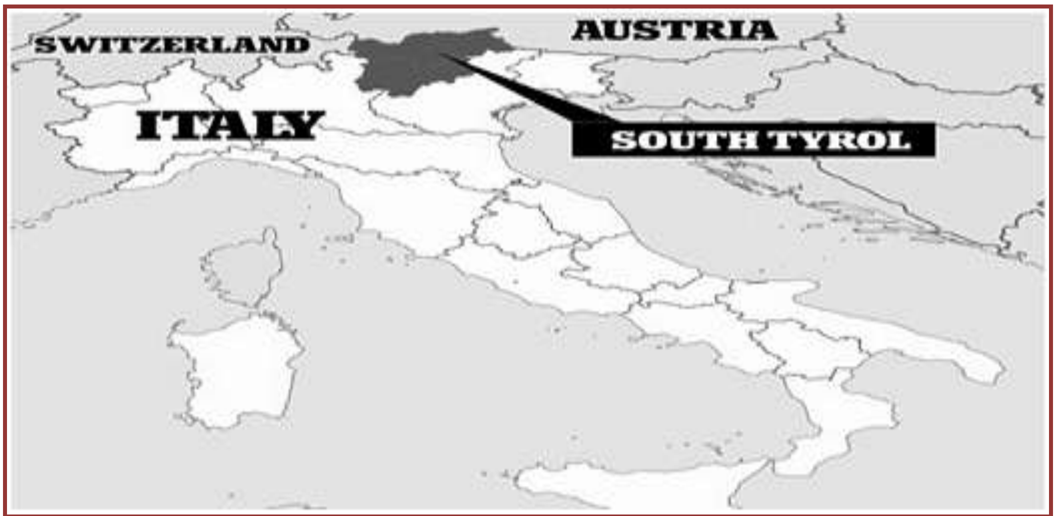

- इसके लिए सोवियत संघ के पक्ष में एक रियायत बरती गयी। ऑस्ट्रिया को नाटो या यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community) (1957 में बेल्जियम, फ्रांस, इटली, लक्ज़ेमबर्ग, नीदरलैंड और पश्चिम जर्मनी द्वारा हस्ताक्षरित एक संधि द्वारा 1958 में स्थापित यूरोपीय संघ का एक पूर्ववर्ती) में शामिल होने की अनुमति नहीं थी।

आंशिक' शिथिलता ("Partial" in the Thaw):

- अमेरिका और सोवियत संघ के संबंधों में 'आंशिक' नरमी की उपर्युक्त चर्चा एवं अन्य घटनाक्रमों से यह स्पष्ट है कि यह शिथिलता मात्र आंशिक था, जैसा कि निम्नलिखित घटनाओं से स्पष्ट किया गया है:
    - हंगरी के लोगों द्वारा वहां के कम्युनिस्ट सरकार के विरुद्ध किए गए 'हंगरी विद्रोह' (1956) को रूसी टैंकों द्वारा कुचल दिया गया था।
    - वारसॉ संधि (1955) का सूत्रपात वास्तव में पश्चिमी जर्मनी को नाटो में शामिल करने के जवाब में सोवियत संघ द्वारा किया गया था। युगोस्लाविया को छोड़कर सोवियत संघ और सभी अनुगामी देशों द्वारा इस पर हस्ताक्षर किए गए। वारसॉ संधि के अंतर्गत सदस्यों ने किसी भी बाहरी हमले के विरुद्ध एक-दूसरे का बचाव करने का प्रण लिया था। साथ ही सभी सदस्य देशों की सेनाएं मॉस्को के संपूर्ण नियंत्रण में आ गईं।
    - सोवियत संघ ने परमाणु हथियारों का निर्माण जारी रखा।
    - 1961 में बर्लिन की दीवार बनाई गई।
    - क्यूबा मिसाइल संकट (1962): इस दौरान विश्व परमाणु युद्ध के कगार पर पहुंच गया था (इसकी आगे विस्तार में चर्चा की गई है)।

बर्लिन की दीवार (1961)

- 1960 में अमेरिका के एक U2 जासूसी विमान (U2 spy plane) को रूस में ध्वस्त कर दिया गया, लेकिन आइजनहावर ने क्षमा मांगने से मना कर दिया था। 1961 में ख्रुश्चेव ने अमेरिका के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी से अनुरोध किया कि बर्लिन से पश्चिमी शक्तियों को वापस बुला लिया जाए। यह एक ऐसा समय था जब सोवियत संघ लगातार इस बात से शर्मिंदा हो रहा था कि पूर्वी जर्मनी से लोग भारी संख्या में पश्चिम बर्लिन को पलायन कर रहे थे। इस प्रकार जब अमेरिका ने रूस की मांग को पूरा करने से मना कर दिया तब सोवियत संघ ने पूर्वी जर्मनी से पश्चिम बर्लिन की ओर पलायन के रास्ते को अवरुद्ध करने के लिए बर्लिन की दीवार खड़ी कर दी।

VISION IAS

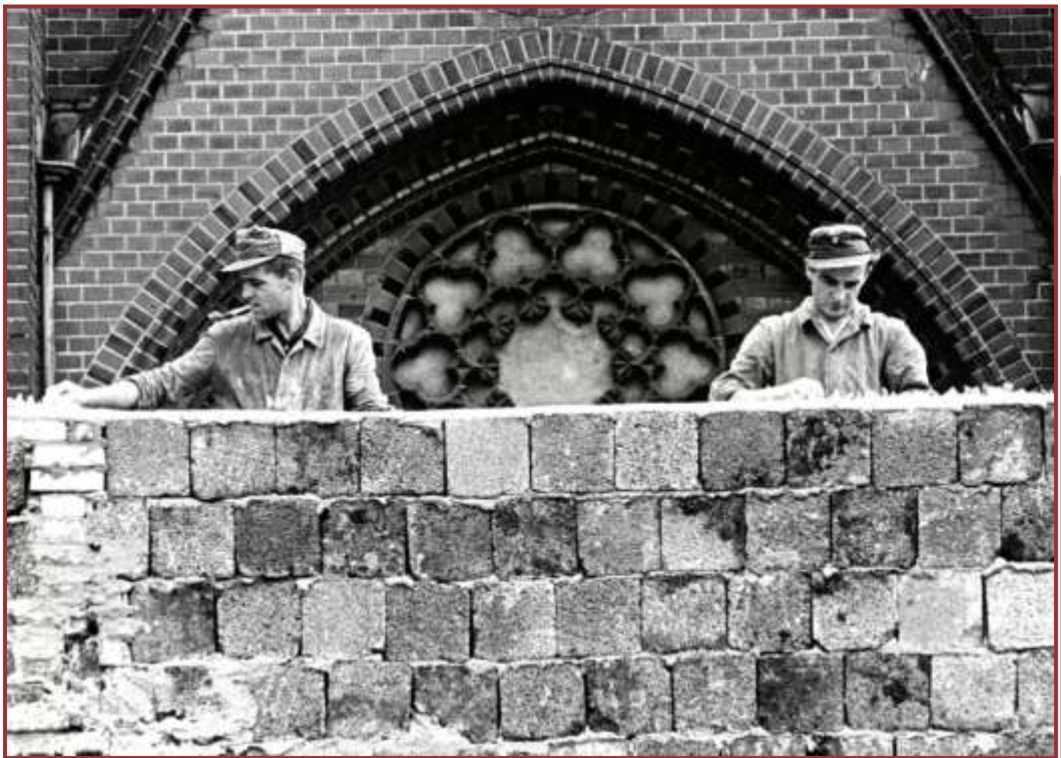

चित्र: पूर्वी जर्मन श्रमिक बर्लिन की दीवार की सुरक्षा बढ़ाते हुए

पूर्वी यूरोप में साम्यवादी गुटों में तनाव

रूस ने कई बार पूर्वी यूरोप में साम्यवादी गुटों के बीच असंतोष पर नियंत्रण पाने के लिए बल प्रयोग भी किया।

- **यूगोस्लाविया:** यह रूस के खिलाफ खड़ा होने वाला पहला देश था। जोसेफ ब्राज टीटो एक लोकप्रिय नेता थे और वह साम्यवाद का पालन स्टालिन के तरीके से नहीं अपितु अपने स्वयं के तरीके से करने के लिए प्रतिबद्ध थे। वह यूगोस्लाविया के आंतरिक मामलों में स्टालिन के हस्तक्षेप के विरोधी थे। टीटो पश्चिमी देशों और साथ ही सोवियत संघ के साथ व्यापार की स्वतंत्रता चाहते थे। स्टालिन ने 1948 में कॉमिन्फॉर्म से यूगोस्लाविया को निष्कासित कर दिया और आर्थिक सहायता देना बंद कर दिया। उसने यूगोस्लाविया पर आक्रमण नहीं किया क्योंकि टीटो एक लोकप्रिय नेता थे। इस प्रकार टीटो सत्ता में बने रहे और पश्चिम के साथ मुक्त व्यापार करके तथा IMF (अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष) से सहायता स्वीकार करते हुए साम्यवाद के अपने स्वयं के ब्रांड को लागू किया। टीटो ने उद्योगों का विकेंद्रीकरण आरंभ किया और राज्य के नियंत्रण के बजाय श्रमिक संगठनों को शक्तियां देकर कारखानों को मजदूरों के नियंत्रण में लाया गया। कम्यून्स की प्राथमिकता पर केंद्रित कृषि नीति बनाई गई। एक निर्वाचित कम्यून सभा थी, जो शिक्षा, स्वास्थ्य और स्थानीय अर्थव्यवस्था के मामलों से निपटने के लिए स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में कार्य करती थी। यह प्रणाली असाधारण थी क्योंकि इसने सामान्य लोगों को अपने कारखानों और समुदाय के संबंध में निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की थी। इसे लोकतांत्रिक समाजवाद के उदाहरण के रूप में पेश जा सकता है। कई मार्क्सवादियों का मानना था कि सोवियत संघ की तरह अति केंद्रीयकृत होने के बजाय साम्यवादी सरकार चलाने का यह अधिक वास्तविक तरीका था। पूंजीवादी तत्वों जैसे वेतन में अंतर और मुक्त बाजार ने मार्क्सवादी आर्थिक व्यवस्था के कुछ नकारात्मक पहलुओं को दूर करने में मदद की, यथा- मजदूर स्वयं को बहुत अधिक वेतन दे रहे थे और अपने सहयोगियों को बर्खास्त नहीं करते थे। इससे उत्पादन लागत और मुद्रास्फीति में उछाल आ रहा था। बाद में तंजानिया जैसे कई अफ्रीकी राज्यों ने इस प्रणाली को अपनाया। 1953 के बाद ख्रुश्चेव ने टीटो के साथ अच्छे संबंध बहाल किए।
- **स्टालिन ने अन्य नेताओं के विरुद्ध कार्यवाही की जिन्होंने स्वतंत्र नीति का पालन करने का प्रयास किया:** हंगरी में वहां के विदेश मंत्री और गृह मंत्री को फांसी दे दी गई (1949)। बुल्गारिया में

VISION IAS

प्रधानमंत्री को बंदी बना लिया गया (1949)। चेकोस्लोवाकिया में कुछ कैबिनेट मंत्रियों को मार डाला गया (1952)। पोलैंड में कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं को कैद कर लिया गया और अल्बानिया में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रधान को मार डाला गया क्योंकि वे दोनों टीटो का समर्थन करते थे।

- **पोलैंड (1956):** यहां श्रमिकों ने निम्न जीवनस्तर, मजदूरी में कटौती और उच्च करों के विरुद्ध सोवियत संघ-विरोधी प्रदर्शन किए। जल्द ही रूसी टैंकों ने वारसा को घेर लिया और अंत में रूस ने समझौता किया। पोलैंड को साम्यवाद के अपने तरीके का चयन करने की अनुमति दी गई और बदले में पोलैंड ने विदेश मामलों में सोवियत संघ के साथ गठबंधन किया।
- **हंगरी विद्रोह (1956):** निम्नलिखित कई कारणों से लोग अक्टूबर 1956 में यहां की सरकार के विरुद्ध खड़े हो गए:
  - दमनकारी और क्रूर शासन।
  - खराब जीवनस्तर।
  - रूस-विरोधी तीव्र भावना।
  - ख्रुश्चेव के 1956 के भाषण ने हंगरी वासियों को अपनी सरकार का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया।
  - हंगरी के साम्यवादी नेता को उखाड़ फेंका गया था और एक अधिक उदार नेता इम्र नैगी ने सत्ता संभाली। पोलैंड में हुए समझौतों की भांति रूस यहां भी समझौता करने के लिए तैयार था। लेकिन रूस तब क्रुद्ध हो गया जब नैगी ने अन्य राजनीतिक दलों के सदस्यों के साथ मिलकर एक सरकार बनाने की अपनी योजना की घोषणा की तथा वारसा संधि से हंगरी को अलग करने की बात की। जल्द ही रूसी टैंकों ने बुडापेस्ट (हंगरी की राजधानी) को घेर लिया। हंगरी ने लड़ाई लड़ी और संघर्ष भी किया लेकिन सोवियत संघ की ताकत के सामने टिक नहीं सका। उसके बाद नैगी की हत्या कर दी गई और हंगरी पर नियंत्रण कर लिया गया।
- **चेकोस्लोवाकिया (1968):** हंगरी के विद्रोह के बाद रूस ने 1968 तक प्रत्यक्ष रूप से कोई हस्तक्षेप नहीं किया। अनुषंगी राज्यों को रूस ने अपने अनुसार समाजवाद का पालन करने की अनुमति दी थी। चेकोस्लोवाकिया में सरकार मास्को समर्थक थी परंतु फिर भी प्रतिरोध उत्पन्न हुआ, क्योंकि वहां की जनता ने अपनी अर्थव्यवस्था पर रूसी नियंत्रण का विरोध किया था। उदाहरण के लिए, रूस ने चेकोस्लोवाकिया को यह तक निर्देश दिया था कि लौह अयस्क का आयात उसे कहां से करना चाहिए। इसके अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया के लोगों में अपने अधिकारों पर लगे प्रतिबंधों के विरुद्ध आक्रोश था, जैसे- भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभाव, मीडिया पर नियंत्रण आदि। एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन को पुलिस ने क्रूरता से कुचल दिया। 1968 में यहां के साम्यवादी नेता को एक उदार नेता डुबचेक के पक्ष में त्यागपत्र देना पड़ा। उन्होंने एक नया कार्यक्रम प्रस्तावित किया जिसे उन्होंने 'मानवीय चेहरे के साथ समाजवाद' कहा। इस कार्यक्रम के कुछ पहलू इस प्रकार थे:
  - कम्युनिस्ट पार्टी अब नीति निर्धारित नहीं करेगी।
  - उद्योगों को विकेन्द्रीकृत कर दिया जाएगा और इन्हें पार्टी अधिकारियों के बजाय श्रमिक परिषदों की देखरेख में रखा जाना था। मजदूर संघों (ट्रेड यूनियनों) को अधिक शक्तियां दी जाएंगी।
  - खेत अब सामूहिक नहीं रहेंगे, बल्कि इसके लिए स्वतंत्र सहकारी समितियां बनाई जाएंगी।
  - पश्चिम के साथ अधिक व्यापार और विदेश यात्रा की स्वतंत्रता प्रदान की गई। 1948 के बाद से बंद हो चुकी पश्चिम जर्मनी के साथ लगने वाली सीमा को तुरंत खोल दिया गया।
  - भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता प्राप्त हो गई। सरकार की आलोचना को प्रोत्साहित किया गया।

डुबचेक ने सोवियत संघ को आश्वस्त किया कि वह वारसा संधि के प्रति प्रतिबद्ध रहेगा और उसका कट्टर सहयोगी बना रहेगा। इस प्रकार इस कार्यक्रम को 1968 में लागू किया गया था। लेकिन 'भाषण की स्वतंत्रता' के प्रावधान से सोवियत संघ चिढ़ गया था। रूस इसे लेकर जल्द ही चिंतित हो गया और अगस्त 1968 में उसने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर दिया। चेकोस्लोवाकिया ने रक्तपात (जैसा कि

VISION IAS

1956 में हंगरी में हुआ था) से बचने के लिए सोवियत संघ का विरोध नहीं किया। इस प्रकार यहां नए कार्यक्रमों का परित्याग कर दिया गया और डुबचेक को एक रूसी कठपुतली द्वारा प्रतिस्थापित का दिया गया। जल्द ही ब्रेझनेव (1964-82) ने ब्रेझनेव सिद्धांत की घोषणा की। इस सिद्धांत के अनुसार अगर किसी साम्यवादी राष्ट्र में समाजवाद को खतरा उत्पन्न हो जाए तो ऐसी स्थिति में रूस को उस देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।

1970 के दशक में 'तनाव शैथिल्य' (Detente) का आरंभ क्यों हुआ?

1970 के दशक में साम्यवादी गुट और स्वतंत्र विश्व (जैसा कि पूंजीवादी गुट अपने आप को कहना पसंद करता था) के बीच संबंधों में सुधार आरंभ हो गया था। 1972 में SALT I (Strategic Arms Limitation Talks) संधि पर हस्ताक्षर किया गया। तनाव में कमी के निम्नलिखित कारण थेः

- पश्चिमी यूरोपीय देश पश्चिम जर्मनी के ओस्टोपोलिटिक (OSTPOLITIK अर्थात् नई पूर्वी नीति) पर सहमत हुए जिसका उद्देश्य विशेष रूप से पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच तथा सामान्य रूप में पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के बीच सबंधों को बेहतर बनाना था। इसका कारण यह था कि यूरोप के सभी हिस्से रूस द्वारा किये जाने वाले किसी भी परमाणु हमले के निशाने पर थे और ऐसे में यूरोप के भीतर गैर-टकरावयुक्त आपसी संबंध का होना आवश्यक था।
- चीन रूस के साथ बिगड़ते संबंधों के कारण चिंतित था और वियतनाम में अमेरिकी भागीदारी से घबराया हुआ था। उसे अलग-थलग पड़ जाने का खतरा दिखाई दे रहा था। इसलिए अमेरिका के साथ संबंध सुधारने की उसे आवश्यकता महसूस हुई।
- संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ, दोनों को परमाणु युद्ध का डर सताने लगा था, विशेषकर 1962 के क्यूबा मिसाइल संकट के बाद से। वे दोनों वियतनाम युद्ध (1961-75) की भयावहता से पीड़ित थे, जिसमें नेपाम जेली (Napalm jelly) और रासायनिक हथियार प्रयोग किए गए थे।
- वियतनाम में अपनी असफलता के बाद अमेरिका को समझ में आ गया कि युद्ध साम्यवाद हल नहीं था और अलगाव की नीति पर वापस लौटने की वार्ता शुरू हो गई।
- आयुध स्पर्धा (आर्म्स रेस) के चलते सोवियत संघ के संसाधन समाप्त होते जा रहे थे। 1970 के दशक के आरंभ में आर्थिक स्थिति बिगड़ने के कारण पोलैंड में अशांति उत्पन्न हो गयी थी। इस प्रकार सोवियत संघ को साम्यवादी गुट के देशों में अस्थिरता की आशंका हुई।
- सोवियत संघ के चीन के साथ संबंध अच्छे नहीं थे। इसलिए जब चीन 1971 के बाद अमेरिका के करीब जा रहा था तब इसने अमेरिका और रूस के संबंधों को मजबूत करना चाहा।

आयुध स्पर्धा / हथियारों की होड़ (Arms Race)

- अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के बीच आयुध स्पर्धा वस्तुतः प्रतिद्वंद्विता की एक प्राचीन परंपरा है। उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और नव साम्राज्यवाद के दौरान यह बल प्रयोग में तब्दील हो गया। परंतु दो विश्व युद्धों के दौरान इसने एक महत्वपूर्ण रूप ले लिया। प्रथम विश्व युद्ध में जहां बड़े पैमाने पर विषैली गैसों, मशीनगनों, टैंकों आदि का उपयोग हुआ था, वहीं लीज की लड़ाई (Battle of Liege) में बेल्जियम किलों पर जर्मन तोपों (होवित्ज़र) द्वारा हमला किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान तड़ित युद्ध में दुश्मन पर टैंकों, सैनिकों के मशीनीकृत डिवीज़नों और बड़े पैमाने पर हवाई समर्थन के साथ तूफानी हमला हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में जापान पर परमाणु बम का प्रयोग एक और मील का पत्थर चिह्नित हुआ।
- शीत युद्ध के दौरान आयुध स्पर्धा ने भयावह रूप ले लिया। कोरियाई युद्ध (1950-53) के पश्चात् अमेरिका की विदेश नीति पर अमेरिकी विदेश मंत्री ड्यूलस (Dulles) का वर्चस्व था, जिनके प्रस्तावों, जैसे- रोलिंग बैक कम्युनिज्म, MAD, ब्रिंकमैनशिप, परमाणु प्रतिरोधकता और आइजननहावर सिद्धांत ने आयुध स्पर्धा को बढ़ावा दिया था।
- शीत युद्ध के दौरान विभिन्न प्रकार के खतरनाक अस्त्र विकसित होने लगे थे, जैसे- परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, इंटर कॉन्टिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइल, पनडुब्बी से दागे जाने वाले बैलिस्टक

VISION IAS

मिसाइल, एंटी बैलिस्टिक मिसाइल, क्रूज, ट्राईडेंट और पर्शिंग मिसाइलें। एकाधिक स्वतंत्र रूप से लक्षित करने योग्य पुनः प्रवेश वाहन (Multiple Independently Targetable Re-entry Vehicles: MIRVs) और SS20s के विकास ने आयुध स्पर्धा या हथियारों की होड़ को अपने चरम पर पहुंचा दिया। अमेरिका की 'स्टार वार्स' की अवधारणा जहां यह अंतरिक्ष से मिसाइलों को लॉन्च करना चाहता था, एक और मील का पत्थर था। हथियारों के विकास के क्रम को नीचे प्रस्तुत किया गया है:

क्रमविकास (Timeline)	**हथियार (Weapons)**
1949	USA और उसके बाद USSR ने परमाणु बम विकसित किए।
1952-53	USA ने 1952 के अंतिम महीनों में हाइड्रोजन बम विकसित किया। यह बम परमाणु बम से ज्यादा शक्तिशाली था। 1953 तक USSR भी हाइड्रोजन बम को विकसित करने में सक्षम हो गया था।
1957	USSR 1957 में **ICBM** (इंटरकांटिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइल) विकसित करने वाला सबसे पहला देश बना। ICBM एक रॉकेट द्वारा ले जाया जाने वाला एक न्यूक्लियर वॉरहेड था जो इतना शक्तिशाली था कि वह USSR से USA तक पहुंच सकता था। जल्द ही अमेरिका ने भी उसकी बराबरी वाले मिसाइल के रूप में एटलस मिसाइलें विकसित कर ली।
1950 के दशक और 1960 के दशक के आरंभ में	अमेरिका ने जुपिटर और थोर नामक कम दूरी तक मार कर सकने वाली परमाणु मिसाइलें विकसित कीं और उन्हें तुर्की में तैनात कर USSR को धमकी दी थी।
1958 से आगे	**निःशस्त्रीकरण:** परमाणु निःशस्त्रीकरण के लिए ब्रिटेन में एक अभियान के अंतर्गत सार्वजनिक विरोध हो रहा था, लेकिन ब्रिटेन ने यह निर्णय लिया कि केवल बहुपक्षीय निःशस्त्रीकरण ही होना चाहिए और एकतरफा निःशस्त्रीकरण को नामंजूर कर देना चाहिए।
1961-75	सामान्य रूप से USSR हथियारों की प्रतिस्पर्धा में आगे निकलने में सक्षम था क्योंकि अमेरिकी व्यय वियतनाम युद्ध की ओर लक्षित था।
1962	क्यूबा मिसाइल संकट: जहां रूस ने अमेरिका के सन्निकट (क्यूबा में) परमाणु मिसाइलें तैनात की थीं।
1963	**निःशस्त्रीकरण:** रूस, ब्रिटेन और अमेरिका ने परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (Nuclear Test Ban Treaty: NTBT) पर हस्ताक्षर किए और वे इस बात पर सहमत हुए कि अब से केवल भूमिगत परमाणु परीक्षण किए जाएंगे और कोई परीक्षण जल, वायु या बाह्य अंतरिक्ष में नहीं किए जाएंगे। क्यूबा मिसाइल संकट के बाद अमेरिका तुर्की से थोर और जुपिटर (कम दूरी तक मार कर सकने वाली परमाणु मिसाइलें) मिसाइलों को हटाने के लिए सहमत हो गया।
1967	**निःशस्त्रीकरण:** इस समझौते के तहत बाह्य अंतरिक्ष में परमाणु हथियारों के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगा दिया गया।
1970 का दशक	जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है, USA एवं USSR के बीच 1970 के दशक के आरंभ से ही तनाव कम होने लगे थे। **निःशस्त्रीकरण (Disarmament):** 1970 में परमाणु अप्रसार संधि (**NPT,**

VISION IAS

1968) प्रभाव में आई। इसने केवल मौजूदा परमाणु हथियार रखने वाले देशों को परमाणु हथियार रखने की अनुमति दी। इस पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को गैर-परमाणु हथियार वाले देशों को परमाणु हथियार विकसित करने वाली प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने से प्रतिबंधित कर दिया। गैर-परमाणु हथियार वाले देशों (Non-Nuclear Weapon States: NNWS) को केवल नागरिक उद्देश्यों के लिए परमाणु तकनीक विकसित करने का अधिकार दिया जाना था, जैसे- विद्युत उत्पादन, प्रयोगशालाओं में उपयोग आदि।

NSG: परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (Nuclear Supplier Group: NSG) की स्थापना **1974** में हुई थी। उसी वर्ष भारत ने परमाणु परीक्षण किया था। NSG ऐसे देशों का एक समूह है जिनके पास परमाणु प्रौद्योगिकी है। इसका उद्देश्य परमाणु अस्त्रों के प्रसार को नियंत्रित करना है।

SLBMs (Submarine Launched Ballistic Missiles): इसे सर्वप्रथम USA ने विकसित किया था (जैसे- पोसाइडन और पोलारिस मिसाइल)। पूर्वी भूमध्य सागर में स्थित पनडुब्बियों से SLBMs का प्रक्षेपण किया जा सकता था। जल्द ही रूस ने भी SLBMs और ICBMs का भंडारण करना शुरू कर दिया।

ABMs (एंटी बैलिस्टिक मिसाइल): यह हवा में बैलिस्टिक मिसाइलों को नष्ट कर सकता था। इसे सर्वप्रथम USSR द्वारा विकसित किया गया था।

MIRVs (मल्टीपल इंडिपेंडेंटली टार्गेटेड री-एंट्री व्हीकल): इसे सर्वप्रथम USA ने विकसित किया था। ये व्हीकल कई मिसाइलों को ले जाने में सक्षम हैं जिन्हें स्वतंत्रतापूर्वक विभिन्न दिशाओं में कई लक्ष्यों की ओर हवा में लॉन्च किया जा सकता है। इसके प्रतिउत्तर में USSR ने SS-20 नामक मिसाइल विकसित किया। लेकिन यह मिसाइल उन्नत प्रकृति की नहीं, क्योंकि उनका उपयोग केवल तीन लक्ष्यों के लिए किया जा सकता था।

निःशस्त्रीकरण: परमाणु निःशस्त्रीकरण की दिशा में 1972 में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। SALT-1 संधि {SALT-1 treaty (Strategic Arms Limitation Talks)} द्वारा दोनों देशों ने ICBMs, ABMs और SLBMs की संख्या को सीमित किया, लेकिन इसमें MIRVs पर कोई समझौता नहीं हुआ जिससे निःशस्त्रीकरण की भावना को ठेस पहुँची।

साल्ट-1 की कमियों को दूर करने के लिए, साल्ट 2 पर बातचीत आरंभ हुई। ब्रेज़नेव और निक्सन के बीच शिखर स्तर की वार्ता से इसकी शुरूआत हुई। इसका उद्देश्य MIRVs और SS-20s को सीमित करना था, लेकिन 1979 में USSR की ओर से, अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण के कारण, साल्ट-2 संधि अमेरिकी सीनेट द्वारा निरस्त कर दी गयी।

हेलसिंकी समझौता (1975): इस समझौते पर कनाडा, यूरोप के कुछ राष्ट्रों, USSR (ब्रेझनेव) और USA (जेराल्ड फोर्ड) ने हस्ताक्षर (हस्ताक्षर करने वाले कुल 35 देश) किए। यहां रूस ने साम्यवादी देशों में मानवाधिकार, संवाद का अधिकार और देश छोड़ने के अधिकार का सम्मान करने का वचन दिया था। सदस्य देशों ने भी यूरोप में मौज़ूदा सीमाओं के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया (और इस प्रकार जर्मनी के विभाजन को स्वीकार किया गया)। लेकिन यह समझौता गैर-बाध्यकारी था क्योंकि इसमें किसी संधि को शामिल नहीं किया गया था।

VISION IAS

	क्रूज़ मिसाइलों को 1970 के दशक के अंत में अमेरिका द्वारा विकसित किया गया था। ये मिसाइलें कम ऊंचाई पर उड़ सकती थीं और इस तरह रूसी राडारों द्वारा इनका पता लगाने से बचा जा सकता था। USSR द्वारा 1979 में अफगानिस्तान पर आक्रमण किया गया जिससे अमेरिका और USSR के बीच तनाव बढ़ गया था।
1979-83	1979-83 के दौरान पश्चिमी देश और सोवियत संघ युद्ध के कगार पर थे। • 1979 में USSR द्वारा अफ़गानिस्तान पर आक्रमण के कारण पश्चिमी देश USSR को संदेह की दृष्टि से देखने लगे, जिससे दोनों तरफ परमाणु हथियारों का जखीरा जमा होने लगा। • नाटो ने USSR द्वारा SS-20 (MIRVs के प्रतिउत्तर में विकसित हथियार) की तैनाती के विरोध में यूरोप में पर्शिंग और क्रूज़ मिसाइलें तैनात कर दी। USA के सीनेट ने SALT-2 वार्ता को निरस्त कर दिया। SALT-2 से दोनों देश MIRVs में कमी कर सकते थे। • रोनाल्ड रीगन (1981-89) ने 1983 में स्टार वार्स (या रणनीतिक रक्षा पहल कार्यक्रम) की शुरुआत की, जिसने अमेरिका को अंतरिक्ष से मिसाइलों को लॉन्च करने की क्षमता प्रदान की।
1985-91	1980 के दशक में परमाणु हथियारों के विकास के खिलाफ यूरोप में सार्वजनिक विरोध हुए थे। **अमेरिका-सोवियत संघ के संबंधों में तनाव शैथिल्य:** गोर्बाचेव ने अमेरिका के साथ संबंधों को और अधिक स्थिर तरीके से सुधारने की कोशिश की। **निःशस्त्रीकरण: INF संधि (1987):** 1987 में अमेरिका (रीगन) और USSR (गोर्बाचेव) द्वारा इंटरमीडिएट-रेंज न्यूक्लियर फ़ोर्स ट्रीटी पर हस्ताक्षर किए गए थे। इसका उद्देश्य अगले 15 वर्षों में दुनिया को डिन्यूक्लियराइजेशन (denuclearization) की ओर ले जाना था। INF संधि के तहत अमेरिका और USSR मध्यम दूरी के सभी "स्थल आधारित (land based)" परमाणु हथियारों को नष्ट करने के लिए सहमत हो गए थे, अर्थात् चेकोस्लोवाकिया और पूर्वी जर्मनी में स्थित रूसी मिसाइलों तथा पश्चिमी यूरोप में स्थित अमेरिकी क्रूज़ और पर्शिंग मिसाइलों को नष्ट करने पर सहमति। संधि में इस दिशा में दोनों देशों द्वारा किए जाने वाले प्रयासों की पारस्परिक सत्यापन की सख्त प्रक्रिया की व्यवस्था की गई थी। **INF संधि की आलोचना:** उस समय रूस और अमेरिका के पास स्थल आधारित मध्यम दूरी तक मार कर सकने वाली मिसाइलों की संख्या विश्व की कुल परमाणु हथियारों की संख्या का केवल 4% थी। इसके अलावा ब्रिटेन और फ्रांस इस संधि का हिस्सा नहीं थे। वास्तव में ब्रिटेन की तत्कालीन प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर, ब्रिटेन के डिन्यूक्लियराइजेशन के खिलाफ थीं। उनके काल में ब्रिटेन ने ट्राइडेंट मिसाइलों को विकसित करना शुरू किया जो कि अमेरिका की क्रूज मिसाइलों से बेहतर थीं। **नाटो-वारसा समझौते** (1990) के तहत दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हुए थे कि वे एक-दूसरे के विरुद्ध केवल आत्मरक्षा के प्रयोजनों से ही अपने हथियारों का इस्तेमाल करेंगे। 1991 में **USSR के विघटन के बाद** रूस को सोवियत संघ के परमाणु हथियारों

VISION IAS

का जखीरा विरासत में मिला। USSR के पतन ने नाभिकीय प्रसार के नए मुद्दों को जन्म दिया क्योंकि अब सोवियत संघ और अमेरिका दोनों ने एक-दूसरे के विरुद्ध सिपाही की तरह पेश आना बंद कर दिया था। इस तरह उन्हें एक भय सताने लगा था कि कहीं उनके द्वारा विकसित परमाणु, रासायनिक और जैविक हथियार किसी गैर-जिम्मेदार देश के हाथों में न पड़ जाएं, जैसे- ईरान, इराक, लीबिया और उत्तर कोरिया।

1994 के **सुरक्षा आश्वासन पर बुडापेस्ट ज्ञापन** (Budapest Memorandum on Security Assurances) द्वारा अमेरिका, ब्रिटेन और रूस ने यूक्रेन के क्षेत्रीय अखंडता का आश्वासन दिया, जिसके बदले वह (यूक्रेन) अपने परमाणु हथियार रूस को देने के लिए सहमत हो गया।

मेगाटन से मेगावाट (Megaton to Megawatt, 1993) वस्तुतः अमेरिका और रूस के बीच सम्पन्न एक समझौता था, जिसके द्वारा रूसी न्यूक्लियर वॉरहेड से संवर्धित यूरेनियम को अमेरिका तक पहुंचाया जाना था। इसके बाद नागरिक परमाणु ऊर्जा उत्पादन में उपयोग हेतु अमेरिका में इसका अवकर्षण (degradation) किया जाना था।

CTBT (Comprehensive Nuclear Test Ban Treaty/व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि): इसे 1996 में हस्ताक्षर के लिए रखा गया। यह सैन्य या नागरिक उद्देश्यों के लिए सभी परिवेशों में किसी भी प्रकार के परमाणु विस्फोटों को प्रतिबंधित करती है। लेकिन इसे अभी भी लागू नहीं किया जा सका है क्योंकि इसे लागू करने के लिए न्यूनतम 44 देशों का अनुसमर्थन आवश्यक है। हाल ही में इंडोनेशिया ने इसका अनुसमर्थन किया है, फिर भी अभी 8 और देशों का अनुसमर्थन मिलना बाकी है। भारत के साथ-साथ अमेरिका, उत्तर कोरिया, चीन, मिस्र, ईरान, इजरायल और पाकिस्तान ने अपनी सहमति नहीं दी है।

नाभिकीय निःशस्त्रीकरण के अन्य प्रयासों में स्टार्ट 1 (स्ट्रेटेजिक आर्म्स रिडक्शन ट्रीटी, START-I : 1994-2010), सॉर्ट (स्ट्रेटेजिक ओफेंसिव रिडक्शन ट्रीटी: SORT: 2003-2011 तक प्रभावी), स्टार्ट 2 (विफल), और न्यू स्टार्ट (2011-2021 तक प्रभाव में रहेगी) शामिल हैं।

अंतर्राष्ट्रीय निकाय: इस प्रक्रिया में कई अंतर्राष्ट्रीय हथियार नियंत्रण व्यवस्थाओं की शुरुआत की गई हैं। इसमें शामिल हैं - वासेनार व्यवस्था (Wassenar Arrangement), ऑस्ट्रेलिया ग्रुप, MTCR (Missile Technology Control Regime/ मिसाइल प्रौद्योगिकी नियंत्रण व्यवस्था), CTBTO (UN), NSG, वर्ल्ड न्यूक्लियर एसोसिएशन, OPCW (UN) आदि।

वासेनार व्यवस्था (Wassenar Arrangement): पारंपरिक हथियारों और दोहरे उपयोग की वस्तुओं और तकनीकों के लिए निर्यात पर नियंत्रण।

नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह (NSG): ऐसे देशों का एक समूह जो नाभिकीय प्रौद्योगिकी और वैश्विक नाभिकीय वाणिज्य को नियंत्रित करता है।

ऑस्ट्रेलिया ग्रुप (AG): यह 43 देशों का एक अनौपचारिक मंच है, जिसका लक्ष्य निर्यात नियंत्रणों को सुसंगत बनाना है और यह सुनिश्चित करना है कि इन निर्यातों का प्रयोग रासायनिक एवं जैविक हथियारों के विकास में न हो।

MTCR (Missile Technology Control Regime/मिसाइल प्रौद्योगिकी

VISION IAS

	नियंत्रण व्यवस्था): ऐसे देशों का एक अनौपचारिक और स्वैच्छिक संघ है जो सामूहिक विनाश वाले हथियारों के लिए मानवरहित डिलिवरी प्रणाली के अप्रसार के लक्ष्य को साझा करते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शीत युद्ध के दौरान हथियारों की होड़ में उनकी संख्या एवं गुणवत्ता के साथ-साथ उनके प्रक्षेपण/तैनाती स्थल के विस्तार के संदर्भ में भी एक होड़ या प्रतिस्पर्धा देखी गई:

- **संख्या:** परमाणु, रासायनिक और परंपरागत हथियारों की संख्या में वृद्धि हुई।
- **गुणवत्ता:** सटीकता, सुस्पष्टता और मिसाइलों की श्रेणी में वृद्धि हुई।
- **विविध प्रक्षेपण स्थल:** अब मिसाइलों को न केवल स्थल से बल्कि जल, अंतरिक्ष और गतिशील मालवाहकों (mobile trucks) से भी प्रक्षेपित किया जा सकता था। इस समय के मिसाइलों को निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:
    - सतह से सतह
    - सतह से हवा
    - हवा से हवा
    - हवा से सतह
    - पनडुब्बी से प्रक्षेपण

हथियारों की होड़ का नकारात्मक असर गरीबों पर हुआ। इस धन का प्रयोग लाखों निर्धन लोगों के उत्थान के लिए किया जा सकता था, ख़ासकर तृतीय विश्व के राष्ट्रों के विकास पर ध्यान केंद्रित करके जिन्होंने उत्तर-दक्षिण सहयोग की स्थायी नींव रखी थी। शस्त्रों की इस स्पर्धा में USSR के संसाधन रिक्त हो गए जो USSR के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण बना। पुनः शस्त्रों की इस स्पर्धा ने विश्व में परमाणु हथियारों की होड़ को जन्म दिया जिसने आज के वर्तमान हालात पैदा किए, जहां गैर-राज्य कर्ताओं के हाथों में परमाणु हथियार चले जाने का खतरा बना हुआ है।

युद्ध की कगार/स्थिति: शीत युद्ध के दौरान विश्व कई बार युद्ध के कगार पर पहुँचा:

- **पश्चिम बर्लिन की नाकेबंदी और एयरलिफ्ट (1948-49):** अमेरिका ने किसी भी आकस्मिकता से निपटने के लिए ब्रिटेन में अपने बमवर्षक विमानों को तैनात रखा था।
- **क्यूबाई मिसाइल संकट (1962):** इस दौरान अमेरिका और USSR के बीच प्रत्यक्ष सैन्य संघर्ष का भी एक दौर आया था। हालांकि संयुक्त राष्ट्र की मध्यस्थता से यह टल गया।
- **1979:** अफगानिस्तान पर USSR के आक्रमण के प्रकरण में पूंजीवादी और साम्यवादी ब्लॉक के बीच तनाव बढ़ गया था। रूस द्वारा SS-20 मिसाइलों को तैनात किए जाने के बाद नाटो ने यूरोप में पर्शिंग और क्रूज़ मिसाइलें तैनात कीं।
- **1983:** 1983 में अमेरिका युद्ध क्रीड़ा को नियंत्रित कर रहा था और रूस का मानना था कि अमेरिका ने सबसे पहले परमाणु हमले का खेल खेला था। इसने विश्व को एक परमाणु युद्ध के कगार पर ला खड़ा किया, जब तक कि इस गलत धारणा को सुलझा नहीं लिया गया।

विशेषज्ञों का यह मानना है कि शस्त्र की प्रतिस्पर्धा शीत युद्ध के अंत होने के बाद भी समाप्त नहीं हुई और यह अभी भी बदस्तूर जारी है। भारत हथियार आयात करने वाला विश्व का एक प्रमुख देश बन गया है। चीन की बढ़ती हठधर्मिता के चलते जापान दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों, जैसे- वियतनाम, फिलीपींस आदि के साथ-साथ धीरे-धीरे और अधिक आक्रामक रुख अपना रहा है। रूस और अमेरिका के बीच प्रतिस्पर्धा अभी भी जारी है तथा हाल के वर्षों में ईरान और सीरिया के मामले को लेकर रूस और अधिक हठधर्मी हो गया है। परमाणु हथियारों तक पहुंच रखने वाले गैर-राज्य कर्ताओं से गंभीर डर बना हुआ है। यहां तक कि आर्थिक रूप से कमजोर देशों, जैसे- लेबनान में अत्यधिक सैन्यीकरण हो रहा है। हाल के वर्षों में, अप्रसार और परमाणु निःशस्त्रीकरण के प्रयास विफल रहे हैं क्योंकि परमाणु हथियार वाले नए देशों, जैसे- भारत, पाकिस्तान और उत्तर कोरिया का उद्गम हुआ है।

VISION IAS

यूरोप के बाहर साम्यवाद का प्रसार

- 1940 के अंत तक शीत युद्ध यूरोप के बाहर फैलने लगा था क्योंकि कई देशों द्वारा मार्क्सवाद के अपने खुद के मॉडल को अपनाने के चलते साम्यवाद एशिया, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में फैल गया।

चीन

- चीनी साम्यवादी दल (1917 की रूसी क्रान्ति द्वारा प्रोत्साहित, 1921 में गठित) कुओमिन्तांग के विरुद्ध गृहयुद्ध में विजयी हुआ। इसके प्राथमिक कृषक कार्यक्रम और आक्रमणकारी जापानियों के विरुद्ध पलटवार ने इसे जनता के बीच बेहद लोकप्रिय बना दिया। चीन ने कोरियाई युद्ध (1950-1953) में हस्तक्षेप करके साम्यवाद पर आसन्न खतरे को कम करने की कोशिश की। उसने 1951 में तिब्बत पर हमला करके और फिर 1959 के विद्रोह (जिसके दौरान तिब्बतियों ने चीन से स्वतंत्रता की घोषणा की) को कुचल कर अपनी सीमाओं का विस्तार किया। पहली पंचवर्षीय योजना (जो भारी औद्योगिकीकरण पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ सोवियत तर्ज पर चल रही थी) के समाप्त होने के बाद माओ ने ग्रेट लीप फॉरवर्ड (1958) की शुरुआत की जिसके तहत कृषि अर्थव्यवस्था, क्रमिक और विकेंद्रीकृत औद्योगिकीकरण पर ध्यान दिया गया था। ग्रेट लीप फॉरवर्ड मार्क्सवाद का चीनी संस्करण था। यह सोवियत शैली वाली समाजवाद से अलग था।

कोरियाई युद्ध (1950-53)

- **पृष्ठभूमि:** 1910 में जापान द्वारा कोरिया का अधिग्रहण किया गया था और द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तक यह जापान के आधीन रहा। इसके पश्चात् कोरिया का विभाजन किया गया ताकि अमेरिका और रूस संयुक्त रूप से जापानी आत्मसमर्पण और अमेरिकी तथा रूसी सेनाओं की वापसी की व्यवस्था कर सकें। उत्तरी कोरिया पर रूसी सेनाओं ने अधिकार कर लिया और दक्षिणी कोरिया अमेरिका के वर्चस्व में आ गया। यह विभाजन स्थाई नहीं रहना था। संयुक्त राष्ट्र और अमेरिका संपूर्ण कोरिया में स्वतंत्र चुनाव चाहते थे। अमेरिका को पता था कि दक्षिणी कोरिया की जनसंख्या संपूर्ण कोरिया का 2/3 भाग थी, इसीलिए अमेरिका स्वतंत्र चुनाव चाहता था। ऐसे में चुनाव की स्थिति में वह पूंजीपतियों की विजय के प्रति आश्वस्त था। यही कारण है कि जर्मनी की

 ©Vision IAS

भांति कोरिया भी शीत युद्ध का एक भाग बन गया। 1948 में स्वतंत्र **रिपब्लिक ऑफ़ कोरिया** (दक्षिणी कोरिया) का गठन किया गया और UNO के पर्यवेक्षण में चुनाव आयोजित किये गये। इसके तुरंत पश्चात् रूस ने किम इल सुंग की साम्यवादी सरकार के अंतर्गत **डेमोक्रेटिक पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ कोरिया** का गठन किया।

- 1949 में रूसी और अमेरिकी सैनिकों की वापसी हुई, परन्तु एक अस्थिर स्थिति में। कोरियाई लोगों ने विभाजन का विरोध किया और उत्तरी एवं दक्षिण कोरिया दोनों के नेताओं ने सम्पूर्ण कोरिया पर शासन करने का दावा किया।

कोरियाई युद्ध का प्रारम्भ

- जब उत्तरी कोरिया ने देश के एकीकरण के प्रयास में दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण किया तो इस युद्ध का आरंभ हुआ। उत्तरी कोरिया ने यह कठोर कदम क्यों उठाया इसका कारण स्पष्ट नहीं है, परन्तु निम्नलिखित पहलुओं ने इसे प्रोत्साहित किया:
    - बर्लिन की नाकेबंदी की विफलता के पश्चात् और प्रशांत क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए रूस ने हाल ही में गठित उत्तरी कोरिया में साम्यवाद को सशक्त करने के उद्देश्य से टैंको की आपूर्ति की थी। इस प्रकार उत्तरी कोरिया स्वयं को सैन्य रूप से श्रेष्ठ समझ रहा था।
    - अमेरिकी विदेश सचिव ने एक भाषण में उल्लेख किया था कि अमेरिका प्रशांत क्षेत्र की रक्षा करेगा, परन्तु उसने दक्षिणी कोरिया का उल्लेख नहीं किया था।
    - चीन ताइवान द्वीप के सामने वाले प्रान्त में अपने सैनिकों को एकत्रित कर रहा था, जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि चीन ताईवान पर आक्रमण करने के तैयारी कर रहा है। इससे उत्तरी कोरिया प्रोत्साहित हुआ और उसे यह आशा थी कि नवगठित साम्यवादी चीन उत्तरी कोरिया की सहायता करेगा।
    - उत्तरी कोरिया ने युद्ध प्रारम्भ करने के लिए दक्षिणी कोरिया पर आरोप लगाया कि दक्षिणी कोरिया के सैनिकों ने 38वीं समानांतर रेखा (38th parallel) पहले पार की थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

- एक नये साम्यवादी देश के उदय की सम्भावना पर अमेरिका चौकन्ना हो गया। जब अमेरिका ने अपने सैनिकों को भेजने का निर्णय ले लिया तब उत्तरी कोरिया जीत के कगार पर था। इस निर्णय के एक दिन पश्चात् अमेरिका ने सैन्य हस्तक्षेप के लिए संयुक्त राष्ट्र की स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उस समय सोवियत रूस संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद की बैठकों से स्वयं को अलग रख रहा था तथा उस समय यह चर्चा चल रही थी कि क्या अलग रहने का अर्थ वीटो का उपयोग है। इसी समय में UNGA ने "शांति के लिए एकजुटता" के ऐतिहासिक प्रस्ताव को अपना लिया और रूस के अलग रहने से किसी भी प्रकार के सम्भावित वीटो को अस्वीकृत कर दिया। इससे सुरक्षा परिषद में प्रस्ताव के पारित होने का मार्ग प्रशस्त हो गया। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) की बैठक से एक दिन पूर्व ही हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया था और इस प्रकार UNSC का प्रस्ताव केवल इसलिए पारित हुआ क्योंकि रूस ने स्वयं को अलग रखा। यह एक प्रकार से संयुक्त राष्ट्र की आड़ में अमेरिका का हस्तक्षेप था। इसके अतिरिक्त UNSC प्रस्ताव केवल 38वीं समानांतर रेखा को बहाल करने के लिए था, परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के पश्चात् अमेरिका ने उत्तरी कोरिया पर आक्रमण करने के लिए UNSC की स्वीकृति प्राप्त कर ली। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र को अमेरिका द्वारा निर्देशित किया जा रहा था।
- अमेरिका उत्तरी कोरिया के सैनिकों को पीछे धकेलने में सफल रहा, परन्तु अब यह कोरिया का एकीकरण चाह रहा था। अमेरिका ने उत्तरी कोरिया के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया और चीनी सीमाओं के निकट यालू नदी तक पहुंच गया।

VISION IAS

- चीन ने अमेरिका को चेतावनी दी थी कि वह उत्तर की ओर आक्रमण न करे और स्वयं को 38वीं समानांतर रेखा के साथ मूल सीमा की बहाली तक ही सीमित रखे। अपने निकटवर्ती पड़ोस में एक पूंजीवादी समर्थक एकीकृत कोरिया की सम्भावना का खतरा भांप कर चीन ने सैन्य हस्तक्षेप किया और सियोल पर अधिकार कर लिया। मैकार्थर (अमेरिकी कमांडर) ने चीन पर परमाणु बम के उपयोग का सुझाव दिया, हालांकि बाद में उसे उसके पद से हटा दिया गया। संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं ने फिर से कार्यवाही की और अंततः 38वीं समांतर रेखा के साथ सीमा को बहाल किया गया। इस प्रकार कोरियाई युद्ध एक युद्ध विराम के साथ समाप्त हुआ और किसी शांति समझौते पर हस्ताक्षर नहीं हुए। इस प्रकार आधिकारिक रूप से कोरियाई युद्ध अभी तक समाप्त नहीं हुआ है।

कोरियाई युद्ध के प्रभाव

- दक्षिणी और उत्तरी कोरिया दोनों ऐसे युद्ध से तबाह हो गये थे, जिसका परिणाम कुछ भी नहीं निकला था और यह विभाजन स्थाई लग रहा था। दोनों में परस्पर संदेह विकसित हुआ और शस्त्रों की एक दौड़ प्रारम्भ हो गयी, जिसमें उत्तरी कोरिया 2009 में एक पूर्ण विकसित परमाणु शक्ति बन गया (पहला परमाणु परीक्षण 2007 में हुआ)। दक्षिणी कोरिया ने स्वयं कोई परमाणु हथियार विकसित नहीं किया है परन्तु उसे अमेरिका की छत्र छाया प्राप्त है। एक संयुक्त कोरिया के सृजन और शांति के प्रयास अभी भी चल रहे हैं।
- कोरियाई युद्ध पहला उदहारण था जहाँ अमेरिका ने (ट्रूमैन के नेतृत्व में) आर्थिक उपायों के स्थान पर नियंत्रण की नीति (ट्रूमैन का 1947 का सिद्धांत) के अंतर्गत सैन्य कार्यवाही का उपयोग किया था।
- अमेरिका के चरमपंथी चीन पर आक्रमण न करने के विरुद्ध थे।
- साम्यवादी देशों द्वारा संयुक्त राष्ट्र को पूंजीवादी शक्तियों का एक उपकरण समझा जाने लगा।
- कोरियाई युद्ध ने सैन्य शक्ति के रूप में विश्व में चीन की छवि में सुधार किया और कई वर्गों ने उसे UNSC में स्थाई सीट के वैध दावेदार के रूप में देखना प्रारम्भ कर दिया था (अंत में उसे यह स्थिति 1971 में प्राप्त हुई, जिस पर अभी तक च्यांग काई शेक सरकार का अधिकार था)।
- **साम्यवाद को पीछे खदेड़ने की नीति, MAD, ब्रिंकमैनशिप, परमाणु प्रतिरोध:** कोरियाई युद्ध ने शीत युद्ध में एक ज्वाला का काम किया था। अमेरिका की विदेश नीति पर अमेरिकी विदेश मंत्री डलेस का वर्चस्व था, जिसका कार्यकाल 1953-59 तक था। उसका यह विश्वास था कि साम्यवाद के लिए "रोकथाम" की नीति अपर्याप्त थी और साम्यवादी आतंक से लोगों की "मुक्ति" के लिए उसने साम्यवाद के "अंत" और एक अधिक आक्रामक नीति का सुझाव दिया। उसने कुछ खतरनाक सिद्धांतों के प्रस्ताव दिए, जैसे:

- ○ **“व्यापक प्रतिशोध” (Massive Retaliation)** जिसका अर्थ था परमाणु हथियारों का उपयोग।
- ○ **“ब्रिंकमैनशिप का सिद्धांत”** जिसका अर्थ था ऐसी स्थितियों का निर्माण करना, जिनसे देश बिना वास्तविक युद्ध लड़े रूस के साथ युद्ध के कगार पर पहुंच जाए। उद्देश्य यह था कि रूस को युद्ध के कगार पर लाकर उसे अमेरिका को रियायते देने के लिए विवश किया जाए। 1953 तक अमेरिका और रूस दोनों ही के पास परमाणु और हाईड्रोजन बम थे और ब्रिंकमैनशिप के सिद्धांत से स्वयं मानवता का अस्तित्व ही संकट में था।
- ○ **MAD का सिद्धांत:** इसका उपयोग हथियारों के भंडार को उचित ठहराने के लिए किया गया था। परस्पर सुनिश्चित विनाश (Mutually Assured Destruction) के इस सिद्धांत के अनुसार एक परमाणु सम्पन्न राष्ट्र दूसरे परमाणु सम्पन्न राष्ट्र के विरुद्ध परमाणु हथियार के उपयोग का जोखिम नहीं लेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में दोनों ही एक-दूसरे को नष्ट कर देंगे।
- ○ **नाभिकीय भयादोहन का सिद्धांत (Doctrine of Nuclear Deterrence):** इसका अर्थ परमाणु हथियारों को यह सुनिश्चित करने के लिए विकसित करना था कि कोई अन्य देश प्रतिरोधी परमाणु हमले के भय से किसी परमाणु सम्पन्न राष्ट्र पर हमले का खतरा मोल नहीं लेगा। इस नीति को विश्व में शांति बनाये रखने के बहाने से परमाणु हथियारों के विकास को उचित ठहराने के लिए विकसित किया गया। इस सिद्धांत के कारण ब्रिटेन ने 1957 में स्वयं अपने परमाणु हथियार विकसित किए। चीन, फ़्रांस और हाल ही में भारत, पाकिस्तान एवं उत्तर कोरिया ने भी स्वयं के लिए भयादोहन के अस्त्र विकसित कर लिए हैं।

- शीत युद्ध और गम्भीर हो गया क्योंकि कोरियाई युद्ध ने चीन-अमेरिका और रूस-अमेरिका के सम्बन्धों में कटुता बढ़ा दी थी। इसके अतिरिक्त **एशिया और प्रशांत क्षेत्र में कई सैन्य गठजोड़** उभरने लगे थे:
  - ○ चीन ने फ़्रांस के विरुद्ध इंडो-चाइना स्वतंत्रता संघर्ष में साम्यवादी वियतनाम का समर्थन किया। चीन ने एशिया, दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के अविकसित देशों को सहायता का प्रस्ताव रखा। भारत और बर्मा के साथ चीन ने “शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व” के लिए समझौतों पर हस्ताक्षर किये। चीन ताईवान पर अधिकार करना चाहता था परन्तु अमेरिका ने ताईवान में अपने सैन्य अड्डे स्थापित कर लिये तथा ताईवान की सुरक्षा के लिए स्वयं को प्रतिबद्ध किया।
  - ○ स्वेज युद्ध (1956) की समाप्ति के बाद अरब देश सोवियत संघ के और निकट आ गए। इसने राष्ट्रपति आईजनहावर को **‘आईजनहावर सिद्धांत’** के प्रस्ताव के लिए प्रेरित किया। इसका आशय था कि “अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद” को रोकने के लिए इस क्षेत्र के देशों को आर्थिक और सैन्य सहायता प्रदान की जाए।
  - ○ अमेरिका ने सैनिक ठिकानों की स्थापना के द्वारा चीन को घेरना प्रारम्भ कर दिया। उदहारणस्वरुप, अमेरिका ने आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के साथ 1951 में एक सैन्य समझौते पर हस्ताक्षर किये। SEATO (South East Asia Treaty Organization/दक्षिण एशिया संधि संगठन: 1954-77) का गठन 1954 में मनीला संधि के द्वारा किया गया, जिसका नेतृत्व अमेरिका, ब्रिटेन, फ़्रांस, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया के पास था। जब केवल तीन एशियाई देश अर्थात् पाकिस्तान, फिलिपीन्स और थाईलैंड ही SEATO में सम्मिलित हुए तो अमेरिका को बहुत निराशा हुई। इसका उद्देश्य साम्यवाद के प्रसार को रोकना और इसे NATO जैसा संगठन बनाना था। आंतरिक मतभेदों के कारण यह विफल रहा और 1977 में इसे भंग कर दिया गया।
  - ○ SEATO के गठन के तुरंत बाद **बगदाद संधि** पर हस्ताक्षर किए गए। इस संधि के द्वारा इराक, ईरान, तुर्की और पाकिस्तान अमेरिका के नेतृत्व में एक अमेरिकी सैन्य गठबंधन में सम्मिलित हुए। जब इराक में राजशाही को उखाड़ फेकने के लिए हुई क्रांति के पश्चात् इराक इससे बाहर हो गया तो बगदाद संधि का नामकरण केन्द्रीय संधि संगठन (Central Treaty Organization: CENTO) के रूप में किया गया। इन सैन्य गठजोड़ों का उपयोग एशिया के

VISION IAS

कई अलोकतांत्रिक सत्ताओं का समर्थन करने के लिए किया गया था। अमेरिका ने इन सत्ताओं को पूरी तरह शस्त्रों से सुसज्जित कर दिया। इससे इन गठजोड़ों के सदस्यों के उन पड़ोसी देशों में तनाव उत्पन्न हुआ, जिन्होंने इस गठजोड़ में सम्मिलित होने से मना कर दिया था। इस सन्दर्भ में NAM (1961) का उदय हुआ। उदाहरण के लिए भारत जैसे देशों ने SEATO में सम्मिलित होने से मना कर दिया और गुट-निरपेक्षता की नीति का पालन किया जिसकी पराकाष्ठा गुट-निरपेक्ष आन्दोलन (1961) के रूप में देखने को मिली।

क्यूबा

- क्यूबा की क्रांति ने क्यूबा मिसाइल संकट के लिए एक अग्रदूत के रूप में कार्य किया। इसलिए इसके पीछे के इतिहास को समझना महत्वपूर्ण है:

क्यूबा की क्रांति या अमेरिका के प्रति असंतोष के कारण (1953-1959)

- **आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप:** 1898 में अमेरिका ने स्पेन से स्वतंत्रता प्राप्त करने में क्यूबा की सहायता की थी (स्पेन-अमेरिकी युद्ध, 1898)। तब से क्यूबा के कई लोगों को यहां अमेरिका के अत्यधिक प्रभाव से अप्रसन्नता थी। शांति बहाल करने के लिए प्रायः अमेरिकी सैनिकों को तैनात करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त क्यूबा की अर्थव्यवस्था पर भी अमेरिका का वर्चस्व था।
- **क्यूबाई अर्थव्यवस्था पर अमेरिकी नियंत्रण:** अमेरिकी कम्पनियों ने क्यूबाई अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक निवेश किया था। क्यूबा की भूमि का 50%, रेलवे का 3/5वां भाग और सम्पूर्ण विद्युत उत्पादन उनके स्वामित्व में था। अमेरिकी कम्पनियों की क्यूबा के सभी उद्योगों में (निकिल, तांबा, चीनी, तम्बाकू, लोहा आदि) भागीदारी थी और क्यूबा के तेल शोधन उद्योग में तो उनका एकाधिकार था। यदि इसके कारण क्यूबाई लोगों में कुछ समृद्धि आई होती तो अमेरिकी प्रभाव से उतनी अप्रसन्नता शायद न होती जितनी थी।
- **दयनीय सामाजिक संकेतक:** देश में धन और भूमि का स्वामित्व सकेंद्रित था। जनता की निर्धनता और भ्रष्ट अधिकारियों की सम्पत्ति में बहुत अधिक असमानता थी। इस प्रकार सामाजिक असंतोष बढ़ रहा था। क्यूबा में सामाजिक संकेतकों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। क्यूबाई समाज में बेरोजगारी में काफी वृद्धि हुई थी। यहां मौसमी बेरोजगारी एक गम्भीर समस्या बन गयी थी क्योंकि वर्ष भर में गन्ने की कटाई के समय यह 8% रहती थी, तो वर्ष के शेष समय में बढ़कर यह 30% हो जाती थी। ट्रेड यूनियनों पर चीनी मिल श्रमिकों का वर्चस्व था जिनके पास पूरे वर्ष भर रोजगार उपलब्ध रहता था और वे अन्य क्षेत्रों के श्रमिकों के लिए पर्याप्त कार्य करने में विफल रहे।
- **अर्थव्यवस्था की कमजोरियां:** क्यूबा चीनी के निर्यात पर बहुत अधिक निर्भर था, अतः अर्थव्यवस्था में पर्याप्त औद्योगिक विविधिता देखने को नहीं मिल सकी। अपने निर्यात (विशेषकर चीनी) के लिए क्यूबा मुख्य रूप से अमेरिका और अमेरिकी सहायता पर निर्भर था।
- **सुशासन का अभाव:** कोई प्रभावी राजनीतिक व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी। ऐसे संगठनों का अभाव था जो सुशासन सुनिश्चित कर सकें। 1952 में एक पूर्व सैनिक सार्जेंट बतिस्ता ने सत्ता पर अवैध अधिकार कर लिया और एक तानाशाह की भांति शासन करने लगा। उसकी सरकार को अमेरिका द्वारा सरलता से मान्यता मिल गई। बतिस्ता का शासन क्रूर और भ्रष्ट था। विशेषकर छात्र बतिस्ता के विरोधी थे।
- **एक अहिंसक विद्रोह आवश्यक हो गया:** 1952 में चुनाव होने वाले थे और छात्रों द्वारा भ्रष्टाचार विरोधी प्रदर्शन भी साथ-साथ चल रहे थे। मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि से एक वकील फिदेल कास्त्रो का एक नेता के रूप में उदय हुआ। बतिस्ता ने कास्त्रो की भ्रष्टाचार विरोधी पार्टी को चुनावों में जीतने से रोकने के लिए तख्तापलट कर दिया। कास्त्रो ने बतिस्ता के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया और 1953 में बतिस्ता को सत्ता से हटाने का एक विफल प्रयास किया। बतिस्ता पर जनता के बढ़ते हुए दबाव के कारण दो वर्षो के पश्चात् कास्त्रो को मुक्त करना पड़ा और सभी राजनीतिक बंदियों को क्षमा करना पड़ा। कास्त्रो ने अमेरिका में बसे क्यूबाई लोगों के बीच समर्थन पाने और धन जुटाने के लिए अमेरिका का दौरा किया। वह मैक्सिको भी गया जहाँ उसकी भेंट चे ग्वेरा से हुई और चे के साथ मिलकर उसने एक क्रान्तिकारी संगठन बनाया, जिसमें चे ग्वेरा; कास्त्रो की गुरिल्ला फ़ोर्स का प्रथम कमांडर था। कास्त्रो 82 लोगों के साथ समुद्री मार्ग से क्यूबा लौटे तथा एक

और तख्तापलट का प्रयास किया। बतिस्ता की सेनाओं ने कइयों को बंदी बना लिया, परन्तु चे ग्वेरा और कास्त्रो सहित 21 लोग बच निकले। कास्त्रो और चे ग्वेरा ने किसानों को युद्धकला में प्रशिक्षित किया और उन्होंने एक महिला बटालियन का भी गठन किया। जो पहाड़ी क्षेत्र फिदेल कास्त्रो के नियंत्रण में आ गये थे उनमें उसने भूमि सुधार लागू किए। इस कार्य से उसे जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ।

- **बतिस्ता का दमन:** वह बहुत ही क्रूर शासक था। उसके शासनकाल में कई संदिग्धों पर अत्याचार हुए और अनेकों संदिग्ध मारे गए। इससे जनता की राय (विशेषकर मध्यवर्गीय लोग जो बतिस्ता के लिए महत्वपूर्ण थे) बतिस्ता के और विरुद्ध हो गयी। 1958 तक कास्त्रो की सेनाओ को पराजित करने में असफल रहने के कारण बहुत ही असंतोषजनक वेतन प्राप्त करने वाली सेना (जो व्यापारियों और मध्यवर्ग के साथ-साथ बतिस्ता के समर्थन का मुख्य आधार था) का मनोबल गिर चुका था। अमेरिका जो पहले बतिस्ता का समर्थक था अब उसने मानवाधिकारों के घोर उल्लंघन के पश्चात् हथियारों की आपूर्ति बंद कर दी। बतिस्ता के लिए यह बहुत बड़ा धक्का था और गुरिल्ला लड़ाकुओं की विजय अब सुनिश्चित दिख रही थी।
- **क्रांति की सफलता (1959):** अर्जेंटीना के चे ग्वेरा ने कास्त्रो के अभियान में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की। 1959 में 32 वर्ष की आयु में कास्त्रो ने बतिस्ता के शासन को उखाड़ फेंका। बतिस्ता भागकर डोमिनिकन रिपब्लिक चला गया। उसके कई समर्थक अमेरिका के मियामी (इस प्रकार से आज तक मियामी में एक सशक्त क्यूबा-विरोधी लॉबी है) भाग गए। क्यूबा में कास्त्रो के नेतृत्व में एक उदारवादी सरकार की स्थापना हुई।
- **सत्ता में फिदेल कास्त्रो (1959-2010):** बतिस्ता के जो समर्थक क्यूबा से नहीं भागे थे उन पर अभियोग चलाया गया। उनमें से कुछ CIA के एजेंट भी थे, इसलिए अमेरिका इन अभियोगों के विरुद्ध था। अमेरिका के साथ बेहतर तालमेल बनाने के लिए कास्त्रो अमेरिका गए। उस समय आइजनहावर राष्ट्रपति थे और निक्सन उपराष्ट्रपति। आइजनहावर ने कास्त्रो से मिलने से मना कर दिया और निक्सन ने उस पर साम्यवादी का ठप्पा लगा दिया। उसके दौरे के दौरान हार्लेम में अवस्थित एक होटल वाले ने उसे वहां रुकने की अनुमति देने से मना कर दिया। तब एक अश्वेत के स्वामित्व वाले थेरेसा नामक होटल में कास्त्रो को रुकने के लिए आमंत्रित किया गया। इस होटल में विश्व के कई नेता जिनमें निकिता ख्रुश्चेव भी सम्मिलित थे उसे मिलने आये। निकिता ने कहा, "मुझे पता नहीं है कि कास्त्रो साम्यवादी है या नहीं परन्तु मैं एक फिदेलवादी हूँ"। अश्वेत अमेरिकी नेता माल्कोल्म भी उसे मिलने थेरेसा होटल आए। कास्त्रो के शासनकाल की कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियां इस प्रकार थीं:

चित्र: हवाना की सड़कों पर परेड करते हुए फिदेल कास्त्रो और चे ग्वेरा।

- **फिदेल कास्त्रो के सुधार कार्यक्रम:** निराश हो कर घर वापसी पर फिदेल ने अपने सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ किए:
    - **भूमि सुधार:** भू-स्वामित्व के सकेंद्रण को कम करने के लिए फिदेल ने भूमि का पुनर्वितरण प्रारम्भ किया। क्यूबा की 70% भूमि पर विदेशियों का कब्ज़ा था, विशेषकर अमेरिकी लोगों का और इसलिए अमेरिकी सरकार कास्त्रो के भूमि सुधारों के विरुद्ध थी।
    - **सामाजिक सुधार:** भूमि सुधारों के पश्चात् क्यूबा ने शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रक को लक्षित किया। कई नवयुवक सुदूर क्षेत्रों में किसानों के बच्चों को शिक्षित करने गए।
    - **राष्ट्रीयकरण:** इसके पश्चात् कास्त्रो सोवियत कच्चे तेल के शोधन के लिए एक अमेरिकी तेल शोधन इकाई चाहता था, परन्तु अमेरिका ने इसके लिए मना कर दिया। फलतः कास्त्रो ने तेल शोधन इकाईयों का राष्ट्रीयकरण प्रारम्भ कर दिया। इसके प्रत्युत्तर में अमेरिका ने क्यूबा पर प्रतिबन्ध लगा दिए। क्रोधित कास्त्रो ने इसका प्रत्युत्तर सभी उपयोगिताओं के राष्ट्रीयकरण से दिया।
    - **अमेरिका द्वारा व्यापारिक प्रतिबन्ध:** इसके प्रत्युत्तर में अमेरिका ने क्यूबा पर व्यापार प्रतिबन्ध लगा दिए (1960 से अमेरिका ने क्यूबा से चीनी का आयात बंद कर दिया)। क्यूबा की अर्थव्यवस्था सदा से ही चीनी के निर्यात पर आधारित थी और उसका मुख्य निर्यात बाजार अमेरिका था। इस प्रतिबन्ध ने क्यूबा की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाई। इसके बाद रूस ने क्यूबाई चीनी खरीदने का वचन दिया।
    - कास्त्रो ने सदा ही खेलों को प्रोत्साहित किया। क्यूबा के कई नागरिकों के अफ्रीकी प्रवासियों के वंशज होने के कारण, ओलम्पिक पदकों की तालिका में क्यूबा निरंतर पहले दस शीर्ष स्थान प्राप्त करता रहा है।
- **पिग्स की खाड़ी (Bay of Pigs):** यह घटना वस्तुतः अमेरिका के समर्थन से अमेरिका में निर्वासन में रह रहे क्यूबाईयों द्वारा क्यूबा पर किया गया एक आक्रमण था। इस आक्रमण की योजना आइजनहावर ने बनाई थी और इसका क्रियान्वयन केनेडी के कार्यकाल में हुआ था। केनेडी ने अमेरिकी सेनाओं के उपयोग के लिए वीटो का उपयोग किया और इस प्रकार निर्वासित क्यूबाई लोगों द्वारा (विशेषकर मियामी में) 'पिग्स की खाड़ी' की घटना को मूर्त रूप दिया गया। स्वयं फिदेल कास्त्रो ने रक्षा पंक्ति का नेतृत्व किया और 72 घंटों में युद्ध में विजय प्राप्त की। इसमें शामिल अपराधियों को बंदी बनाया गया और बाद में क्यूबाई बच्चों के भोजन के बदले में उनका अमेरिका से आदान-प्रदान किया गया।
- **साम्यवाद का क्यूबाई स्वरूप:** 1961 के पिग्स की खाड़ी की घटना के पश्चात् क्यूबा एक साम्यवादी राष्ट्र बन गया और एकल पार्टी व्यवस्था को सशक्त किया। (यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि "साम्यवादी राष्ट्र" शब्द का प्रयोग पश्चिम में ही किया जाता है और स्वयं तथाकथित साम्यवादी सत्ताएं इसका प्रयोग नहीं करती हैं, क्योंकि उनका मानना है कि समाज में समाजवाद के समेकन या पूर्ण परिपक्वता के पश्चात् ही साम्यवाद का आरम्भ होगा। इसलिए वे "डेमोक्रेटिक पीपल्स रिपब्लिक", "रिपब्लिक", "सोशलिस्ट रिपब्लिक" आदि जैसे शब्दों का उपयोग करते हैं। उदहारण के लिए क्यूबा को रिपब्लिक ऑफ़ क्यूबा कहा जाता है)।

  क्यूबा में केवल एक ही पार्टी अर्थात् साम्यवादी पार्टी को अनुमति प्राप्त है। हालांकि यहां इस पार्टी को भी प्रत्याशियों के लिए प्रचार करने की अनुमति नहीं है, यह चुनाव में प्रत्याशियों को नहीं उतार सकती है। पार्टी की औपचारिक भागीदारी के बिना ही व्यक्तिगत जनमत संग्रह के आधार पर प्रत्याशियों का चुनाव होता है और इस प्रकार निर्वाचित विधान सभाओं में वह प्रत्याशी भी हो सकते हैं जो साम्यवादी पार्टी के सदस्य नहीं है।

  फिदेल की घोषणा (Fidel's declaration) पिग्स की खाड़ी (1961) की घटना के पश्चात् हुई थी क्योंकि फिदेल क्यूबाई क्रांति के संरक्षण तथा सार्वभौम स्वास्थ्य और शिक्षा सुधारों को चलाने के लिए रूसी सहायता चाहता था। इसलिए प्रारम्भ में कास्त्रो साम्यवादी नहीं था (एक उदार राष्ट्रवादी था) परन्तु बाद में बन गया था। उसने घोषणा की कि *वह एक मार्क्सवादी है और क्यूबा एक समाजवादी देश है। उसकी नीति समाजवाद की नीति है।*

VISION IAS

- **क्यूबा और सोवियत संघ:** जैसे-जैसे क्यूबा और अमेरिका के संबंध खराब होते गए, क्यूबा और सोवियत संघ के सम्बन्धों में सुधार होता गया तथा सोवियत संघ की सहायता भी बढ़ने लगी। सोवियत संघ से अपनी विदेश नीति को स्वतंत्रत बनाए रखने के लिए फिदेल ने निरंतर प्रयास किया और क्यूबाई स्वायत्तता एवं सम्प्रभुता के साथ सोवियत संघ पर निर्भरता के बीच संतुलन बनाए रखा। नवीन क्यूबा के गठन के पहले ही वर्ष में उसने NAM (1961) की सदस्यता ग्रहण की। परन्तु विडम्बना यह रही कि शीघ्र ही वह क्यूबाई मिसाइल संकट (अक्टूबर 1962) में उलझ गया।
- **क्यूबाई मिसाइल संकट (अक्टूबर 1962):** इस दौरान क्यूबा ने अपने यहां सतह से सतह तक मार करने वाली सोवियत मिसाइलें तैनात करने के लिए सहमति दी (सतह से सतह पर मार करने वाली मिसाइलों को आक्रामक माना जाता है, जबकि सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइलों को रक्षात्मक मिसाइलों की श्रेणी में रखा जाता है)। निकिता ख्रुश्चेव ने 1956 में पश्चिम के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत का समर्थन किया था, लेकिन निकिता के इस निर्णय के पीछे निम्नलिखित घटनाओं का योगदान रहा:
  - अमेरिकी गुप्तचर विमान U2 को मार गिराना (1960),
  - बर्लिन में तनाव (1961 में बर्लिन की दीवार खड़ी की गयी। ख्रुश्चेव शायद अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस पर पश्चिमी बर्लिन से वापस जाने के लिए दबाव बनाने हेतु क्यूबा में मिसाइलों का उपयोग करना चाहता था)।
  - 1961 में वियतनाम युद्ध प्रारम्भ हो गया था। इस युद्ध में जहाँ एक ओर अमेरिका साम्यवादियों के विरुद्ध सैन्य हस्तक्षेप करना शुरू कर चुका था, वहीं दूसरी ओर चीन और रूस साम्यवादियों का समर्थन कर रहे थे।
  - सोवियत संघ फिदेल कास्त्रो के प्रति एकजुटता प्रदर्शित करना चाहता था, जिसे अमेरिका द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था। उल्लेखनीय है कि 1961 में अमेरिका ने क्यूबा के साथ अपने राजनयिक संबंध समाप्त कर लिए थे। अमेरिका द्वारा लगाए गए व्यापारिक प्रतिबन्ध क्यूबा के चीनी निर्यात को प्रभावित कर रहे थे। 1961 में ही पिग्स की खाड़ी की घटना घटी।
  - सोवियत संघ की ICBMs (इंटर-कांटिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइल) ATLAS मिसाइल से पिछड़ गई थी।
  - इसका एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह था कि अमेरिका ने रूस से सटे तुर्की के भूभाग में जुपिटर और थोर मिसाइलें तैनात कर दी थी। अतः सोवियत संघ अमेरिका को यह सबक सिखाना चाहता था कि अपने सीमा के सन्निकट शत्रु की मिसाइल की तैनाती से कैसा लगता है और इन मिसाइलों को हटवाने के लिए वह सौदेबाजी करना चाहता था।

चित्र: 22 अक्टूबर 1962 को क्यूबा मिसाइल संकट के दौरान राष्ट्र को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति जे. एफ. केनेडी

VISION IAS

अमेरिका ने शीघ्र ही सोवियत मिसाइलों का पता लगा लिया। यह वह समय था जब विश्व परमाणु युद्ध के कगार पर खड़ा था। अमेरिका ने रूसी जहाजों को मिसाइलों को लेकर क्यूबा आने से रोकने के लिए क्यूबा की नाकेबंदी प्रारम्भ कर दी। अंत में 1963 में संयुक्त राष्ट्र ने जे. एफ़. केनेडी और ख्रुश्चेव के बीच एक समझौता कराया, जिसके अंतर्गत:

- रूस ने मिसाइलें हटाने का निर्णय किया। हालांकि यह निर्णय फिदेल को विश्वास में लिए बिना ही किया गया था। इससे फिदेल क्रोधित हुआ, परन्तु बाद में ख्रुश्चेव ने उसे सोवियत संघ आमंत्रित किया और पुराने मधुर संबंध फिर से बहाल हो गए। कुछ लोगों का तर्क है कि अमेरिका-सोवियत संघ समझौते में एक गोपनीय धारा थी, जिसमें अमेरिका ने क्यूबा पर पुनः आक्रमण न करने का वचन दिया था।
- अमेरिका ने तुर्की से थोर और जुपिटर (निकट दूरी की परमाणु मिसाइलें) को हटा लिया।
- वाशिंगटन और मॉस्को के बीच एक हॉटलाइन स्थापित की गयी।
- रूस, अमेरिका और ब्रिटेन ने 1963 में एक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि (Nuclear Test Ban Treaty) पर हस्ताक्षर किये। परमाणु परीक्षण से पर्यावरण को प्रदूषित होने से से बचाने के लिए अब केवल भूमिगत परीक्षणों की ही अनुमति थी।

- **दक्षिणी अफ़्रीकी सीमा युद्ध (South African Border War, 1966-89):** यह युद्ध शीत युद्ध का ही एक भाग था और यह अंगोला तथा दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका (अब नामीबिया) में लड़ा गया था। इस युद्ध में जहां एक ओर अमेरिका की सहायता से दक्षिण अफ्रीका लड़ रहा था तो वही दूसरी ओर अंगोला, साउथ-वेस्ट अफ्रीका पीपल्स ऑर्गनाइजेशन (SWAPO) और उनके कुछ मित्र देश (मुख्यतः क्यूबा) लड़ रहे थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दक्षिण अफ्रीका ने जर्मनी के दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीकी उपनिवेशों पर आक्रमण किया और मित्र शक्तियों की ओर से उस पर अधिकार कर लिया तथा बाद में लीग ऑफ़ नेशन की ओर से दक्षिण अफ्रीका को इसे एक मैंडेट के रूप में सौंप दिया गया। यही कारण था कि SWAPO दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु संघर्ष कर रहा था। 1975 में अंगोला ने पुर्तगाल से स्वाधीनता प्राप्त कर ली और मार्क्सवादी MPLA (पीपल्स मूवमेंट फॉर द लिबरेशन ऑफ़ अंगोला) की सरकार सत्ता में आ गयी। MPLA ने 1961-75 तक अंगोला की स्वाधीनता के लिए युद्ध किया था। 1975 के पश्चात् MPLA ने SWAPO के गुरिल्लाओं को सुरक्षित आवास प्रदान किये थे और सोवियत संघ ने SWAPO की सहायता के लिए उसके लड़ाकों को प्रशिक्षण देने के माध्यम से समर्थन किया, जिसके कारण अंगोला पर दक्षिण अफ्रीका का आक्रमण हुआ।

अंगोला पर दक्षिण अफ़्रीका की सेना के आक्रमण को रोकने के लिए क्यूबा ने अपनी सेनाओं को भेजा। उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका की सेनाओं को पराजित कर दिया और दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति की प्रगति में एक महत्वपूर्ण घटना का कार्य किया।

- **दक्षिण अमेरिकी क्रांतियाँ:** पुनः कुछ लैटिन अमेरिकी देशों में हिंसक क्रांतियाँ देखने को मिलीं, उदाहरण के लिए बोलीविया।
- **चे ग्वेरा का निधन (1967):** 1959 के पश्चात् चे कई महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रहा, जैसे- वित्त मंत्री, राष्ट्रीय बैंक का अध्यक्ष। वह क्यूबाई सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए भी उत्तरदायी था। चे पिग्स की खाड़ी के युद्ध में भाग नहीं ले सका था, क्योंकि आक्रमण से एक दिन पहले उसे अमेरिकी युद्ध पोतों के एक आक्रमण (जो नकली था) से निबटने के लिए भेजा गया था। बाद में 1965 में चे ने अन्य साम्यवादी क्रांतियों के समर्थन के लिए क्यूबा को छोड़ दिया। इस क्रम में उसने सबसे पहले रिपब्लिक ऑफ़ कांगो में साम्यवादी क्रांति लाने का एक असफल प्रयास किया। यहाँ उसने अमेरिका विरोधी गुरिल्ला लड़ाकुओं का समर्थन किया। उसने इस क्रांति की विफलता के लिए अफ़्रीकी क्रांतिकारियों के बीच व्याप्त भ्रष्टाचार को दोषी ठहराया। इसके बाद उसने बोलीविया में वहां की सैन्य तानाशाही के विरुद्ध क्रांति हेतु प्रयास किया जहाँ उसे CIA द्वारा सहायता प्राप्त बोलीवियाई सेनाओं ने बंदी बना लिया और बोलीविया में ही 1967 में उसे मार दिया गया।
- **दक्षिणी अमेरिका में साम्यवादी क्रांतियों का दूसरा चरण शांतिपूर्ण रहा:** लैटिन अमेरिका की बाद की क्रांतियाँ शांतिपूर्ण तरीकों से संपन्न हो रही थीं (उदाहरण: सल्वाडोर अल्लेंद के अधीन चिली,

VISION IAS

1970-73)। कास्त्रो इस बात से सहमत था कि समाज में परिवर्तन के लिए शस्त्रों की प्रभाविता बहुत कम है क्योंकि जनता अधिक जागरूक और बौद्धिक है।

- **सोवियत संघ के पश्चात् क्यूबा:** USSR के पतन ने क्यूबा को संकट में डाल दिया और प्रत्येक व्यक्ति यह सोच रहा था कि सरकार एक या दो वर्षों में ही गिर जाएगी। परन्तु कास्त्रो के नेतृत्व ने क्यूबाई क्रांति के संरक्षण में सहायता की। क्यूबा ने यूरोपीय संघ और कनाडा के साथ व्यापार संधियों पर हस्ताक्षर किए। इससे तम्बाकू और गन्ने के क्षेत्र में कुछ संयुक्त उद्यमों की स्थापना हुई। बेयर और DHL जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यहाँ अपने प्रतिष्ठान स्थापित किए। इन सबसे विदेशी मुद्रा का भी अर्जन हुआ।
- कास्त्रो तीसरी दुनिया के लचीलेपन के महानतम प्रतीकों में से एक है। यदि डेविड को गोलायथ से लड़ने के लिए याद किया जाता है, तो क्यूबा को एक बहुत ही छोटे डेविड के रूप में याद किया जायेगा जिसने एक बहुत बड़े गोलायथ से लड़ाई लड़ी।
- **क्यूबा के पक्ष में संयुक्त राष्ट्र:** UN द्वारा कई बार कई प्रस्ताव पारित किये गये थे, जिनमें अमेरिका को क्यूबा पर लगाए गए व्यापारिक प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए कहा गया था।

- **आज के क्यूबा में समाजवाद:** राउल कास्त्रो (2010) के अधीन क्यूबा ने बाजार की शक्तियों की उपस्थिति के साथ चीन के साम्यवाद के प्रारूप की ओर कदम बढ़ाया है। बाद में 2013 में राउल ने साम्यवाद के संरक्षण के लिए एकल पार्टी व्यवस्था की आवश्यकता को उचित ठहराया। उनका तर्क है कि बहु-पार्टी व्यवस्था में अंततः पूंजीवादी लोग हावी हो जाते हैं और फिर वह स्थिति साम्यवाद के लिए संकट बन जाती है। राउल कास्त्रो ने एक अधिसूचना जारी की है जिसके अंतर्गत महत्वपूर्ण नेताओं की सत्ता में अवधि को दो वर्षों तक सीमित कर दिया गया है। इस प्रकार चीन की भांति क्यूबा में भी राजनीतिक सुधारों के बिना ही आर्थिक सुधारों को लागू किया गया है। निम्नलिखित कुछ सुधारों की पहल राउल कास्त्रो (2010) द्वारा की गयी थी:
    - राज्य की संचालन गतिविधियों को कम करना: राजकोषीय घाटा कम करने के लिए सरकारी कम्पनियों से कुछ लोगों को निकाला जाना और निकाले गये सरकारी कर्मचारियों को लघु उद्योग स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना।
    - सरकार ने राजनीतिक बंदियों को भी मुक्त किया।
    - अभी भी क्यूबा ने समाजवाद/साम्यवाद को छोड़ा नहीं है। बिना साम्यवाद को छोड़े हुए निजी क्षेत्र पर बल दिया गया है। मुक्त अर्थव्यवस्था के स्थान पर सुनियोजित विकास को ही सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इस प्रकार राउल के नेतृत्व में क्यूबा का उद्देश्य एक मिश्रित अर्थव्यवस्था को बनाए रखना है।

वियतनाम

- हिंदचीन (Indochina) वस्तुतः दक्षिण-पूर्व एशिया के उस क्षेत्र को संदर्भित करता है जिसमें लाओस, वियतनाम और कंबोडिया सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र फ्रांस के औपनिवेशिक साम्राज्य का एक भाग था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिंदचीन जापानियों के कब्जे में आ गया क्योंकि विची फ्रांस ने हिंदचीन का जापानी नियंत्रण स्वीकार कर लिया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उपनिवेशों में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का नेतृत्व कई बार कम्युनिस्ट संगठनों द्वारा किया गया था। हो ची मिन्ह के अधीन वियतमिन्ह (Vietminh) या वियतनाम स्वतंत्रता लीग (League for Vietnamese Independence) वियतनाम में स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध में जापानी हार के बाद फ्रांस ने हिंदचीन का विऔपनिवेशीकरण करने से मना कर दिया। इस प्रकार वियतमिन्ह ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान और फिर फ्रांस के विरूद्ध संघर्ष किया। वियतमिन्ह ने 1945 में फ्रांस से स्वतंत्रता घोषित कर दी। इससे वियतनाम में संघर्ष का पहला चरण या जिसे प्रथम हिंदचीन युद्ध (1946-54) के रूप में भी जाना जाता है, आरंभ हुआ।
- USSR ने हो ची मिन्ह का समर्थन किया। 1950 के बाद चीन ने हथियारों और उपकरणों से वियतमिन्ह की सहायता की। फलस्वरूप अमेरिका ने हथियारों और आर्थिक सहायता के रूप में फ्रांस की मदद की क्योंकि वह चीन के हस्तक्षेप को शीत युद्ध के एक भाग के रूप में देखता था।

VISION IAS

पड़ोस में कोरिया भी साम्यवादी खतरे (कोरियाई युद्ध 1950-53) के अधीन था। इस प्रकार वियतनाम शीत युद्ध का भाग बन गया। लेकिन फ्रांस द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कमजोर हो गया था और वह वियतमिन्ह की गुरिल्ला युद्ध रणनीति से निपटने में असमर्थ था। फ्रांस आर्थिक रूप से भी कमजोर हो गया था और लंबा खिंचनेवाला सैन्य संघर्ष झेल नहीं सकता था। अंत में जब वियतमिन्ह ने दिएन बिएन फु नामक स्थान पर 12,000 फ्रांसीसी सैनिकों को घेर लिया तब फ्रांस द्वारा पराजय का सामना करने के बाद **जेनेवा समझौते (1954)** पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते के अनुसार लाओस, वियतनाम और कंबोडिया को स्वतंत्रता दी गई और वियतनाम को उत्तर वियतनाम एवं दक्षिण वियतनाम में 17वीं समानांतर रेखा के साथ-साथ विभाजित कर दिया गया। यह विभाजन अस्थायी था और चुनाव करवाया जाना था, जिसके बाद देश का एकीकरण होना था।

जेनेवा समझौते (1954) के बाद वियतनाम में गृहयुद्ध क्यों?

- संयुक्त वियतनाम हेतु सरकार बनाने के लिए 1956 में चुनाव होने थे। हो ची मिन्ह (जिसने उत्तरी वियतनाम में अस्थायी सरकार बनाई थी) चुनाव में जीत को लेकर आश्वस्त था। लेकिन जो कोरिया में हुआ था वही वियतनाम में भी हुआ। दक्षिण वियतनाम की सरकार ने साम्यवादियों के जीत के डर से चुनाव कराने से मना कर दिया। इससे देश को एकजुट करने के उद्देश्य से दक्षिण वियतनाम में गृह युद्ध छिड़ गया। उत्तर वियतनाम की हो ची मिन्ह सरकार ने दक्षिण वियतनाम के क्रांतिकारियों का सक्रिय रूप से समर्थन किया, जबकि अमेरिका साम्यवादी शासन के अधीन संयुक्त वियतनाम के उदय को रोकने के लिए दृढ़संकल्पित था।

वियतनाम युद्ध (1961-75)

- अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहावर (1953-61) डोमिनो सिद्धांत का समर्थक था। उसे लग रहा था कि डोमिनो प्रभाव का खतरा बढ़ रहा है। चीन के बाद, उत्तर कोरिया भी एक कम्युनिस्ट देश के रूप में उभर चुका था और यदि दक्षिण वियतनाम भी साम्यवादी मार्ग पर चला जाता है तो शीघ्र ही या बाद में साम्यवादी क्रांति अन्य सभी दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों तक पहुंच जाएगी और संपूर्ण एशिया साम्यवाद के झंडे तले आ जाएगा। जापान में इससे विशाल अमेरिकी निवेश के लिए खतरा पैदा होता (अमेरिका ने सुदूर पूर्व में साम्यवाद का प्रसार रोकने के लिए और एक संपन्न पूंजीवादी देश बनाने हेतु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान में भारी निवेश किया था)।
- दक्षिण वियतनाम की दिएम सरकार शासन में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और अक्षमता के कारण अलोकप्रिय थी। उसने अपनी सरकार की सभी आलोचनाओं की कम्युनिस्ट प्रचार के रूप में उपेक्षा की। इसके साथ ही तीन चौथाई वियतनामी आबादी बौद्ध किसानों की थी जो राष्ट्रपति दिएम की सरकार के अधीन भेदभाव महसूस करते थे, जो स्वयं समृद्ध रोमन कैथोलिक परिवार से सम्बंधित था। दक्षिण वियतनाम के किसानों ने चीन और उत्तरी वियतनाम की तर्ज पर भूमि सुधारों की मांग की लेकिन यह मांग पूरी नहीं की गई। इसके साथ ही लोग दिएम को अमेरिकी कठपुतली के रूप में भी देखते थे।
- फलस्वरूप यहां के सभी विपक्षी समूहों अर्थात् पूर्व वियतमिन्ह साम्यवादियों और गैर-साम्यवादियों ने 1960 में राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (नेशनल लिबरेशन फ्रंट: NLF) का गठन किया। NLF ने गठबंधन सरकार की मांग की जो संयुक्त वियतनाम बनाने के लिए उत्तर वियतनाम के साथ शांतिपूर्वक वार्ता करने का प्रयास करेगी।
- NLF की मांग अस्वीकार होने पर दक्षिण वियतनाम में कम्युनिस्ट संगठन **वियतकांग** ने गुरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। कई बौद्ध भिक्षुओं ने सरकार के विरूद्ध विरोध करने के लिए आत्म-दाह कर लिया। दिएम ने कम्युनिस्ट प्रचार के रूप में प्रत्येक आलोचना को अस्वीकार कर दिया। 1963 में एक सैन्य तख्तापलट में दिएम की हत्या कर दी गई और 1975 तक दक्षिण वियतनाम पर सैन्य जनरलों ने शासन किया। इस बीच वियतकांग द्वारा गुरिल्ला युद्ध जारी रहा।

VISION IAS

- 1961 से 1975 तक आइजनहावर, केनेडी, जॉन्सन, निक्सन और फोर्ड के राष्ट्रपतित्व काल में अमेरिका वियतकांग के विरूद्ध दक्षिण वियतनाम में सैन्य रूप से उलझा रहा। उल्लेखनीय है कि यहां के लड़ाकुओं को हो ची मिन्ह के अधीन उत्तरी वियतनाम के द्वारा सैनिकों, हथियारों तथा आर्थिक सहायता के रूप में सक्रिय रूप से मदद की जा रही थी। सोवियत संघ और चीन भी इसमें सम्मिलित हो गए और साम्यवादियों की सहायता करने लगे।

वियतनाम में अमेरिकी प्रयास

- अमेरिका ने वियतनाम युद्ध में क्रूर शक्ति का उपयोग किया। इसमें भारी मात्रा में बमबारी, नेपाम जेली का उपयोग (जो लोगों को जिंदा जला देता था) और रासायनिक गैसों का उपयोग किया गया था। इन गैसों से सभी वनस्पतियां और जंगल नष्ट हो गए। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि अमेरिकी हमलों से बचने के लिए यहां के गुरिल्ला हमलावर खेतों और जंगलों में आश्रय लेते थे।
    - **केनेडी के अंतर्गत (1961-63):** सुरक्षित गांव की नीति (Safe Village Policy) आरंभ की गई। इसमें किसानों को किसी सुरक्षित या किलेबंद गांवों में ले जाकर उन्हें वियतकांग कार्यकर्ताओं से अलग-थलग कर दिया जाता था और फिर मुक्त रूप से वियतकांग पर आक्रमण किया जाता था। केनेडी ने अमेरिका की भूमिका को न्यूनतम और गुरिल्ला विरोधी अभियान तक ही सीमित रखा। उसने दक्षिण वियतनाम की सरकार की सहायता करने के लिए हेलीकॉप्टर और 16,000 "सलाहकार" भेजे।
    - **जॉनसन के अंतर्गत (1963-69):** उसने 1965 से लेकर 1968 तक उत्तरी वियतनाम पर बमबारी करवाई क्योंकि उसका मानना था कि दक्षिण वियतनाम में वियतकांग और NLF की कोई स्थानीय उपस्थिति अथवा नियंत्रण नहीं था। अतः दक्षिण वियतनाम में युद्ध जीतने के लिए उत्तरी वियतनाम को नष्ट करना आवश्यक था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी में गिराए गए बमों की तुलना में जॉनसन के शासनकाल के अंतर्गत अमेरिका ने उत्तरी वियतनाम पर अधिक बम गिराए। उसके अधीन अमेरिका बहुत अधिक उलझ गया और दस लाख अमेरिकी सैनिक दक्षिण वियतनाम भेजे गए। अमेरिका के भीतर अत्यधिक जनविरोध के कारण जॉनसन को उत्तरी वियतनाम पर बमबारी रोकनी पड़ी। 1968 में अमेरिकी सैनिकों ने 500 लोगों को बहुत निकट से गोली मार दी।
    - **निक्सन के अंतर्गत (1969-74):** निक्सन के काल में अमेरिका ने वियतनाम में और अधिक सैनिक नहीं भेजे। उसने वियतनामीकरण की नीति का पालन किया। इसके अंतर्गत अमेरिकी सैनिकों की क्रमिक तरीके से वापसी और साथ ही दक्षिण वियतनाम की सेना को दक्षिण वियतनाम की रक्षा के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी बनाने हेतु पुनर्शस्त्रीकरण और प्रशिक्षण प्रदान करने का प्रावधान शामिल था। निक्सन ने उत्तरी वियतनाम पर बमबारी पुन: आरंभ कर दी और हो ची मिन्ह ट्रेल पर भी बमबारी की। इस प्रकार लाओस, वियतनाम और कंबोडिया सभी अमेरिकी गोलाबारी के अंतर्गत आ गए। कम्बोडिया में सरकार को हटा दिया गया और अमेरिका समर्थक सैन्य तानाशाही स्थापित की गई।

अब प्रश्न यह उठता है कि वियतनाम में अमेरिकी सैनिक विफलता के क्या कारण थे?

अमेरिका वियतनाम में विफल रहा क्योंकि:

- वियतकांग और NLF को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त था। NLF के भीतर कम्युनिस्ट केवल एक समूह थे, न कि एकमात्र समूह। यदि अमेरिका ने अक्षम प्रशासन के विरूद्ध जन शिकायतों का निवारण करने के लिए सरकार को विवश करने पर अपनी ऊर्जा व्यय की होती, तो अमेरिका साम्यवाद को सीमित रखने के लिए बेहतर स्थिति में होता। लेकिन ऐसा न करके उसने अप्रत्यक्ष रूप से साम्यवाद को प्रोत्साहित किया।
- **गुरिल्ला रणनीति और छद्मावरण:** वियतमिन्ह की भांति वियतकांग भी अपने गुरिल्ला अभियान में बहुत कुशल थे। अमेरिकी सैन्य अभियानों पर आक्रमण करने वाले वियतकांग के सदस्य आसानी से किसानों के साथ मिल जाते थे। इस छद्मावरण तकनीक ने वियतकांग गुरिल्ला को अमेरिका की सुरक्षित गांव की नीति को असफल करने में सहायता की। उल्लेखनीय है कि सुरक्षित गांव की नीति

VISION IAS

में वियतकांग को अलग करने और फिर स्वतंत्र रूप से हमला करने के लिए किसानों से गांव खाली करवाया जाता था।

- **हो ची मिन्ह ट्रेल:**

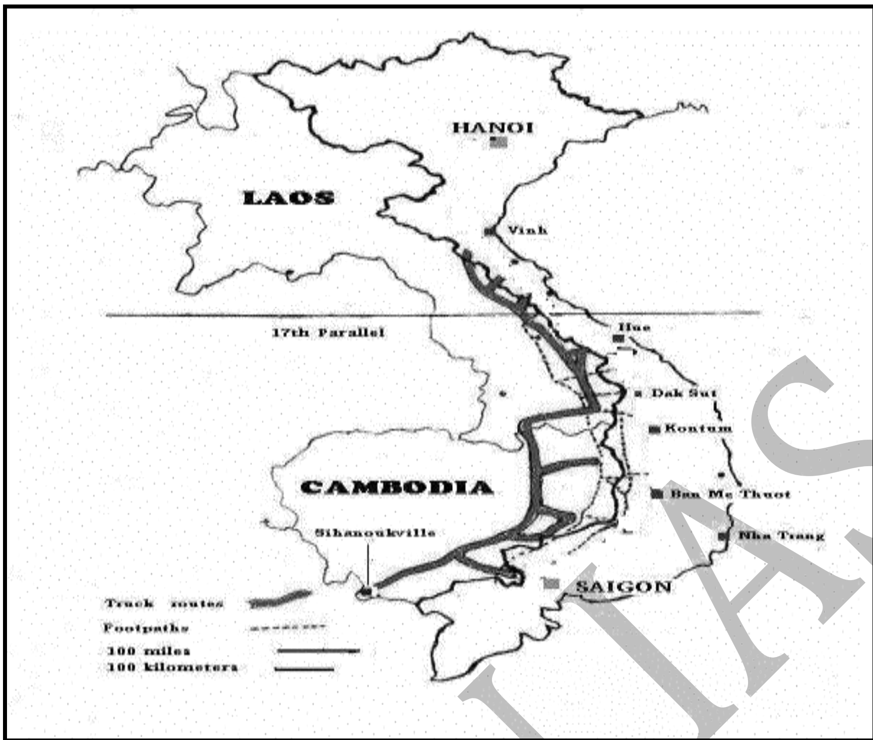

यह उत्तरी वियतनाम से दक्षिण वियतनाम के लिए भोजन, हथियार, आर्थिक सहायता आदि की आपूर्ति करने के लिए हो ची मिन्ह के उत्तरी वियतनाम और वियतकांग द्वारा उपयोग किया जाने वाला एक आपूर्ति मार्ग था। यह मार्ग उत्तरी वियतनाम से लाओस-वियतनाम सीमा के समानांतर, फिर लाओस-कंबोडिया सीमा के पार और कंबोडिया-वियतनाम सीमा के समानांतर जाता था और अंत में यह दक्षिणी छोर पर दक्षिण वियतनाम में प्रवेश करता था। अमेरिका ने हो ची मिन्ह ट्रेल पर भारी बमबारी की लेकिन फिर भी वह यह मार्ग बंद करने में विफल रहा और इस प्रकार वियतकांग को उत्तरी वियतनाम, सोवियत संघ और चीन से आपूर्ति जारी रही।

- हथियारों और आपूर्ति की जाने वाली अन्य वस्तुओं के रूप में सोवियत संघ और चीन द्वारा की जा रही सहायता महत्वपूर्ण थी। विशेष रूप से 1970 के बाद विमानरोधी मिसाइल, टैंक और मशीनगनों के रूप में रूसी सैन्य सहायता वियतकांग की जीत में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।
- **उत्तर वियतनाम वासियों का लचीलापन:** उन्हें भारी क्षति का सामना करना पड़ा फिर भी उन्होंने अमेरिका का प्रतिरोध करना जारी रखा। उन्होंने शहर के बाहर कारखानों का निर्माण किया और अमेरिकी गोलाबारी से हताहत होने वाले लोगों की संख्या कम करने के लिए शहरों को खाली करा लिया।
- **युद्ध का अंत:** 1973 तक अमेरिका में जनमत युद्ध में अमेरिकी भागीदारी को समाप्त करने का घोर पक्षधर हो गया था। कई अमेरिकी सैनिकों को अपना जीवन खोना पड़ा था। अमेरिकी सेना ने नेपाम जेली और रासायनिक हथियारों जैसे अमानवीय तरीकों का उपयोग किया था, फिर भी जीत कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। इसके साथ ही सोवियत संघ और चीन भी युद्ध से थक गए थे। 1973 में निक्सन ने युद्धविराम समझौते पर हस्ताक्षर किया। सभी अमेरिकी सैनिकों को वापस बुला लिया जाना था, लेकिन 17वीं समानांतर रेखा के साथ विभाजन का उत्तर और दक्षिण वियतनाम द्वारा सम्मान किया जाना था। 1975 में वियतकांग ने दक्षिण वियतनाम को अपने नियंत्रण में ले लिया और उसके बाद उत्तर वियतनाम एवं दक्षिण वियतनाम साम्यवादी शासन के अंतर्गत एकजुट हो गए। 1975 में लाओस और कंबोडिया भी साम्यवादी देशों के रूप में उभरे। इस प्रकार 1975 तक साम्यवाद को सीमित रखने की अमेरिकी नीति दक्षिण पूर्व एशिया में विफल हो गई थी।

चिली

- चिली ऐसा पहला बहु-दलीय लोकतंत्र बना जहां एक कम्युनिस्ट नेता को सत्ता के लिए चुना गया। इस प्रकार इसे प्रथम शांतिपूर्ण साम्यवादी क्रांति के रूप में जाना जाने लगा। यह मार्क्सवादी नेता साल्वाडोर एलेंडे था जिसने 1970-73 तक चिली पर शासन किया। एलेंडे के चुनाव ने फिदेल कास्त्रो को यह टिप्पणी करने के लिए विवश किया कि जैसे-जैसे समाज अधिक बौद्धिक बनता जाता है, साम्यवादी क्रांति के हिंसक तरीके अपनी प्रभावकारिता खोने लगते हैं।
- साल्वाडोर एलेंडे का मानना था कि हिंसक क्रांति के बिना भी साम्यवाद लाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि अन्य दक्षिण अमेरिकी राष्ट्रों में अमेरिका द्वारा समर्थित क्रूर दक्षिणपंथी सरकारें थीं, जबकि इसके विपरीत चिली में परिपक्व लोकतंत्र था।
- एलेंडे से पहले फ्रेइ (Frei) चिली का शासक था और 1965 से लेकर 1970 तक उसकी सरकार रही थी। उसके शासन के दौरान अमेरिका ने चिली की आर्थिक सहायता की और निवेश का मार्ग प्रशस्त किया, लेकिन फिर भी फ्रेइ ने भूमि पुनर्वितरण और कुछ अमेरिकी स्वामित्व वाली तांबा खानों के राष्ट्रीयकरण के रूप में समाजवादी सुधारों का प्रयास किया था। तांबा चिली का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग था। इसका कारण यह था कि फ्रेइ की सरकार ने तांबा खनन के क्षेत्र में कुछ अच्छे काम किए थे। वह मुद्रास्फीति कम करने में सफल रहा था और उसने आवासीय अवसंरचना तथा स्कूलों के निर्माण में बहुत निवेश किया था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण के कारण हुई हानियों के लिए अमेरिकी कंपनियों की मुक्त रूप से क्षतिपूर्ति की गई थी।

एलेंडे ने 1970 का चुनाव क्यों जीता?

- फ्रेइ के अच्छे कार्यों के बावजूद, एलेंडे 1970 का चुनाव जीतने में सफल रहा। इसके निम्नलिखित कारण थे:
- वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों नेता फ्रेइ के विरूद्ध थे। वामपंथी दल तांबे की खानों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण चाहते थे, जबकि दक्षिणपंथी नेताओं का मानना था कि सरकार पहले ही समाजवादी सुधारों के साथ बहुत आगे बढ़ गई है।
- 1969 में चिली में भयंकर सूखा पड़ा और खाद्य मुद्रास्फीति अत्यंत उच्च हो गई। भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात करने की नौबत आ गयी थी। उद्योग भी गतिहीन थे और गरीबी बहुत अधिक थी। ऐसे परिदृश्य में जब खनिकों ने अधिक मजदूरी की मांग करते हुए हड़ताल का अह्वान किया तो उनमें से कई लोगों को पुलिस द्वारा गोली मार दी गई। इन्हीं सब कारणों ने 1970 में एलेंडे के सत्ता में आने का मार्ग प्रशस्त किया।

एलेंडे की नीतियां

- इसने कंपनियों पर मूल्य सीमा आरोपित की।
- मजदूरी में सार्वभौमिक वृद्धि लागू की।
- बैंक, तांबे और कपड़ा उद्योग के राष्ट्रीयकरण का कार्य किया।
- भूमि सुधारों का कार्यक्रम तीव्र कर दिया।
- क्यूबा, चीन और पूर्वी जर्मनी के साथ कूटनीतिक संबंध बहाल किए।

तख्तापलट क्यों?

दक्षिणपंथी दलों के बीच यह डर व्याप्त था कि एलेंडे द्वारा राष्ट्रपति के रूप में दूसरे कार्यकाल को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक संशोधनों का आश्रय लिया जाएगा। इसके कुछ अन्य कारण भी थे:

- भूमि के पुनर्वितरण से कृषि उत्पादन कम हो गया था, जिससे खाद्यानों की कमी हो गई और फलस्वरूप खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ गई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जिन किसानों की भूमि जब्त होने वाली थी उन्होंने स्टालिन के सोवियत संघ में सामूहिकीकरण के दौरान रूसी कुलकों की भांति बुवाई बंद कर दी और मवेशियों को मार दिया।
- समाजवादी सुधारों ने निजी निवेशकों को भयभीत कर दिया और इस प्रकार अपने सामाजिक सुधार कार्यक्रम के लिए सरकार के पास धन की कमी हो गई।

VISION IAS

- चिली की अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार अर्थात् तांबा उद्योग के राष्ट्रीयकरण के चलते श्रमिकों द्वारा बार-बार हड़तालें की गईं जिससे तांबा उत्पादन में कमी आ गई और सरकार को राजस्व की और अधिक हानि हुई।
- एलेंडे के सावधानी भरे कार्यकलापों से साम्यवादी घबड़ा गए और उन्होंने स्वयं भूमि पुनर्वितरण का हिंसक कार्यक्रम आरंभ कर दिया।
- संयुक्त राज्य अमेरिका और दक्षिण अमेरिका की शेष दक्षिणपंथी सरकारों को महाद्वीप में साम्यवादी क्रांति फैलने का डर व्याप्त हो गया था।

तख्तापलट: यहां के दक्षिणपंथी राजनीतिक नेताओं, सेना और बाह्य सहायता को इस तख्तापलट के लिए उत्तरदायी माना जाता है। CIA और ब्राजील की दमनकारी सैन्य सरकार ने तख्तापलट की तैयारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1973 में अमेरिकी सहायता से जनरल ऑगस्तो पिनोशे द्वारा सैन्य तख्तापलट के माध्यम से एलेंडे को हटा दिया गया और बाद में उसे मार दिया गया। पिनोशे का सैन्य तानाशाही शासन (1973-89) क्रूर था और उसके कार्यकाल में मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन देखने को मिला। विडंबना यह है कि लोकतंत्र और मानवाधिकारों के झंडाबरदार, संयुक्त राज्य अमेरिका ने चिली में पिनोशे के शासन का समर्थन किया। 1989 में पिनोशे ने चुनावों की अनुमति दी और उसका उम्मीदवार बुरी तरह से पराजित हुआ। पिनोशे ने विजेता को राष्ट्रपति बनने दिया लेकिन वह सेना प्रमुख के पद पर बना रहा।

अफ्रीका: स्वतंत्रता के उपरांत मोज़ाम्बिक और अंगोला की सरकारें भी मार्क्सवादी विचारधारा के करीब आईं।

शीत युद्ध के दौरान चीन-रूस संबंध

- **1956 तक अच्छे संबंध: स्टालिन ने माओ (के चीन) के साथ अच्छे संबंध बरकरार रखे।**
  - 1950: चीन और सोवियत संघ ने परस्पर सहायता और मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किए।
  - सोवियत संघ ने चीन को आर्थिक सहायता प्रदान की और रूस के सलाहकारों ने चीन की पहली पंचवर्षीय योजना (1953-58) तैयार करने में मदद की।
  - इस दौरान शीत युद्ध में चीन ने सोवियत संघ का सहयोग किया। उसने उत्तर कोरिया के साम्यवादी शासन के पक्ष में कोरियाई युद्ध में भाग लिया। सोवियत संघ ने पुनःशस्त्रीकरण में उत्तर कोरिया की सहायता की।
- **1956 के बाद ये संबंध क्यों बिगड़े?**
  - चीन, निकिता ख्रुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत संघ के संशोधनवाद के विरुद्ध था। माओ ने ख्रुश्चेव द्वारा पूंजीवादी पश्चिमी देशों के प्रति अपनाए गए शांतिपूर्ण अस्तित्व के सौम्य दृष्टिकोण का विरोध किया।
  - ख्रुश्चेव के नेतृत्व में रूस का उद्देश्य हिंसक तरीकों से साम्यवाद का प्रसार करना नहीं था बल्कि सोवियत आर्थिक प्रणाली के वर्चस्व का प्रदर्शन करना था।
  - चीनी आलोचना के जवाब में सोवियत संघ ने चीन को मिलने वाली सहायता घटा दी।
  - **सीमा विवाद (1970):** चीन ने 19वीं शताब्दी में रूस द्वारा छीने गए विशाल क्षेत्र को लौटाने की मांग की। 1858 में रूस ने चीन को आमूर नदी के उत्तर में स्थित एक विशाल क्षेत्र को हस्तांतरित करने के लिए विवश किया था। यह क्षेत्र रूसी सूदूर पूर्व और मंचूरिया (चीन) के बीच की आधुनिक सीमा का अधिकांश हिस्सा है।
  - **वियतनाम, सोवियत संघ और चीन:** 1970 के दशक में सोवियत संघ और चीन दोनों साम्यवादी विश्व का नेतृत्व करने के लिए एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लग गए थे। स्थिति तब और जटिल हो गयी जब वियतनाम ने सोवियत संघ का समर्थन किया। उल्लेखनीय है कि चीन 1940 के दशक से ही वियतनाम के साथ दक्षिण चीन सागर के पार्सेल और स्प्रेटली द्वीपों से संबद्ध एक क्षेत्रीय विवाद में उलझा हुआ था। 1974 के पार्सेल द्वीप युद्ध (Battle of Paracel Islands) में चीन ने वियतनाम से समग्र पार्सेल द्वीप का अधिग्रहण कर लिया।

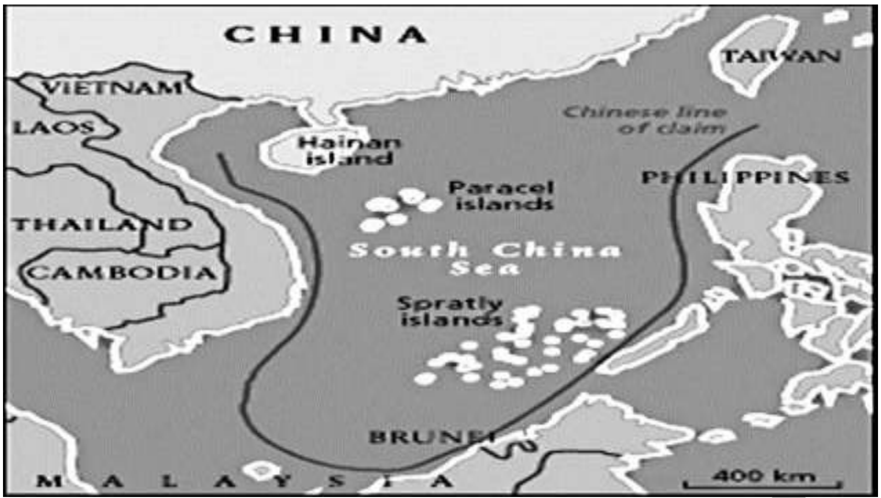

1988 में स्प्रटली द्वीप को लेकर दोनों के बीच एक नौसैनिक संघर्ष हुआ था और चीनी नौसेना के जहाज़ों ने वियतनामी परिवहन जहाज़ों को जलमग्न कर दिया तथा 64 वियतनामी सैनिकों की हत्या कर दी। वियतनाम द्वारा पोल पॉट के शासन में कंबोडिया पर आक्रमण करने का बहाना बनाकर चीन ने फरवरी 1979 में वियतनाम पर हमला कर दिया। ऐसी दशा में चीन और सोवियत संघ के संबंध संभवतः टूटने की कगार तक पहुंच गए। उल्लेखनीय है कि वियतनाम ने साम्यवादी कंबोडिया पर दिसंबर 1978 में आक्रमण कर पोल पॉट की खमेर रूज सरकार को वहां से उखाड़ फेंका था, जो कि एक चीनी कठपुतली सरकार थी तथा वहां एक वियतनाम समर्थक सरकार का गठन किया था। [***खमेर रूज** वस्तुतः कंबोडिया में कंपूचिया के साम्यवादी दल के अनुयायियों को दिया गया नाम था। इसने वियतनाम युद्ध में उत्तर वियतनाम और वियतकांग का समर्थन किया था। कंबोडिया 1975 में एक साम्यवादी राज्य के रूप में उभरा था। इस दल का गठन 1968 में हुआ था तथा पोल पॉट के नेतृत्व में 1975 से लेकर 1979 तक इस दल का शासन रहा।] वियतनाम ने यह सब विचारोत्तेजक उकसाव के अंतर्गत किया था क्योंकि पोल पॉट का शासन वियतनाम के लिए बेहद शत्रुतापूर्ण था। इसने कंबोडिया में वियतनामियों का जातीय संहार किया था और सीमा-पार क्रमबद्ध हमले किए थे, जिसमें कई वियतनामियों की जान गई थी। वियतनाम और कंबोडिया के बीच सीमा विवाद था, जिसके चलते कंबोडिया ने वियतनाम के एक द्वीप पर आक्रमण कर दिया। यहां कंबोडियाई सेनाएं नरसंहार करने लगीं थीं। वियतनामी आक्रमण कंबोडिया के इसी सख्त रवैये पर आधारित था, साथ ही यह प्रतिक्रियास्वरुप किया गया हमला भी था।

इन घटनाक्रमों के बीच चीन ने वियतनाम को सबक सिखाते हुए तीन सप्ताह बाद अपनी सेनाएं वापस बुला लीं लेकिन वास्तव में यहाँ चीन की पराजय हुई क्योंकि वह हनोई को हासिल करने में विफल रहा। 1989 में वियतनाम ने कंबोडिया से सैनिकों को वापस बुला लिया और उसके बाद चीन-वियतनाम के संबंधों में सुधार देखा गया, हालांकि इसके कुछ वर्ष बाद ही दक्षिण चीन सागर में विवादित द्वीपों को लेकर दोनों देशों के बीच पुनः विवाद आरंभ हो गए।

Fig: The skulls of Khmer Rouge victims are displayed in a memorial to the genocide at the Killing Fields Museum outside of Phnom Penh, Cambodia. In 2012, Cambodian Prime Minister Hun Sen said Vietnam had saved his country in the 1970s, not invaded it.

VISION IAS

- 1984 में चीन ने रूस के विरुद्ध अपनी निम्नलिखित शिकायतों को सूचीबद्ध किया:
  - 1979 के बाद से अफगानिस्तान में रूसी सैनिकों की उपस्थिति।
  - कंबोडिया (1978 से) में वियतनामी सैनिकों को रूसी सहायता।
  - मंगोलिया और मंचूरिया से सटे चीनी सीमाओं पर रूसी सैनिकों का जमावड़ा।

- **1985 के बाद तनाव शैथिल्य (संबंधों में सुधार):**
  - गोर्बाचेव ने चीन के साथ संबंधों में सुधार लाने की कोशिश की। दोनों देशों ने व्यापार और आर्थिक सहयोग पर हुए समझौतों पर हस्ताक्षर किए। गोर्बाचेव ने 1986 में अफगानिस्तान से सैनिकों की वापसी शुरू की।
  - 1989 में वियतनाम ने कंबोडिया से सैनिकों को वापस बुला लिया। इससे चीन और वियतनाम तथा रूस के बीच तनाव कम हुआ।

शीत युद्ध के दौरान चीन-अमेरिकी संबंध

1971 तक पारस्परिक शत्रुता

- कोरियाई युद्ध (1950-53) के बाद से दोनों देशों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध थे।
- अमेरिका ने च्यांग काई शेक का समर्थन किया।
- ताइवान में अमेरिकी सैन्य संचालन केंद्र हमेशा विवाद का विषय रहा।
- अमेरिका ने 1971 तक संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना के प्रवेश को बाधित किया और तर्क दिया कि ताइवान (रिपब्लिक ऑफ़ चाइना) ही चीन का वैध प्रतिनिधि है।
- वियतनाम युद्ध के दूसरे चरण (1961-75) के दौरान चीन ने हो ची मिन्ह का समर्थन किया।

1971 के बाद से तनाव शैथिल्य

- तनाव शैथिल्य (देतांत) का अर्थ है तनाव में कमी या शिथिलता।
- 1971 में चीन ने अमेरिका की टेबल टेनिस टीम को आश्चर्यजनक रूप से आमंत्रित किया जिसका प्रत्युत्तर अमेरिका ने चीन को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) में प्रवेश की अनुमति देते हुए दिया। इसे पिंग पॉन्ग कूटनीति के रूप में जाना जाने लगा। इस प्रकार चीन (पीपल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना) अक्टूबर 1971 में UNSC का स्थायी सदस्य बन गया। लेकिन इस गतिविधि का अर्थ एक खेल कार्यक्रम में आमंत्रित करने की तुलना में कुछ अधिक था। उस समय रूस और चीन के बीच संबंध अधिक उग्र नहीं हुए थे। 1970 के दशक में चीन और सोवियत संघ दोनों साम्यवादी विश्व का नेतृत्व करने के लिए उभर रहे थे। दोनों राष्ट्रों के बीच पूर्व-उल्लिखित सीमा विवाद भी था। इसके अलावा 1971 में पाकिस्तान से बांग्लादेश की स्वाधीनता में चीन और अमेरिका ने पाकिस्तानियों का समर्थन किया, जबकि भारत और सोवियत संघ बांग्लादेश की स्वतंत्रता के पक्ष में थे। इसके अतिरिक्त 1971 तक चीन और अमेरिका वियतनाम में अपनी भागीदारी को लेकर तंग आ चुके थे, इसीलिए वे आपसी संघर्षों की समाप्ति चाहते थे।
- निक्सन (1969-74), फोर्ड (1974-77) और कार्टर (1977-81) – सभी ने चीन के साथ एक सुदृढ़ संबंध बनाए रखा। लेकिन ताइवान सबकी आँखों में खटकता रहा। अमेरिका का ताइवान में एक सैन्य संचालन केंद्र था और 1975 में च्यांग काई शेक की मृत्यु के बाद भी अमेरिकी सरकार ने राष्ट्रवादियों (KMT) का समर्थन करना जारी रखा। अंततः 1978 में अमेरिकी राष्ट्रपति कार्टर ने ताइवान में राष्ट्रवादियों की सरकार को पूरे चीन की सरकार के रूप में मानने से मना कर दिया। 1979 में अमेरिका ने पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना को स्वीकृति दी और दोनों देशों ने एक-दूसरे के देश में राजदूतों को भेजा।
- 1979 में अमेरिका और चीन **अफ़गानिस्तान** पर हो रहे आक्रमण के विरुद्ध थे। 1980 के दशक में सोवियत संघ और चीन के बीच खराब संबंधों (जैसे कि रूस 1979 में वियतनाम में चीनी आक्रमण के विरोध में था क्योंकि वह वियतनाम को अपना एक मित्र देश मानता था) के चलते दोनों के बीच

VISION IAS

संबंध बेहतर होते गए। 1985 में अमेरिका और चीन ने एक महत्वपूर्ण नागरिक परमाणु सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किए।

तनाव शैथिल्य का अंत

- थियानमेन चौक की घटना (1989) के दौरान डेंग जियाओपिंग ने लोकतंत्र के समर्थक प्रदर्शनकारियों पर बड़ी कार्यवाही की थी। अमेरिका ने इस बात की घोर निंदा की। इसके अतिरिक्त 1996 में अमेरिका और चीन के बीच तनाव और अधिक बढ़ गया, जब चीन ने ताइवान में आगामी लोकतांत्रिक चुनावों के विरुद्ध ताइवान स्ट्रेट में अपना नौसैनिक अभ्यास आयोजित किया। दक्षिण चीन सागर और पूर्वी चीन सागर में कुछ द्वीपों पर अपने दावों के संबंध में चीन की हालिया आक्रामक स्थिति अमेरिका और उसके सहयोगी गुटों के बीच आपत्ति का पूर्वसंकेत थी। अमेरिका ने इसके परिणामस्वरुप अटलांटिक की कीमत पर एशिया प्रशांत क्षेत्र के पक्ष में अपनी नौसैनिक उपस्थिति का पुनर्गठन किया। इसे अमेरिका के पाईवोट टू एशिया के रूप में जाना जाता है। अमेरिका ने चीन की राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों में पारदर्शिता की कमी का विरोध किया। यह मुद्रा की प्रशासित विनिमय दर की चीन की नीति का विरोध करता है क्योंकि अमेरिका का मानना है कि अपने निर्यात को अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए चीन जानबूझकर अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करता रहता है। जलवायु परिवर्तन और साइबर सुरक्षा जैसे अन्य क्षेत्रों में अमेरिका और चीन में परस्पर कई बार टकराव हुआ। फिर भी समय-समय पर दोनों देशों के बीच अच्छे सहयोग की झलक दिखाई देती है।

39. शीत युद्ध का अंत

- अगस्त 1988 से दिसंबर 1991 तक पूर्वी यूरोप में साम्यवाद के अंत और दिसंबर 1991 में सोवियत संघ के विघटन से शीत युद्ध समाप्त हुआ।
- **रिवर्स डोमिनो प्रभाव का अस्तित्व में आना:** साम्यवादी देशों के उभरने से अमेरिका डोमिनो प्रभाव के बारे में चिंतित था। हालांकि इसके विपरीत स्थिति को तब बल मिला जब अगस्त 1988 में पोलैंड में साम्यवाद के पतन की लहर शुरू हुई जिसके परिणामस्वरूप समग्र पूर्वी यूरोप और बाद में सोवियत संघ में साम्यवाद का अंत हुआ।
- **स्टालिन की मृत्यु:** स्टालिन के बाद के नेताओं ने राष्ट्रों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व स्थापित किया।
- **पोलैंड:** अगस्त 1988 में समन्वयकारी ट्रेड यूनियन की विशाल सरकार-विरोधी हड़ताल ने साम्यवादी सरकार को मुक्त चुनाव कराने के लिए विवश किया जिसमें साम्यवादियों को पराजय मिली।
- **1972 में सामरिक शस्त्र सीमा वार्ता (Strategic Arms Limitation Talks: SALT)** एवं कुछ विशेष प्रकार की मिसाइलों की संख्या को सीमित करने के लिए अमेरिका और सोवियत संघ के बीच समझौते पर हस्ताक्षर किए गए।
- **सैन्य गठबंधनों की प्रभाविता में कमी:** कई कारणों से अल्बानिया वॉरसॉ समझौते से अलग हो गया। उसी समय रोमानिया ने स्वतंत्र निर्णय लेना शुरू कर दिया। फ्रांस ने न केवल नाटो से नाम वापस लिया बल्कि सभी नाटो सैन्य संचालन केंद्रों को भी हटा दिया।
- **परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (NTBT), 1963** ने आकाश, बाह्य अंतरिक्ष और जल में परमाणु परीक्षण पर प्रतिबंध लगा दिया और केवल भूमिगत परमाणु परीक्षण करने पर सहमति दी। इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले कुछ देशों में अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम और सोवियत संघ शामिल थे।
- **पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का पतन:** जल्द ही क्रांतिकारी जन विरोध रूस के आस-पास के सभी राज्यों में फ़ैल गया। हंगरी में स्वतंत्र रूप से चुनाव हुए और साम्यवादियों को पराजय मिली। पूर्वी जर्मनी में साम्यवादी सरकार ने 1989 के अंत तक इस्तीफ़ा दे दिया और बर्लिन की दीवार को तोड़ दिया गया।

VISION IAS

चित्र: बर्लिन की दीवार के ढ़हने का एक दृश्य

- 1990 के ग्रीष्मकाल तक जर्मनी एकजुट हो चुका था। इसी प्रकार चेकोस्लोवाकिया, बुल्गारिया और रोमानिया ने 1989 के अंत तक साम्यवादी सरकारों को उखाड़ फेंका। 1990 में यूगोस्लाविया में और 1991 में अल्बानिया में मुक्त बहुपक्षीय चुनाव संपन्न हुए तथा अंततः दिसंबर 1991 में साम्यवादी गुट के अगुआ सोवियत संघ ने 74 साल के साम्यवादी शासन को समाप्त करते हुए इसका विघटन कर दिया।
- पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में साम्यवाद की आर्थिक विफ़लता और मिखाइल गोर्बाचेव द्वारा अपनाई गयी नीतियां कई मायने में साम्यवाद के पतन और शीत युद्ध के अंत की प्रमुख वजह थीं, जिसकी चर्चा साम्यवाद विषय के अंतर्गत की गयी है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर शीत युद्ध के अंत का प्रभाव

- **पूर्व-पश्चिम की शत्रुता में कमी:** सोवियत संघ के विघटन के उपरांत नवोदित राष्ट्रों को पश्चिमी देशों द्वारा अब शत्रु के रूप में नहीं देखा जाता था। 1990 में दोनों गुटों {वॉरसॉ (1955) और नाटो (1949)} ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसमें एक-दूसरे के विरुद्ध केवल आत्मरक्षा के लिए ही हथियारों का प्रयोग करने के विचार पर सहमति हुई।
- **भूतपूर्व साम्यवादी देशों के बीच अलगाववाद और शत्रुता:** यह भावना भूतपूर्व साम्यवादी देशों में प्रत्येक के भीतर राष्ट्रवाद की वजह से था। इस राष्ट्रवाद की भावना का दमन सबसे पहले साम्यवाद द्वारा किया गया जिसने इन देशों को करीब ला दिया। कभी-कभी विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया गया, जैसे कि 1993 में चेकोस्लोवाकिया (1918 में गठित) को चेक गणराज्य और स्लोवाकिया में विभाजित कर दिया गया। लेकिन कई बार विवाद बेहद हिंसक रहा जैसे कि-
  - क्षेत्रीय विवादों पर अज़रबैजान और आर्मेनिया (सोवियत संघ के दोनों पूर्व गणराज्य) के बीच युद्ध।
  - जॉर्जिया में हिंसक गृहयुद्ध क्योंकि इसका उत्तरी भाग इससे अलग होना चाहता था।
  - यूगोस्लाविया के विघटन से इसके पांच राज्यों - सर्बिया (मोंटेनीग्रो सहित), बोस्निया-हर्ज़ेगोविना, क्रोएशिया, स्लोवेनिया और मैसेडोनिया - में विभाजित होना सबसे खराब हिंसक घटनाओं में से एक था।

VISION IAS

- बोस्निया में इसके विभाजन को लेकर सर्ब, क्रोट्स और मुसलमानों के बीच एक गृहयुद्ध देखने को मिला। युद्धविराम 1995 में ही लागू हो पाया। कुछ पश्चिमी देशों ने यह सोचा कि शीत युद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका हस्तक्षेप करेगा और अपने अंतर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्त्व के नाम पर सहायता करेगा लेकिन यहां उसने संयुक्त राष्ट्र शांति बल में सैनिकों को भेजने से मना कर दिया और इससे यूरोप तथा अमेरिका के संबंधों में अस्थायी तनाव उत्पन्न हुआ। इसी तरह उसने 1994 में रवांडा में नरसंहार रोकने के लिए हस्तक्षेप करने से मना कर दिया क्योंकि उसे इस दांव में अपना कोई हित नजर नहीं आया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब पश्चिमी यूरोप सदी के अंत में आर्थिक एकजुटता की प्रक्रिया में था तब पूर्वी यूरोप विघटन और असंगति की प्रक्रिया में था।

- परमाणु प्रसार का खतरा बढ़ गया था क्योंकि अब अन्य देशों पर नियंत्रक के रूप में अमेरिका के साथ सोवियत संघ नहीं था।
- पूर्व के कम्युनिस्ट राज्यों की आर्थिक समस्यायें अभी भी वैसी ही बनी रहीं।

संयुक्त जर्मनी के बनने से प्रवासन संबंधी समस्याएं उठ खड़ी हुईं। चूंकि शीत युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप अस्थिर था, अतः इन क्षेत्रों से कई शरणार्थी 1992 में जर्मनी आने लगे थे। इससे नव-नाज़ियो ने जर्मनी में विरोध प्रदर्शन किया।

यूरोपीय एकता

40. 1945 के पश्चात् यूरोप (Europe after 1945)

आइए, पहले हम द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों की एक संक्षिप्त जानकारी लेते हैं।

1945 से 1959 की अवधि में राष्ट्रों के बीच सहयोग के आरंभ का एक युग देखा गया। यूरोप को द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) के रूप में दूसरी तबाही का साक्षी होना पड़ा था। अब यह बात इसे भली भांति ज्ञात हो गई थी कि राष्ट्रवादी प्रतिद्वंद्विता ने किस प्रकार महाद्वीप को आत्मघाती प्रवृत्तियों की ओर अग्रसित किया था। यूरोपीय राजनीतिक मानचित्र को पुनः क्रमबद्ध करने के लिए एक नए तरीके से यूरोपीय एकीकरण की आवश्यकता स्पष्ट हो गई थी।

निम्नलिखित तीन वास्तविकताओं ने यूरोपीय एकीकरण की दिशा में इस नए उन्मुखीकरण की आवश्यकता जतायी:

- पहला, यूरोप वासियों की अपनी स्वंय की दुर्बलताओं के प्रति जागरूकता। द्वितीय विश्व युद्ध ने दुनिया में यूरोप के पारंपरिक आधिपत्य का निश्चित रूप से अंत कर दिया। दो नई महाशक्तियों, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के पास यूरोपीय देशों के विषम समूहों की तुलना में बहुत बेहतर आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य शक्तियां थीं।
- दूसरा, इस बात को लेकर दृढ़ विश्वास कायम हुआ कि यूरोपीय देशों के बीच आपसी टकराव की स्थिति से बचना हर हाल में आवश्यक है। दोनों ही विश्व युद्ध यूरोपीय गृह युद्धों के रूप में आरंभ हुए थे और दोनों ही बार यूरोपीय महाद्वीप मुख्य युद्ध-क्षेत्र बन गया था। अगर हम साधारण भाषा में कहें तो मूलतः यह जर्मनी एवं फ्रांस के बीच एक सुविधाजनक समझौता संपन्न करने का प्रयास था। एक ऐसा समझौता जो अमेरिका द्वारा अनुमोदित किया जाना था। यूरोपीय एकीकरण ने शांति की गारंटी देने का मार्ग सुनिश्चित किया।
- तीसरा, बहुत सारे यूरोपीय लोगों के मन में एक ऐसे स्वतंत्र, न्यायपूर्ण और अधिक समृद्ध महाद्वीप की इच्छा थी, जिसमें एकजुटता की रूपरेखा में अंतर्राष्ट्रीय संबंध विकसित होते।

सुझाए गए समाधानः ऐसे में, सुझाव आए कि संयुक्त प्रयास सबसे उत्तम होगा। इसलिए यूरोप को अमेरिका जैसे संघ राज्य (फेडरेशन) की ओर बढ़ने की तैयारी करनी चाहिए।

यूरोप का विभाजनः लेकिन यूरोप पूर्वी और पश्चिमी यूरोप (पूंजीवादी और साम्यवादी गुटों) में विभाजित हो गया, क्योंकि मार्शल योजना (1947-51) के अस्तित्व में आने से एक संयुक्त यूरोप का

VISION IAS

सपना धराशायी हो चुका था। 1947 के बाद स्टालिन द्वारा अधिरोपित लौह-आवरण के कारण यूरोप के दो अलग-अलग हिस्से विकसित हुए।

आइए, अब हम पश्चिमी और पूर्वी यूरोप की एकता के लिए किए गए प्रयासों का अलग-अलग अध्ययन करते हैं।

- **पश्चिमी यूरोप का पुनर्निर्माण:** पश्चिमी यूरोप शीघ्र ही संभल गया, जिसका श्रेय मार्शल सहायता को जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने साम्यवाद और सोवियत संघ के विस्तार को रोकने के लिए ट्रूमैन सिद्धांत को लागू करते हुए यूरोपीय देशों की कठिनाइयों को कम करने हेतु मार्शल योजना का शुभारंभ किया। इसका लक्ष्य साम्यवाद के विस्तार को अवरुद्ध करने के राजनीतिक उद्देश्य के साथ, एक तहस-नहस हो चुके यूरोप में आर्थिक विकास को बढ़ावा देना था। पश्चिमी यूरोप की एकता को सुनिश्चित करने के लिए कई प्रयास किए गए। उनमें से कुछ के विषय में नीचे विस्तार से बताया गया है।
- **पश्चिमी यूरोप की एकता के लिए किए गए प्रयासः** इसमें आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य एकता के लिए किये गए प्रयास सम्मिलित हैं। जो ठोस कदम उठाए गए, उनमें नाटो (नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाईजेशन: NATO, 1949), यूरोपीय परिषद (Council of Europe; 1949), यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन (Organization for European Economic Cooperation: OEEC, 1948) और यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community, 1957) सम्मिलित थे। **इनमें से कुछ के बारे में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत नीचे बताया गया है।**

40.1. यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन

(Organization for European Economic Cooperation: OEEC, 1948)

- यह **यूरोपीय देशों के बीच आर्थिक एकता** की ओर बढ़ावा देने वाला पहला कदम था।
- OEEC वर्तमान OECD (Organization for Economic Cooperation and Development/आर्थिक सहयोग और विकास संगठन) का एक पूर्ववर्ती संगठन था।
- **उत्प्रेरकः** मार्शल सहायता (1947) ने इसमें उत्प्रेरक का काम किया। ब्रिटेन ने 16 पश्चिम यूरोपीय देशों के एक समूह का गठन किया, जिससे वह निर्णय ले सकें कि मार्शल सहायता का सर्वोत्तम प्रयोग कैसे किया जाए। परिणामी योजना को यूरोपीय पुनर्निर्माण कार्यक्रम (European Recovery Programme: ERP) कहा गया। OEEC के नाम से यह समूह स्थायी बन गया।
- **OEEC के कार्यः**
    - OEEC के सदस्यों के बीच मार्शल सहायता को वितरित करना।
    - व्यापारिक अवरोधों को कम करके OEEC के सदस्यों के बीच व्यापार को बढ़ावा देना। इसमें इसे **यूरोपीय भुगतान संघ (European Payments Union)** और **संयुक्त राष्ट्र के GATT** (General Agreement on Tariffs and Trade/प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता) द्वारा मदद मिली थी। GATT का लक्ष्य प्रशुल्क को कम करना और यूरोपीय भुगतान संघ का उद्देश्य सदस्य देशों को अपनी मुद्रा में भुगतान की सुविधा देना था।
    - OEEC **की आशातीत सफलताः** OEEC देशों के बीच व्यापार छह वर्षों में दोगुना हो गया।
    - **OECD बनाम OEEC:** 1961 में अमेरिका और कनाडा OEEC में सम्मिलित हुए। इसके बाद इसका नाम OECD पड़ा। अन्य देश इसमें बाद में सम्मिलित हुए। इस प्रकार O"E"EC यूरोप केंद्रित था, जबकि OECD में अन्य देशों के शामिल होने से इसकी यूरोपीय विशिष्टता धुंधली हो गयी।

VISION IAS

40.2. यूरोपीय परिषद (Council of Europe, 1949)

- यह **यूरोप में राजनीतिक एकता** का पहला प्रयास था। यह विदेश मंत्रियों का एक समूहीकरण था। ब्रिटेन, फ्रांस और इटली इसके महत्वपूर्ण संस्थापक सदस्य (कुल 10) थे।
- 1971 तक इसके 18 सदस्य थे। इसमें स्पेन और पुर्तगाल को छोड़कर पश्चिमी यूरोप के शेष सभी देश सम्मिलित थे।
- **शक्ति/प्राधिकार:** इसके पास कोई विशिष्ट शक्ति (प्राधिकार) नहीं थी, क्योंकि ब्रिटेन या अन्य कोई भी महाशक्तियां ऐसे किसी संगठन में शामिल नहीं हो सकती थीं, जिससे उनकी संप्रभुता खतरे में पड़ती।
- **कार्य:** सभी महत्वपूर्ण मुद्दों पर इसने बहस आरंभ कर कुछ संस्तुतियां प्रस्तुत कीं। लेकिन परिसंघवादी (Federalists) इससे निराश थे।

40.3. यूरोपीय आर्थिक समुदाय

(European Economic Community: EEC, 1957)

- EEC 1957 में रोम की संधि (Treaty of Rome) के अंतर्गत गठित एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन था। इसका उद्देश्य इसके छह संस्थापक सदस्यों - बेल्जियम, फ्रांस, इटली, लक्ज़ेमबर्ग, नीदरलैंड्स और पश्चिमी जर्मनी - के बीच एक साझा बाजार विकसित कर आर्थिक एकीकरण को संभव बनाना था। अंग्रेजी भाषी दुनिया में EEC को **'कॉमन मार्केट'** (साझा बाजार) के नाम से भी जाना जाता था। 1993 में दोबारा इसके आधिकारिक नामकरण से पहले भी कभी-कभी इसका उल्लेख यूरोपीय समुदाय के रूप में किया जाता था।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय का विकास

- बेल्जियम और फ्रांस ने पश्चिमी यूरोप को एकजुट करने में अग्रणी भूमिका निभाई। EEC के कुछ पूर्ववर्ती संगठन निम्नलिखित हैं:
  - **बेनेलक्स कस्टम्स यूनियन (Benelux Customs Union: 1947):** 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के अंत से पहले **बेल्जियम**, **नीदरलैंड** और **लक्ज़ेमबर्ग** के बीच इस हेतु एक समझौता वार्ता हुआ। 1947 में इसके अस्तित्व में आने के उपरांत प्रशुल्क और सीमा शुल्क संबंधी बाधाओं को कम किया गया।
  - **ब्रसेल्स की संधि (Treaty of Brussels: 1948):** 'सैन्य, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग' के लिए फ्रांस, ब्रिटेन और बेनलक्स देशों के बीच यह संधि संपन्न हुआ।
  - **यूरोपीय कोयला एवं इस्पात समुदाय (European Coal & Steel Community: ECSC, 1951):** यह फ्रांस की एक पहल थी। इसका उद्देश्य फ्रांस और जर्मनी के बीच बेहतर संबंधों को विकसित कर औद्योगिक विकास को बढ़ावा देना था। इसमें 6 देश शामिल थे - फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली और बेनेलक्स (बेल्जियम, नीदरलैंड और लक्ज़ेमबर्ग)। ब्रिटेन इसमें सम्मिलित नहीं हुआ क्योंकि उसे ऐसा लग रहा था कि इससे उद्योगों पर उसके नियंत्रण को क्षति पहुंचेगी।

EEC के परिणाम

- मुक्त प्रतिस्पर्धा और साझा बाजार को बढ़ावा देने के लिए सभी सीमा शुल्कों को धीरे-धीरे हटा लिया गया।
- गैर-सदस्यों के लिए उच्च प्रशुल्क का प्रावधान किया गया था। परंतु इन्हें भी शीघ्र ही कम कर लिया गया।
- 5 वर्षों में EEC दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक, कच्चे माल का सबसे बड़ा आयातक और संयुक्त राज्य अमेरिका के बाद दूसरा सबसे बड़ा स्टील उत्पादक बन गया था।

VISION IAS

EEC के कुछ संस्थान

- **यूरोपीय आयोग (European Commission):** EEC के दिन-प्रतिदिन का काम यह आयोग करता था और इसमें सिविल सेवक कार्यरत थे। यह निर्णय लेने का मुख्य केंद्र था। ब्रिटेन सबसे अधिक इसी संगठन के विरुद्ध था, क्योंकि यह उसकी आर्थिक नीतियों में हस्तक्षेप कर सकता था। अर्थात् यह ब्रिटेन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था।
- **मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers: CoM):** प्रत्येक सदस्य देश के प्रतिनिधि CoM में शामिल थे।
    - **कार्य:** संबंधित राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों में समन्वय तथा सूचना का आदान-प्रदान करना। इसका मुख्य जोर सदस्य राष्ट्रों के लिए साझी आर्थिक नीतियां बनाने पर था।
    - सैद्धांतिक रूप में CoM ने यूरोपीय आयोग के सिद्धांतों को मंजूरी दी, लेकिन वास्तव में यूरोपीय आयोग द्वारा बनाए गए नियमों-विनियमों पर CoM और यूरोपीय आयोग आपस में प्रायः टकराते रहे।
- **यूरोपीय संसद (European Parliament: EP):** सदस्य देशों के संसद द्वारा इसके सदस्यों को नामित किया जाता था। इसका यूरोपीय आयोग या CoM पर कोई नियंत्रण नहीं था। 1979 से आगे यूरोपीय संसद के सदस्यों को नामांकित नहीं किया गया, बल्कि अब प्रत्येक 5 वर्षों के बाद लोगों द्वारा इन्हें सीधे निर्वाचित किया जाने लगा। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के लिए EP में सीटें आबंटित की गई हैं। देश के राजनीतिक दलों को EP के लिए भी ठीक वैसे ही चुनाव लड़ने हैं जैसे कि वे राष्ट्रीय संसद के लिए लड़ते हैं।
- **यूरोपीय न्यायालय (European Court of Justice: ECJ):** इसका उद्देश्य रोम की संधि (1957) (जिसके अंतर्गत EEC का गठन हुआ था) की व्याख्या या कार्यान्वयन से उत्पन्न विवादों का निपटारा करना था। यहां तक कि लोग EEC के नियमों का उल्लंघन करने वाले अपने ही देश के विरुद्ध भी ECJ में शिकायत कर सकते हैं।
- **लेखा परीक्षकों के न्यायालय (Court of Auditors):** EEC के संस्थानों के खातों का लेखा परीक्षण करने के लिए।

40.4. अन्य विविध संगठन/पहल

- **यूरेटॉम (EURATOM):** इस संगठन के माध्यम से 6 सदस्यों ने परमाणु ऊर्जा विकसित करने के लिए धन एकत्र किया।
- **यूरोपीय समुदाय (European Community: EC, 1967):** यूरेटॉम, EEC और ECSC का विलय कर इसका गठन किया गया।
- **एक्सचेंज रेट मैकेनिज्म (Exchange Rate Mechanism: ERM, 1979):** ERM से सदस्य देशों की मुद्राएं आपस में जुड़ गईं। इसलिए मुद्रा विनिमय दर में केवल सीमित परिवर्तन की अनुमति दी गई थी। इसका उद्देश्य मुद्रास्फीति पर नियंत्रण रखना और सदस्य देशों के लिए स्थिर मुद्रा सुनिश्चित करना था, ताकि भविष्य में एकल मुद्रा प्रचलित की जा सके। ब्रिटेन 1990 तक ERM में सम्मिलित नहीं हुआ।
- **यूरोपीय समुदाय के बजट में योगदान:** प्रत्येक सदस्य देश को उसके द्वारा किए गए आयात पर सीमा शुल्क के माध्यम से हुई कमाई का एक हिस्सा योगदान करना था। इसके परिणामस्वरूप 1980 में ब्रिटेन के लिए एक समस्या उत्पन्न हो गई क्योंकि यह समुदाय के अन्य सदस्यों की तुलना में बहुत अधिक आयात कर रहा था।

अब हम ब्रिटेन और EEC के बीच संबंधों पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं, जो कि कई उतार-चढ़ावों के बीच से होकर निकला।

VISION IAS

41. ब्रिटेन और EEC

41.1. ब्रिटेन EEC में शामिल क्यों नहीं हुआ?

- ब्रिटेन यूरोपीय आयोग को एक बाह्य निकाय मानता था, जिसके साथ वह अपनी आर्थिक नीतियों का नियंत्रण साझा नहीं करना चाहता था।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप में इसकी अर्थव्यवस्था सबसे बड़ी थी, यहां के लोगों का जीवन स्तर उच्च था और बेरोजगारी बहुत कम थी। ब्रिटेन एकमात्र ऐसा यूरोपीय देश था जिस पर द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान आक्रमण नहीं हुआ था। अन्य देशों की तरह इसे EEC की उतनी आवश्यकता नहीं थी। साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध में जीत के बाद इसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा 1919 के स्तर पर वापस आ गई थी। विश्व मामलों में दो महाशक्तियों के बाद ब्रिटेन को एक अग्रणी शक्ति के तौर पर देखा जा रहा था। इस प्रकार यह किसी भी संगठन के समक्ष अपनी संप्रभुता समर्पित करने के पक्ष में नहीं था।
- **राष्ट्रमंडल**
    - ब्रिटेन का राष्ट्रमंडल देशों के साथ बहुत बड़ा व्यापार था। ब्रिटेन को ऐसा लग रहा था कि यदि यह EEC में सम्मिलित होता है तो इससे राष्ट्रमंडल के साथ उसके संबंध बिगड़ सकते हैं। EEC की तुलना में राष्ट्रमंडल की पांच गुना ज्यादा आबादी थी और इसलिए राष्ट्रमंडल ब्रिटेन के लिए EEC की तुलना में अधिक आकर्षक बाजार था।
    - EEC में शामिल होने से ब्रिटेन और राष्ट्रमंडल देशों के मध्य संबंधों को नुकसान हो सकता था क्योंकि तब ब्रिटेन राष्ट्रमंडल देशों से वस्तुओं की आपूर्ति को वरीयता नहीं दे पाता। EEC में सम्मिलित होने का तात्पर्य था - EEC के छह देशों की वस्तुओं को कम सीमाशुल्क के कारण अधिक प्राथमिकता मिलना।
- **ब्रिटेन-अमेरिका:** ब्रिटेन के अमेरिका के साथ 'विशेष संबंध' थे। ऐसा संबंध अन्य किसी यूरोपीय देश के साथ नहीं था। ब्रिटेन यूरोप से अधिक अमेरिका के साथ गठबंधन करना चाहता था। यह केवल यूरोप से जुड़ा रहना चाहता था लेकिन इसके द्वारा अवशोषित नहीं होना चाहता था। ब्रिटेन को लग रहा था कि यदि वह यूरोप के साथ आर्थिक रूप से ज्यादा एकीकृत होता है तो इससे अमेरिका के साथ उसके विशेष संबंध को क्षति पहुंच सकती है।
- **भावी राजनीतिक एकता की आशंका:** ब्रिटेन को आशंका थी कि आर्थिक एकता जल्द ही राजनीतिक एकता की ओर कदम बढ़ा देगी, जिसके पक्ष में वह कभी नहीं था।
- **यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (European Free Trade Association: EFTA, 1960):** ब्रिटेन इसका नेतृत्व कर रहा था और इसने अन्य गैर-EEC देशों (ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, नॉर्वे, पुर्तगाल, स्वीडन और स्विटजरलैंड) को इसमें सम्मिलित कर लिया था। **EFTA के गठन के निम्नलिखित कारण थे:**
    - गैर-सदस्य देशों पर लगाए जाने वाले उच्च प्रशुल्क (टैरिफ) के कारण यह डर था कि इन देशों द्वारा EEC देशों को किए जाने वाले निर्यात से गैर-EEC देशों को नुकसान होगा। इस प्रकार EEC के साथ व्यापार से होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए इन देशों ने **EFTA** का गठन किया।
    - ब्रिटेन को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि EFTA को सदस्यों के बीच साझा आर्थिक नीतियों की आवश्यकता नहीं थी और यूरोपीय आयोग जैसा व्यापक प्राधिकरण भी नहीं था, जो आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर पाता।

    वर्तमान EFTA: इसमें मात्र 4 सदस्य हैं - लिचेंश्टीन, आइसलैंड, नॉर्वे और स्विटजरलैंड। स्विट्जरलैंड को छोड़कर शेष सभी EFTA सदस्य यूरोपीय संघ (EU) के सदस्य हैं।

VISION IAS

41.2. 1961 के बाद ब्रिटेन इसमें क्यों सम्मिलित होना चाहता था?

- **उत्पादन और व्यापार में EFTA की तुलना में EEC की उच्च सफलता।**
    - EEC देशों में उत्पादन में तेजी से बढ़ोतरी हुई। फ्रांसीसी उत्पादन में जहां 75% की वृद्धि हुई, वहीं पश्चिम जर्मनी में 90% की, जबकि ब्रिटिश उत्पादन में मात्र 30% की वृद्धि हुई।
    - सदस्यों के बीच बढ़ते व्यापार के संबंध में EEC की तुलना में EFTA की सफलता कम थी।
- **निर्यात की तुलना में ब्रिटिश आयात में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई।** इसके कारण ब्रिटेन को भुगतान-संतुलन के संकट का सामना करना पड़ा। राष्ट्रमंडल ब्रिटेन के लिए एक बेहतर निर्यात बाजार साबित होने में असफल रहा था क्योंकि राष्ट्रमंडल की क्रय शक्ति EEC की तुलना में काफी कम थी।
- **स्वदेशी उद्योग को सक्षम बनाना:** ब्रिटेन का मानना था कि EEC में सम्मिलित होने के पश्चात्, EEC देशों के साथ प्रतियोगिता अपने उद्योग को और अधिक कुशल बनाने के लिए प्रेरित करेगी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इसने कुछ क्षेत्रकों का राष्ट्रीयकरण किया था।

41.3. 1961 के पश्तात् जनरल डी गॉल (फ्रेंच राष्ट्रपति) ने ब्रिटेन के प्रवेश को क्यों अवरुद्ध किया?

- फ्रांस को ऐसा लग रहा था कि ब्रिटेन की आर्थिक समस्याएं EEC को कमजोर कर देंगी।
- ब्रिटेन को लग रहा था कि फ्रांस EEC पर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहता है।
- फ्रांस को लग रहा था कि अमेरिका ब्रिटेन के साथ अपने विशेष संबंधों के कारण यूरोपीय मामलों में हावी होने लगेगा। क्योंकि ब्रिटेन ने हाल ही में फ्रांस को सूचित किए बिना अमेरिका से पोलारिस मिसाइल प्राप्त करने के लिए सहमति व्यक्त की थी। अमेरिका ने फ्रांस को पोलारिस (SLBM) की पेशकश नहीं की थी। यह बात डी गॉल को परेशान कर रही थी। अमेरिका और फ्रांस के टकराव के कारण 1966 में डी गॉल ने नाटो से इस दलील के साथ वापसी कर ली कि नाटो का हिस्सा बने रहने पर विश्व मामलों में फ्रांस की स्वतंत्रता कम हो जाएगी। 2009 में एक पूर्ण सदस्य के रूप में यह नाटो में दोबारा सम्मिलित हुआ।
- ब्रिटेन के सस्ते और सब्सिडी वाले कृषि उत्पादों से फ्रांसीसी किसानों की रक्षा के लिए भी फ्रांस ने यह कदम उठाया। EEC के सीमा शुल्क ने फ्रांसीसी किसानों को ब्रिटिश प्रतियोगिता से संरक्षित किया।

41.4. ब्रिटेन ने 1973 में EEC में प्रवेश किया?

- डी गॉल ने 1969 में त्यागपत्र दे दिया था जिससे EEC में ब्रिटेन का प्रवेश संभव हुआ। 1974 में लेबर पार्टी सत्ता में आ गई थी। EEC में सम्मिलित होने के सवाल पर मत-विभाजन था और 1974 में यह तय करने के लिए कि ब्रिटिश लोग EEC में रहना चाहते हैं या नहीं, एक जनमत संग्रह आयोजित किया गया था। 67% वोट इसके पक्ष में मिले थे।

42. फ्रांस और इटली की स्थिति

- पूर्वी यूरोप की परिस्थिति को समझने से पहले हमें सबसे पहले फ्रांस और इटली में प्रमुखता प्राप्त करने वाले मुद्दों को समझना चाहिए।

42.1. फ्रांस की स्थिति

- चतुर्थ गणतंत्र (1946-58) के अंतर्गत फ्रांस राजनीतिक और आर्थिक रूप से कमजोर था (कृषि गतिहीन हो गई थी हालांकि उद्योग अच्छा प्रदर्शन कर रहे थे)।

VISION IAS

- **राजनीतिक अस्थिरता:** राष्ट्रपति के पास बहुत कम शक्तियां थी। चतुर्थ गणतंत्र के 12 वर्षों की अवधि में 25 गठबंधन सरकारें बनीं क्योंकि इस समय पांच बड़ी पार्टियां थीं।
- **3 प्रमुख आपदाएं:** प्रथम हिंद-चीन युद्ध (1946-54) में फ्रांस की पराजय हुई थी। स्वेज नहर को लेकर मिस्र से लड़े गए स्वेज युद्ध (1956) में फ्रांस को लज्जित होना पड़ा था। अल्जीरिया में फ्रांसीसी सेना द्वारा विद्रोह (सेना अल्जीरिया को स्वतंत्रता नहीं देना चाहती थी) सबसे महत्वपूर्ण था। इन आपदाओं से चतुर्थ फ्रांसीसी गणतंत्र का पतन हो गया।
- **5वां गणतंत्र:** फिर द्वितीय विश्वयुद्ध के अनुभवी जनरल डी गॉल से 1958 में सेवानिवृत्ति से वापस आने के लिए अनुरोध किया गया। उसने नया संविधान बनाने की शर्त रखी जिसमें राष्ट्रपति के पास अधिक शक्तियां होतीं। इसे स्वीकार कर लिया गया और 5वें गणतंत्र की स्थापना की गई। अल्जीरिया को स्वतंत्रता दे दी गई। डी गॉल को 1969 में अपने अलोकतांत्रिक शासन के विरूद्ध विरोध प्रदर्शन के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद 5वें गणतंत्र ने फ्रांस को स्थिर सरकारें प्रदान की।

42.2. इटली की स्थिति

- नए संविधान ने 1946 से इटली के लिए नए गणतंत्र का मार्ग प्रशस्त किया। 1946 से लेकर 1953 तक यहाँ समृद्धशाली और स्थिर सरकारें रहीं, लेकिन उसके बाद पुरानी समस्याएं फिर सतह पर आ गईं। एक के बाद एक गठबंधन सरकारों की श्रृंखला देखने को मिली।
- इसके अतिरिक्त मुद्रास्फीति और बेरोजगारी की समस्याएं हल करने में भी विफलता का सामना करना पड़ा।

43. पूर्वी यूरोप की परिस्थितियां

- **पूर्वी यूरोपीय एकता के लिए किए गए प्रयास:** पूर्वी यूरोप भी एकता की दिशा में आगे बढ़ा। प्रमुख कदमों में मोलोटोव योजना (1947), कॉमिन्फॉर्म (1947), कॉमकॉन (COMECON, 1949) और वॉरसा पैक्ट (1955) सम्मिलित हैं।
- **पूर्वी गुट में तनाव:** इसकी पहले ही चर्चा की चुकी है। इसमें स्टालिन की तानाशाही के विरुद्ध यूगोस्लाविया का प्रतिरोध, हंगरी का विद्रोह (1956) और 1968 में उत्पन्न हुई चेकोस्लोवाकिया की समस्या सम्मिलित हैं।
- **पूर्वी यूरोप का आर्थिक विकास:** 1970 के दशक में साम्यवादी गुट के राष्ट्रों में समृद्धि आई। हालांकि, 1980 के दशक में यहां भी वैश्विक मंदी का प्रभाव पड़ा। 1988 के मध्य से लेकर 1991 तक मुख्य रूप से राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक चुनौतियों से निपटने की क्षमता की कमी के कारण पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का पतन हो रहा था। 1990 में जर्मनी एकीकृत हो गया। 1991-95 के दौरान साम्यवाद के अंत के साथ ही यूगोस्लाविया ने गृहयुद्ध के दौर में प्रवेश किया, जिससे उसका विघटन हो गया।
- **साझा कृषि नीति (1962 से अब तक):** इसके माध्यम से उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को भारी सब्सिडी दी गई। इससे अति उत्पादन की समस्या पैदा हो गई जिसे भारत, सोवियत संघ और बांग्लादेश को निर्यात किया गया। यूरोपीय संघ के अंतर्गत साझा कृषि नीति अभी भी संशोधित रूप में जारी है।
- **1975 का लोम (Lome) कन्वेंशन:** इसने अफ्रीका और कैरेबियाई देशों से प्रशुल्क मुक्त आयात संभव बनाया। तीसरे विश्व के अन्य देशों को इसमें बाद में जोड़ा गया।
- **यूरोपीय समुदाय में परिवर्तन, 1986:** इनमें सम्मिलित हैं:

VISION IAS

- 1992 तक पूरी तरह से मुक्त और साझा बाजार (अर्थात् आंतरिक व्यापार और वस्तुओं की आवाजाही पर किसी भी प्रकार के प्रतिबंध के बिना एकल यूरोपीय बाजार)।
- यूरोपीय संसद को अधिक शक्तियां ताकि कानून जल्दी पारित हो सकें। इस प्रकार राष्ट्रीय संसदें अपने आंतरिक मामलों पर कुछ नियंत्रण खो रही थीं।
- स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण और उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्रों में यूरोपीय समुदाय को अधिक शक्तियां।

44. 1990 के दशक में यूरोप की स्थिति

- **फ्रांस:** 1990 में फ्रांस में महत्वपूर्ण बहस निम्नलिखित के आस-पास केंद्रित थीं:
  - मंदी और बेरोज़गारी का जारी रहना।
  - EEC (1957 में गठित) के साथ बने रहने और मास्ट्रिच संधि पर हस्ताक्षर करने को लेकर व्युत्पन्न संदेह।
  - संयुक्त जर्मनी (1990) के संबंध में व्युत्पन्न चिंता, जो पुन: खतरे के रूप में उभर सकता था।
  - 1995 में राष्ट्रपति शिराक की सरकार द्वारा यूरो जोन में सम्मिलित होने के लिए मानदंड पूरा करने हेतु राजकोषीय समेकन के उपाय आरंभ करने पर बहुत विरोध किया गया क्योंकि यह सदस्यों से बजट घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के अधिकतम 3% तक कम करने की मांग करता था।
- **इटली:** 1990 के दशक में इटली अभी भी मूलभूत समस्याओं से जूझ रहा था:
  - **उत्तर-दक्षिण विभाजन:** उत्तर का क्षेत्र औद्योगिक अर्थव्यवस्था के साथ समृद्ध था, जबकि दक्षिण का क्षेत्र आर्थिक रूप से कमजोर था और वहां कृषि अर्थव्यवस्था थी।
  - माफिया अभी भी शक्तिशाली थे।
  - राजनीति भ्रष्टाचार से भरी थी।
  - भारी राजकोषीय घाटा, सरकारी ऋण और कमजोर मुद्रा।
- **जर्मनी:** 1990 में जर्मनी एकीकृत हो गया था। उसे निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था:
  - पूर्वी जर्मनी की अर्थव्यवस्था को पश्चिमी जर्मनी के स्तर तक लाने की चुनौती।
  - पश्चिमी जर्मनी के लोग पूर्वी जर्मनी की सहायता करने से क्रुद्ध रहे थे।
  - राजकोषीय घाटे में वृद्धि क्योंकि सरकार पूर्वी जर्मनी की अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए पैसा झोंक रही थी।
  - इस बात को लेकर चिंता कि क्या जर्मनी यूरो जोन की सदस्यता के लिए अर्हता प्राप्त कर पाएगा या नहीं, क्योंकि यह सदस्यों से बजट घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के अधिकतम 3% तक कम करने की मांग कर रहा था।

45. यूरोपीय संघ (European Union: EU)

- यूरोपीय संघ 28 यूरोपीय देशों का एक राजनीतिक, आर्थिक और मौद्रिक संघ है। इनमें से 19 देश यूरो जोन के भाग हैं, जिन्होंने यूरो नामक मुद्रा अपना ली है।
- 1993 में यूरोपीय संघ पर संधि (Treaty on European Union) द्वारा यूरोपीय संघ की स्थापना हुई, जिसने अपने पूर्ववर्ती यूरोपीय समुदाय का स्थान ग्रहण किया।
- **मास्ट्रिच संधि या यूरोपीय संघ पर संधि (Maastricht Treaty or Treaty on European Union) क्या है (1991, 1993 से प्रभावी):** इसने यूरोपीय समुदाय के बीच अधिक से अधिक एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें अब तक 12 सदस्य थे। उसके बाद यूरोपीय समुदाय को यूरोपीय संघ के रूप में जाना जाने लगा। इस संधि के द्वारा:

VISION IAS

- यूरोपीय संसद को अधिक शक्तियां दी गईं।
- 1999 तक एकल मुद्रा (यूरो) अपनाने के लिए वृहत आर्थिक और मौद्रिक संघ (economic and monetary union)।
- साझी विदेशी और सुरक्षा नीति।
- यूरोपीय संघ में और यूरो जोन में सम्मिलित होने के लिए मास्ट्रिच मानदंड या अभिसरण (कनवर्जेन्स) मानदंड की स्थापना।
- यूरोपीय संघ की संधि (संशोधन सहित) यूरोपीय संघ के 7 संस्थानों की स्थापना का प्रावधान करती है, जिनमें से कई पहले से ही पूर्व यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) का अंग थे। इनमें सम्मिलित हैं:

- **यूरोपीय केंद्रीय बैंक (European Central Bank):** यह यूरोप की एकल मुद्रा के लिए केंद्रीय बैंक है। यह यूरो जोन की मौद्रिक नीति का संचालन करता है।
- **यूरोपीय आयोग (European Commission):** यह शीर्ष कार्यकारी निकाय है और यूरोपीय संघ की मंत्रिमंडलीय सरकार के रूप में कार्य करता है। इसमें यूरोपीय परिषद द्वारा नियुक्त 28 आयुक्त / सदस्य होते हैं, जिसमें यूरोपीय संघ के प्रत्येक सदस्य देश से एक-एक प्रतिनिधि होते हैं। यूरोपीय आयोग का अध्यक्ष यूरोपीय परिषद द्वारा प्रस्तावित किया जाता है और यूरोपीय संसद द्वारा इन 28 सदस्यों में से चुना जाता है। इसके कार्यों में यूरोपीय संघ के दिन-प्रतिदिन के कार्यों का संचालन, संधियों का कार्यान्वयन और कानून प्रस्तावित करना सम्मिलित है। सिविल सेवकों द्वारा इसकी सहायता की जाती है।
- **यूरोपीय संघ की परिषद (Council of the European Union: CEU (पूर्व में मंत्रिपरिषद्):** यह यूरोपीय संघ की द्विसदनीय विधायिका (यूरोपीय संसद दूसरा विधायी निकाय है) का ऊपरी सदन है। इसमें यूरोपीय संघ के प्रत्येक सदस्य देश का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्री होते हैं। कृषि, विदेशी मामलों जैसे प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक अलग परिषद (CEU के भीतर) है, जिसमें क्रमश: कृषि और विदेशी मामलों के राष्ट्रीय मंत्री होते हैं। परिषद और संसद दोनों विधायी और बजटीय शक्तियां समान रूप से साझा करते हैं, जिसका अर्थ है कि दोनों को प्रस्ताव पारित होने के लिए सहमत होना होता है।
- **यूरोपीय संसद (European Parliament):** संसद के सदस्य प्रत्येक 5 वर्ष बाद प्रत्यक्षतः जनता द्वारा चुने जाते हैं। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को यूरोपीय संसद में सीटें आबंटित की जाती हैं। देश के राजनीतिक दल उसी तरह यूरोपीय संसद के लिए चुनाव लड़ते हैं जैसे वे राष्ट्रीय संसद के लिए लड़ते हैं।
- **यूरोपीय परिषद (European Council):** इसमें सदस्य राष्ट्रों के राज्य प्रमुख, यूरोपीय परिषद का अध्यक्ष (प्रेसिडेंट) और यूरोपीय आयोग का अध्यक्ष (प्रेसिडेंट) सम्मिलित होते हैं।
- **यूरोपीय संघ का न्यायालय (Court of Justice of the European Union):** यह यूरोपीय संघ की न्यायिक शाखा है और यूरोपीय संघ के कानूनों एवं संधियों की व्याख्या करती है। यह कुछ मामलों पर नागरिकों द्वारा की गई शिकायतों की भी सुनवाई कर सकती है।
- **कोर्ट ऑफ ऑडिटर्स:** यूरोपीय संघ के सभी संस्थानों का लेखा परीक्षण करने के लिए अन्य देशों में यूरोपीय संघ के स्थायी मिशन हैं और साथ ही इसे संयुक्त राष्ट्र, G20, G-8, WTO आदि में भी प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

VISION IAS

45.1. यूरोपीय संघ में किस प्रकार सम्मिलित हुआ जाता है?

- यदि कोई भी यूरोपीय राष्ट्र यह प्रदर्शित करता है कि वह यूरोपीय संघ के सभी मानकों और नियमों का पालन करेगा तो वह इस संघ में सम्मिलित हो सकता है। उसे EU के लोकतांत्रिक मूल्यों का सम्मान करना चाहिए और उन्हें बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए। आवेदक को EU के संस्थानों और EU के सदस्य देशों की सहमति मिलनी चाहिए। उसे राष्ट्रीय संसद में प्रस्ताव या जनमत संग्रह के माध्यम से अपने नागरिकों की सहमति भी मिलनी चाहिए।
- प्रवेश के लिए आवेदक को 1993 में स्थापित "कोपेनहेगन मानदंड" (Copenhagen Criteria) पूरा करना चाहिए, जिसमें सम्मिलित हैं:
  - लोकतंत्र, विधि के शासन, मानवाधिकार और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की गारंटी देने वाले स्थिर संस्थान;
  - कार्यशील बाजार अर्थव्यवस्था और यूरोपीय संघ में प्रतिस्पर्धा तथा बाजार बलों का मुकाबला करने की क्षमता;
  - राजनीतिक, आर्थिक और मौद्रिक संघ के उद्देश्यों के अनुपालन सहित सदस्यता के दायित्वों का कार्यान्वयन करने की क्षमता।
  - यूरोपीय संघ का नियम है कि आवेदक का अंगीकरण गैर-परक्राम्य होना चाहिए। केवल कार्यान्वयन के समय और तरीके पर चर्चा हो सकती है।

- **यूरोपीय संघ का मिशन (The EU Mission):** वर्तमान में EU मिशन का उद्देश्य अपने नागरिकों के लिए समृद्धि, स्वतंत्रता, संचार, यात्रा तथा वाणिज्य की सुगमता को बनाए रखना है। विभिन्न संधियों, सदस्य राष्ट्रों से सहयोग और अपनी अनूठी सरकारी संरचना के माध्यम से यूरोपीय संघ इस मिशन को कार्यशील बनाए रखने में सक्षम हो पाया है।

45.2. 2008 के आर्थिक संकट से उत्पन्न चुनौती

- 2008 के आर्थिक संकट के बाद कुछ यूरोपीय देशों (यथा- पुर्तगाल, इटली, ग्रीस, स्पेन और बाद में साइप्रस) के बैंकों का बेल आऊट करना पड़ा था।
- इससे यूरोपीय संघ के भीतर तनाव उत्पन्न हुआ। विशेष रूप से जर्मनी (जो आज यूरोप की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है) में जनमत विभाजित हो गया क्योंकि कई जर्मन वासियों का मानना था कि उन्हें अन्य सदस्य देशों की गलतियों के लिए भुगतान करने हेतु बाध्य किया जा रहा है।
- IMF की सहायता से EU विभिन्न मित्तव्ययिता उपायों के बदले में इन देशों को बचा पाया था। आरोपित मित्तव्ययिता उपायों ने स्वयं सदस्य राष्ट्रों में तनाव पैदा कर दिया जिन्हें बेल आऊट किया जा रहा था क्योंकि इससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई थी। अब यूरोपीय संघ **यूरोपीय स्थिरता तंत्र** (European Stability Mechanism) बनाने की दिशा में आगे बढ़ गया है जो भविष्य में सदस्य राष्ट्रों की सहायता करने के लिए उपयोग किया जाने वाला स्थायी फंड होगा।

46. यूरोज़ोन (Eurozone)

- इसमें कुल 19 देश (EU के 28 में से) सम्मिलित हैं जिन्होंने यूरो को अपनी साझा मुद्रा के रूप में अपनाया है। यूरो को 1999 में एकल मुद्रा के रूप में आरंभ किया गया था।

VISION IAS

- ब्रिटेन और डेनमार्क **('ऑप्ट-आउट' स्टेट्स)** ने अपनी आर्थिक संप्रभुता को बचाए रखने के कारण स्वेच्छा से अपने आप को इससे बाहर रखा है।
- **'डेरोगेशन स्टेट्स'** यूरोपीय संघ के वे सदस्य राष्ट्र हैं जो यूरो अपनाने के लिए कदम उठा रहे हैं। 'ऑप्ट-आउट स्टेट्स' को छोड़कर सभी यूरोपीय संघ के सदस्य देशों को यूरो अपनाना है। हालांकि प्रत्येक सदस्य को यूरो अपनाने के लिए अर्हता प्राप्त करने हेतु कदम उठाने के लिए समय दिया जाता है, अर्थात् उन्हें अभिसरण मानदंड पूरा करने के लिए समय दिया जाता है।
- यूरो के लिए मौद्रिक नीति यूरोपीय केंद्रीय बैंक (ECB) का एकमात्र विशेषाधिकार है, अर्थात् यूरोजोन में सम्मिलित होने के बाद मौद्रिक नीति का नियंत्रण ECB के पास चला जाता है।

46.1. यूरो क्षेत्र बनाम आर्थिक और मौद्रिक संघ

(Euro Area vs Economic & Monetary Union)

- यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देश आर्थिक और मौद्रिक संघ का अंग हैं, जिसका अर्थ है कि वे समग्र रूप से EU के लाभ के लिए अपनी आर्थिक नीतियों का समन्वय करते हैं। हालांकि, यूरोपीय संघ के सभी सदस्य देश यूरो क्षेत्र में नहीं आते हैं - केवल यूरो अपनाने वाले सदस्य देश ही यूरो क्षेत्र के सदस्य हैं।

46.2. यूरो जोन में सम्मिलित होने के अभिसरण मानदंड

(convergence criteria to join Eurozone) क्या हैं?

- ये वृहत आर्थिक सूचक हैं जो निम्नलिखित का मापन करते हैं:
  - मूल्य स्थिरता का, यह दिखाने के लिए कि मुद्रास्फीति नियंत्रित है;
  - उच्च वित्तीय घाटे से बचने के लिए सरकारी उधारी और राष्ट्रीय ऋण पर सीमा के माध्यम से मजबूत सरकारी वित्त का;
  - विनिमय दर स्थिरता;
  - अन्य मानदंडों की पूर्ति करने से प्राप्त अभिसरण की स्थायित्व का आकलन करने के लिए दीर्घकालिक ब्याज दरें।

47. शेन्जन समूह (Schengen Group)

- शेन्जेन लक्ज़ेमबर्ग में स्थित है। यह 26 यूरोपीय देशों का एक समूह है, जिन्होंने अपनी साझा सीमाओं पर पासपोर्ट और अप्रवास नियंत्रण समाप्त कर दिया है।
- यह अंतर्राष्ट्रीय यात्रा के प्रयोजनों के लिए साझा वीज़ा नीति के साथ एकल देश के रूप में कार्य करता है। इसके 26 सदस्यों में से, 22 यूरोपीय संघ के सदस्य देश हैं और 4 EFTA के सदस्य हैं। बुल्गारिया, साइप्रस और रोमानिया (सभी यूरोपीय संघ के सदस्य) इसके मानदंड पूरा करने के बाद इसमें सम्मिलित हो जाएंगे।

हाल की समस्याएं: अरब स्प्रिंग के बाद संघर्षग्रस्त क्षेत्र से कई अवैध अप्रवासी फ्रांस और इटली पार करके अन्य देशों में पहुँच गए हैं।

VISION IAS

विऔपनिवेशीकरण एवं अन्य घटनाएँ

48. उपनिवेशवाद एवं अफ्रीका

48.1. भूमिका

- मित्र शक्तियों (Allied powers) द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध लोकतंत्र और स्वशासन के सिद्धांतों पर लड़ा गया था, लेकिन औपनिवेशिक शक्तियों ने यथासंभव अधिक से अधिक समय तक अपना शासन जारी रखने का प्रयास किया।
- जब परिवर्तन की लहरों ने अफ्रीका में प्रवेश किया तो औपनिवेशिक शक्तियां आगे विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में विलंब नहीं कर सकीं और कई अफ्रीकी उपनिवेशों को संसदीय लोकतंत्र की प्रणाली के साथ स्वतंत्र कर दिया गया।

48.2. 1945 में औपनिवेशिक शक्तियां

- एशिया, अफ्रीका और कैरीबिया में फैले उपनिवेशों के साथ ही ब्रिटेन का सबसे विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य था।
- अफ्रीका और हिंद-चीन में उपनिवशों के साथ फ्रांस दूसरा सबसे बड़ा औपनिवेशिक देश था।
- अफ्रीका में अन्य औपनिवेशिक शक्तियां बेल्जियम, पुर्तगाल, स्पेन और इटली थीं जबकि नीदरलैंड डच ईस्ट इंडीज़ पर शासन करता था।

48.3. अफ्रीका में विऔपनिवेशीकरण के कारक

- ऐसा तीन कारकों अर्थात् राष्ट्रीय आंदोलन, द्वितीय विश्व युद्ध और अमेरिका, सोवियत संघ व संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से बाहरी दबाव के कारण संभव हुआ।
- इसके अतिरिक्त ब्रिटेन आश्वस्त था कि वह राष्ट्रमंडल के माध्यम से (अर्थात् नव-उपनिवेशवाद के माध्यम से) स्वतंत्रता के बाद भी पूर्व उपनिवेशों पर अपने प्रभाव का उपयोग करता रहेगा।

48.3.1. राष्ट्रवादी आंदोलन

- द्वितीय विश्व युद्ध से पहले केवल भारत (1885 से), वियतनाम (1920 के दशक) और ईस्ट इंडीज (1930 के दशक) में मजबूत राष्ट्रवादी आंदोलन चल रहे थे।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला क्योंकि उपनिवेशों के सैनिकों ने पश्चिमी और औपनिवेशिक संसार के बीच भारी अंतर देखा। उन्हें धुरी शक्तियों (Axis powers) की आक्रामकता के विरूद्ध लड़ाई लड़ने हेतु प्रेरित किया गया था, जिससे वे गृहदेश में औपनिवेशिक शक्तियों की आक्रामकता का विरोध करने के लिए प्रेरित हुए। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध में भागीदारी के बाद वे अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए प्रेरित हुए।
- 1945 के बाद अफ्रीका में राष्ट्रवाद तेजी से फैला क्योंकि अधिक से अधिक अफ्रीकी अब अमेरिका और ब्रिटेन में शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। वहां उन्होंने नस्लीय भेदभाव के संबंध में जानकारी प्राप्त की।
- उपनिवेशवाद को विशेष रूप से श्रमिक वर्ग द्वारा अपमान के रूप में देखा गया, जो राष्ट्रवादी विचारों के प्रति अधिक ग्रहणशील थे।

VISION IAS

48.3.2. द्वितीय विश्व युद्ध

- जापानी सफलता ने यह धारणा बदल दी कि "यूरोपीय शक्तियों को हराना असंभव" था। कुछ एशियाई नेताओं ने इस विश्वास के आधार पर जापान के साथ काम किया कि इस प्रकार के सहयोग से उनके देश से यूरोपीय उपनिवेशवाद शीघ्र समाप्त हो जाएगा। उदाहरण के लिए सुभाषचंद्र बोस, सुकर्णो (इंडोनेशिया के)।
- कुछ यूरोपीय उपनिवेशों ने जापानी आक्रमण के विरूद्ध लड़ाई लड़ी। उन्होंने गुरिल्ला रणनीति विकसित की (जैसे कि मलाया में कम्युनिस्ट गुरिल्ला) और इसका उपयोग इस प्रकार के युद्ध कौशल को विकसित करने में किया। द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान की हार के बाद वे पुन: यूरोपीय शासन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। जब यूरोपीय देशों ने अपना औपनिवेशिक साम्राज्य वापस प्राप्त करने का प्रयास किया तो राष्ट्रवादियों ने अब हिंद-चीन, डच ईस्ट इंडीज, मलाया और बर्मा में यूरोपीय शक्तियों के विरूद्ध गुरिल्ला रणनीति का उपयोग किया।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान यूरोपीय नीतियों और प्रचार ने उपनिवेश वासियों को युद्ध के बाद स्वतंत्रता के लिए प्रोत्साहित किया। **1941 के अटलांटिक चार्टर** में संयुक्त राष्ट्र की घोषणा निहित थी। इसमें इस विषय पर चर्चा की गई थी कि युद्ध के बाद विश्व को किस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए। इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित हैं:
  - **कोई क्षेत्रीय विस्तार नहीं:** राष्ट्रों को दूसरे के क्षेत्र पर कब्जा करके विस्तार नहीं करना चाहिए।
  - **स्वशासन:** सभी लोगों को अपनी सरकार बनाने का अधिकार होना चाहिए।
- युद्ध से यूरोप आर्थिक और सैन्य रूप से कमजोर हो गया था। इससे ब्रिटेन की नीति में परिवर्तन आया। अतः अंग्रेजों ने स्वतंत्रता देने में विलंब किया लेकिन राष्ट्रवादी संघर्ष के एक सीमा पर पहुंच जाने के बाद इन्हें स्वतंत्रता दे दी गई।

व्यापक रूप से उपनिवेशवाद ने अफ्रीका को निम्नलिखित तरीके से प्रभावित किया:

- श्वेत लोग अभिजात्य बन गए और अश्वेत मूल निवासियों का शोषण करने लगे।
- पूरे महाद्वीप में दासता प्रचलित हो गई।
- औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा सामूहिक हत्याएं।
- बांटो और राज करो की नीति ने स्वतंत्रता के बाद समस्याएं पैदा कीं।
- शिक्षा और स्वास्थ्य की चरम उपेक्षा।
- उपनिवेशवाद से आर्थिक विकास को चोट पहुंची।

48.3.3. बाहरी दबाव

- **अमेरिका**
  - अमेरिका अपने स्वयं के औपनिवेशिक अतीत के कारण औपनिवेशिक राष्ट्रों से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रों के प्रति कुछ हद तक सहानुभूति रखता था।
  - चर्चिल ने जब यह तर्क दिया कि अटलांटिक चार्टर का "स्वशासन" केवल यूरोपीय लोगों के लिए है तो अमेरिका ने इस बात का विरोध किया। अमेरिका ने यह रुख इसलिए अपनाया क्योंकि वह उपनिवेशों में साम्यवाद का प्रसार सीमित करना चाहता था। इसका कारण यह था कि सोवियत संघ उपनिवेशों में स्वतंत्रता संघर्ष का समर्थन कर रहा था। इसके साथ ही अमेरिका नए देशों के रूप में निर्यात बाजार प्राप्त करना चाहता था जहां वह यूरोपीय शक्तियों के बाहर निकलने के बाद ही प्रवेश कर सकता था और आर्थिक तथा राजनीतिक प्रभाव का उपयोग कर सकता था।
- संयुक्त राष्ट्र और सोवियत संघ ने लगातार साम्राज्यवाद की आलोचना की। कम्युनिस्ट दर्शन हमेशा साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध करने का रहा था और सोवियत संघ ने ऐसा करना स्वाभाविक पाया।

VISION IAS

48.4. अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

48.4.1. अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य के विऔपनिवेशीकरण के कारण

- **शिक्षा**
  - अफ्रीका में अन्य यूरोपीय उपनिवेशों की तुलना में ब्रिटिश अफ्रीका में शिक्षा की धीमी, लेकिन अपेक्षाकृत अधिक पैठ थी।
- **अफ्रीकी राष्ट्रवाद**
  - पश्चिमी शिक्षा के कारण अफ्रीकी राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जिसमें समानता और स्वतंत्रता के विचार सम्मिलित थे। शिक्षा ने नस्लीय भेदभाव के प्रति उनकी जागरूकता बढ़ाई। विशेषकर शहरों का श्रमिक वर्ग राष्ट्रवाद के विचारों के प्रति अधिक जागरूक था और उन्होंने उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रमुख प्रतिरोधक बलों का गठन किया।
  - द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन की स्थिति कमज़ोर हो गयी, अतः राष्ट्रमंडल देशों के साथ वह अच्छा संबंध रखना चाहता था। इस प्रकार ब्रिटेन को लगा कि स्वतंत्रता प्रदान करना बेहतर विकल्प होगा।

48.4.2. विऔपनिवेशीकरण की ब्रिटिश नीति

- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस संबंध में ब्रिटिश नीति को निम्नलिखित दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है:
  - **1945-51:** 1945 से लेकर 1951 तक लेबर पार्टी ब्रिटेन में सत्ता में रही और वह स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए तैयार थी क्योंकि उसे राष्ट्रमंडल के ढांचे के माध्यम से, संक्षेप में नव-उपनिवेशवाद के माध्यम से ब्रिटिश आर्थिक प्रभाव को बनाए रखने का भरोसा था।
  - **1951-57:** 1951 के बाद ब्रिटेन ने स्वतंत्रता देने में बिलंब करने और बहुत ही क्रमिक ढंग से संप्रभु शासन, संक्षेप में, चरणबद्ध ढंग से स्वशासन की दिशा में उपनिवेशों को अग्रसर करने की नीति का अनुसरण किया। इस नीति ने मध्यावधि में सहायता की क्योंकि इससे अफ्रीकी लोगों के लिए प्रशासन में अनुभव प्राप्त करना संभव हुआ। फिर भी अफ्रीकियों को स्वतंत्रता के लिए विरोध प्रदर्शन करना पड़ा और कई बार इसने हिंसक रूप भी धारण कर लिया।

48.4.3. 1957 तक पश्चिम अफ्रीका बनाम पूर्व और मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश नीति

- **जनसांख्यिकीय रूपरेखा का विऔपनिवेशीकरण से संबंध:** पश्चिम अफ्रीका में बहुत कम यूरोपीय आबादी थी। पूर्वी अफ्रीका में काफी संख्या में यूरोपीय आबादी थी, जबकि मध्य अफ्रीका में

VISION IAS

यूरोपीय आबादी का अधिकतम संकेद्रण था। यही कारण था कि पश्चिमी अफ्रीका में स्वतंत्रता सरलतापूर्वक और साधारणतया शांतिपूर्वक आई, पूर्वी अफ्रीका में यह कुछ कठिनाई के साथ प्राप्त हुई और मध्य अफ्रीका में बहुत ही अधिक कठिनाई के साथ प्राप्त हुई।

- ब्रिटेन पश्चिमी अफ्रीका में स्वतंत्रता का समर्थक था क्योंकि वहां बहुत कम यूरोपीय आबादी थी।
- पूर्वी अफ्रीका और मध्य अफ्रीका में ब्रिटेन ने स्वतंत्रता देने में बिलंब किया, क्योंकि यहां यूरोपीय आबादी बड़ी संख्या में थी। इस प्रकार यहां के गोरे निवासी जनसंख्या और क्षमता दोनों ही मामले में मजबूत स्थिति में थे। फलत: अफ्रीकी स्वतंत्रता संघर्ष को अप्रभावी बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इसके साथ ही यूरोपीय आबादी अपनी सर्वोच्चता जारी रखने तथा अपने जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश उपस्थिति चाहती थी। यहां तक कि जब ब्रिटेन एक विकल्प के रूप में स्वतंत्रता पर विचार करता था, तो वे इस बात पर जोर देते थे कि स्वतंत्रता पश्चात बनने वाली सरकार बहु-जातीय सरकार होनी चाहिए, जिसमें एशियाई और यूरोपीय आबादी का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो।

1957 के पश्चात् - परिवर्तन की हवा: परिवर्तन की हवा से यहाँ तात्पर्य यह है कि अंग्रेज अब यह महसूस करने लगे थे कि अफ्रीका में स्वतंत्रता का अब और विरोध नहीं किया जा सकता। इसका प्रमुख कारण अफ्रीकी राष्ट्रवाद और अरब राष्ट्रवाद की बढ़ती ताकत थी। इसके साथ ही पूर्वोत्तर अफ्रीका में ब्रिटेन का प्रभाव कम हो गया था और स्वेज युद्ध (1956) में अपनी असफलता के कारण वह कमजोर भी पड़ गया था। 1957 से 1963 तक पूर्वी और मध्य अफ्रीका में उपनिवेशों की स्वतंत्रता के प्रति ब्रिटिश नीति में बड़ा बदलाव आया।

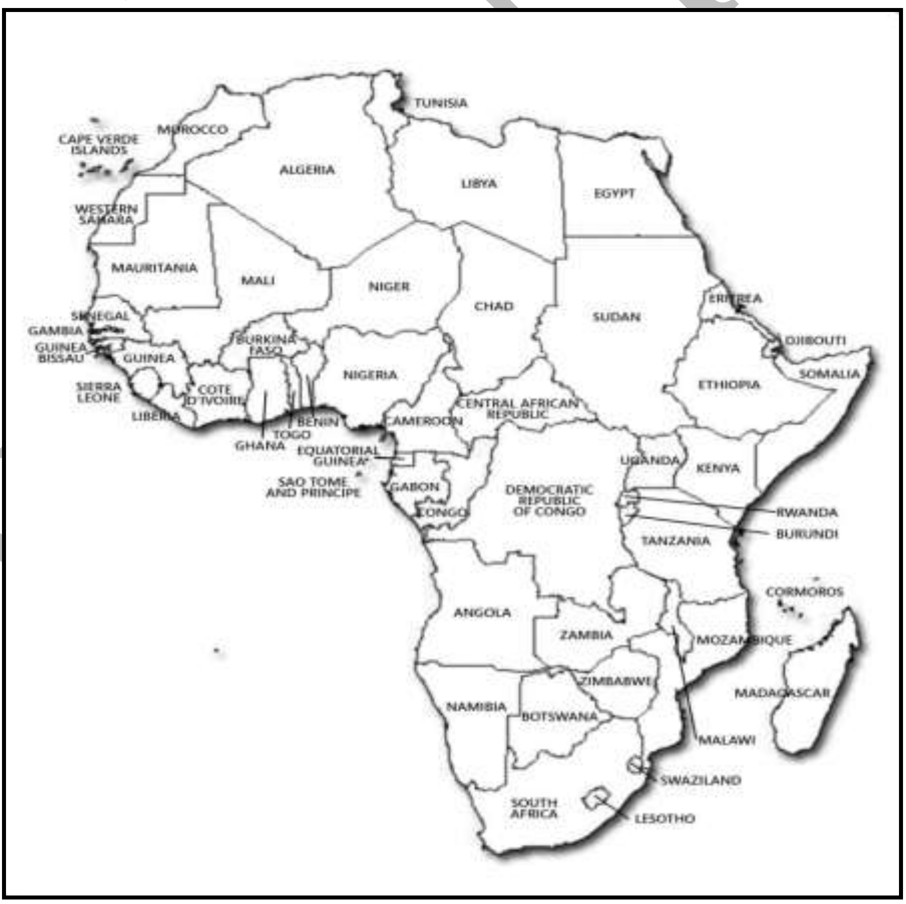

48.4.4. पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- **गोल्ड कोस्ट (1957):** 1951 से पहले पश्चिमी अफ्रीका में गोल्ड कोस्ट के नेताओं ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर अपने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व किया और श्रमिकों द्वारा हिंसक प्रदर्शन एवं

हड़तालें की गईं। इस दबाव के कारण एक नया संविधान तैयार किया गया और वयस्क मताधिकार के अनुसार चुनाव कराये गए। 1952 में स्व-शासन का प्रारम्भ किया गया परन्तु उसमें पूर्ण स्वतंत्रता नहीं थी। 1952-57 तक पश्चिमी शिक्षा प्राप्त प्रधानमंत्री एन्क्रूमाह (Nkrumah) के अधीन अफ़्रीकी नेताओं ने शासन का अनुभव प्राप्त किया और 1957 में गोल्ड कोस्ट एक नए नाम घाना के साथ पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला पहला अफ़्रीकी उपनिवेश बन गया, जिसके पहले राष्ट्रपति एन्क्रूमाह थे।

- **नाइजीरिया (1960):** नाइजीरिया एक तेल समृद्ध देश था। इसे क्षेत्र के बड़े आकार और जनसांख्यिकी विभाजन की विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिसमें तीन मुख्य नृजातीय समूह सम्मिलित थे - उत्तर में मुस्लिम और पश्चिमी व पूर्वी भागों में अन्य दो जनजातियाँ। पश्चिमी देश में शिक्षा प्राप्त एक नेता अजिकिवे ने 1945 में एक आम हड़ताल का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया था, जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज नाइजीरिया को विभिन्न चरणों में स्वाधीन करने की तैयारी करने लगे। 1954 में एक नया संविधान तैयार किया गया तथा 1960 में नाइजीरिया को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो गई।
- **सियरा लियोन और गाम्बिया:** इसी प्रकार से 1961 तक, सियरा लियोन और गाम्बिया ने शांतिपूर्ण ढंग से स्वाधीनता प्राप्त की।

48.4.5. पूर्वी अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- **तंजानिया (1961):** पूर्वी अफ़्रीकी ब्रिटिश उपनिवेश तंगानिका में **डा. न्यारेरे (Dr Nyerere)** ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व किया था। श्वेतों के प्रति उनका दृष्टिकोण सामंजस्यपूर्ण था और अश्वेत बहुमत वाली सरकार के सत्ता में आने पर उसने श्वेतों के साथ उचित व्यवहार का वचन दिया था। तंगानिका को 1961 में पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो गयी और 1964 में जंजीबार द्वीप को मिलाकर आधुनिक तंज़ानिया बना।
- **युगांडा (1962):** युगांडा में जनजातीय प्रतिद्वंदिता के कारण स्वाधीनता प्राप्ति में विलम्ब हुआ, जिसमें बुगांडा के जनजातीय नेता ने सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप का विरोध किया। संविधान के माध्यम से एक समाधान पर पहुंचा गया, जिसमें बुगांडा के जनजातीय नेताओं को कुछ विशेष शक्तियां प्रदान करते हुए एक संघीय सरकार की स्थापना की गई। 1962 में **डा. ओबोटे (Dr Obote)** स्वतंत्र युगांडा के प्रथम प्रधानमंत्री बने।
- **केन्या (1963):** केन्या में अंग्रेजों को श्वेतों और अश्वेतों के बीच सामंजस्य बनाने के लिए चुनौतियों का सामना करना पड़ा। केन्या में श्वेत प्रवासियों का शासन था, जो अश्वेत बहुमत का स्पष्ट और हिंसक विरोध करते थे और उन्हें ब्रिटेन की बड़ी व्यवसायिक लॉबी का समर्थन भी प्राप्त था। अश्वेतों ने **माऊ माऊ** नामक गुप्त सोसाइटी के अंतर्गत एक आतंकवादी अभियान प्रारम्भ कर दिया। 1952 में आपातकाल की घोषणा की गई, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन ने सैनिकों को केन्या भेजा, जो 1960 तक माऊ माऊ विद्रोह को दबाने में सफल रहे। केन्या के एक अत्यधिक सम्मानित नेता **जोमो केन्यात्ता** थे और 1952 से 1960 तक वे जेल में रहे। **1957 के पश्चात् केन्या के प्रति ब्रिटिश नीति** में परिवर्तन आया और उन्होंने केन्या को स्वाधीनता प्रदान कर दी। जोमो केन्यात्ता प्रथम प्रधानमंत्री बने और उन्होंने श्वेतों और अश्वेतों के बीच सामंजस्यपूर्ण नीति का पालन किया।

48.4.6. मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- **स्वाधीनता में विलम्ब के प्रयास – केन्द्रीय अफ़्रीकी संघ (Central African Federation) की अवधारणा:** मध्य अफ्रीका के उपनिवेशों में श्वेत प्रवासियों का वर्चस्व था। ब्रिटेन के व्यवसायिक

VISION IAS

हितों द्वारा समर्थित श्वेतों ने 1953 में चर्चिल को केन्द्रीय अफ़्रीकी संघ बनाने के लिए मना लिया था, जिसमें मध्य अफ्रीका के सभी ब्रिटिश उपनिवेशों को सम्मिलित किया गया था अर्थात् **न्यासालैंड, नार्थ रोडेशिया और साउथ रोडेशिया।** इस संघ को बनाने का उद्देश्य स्पष्ट था – मध्य अफ्रीका में श्वेतों का वर्चस्व बनाए रखना।

- **संघ के प्रतिउत्तर में अफ्रीकियों की प्रतिक्रिया:** अश्वेत बहुमत वाली सरकार की मांग करते हुए अश्वेतों ने हिंसात्मक विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप 1959 में आपातकाल की घोषणा करनी पड़ी।
- **संघ का भंग होना:** 1963 में संघ को विघटित कर दिया गया क्योंकि न्यासालैंड और नार्थ रोडेशिया अब इसका भाग नहीं बनना चाहते थे। 1962-63 तक न्यासालैंड और नार्थ रोडेशिया में एक नया संविधान लागू करना पड़ा, परिणामस्वरूप क्रमशः मलावी और जाम्बिया के रूप में दोनों को ही स्वाधीनता प्रदान कर दी गई।
- **जिम्बाब्वे**
  - **जिम्बाब्वे में स्थिति:** मुख्य समस्या जिम्बाब्वे अर्थात् साउथ रोडेशिया में थी, जहाँ अश्वेतों के विरुद्ध श्वेतों ने सबसे अधिक अधिक्रमण किया था और अश्वेत शासन का विरोध सबसे लम्बे समय तक किया। साउथ रोडेशिया के श्वेत देश के शासन में अश्वेतों को किसी भी तरह की हिस्सेदारी दिए जाने के विरुद्ध थे।
  - **ब्रिटेन और श्वेत प्रवासियों के बीच अनिर्णय की स्थिति:** जाम्बिया और मलावी की स्वाधीनता के समय, ब्रिटेन साउथ रोडेशिया को इस शर्त पर स्वाधीनता देने के लिए तैयार था कि प्रस्तावित संवैधानिक संशोधनों में श्वेत, अश्वेतों को संसद में न्यूनतम एक तिहाई स्थान की अनुमति दें, परन्तु प्रधानमंत्री स्मिथ के अधीन एक श्वेत जातीय पार्टी **रोडेशिया फ्रंट** ने ब्रिटेन के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। श्वेतों ने रोडेशिया फ्रंट के अंतर्गत, बिना ब्रिटिश सहमति के 1965 में स्वाधीनता की घोषणा कर दी (यद्यपि ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा को बनाये रखा गया)। प्रतिक्रियास्वरुप ब्रिटेन ने साउथ रोडेशिया पर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिया और साउथ रोडेशिया से तम्बाकू और चीनी खरीदना बंद कर दिया, जो यहाँ से निर्यात की मुख्य वस्तुएं थी।
  - **संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद प्रवासियों के विरुद्ध थी:** संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने एकपक्षीय स्वाधीनता की घोषणा की निंदा की और साउथ रोडेशिया के विरुद्ध व्यापारिक प्रतिबंधों के प्रस्ताव पारित किए।
  - **दक्षिण अफ्रीका और मोज़ाम्बिक:** मोज़ाम्बिक पुर्तगाली शासन के अधीन था जबकि दक्षिण अफ्रीका के गोरे लोग उपनिवेश समाप्त किए जाने के विरोधी थे। इन्होंने रोडेशिया में श्वेतों का समर्थन किया और व्यापारिक प्रतिबंधों के लिए सुरक्षा परिषद द्वारा पारित प्रस्तावों पर कार्यवाही करने से मना कर दिया।
  - **सुरक्षा परिषद के प्रतिबंधो का प्रभाव:** व्यवहार में ये व्यापारिक प्रतिबन्ध श्वेत शासन को समाप्त करने में असफल रहे, क्योंकि कई कम्पनियों और सरकारों ने गुप्त व्यापार जारी रखा तथा प्रतिबंधों को अवैध रूप से अनदेखा किया। आर्थिक हितों ने अश्वेत स्वाधीनता संघर्ष की आवाज को दबा दिया।
    - **संयुक्त राज्य अमेरिका** को साउथ रोडेशिया से सस्ते क्रोम की आवश्यकता थी और ब्रिटिश तेल कम्पनियों ने भी लाभ कमाने के लिए प्रतिबंधों का उल्लंघन किया।
    - **ब्रिटिश राष्ट्रमंडल** पतन के कगार पर था क्योंकि अश्वेतों द्वारा शासित राष्ट्रों ने साउथ रोडेशिया के श्वेतों के प्रति ब्रिटेन के किसी भी अनुकूल व्यवहार का विरोध किया।
    - दूसरी ओर **ज़ाम्बिया और तंजानिया** ने किसी भी प्रकार की सैनिक कार्यवाही का विरोध किया, वहीं **घाना और नाइजीरिया** जैसे देशों ने सैनिक कार्यवाही की मांग की।

VISION IAS

- **1970 में साउथ रोडेशिया ने स्वयं को एक गणतंत्र घोषित कर दिया** और अश्वेतों के सभी अधिकार छीन लिए जाने की वजह से रंगभेद जैसी स्थितियां प्रचलन में आ गईं।

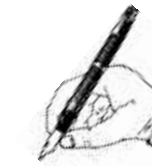

- **जिम्बाब्वे की स्वाधीनता (1980):** यहाँ 1976 तक श्वेत असफल होने लगे थे। साउथ रोडेशिया में अश्वेतों के उदय की पीछे कई आन्तरिक और क्षेत्रीय शक्तियाँ थी।
    - **मोजाम्बिक की भूमिका:** पडोसी देश में उपनिवेशवाद की समाप्ति इसका एक महत्वपूर्ण कारण था, क्योंकि मोजाम्बिक 1975 में पुर्तगाली शासन से स्वतंत्र हो गया था, जिसके चलते रोडेशिया के श्वेतों ने अपना एक महत्वपूर्ण सहयोगी खो दिया। अश्वेत शासन में मोजाम्बिक ने आर्थिक प्रतिबन्ध लगाए और साउथ रोडेशिया के गुरिल्लाओं को सुरक्षित आश्रय प्रदान किया, जिससे सत्ता संतुलन अश्वेतों के पक्ष में हो गया। इसके पश्चात् रोडेशिया में गुरिल्ला गतिविधियाँ बढ़ गयी थी।
    - **साउथ अफ्रीका से सहायता में कमी:** 1975 में अंगोला के समाजवादी शासन के विरुद्ध साउथ अफ्रीकी सैन्य हस्तक्षेप असफल हो गया था क्योंकि अमेरिका ने दक्षिण अफ्रीका को मार्क्सवादी अंगोला से पीछे हटने के लिए मना लिया था। इस असफलता के पश्चात् दक्षिण अफ्रीका से सहायता में कमी आई थी। दक्षिण अफ्रीका और अमेरिका अंगोला में मार्क्सवादी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए विद्रोहियों की सहायता कर रहे थे, जिन्हें सोवियत रूस और क्यूबा का समर्थन प्राप्त था।
    - **अमेरिका की भूमिका:** अमेरिका को डर था कि क्यूबा-रूस के हस्तक्षेप का विस्तार रोडेशिया में हो जाएगा इसलिए अमेरिका ने स्मिथ सरकार को अश्वेतों को सुविधाएँ देने के लिए कहा।
    - **गुरिल्ला सफलता:** 1978 तक **राबर्ट मुगाबे** की अगुवाई में गुरिल्ला सेना रोडेशिया के बड़े क्षेत्रों को नियंत्रित कर रही थी और श्वेत हार के कगार पर थे। 1978 में राष्ट्रवादियों को गुरिल्ला युद्ध में सफलता मिलने के बावजूद भी जनजातीय मतभेदों के कारण स्वाधीनता में विलम्ब हो रहा था।
    - **प्रधानमंत्री स्मिथ ने जनजातीय प्रतिद्वंदिता का लाभ उठाते हुए** एक पक्ष के साथ मिल कर गठबन्धन सरकार का गठन कर लिया और शेष जनजातीय समूहों ने गुरिल्ला युद्ध जारी रखा।
    - ब्रिटेन ने 1979 में एक सम्मेलन बुलाया, जहाँ अंग्रेजों ने एक प्रस्ताव रखा और अश्वेत बहुमत वाले शासन के प्रावधान सहित श्वेतों ने संविधान को स्वीकार किया। साउथ रोडेशिया को एक नया रिपब्लिक ऑफ़ जिम्बाब्वे बनाया जाना था, जिसकी संसद की 100 सीटों में से 80 अश्वेतों के लिए आरक्षित की जानी थी। रोबर्ट मुगाबे ने गुरिल्ला युद्ध को समाप्त करने के लिए सहमति दे दी। अंत में जिम्बाब्वे के प्रथम राष्ट्रपति के रूप रोबर्ट मुगाबे के नेतृत्व में जिम्बाब्वे में अश्वेत बहुमत की सरकार बन गई।

48.5. अफ्रीका में फ़्रांसीसी साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- उपनिवेशों के संबंध में फ़्रांसीसी नीति का विश्लेषण दो चरणों में किया जा सकता है:
    - **1954 तक:** पहले चरण में फ़्रांस अपने उपनिवेशों में किसी भी प्रकार के स्वशासन के पक्ष में नहीं था। यह **1944 की ब्रैजाविले घोषणा (Brazzaville Declaration)** से चरितार्थ होता है, जिसमें कहा गया था कि किसी एक सुदूर तिथि में भी फ़्रांसीसी उपनिवेशों में कोई स्वशासन नहीं होगा। फ़्रांस अपने उपनिवेशों एवं मैंडेट को अपना जागीर समझता था, मानो ये फ़्रांस के अटूट अंग हों। यहां किसी भी प्रकार के स्वशासन का फ़्रांसीसी प्रवासी विरोध करते थे। 1949 में फ़्रांस ने सभी राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुचलने का निर्णय लिया और कई अफ़्रीकी नेताओं को साम्यवादी का ठप्पा लगा कर बंदी बना लिया।
    - **1954 के पश्चात्:** 1954 में हिंद-चीन (Indochina) युद्ध में हार के पश्चात् फ़्रांस की नीति में काफी परिवर्तन आया और दूसरे चरण में यह स्वीकार किया गया कि उपनिवेशों को समाप्त करने में और अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता है।

VISION IAS

48.5.1. ट्यूनीशिया और मोरक्को

- *एक संरक्षित (Protectorate) राज्य एक ऐसा राज्य या क्षेत्र होता है, जिसे एक सशक्त राज्य द्वारा आंशिक रूप से नियंत्रित किया जाता है (हालांकि इस पर अधिकार नहीं होता है), परन्तु अपने आंतरिक मामलों में यह राज्य स्वायत्त होता है।*
- ट्यूनीशिया और मोरक्को फ़्रांसीसी संरक्षित राज्य थे। ये संरक्षित राज्य पूर्ण स्वायत्तता चाहते थे परन्तु यूरोपीय प्रवासी फ़्रांसीसी प्रभाव को समाप्त नहीं होने देना चाहते थे क्योंकि इससे उन्हें सरकार पर नियंत्रण बनाये रखने में सहायता प्राप्त होती थी।

48.5.1.1. ट्यूनीशिया (1956)

- ट्यूनीशिया में स्वाधीनता संघर्ष का नेतृत्व **हबीब बौर्घिबा** नामक एक उदारवादी नेता के हाथों में था। इसके साथ ट्युनीशियाई लोगों ने सरकार के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध भी छेड़ रखा था।
- फ़्रांस ने आन्दोलन को विफल करने के लिए सेना भेजी परन्तु वह गुरिल्ला रणनीति और राष्ट्रवादियों के समर्थन के कारण उनसे निबटने में असफल रहा। उसी समय फ़्रांस हिंद-चीन और मोरक्को में भी समस्याओं का सामना कर रहा था। इसके अतिरिक्त गुरिल्ला भी धीरे-धीरे वामपंथी विचारधारा की ओर बह रहे थे।
- लम्बे समय तक संघर्ष के चलने की लागत और साम्यवादियों द्वारा आन्दोलन के सम्भावित अधिग्रहण के भय से, फ़्रांस ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी और उदारवादी नेता बौर्घिबा के हाथों में सत्ता सौंप दिया। एक उदारवादी नेता के सत्ता में होने से फ़्रांस को आशा थी कि वह नव-उपनिवेशवाद के माध्यम से ट्यूनीशिया पर अपना वर्चस्व जारी रख पाएगा।

48.5.1.2. मोरक्को (1956)

- एक संरक्षित राज्य के रूप में मोरक्को एक राजा के अधीन था, जो फ़्रांस के हस्तक्षेप के विरुद्ध था और उसने पूर्ण स्वाधीनता की मांग की, जिसके कारण फ्रांसीसियो ने उसे बलपूर्वक सत्ताच्युत कर दिया।
- इसके कारण गुरिल्ला युद्ध और हिंसक प्रदर्शन आरम्भ हो गये जिनमें ट्रेड यूनियनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक महंगे गुरिल्ला युद्ध की सम्भावना का अहसास होते ही, फ़्रांस ने राजा को पुनः सत्तारूढ़ कर दिया और मोरक्को को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो गयी।

48.5.2. फ्रेंच वेस्ट अफ्रीका और फ्रेंच इक्वेटोरियल अफ्रीका

(French West Africa & French Equatorial Africa)

सहारा के दक्षिण में फ़्रांसीसी अफ़्रीकी उपनिवेश फ्रेंच वेस्ट अफ्रीका और फ्रेंच इक्वेटोरियल अफ्रीका थे। पश्चिमी और भूमध्यरेखीय अफ्रीका के 12 उपनिवेशों को संरक्षित राज्यों का दर्जा दिया गया, परन्तु राष्ट्रवादी पूर्ण स्वाधीनता की मांग करते रहे।

- **फ्रेंच वेस्ट अफ्रीका** आठ उपनिवेशों का एक समूह था, जिनके नाम थे: आइवरी कोस्ट, फ्रेंच सूडान (1960 में स्वतंत्रता के पश्चात् माली बन गया), सेनेगल, नाईजर, मौरेटेनिया, गिनी आदि।
- **फ्रेंच इक्वेटोरियल अफ्रीका** में चाड, मध्य कांगो, गैबोन आदि सम्मिलित थे।
- **कैमरून और टोगोलैंड:** फ़्रांस ने इन दो पूर्व जर्मन उपनिवेशों को प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही मैंडेट के रूप में सम्भाला हुआ था।
- **मेडागास्कर:** अफ्रीका के पूर्वी तट पर मेडागास्कर भी फ़्रांसीसी नियंत्रण में था।

48.5.3. अल्जीरिया (1962)

- यह 1830 से ही फ़्रांसीसी नियंत्रण में था। फ़्रांसीसी प्रवासियों को कोलोन के नाम से भी जाना जाता था। यहाँ पर 1 मिलियन फ्रांसीसी प्रवासी और 9 मिलियन अल्जीरियाई रहते थे।

VISION IAS

- द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् मेस्साली (Messali) के दस वर्ष के शांतिपूर्ण संघर्ष से थोड़ा लाभ हुआ। फ़्रांसीसी प्रवासियों ने मूल निवासियों को कोई सुविधाएँ नहीं दीं और अल्जीरियाई लोगों को सत्ता में कोई भी भूमिका देने से मना कर दिया गया।
- इसके अतिरिक्त, फ़्रांस ने अल्जीरिया को एक संरक्षित राज्य के रूप में स्वीकार नहीं किया और इसे फ़्रांस का अटूट अंग मानता रहा।
- 1954 में, एक दशक के अहिंसक विरोध प्रदर्शनों के पश्चात्, अल्जीरियाई लोगों ने नेशनल लिबरेशन फ्रंट (FLN) के तत्वाधान में गुरिल्ला युद्ध आरम्भ कर दिया, जिसे फ़्रांस में रह रहे 2 लाख अल्जीरियाइयों द्वारा वित्त पोषित किया गया।
- 1954 में हिंद-चीन में अपनी असफलताओं और 1956 में मोरक्को और ट्यूनीशिया के संरक्षित राज्यों को बल पूर्वक छोड़ने के बावजूद भी, किसी भी फ़्रांसीसी सरकार ने फ़्रांसीसी प्रवासियों के सम्भावित प्रतिरोध और फ़्रांस में उनके समर्थकों के भय से अल्जीरिया को स्वाधीन करने का साहस नहीं जुटाया। 1960 तक अल्जीरिया में 7,00,000 से भी अधिक फ़्रांसीसी सैनिक एक विशाल युद्ध लड़ रहे थे।
- **अल्जीरिया के प्रति फ्रांसीसियों के इस दृष्टिकोण के** कई कारण थे।
  - **फ्रांसीसी सेना** हिंद-चीन में अपनी हार के पश्चात् अपनी प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहती थी। सेना अल्जीरिया की मांगों के आगे झुकने के इतना अधिक विरुद्ध थी कि यदि सरकार अल्जीरिया की मांगों को स्वीकार करती तो फ़्रांस में तख्तापलट की सम्भावनाएं थी।
  - **जनमत** उन लोगों में बहुत अधिक विभाजित था, जो फ़्रांसीसी प्रवासियों का समर्थन करते थे और वे जो अल्जीरिया अभियान का अंत चाहते थे। अल्जीरिया के विषय पर फ़्रांस स्वयं भी गृहयुद्ध के कगार पर खड़ा था।
- अल्जीरियाई युद्ध 1958 में फ़्रांस (चतुर्थ फ़्रांसीसी गणराज्य) के पतन का कारण बना। सेना ने सरकार पर दबाव बनाया कि वे सत्ता छोड़े और साथ ही सेना पूर्व **जनरल डी गॉल** को प्रधानमंत्री बनाना चाहती थी। डी गॉल ने सरकार का नेतृत्व करने के लिए अपनी सहमति तो दी परन्तु एक शर्त पर कि उसे नया संविधान बनाने दिया जाए। इस मांग को स्वीकार किया गया और चतुर्थ फ़्रांसीसी गणराज्य का अंत हो गया। सत्ता में आने के पश्चात् डी गॉल ने अल्जीरियाईयों के साथ वार्ता करने का निर्णय किया, जिसके कारण सेना के एक गुट ने अल्जीरिया और फ़्रांस में आतंकवादी गतिविधियाँ आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् जनरल डी गॉल सेना की वर्दी में टेलीविजन पर आए। इस प्रतीकात्मक कार्यवाही ने प्रतिकूल परिस्थिति को नियंत्रण में लाया। फ़्रांसीसी जनता की राय थी कि अल्जीरिया को स्वाधीनता दी जाए और 1962 में यह हुआ, **बेन बेला** प्रथम अल्जीरियाई राष्ट्रपति बने।

48.5.4. फ़्रांसीसी समुदाय (French Community)

1958 में जनरल डी गॉल ने नव-उपनिवेशवाद की नीति को संस्थागत बनाने का प्रयास किया। डी गॉल ने ब्रिटिश कॉमनवेल्थ की तर्ज पर निम्नलिखित बिन्दुओं पर **फ़्रांसीसी समुदाय** के गठन की एक नई योजना का प्रस्ताव दिया:

- पश्चिम और इक्वेटोरियल अफ्रीका के 12 उपनिवेशों (जिन्हें संरक्षित राज्य का दर्जा प्राप्त था) में उनकी स्वयं की संसद के साथ आंतरिक मामलों में स्व-शासन चलता रहेगा।
- फ़्रांसीसी समुदाय में यह सभी 12 उपनिवेश सम्मिलित होंगे तथा फ़्रांस कराधान और विदेशी मामलों में सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेगा।
- उसके बदले में फ़्रांसीसी समुदाय के सभी सदस्यों को फ़्रांस से वित्तीय सहायता प्राप्त होगी।
- सदस्यों के पास समुदाय की सदस्यता को अस्वीकार करने का विकल्प होगा, लेकिन उस स्थिति में उन्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होगी।

VISION IAS

- **फ्रेंच इक्वेटोरियल & वेस्ट अफ्रीका (1960):** इस योजना का परिणाम यह था कि 11 उपनिवेशों ने फ़्रांसीसी समुदाय के पक्ष में मतदान किया, सिवाय गिनी के जहाँ 95 प्रतिशत लोगों ने इसके विरोध में मतदान किया। गिनी को राष्ट्रवादी नेता सेकोऊ टौरे के नेतृत्व में पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की गयी। शीघ्र ही गिनी से प्रेरित होकर 11 उपनिवेशों ने (कैमरून और टोगो सहित) पूर्ण स्वाधीनता की मांग की। अफ़्रीकी राष्ट्रवाद और अश्वेत गौरव अपने चरम पर था। इन सभी देशों को 1960 में पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की गयी, यद्यपि 1960 के पश्चात् भी गिनी के अतिरिक्त इन सभी उपनिवेशों में नव-उपनिवेशवाद चलता रहा, क्योंकि इनकी आर्थिक और विदेश नीति पर फ़्रांस का वर्चस्व बना रहा।

48.6. अफ्रीका में बेल्जियम के साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- बेल्जियम के दो उपनिवेश बेल्जियन कांगो और रवांडा-बुरुंडी थे। क्रमशः 1960 और 1962 में स्वतंत्रता के बाद दोनों अराजकता और गृहयुद्ध की चपेट में आ गए। ऐसा स्वतंत्रता के लिए तैयार न होने के कारण हुआ।
- अपने **उपनिवेशों में बेल्जियम की नीति दोहरी थी** - मूल निवासियों को किसी भी शिक्षा से वंचित रखना और अपने शासन को लंबे समय तक बनाये रखने के लिए जनजातीय प्रतिद्वंद्विता का उपयोग करना। दूसरे कारक ने दोनों उपनिवेशों में भलीभांति कार्य किया।
    - **जनजातीय प्रतिद्वंद्विता का उपयोग करना:**
        - **कांगो** लगभग 150 अलग-अलग जनजातियों का एक दहकता हुआ ज्वालामुखी था। बेल्जियम एक जनजाति के लड़ाकों का दूसरी जनजाति को नियंत्रित करने के लिए उपयोग करता था और कृपापात्र जनजातियों को कानून और व्यवस्था बनाए रखने के बदले में संरक्षण प्राप्त होता था।
        - **रवांडा-बुरुंडी** में, बेल्जियम ने **हुतु** जनजाति के लोगों को नियंत्रित करने के लिए **तुत्सी** जनजाति का उपयोग किया। फिर भी फ्रांस और ब्रिटेन के पड़ोसी उपनिवेशों के राष्ट्रवादी विचारों ने यहाँ के लोगों को प्रभावित किया।
- **कांगो (1960)**
    - बेल्जियम शासित कांगो में बेरोजगारी और निम्न जीवन स्तर के विरूद्ध 1959 में अचानक विरोध-प्रदर्शन होने लगा। इससे बेल्जियम को 1960 में कांगो को स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए विवश होना पड़ा क्योंकि एक तरफ जहाँ उसे महंगे गुरिल्ला युद्ध का डर था तो वहीं दूसरी तरफ उसे स्वतंत्र लेकिन कमजोर कांगो पर नव-उपनिवेशवाद की नीति का उपयोग बेहतर लगा।
    - स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रवादियों के बीच पर्याप्त एकता के बावजूद इसके उपरांत यहां अराजकता क्यों पैदा हुई? इसके निम्नलिखित कारण थे:
        - मूल निवासियों के पास नौकरशाही के पदों को भरने के लिए कोई शिक्षा नहीं थी और यहां ऐसा कोई अफ्रीकी समूह नहीं था जिसे शासन का कोई अनुभव हो।
        - कांगो में केवल 17 स्नातक थे और कोई चिकित्सक, वकील, इंजीनियर व सैन्य अधिकारी नहीं था।
        - वहाँ पर ऐसा कोई सुस्पष्ट आंदोलन देखने को नहीं मिला जैसा कि उचित संगठनात्मक संरचना के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में भारत जैसे अन्य उपनिवेशों में देखा गया था। 1959 में लुमम्बा के नेतृत्व में कांगो का राष्ट्रीय आंदोलन सिर्फ 1 वर्ष पुराना था। कांगो में गृहयुद्ध 1960 से लेकर 1964 तक जारी रहा।

VISION IAS

48.7. अफ्रीका में स्पेन के साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

- फ्रैंको को उपनिवेशों में बहुत कम रूचि थी और उसने स्पेनिश उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलनों का प्रतिरोध नहीं किया।
- जब फ्रांस ने फ़्रांसीसी मोरक्को को स्वतंत्रता दी तो 1956 में **स्पेनिश मोरक्को** का संयुक्त मोरक्को में विलय कर दिया गया। इफ्नी (Ifni) को 1969 में मोरक्को में मिला दिया गया।
- **इक्वेटोरियल गिनी** को 1968 में स्वतंत्रता दी गई।
- **स्पेनिश सहारा:** केवल स्पेनिश सहारा में फ्रैंको ने 1975 में अपनी मृत्यु तक स्वतंत्रता की मांग का विरोध किया। ऐसा इसलिए था क्योंकि सहारा फॉस्फोरस संसाधनों से समृद्ध था जो स्पेन के लिए महत्वपूर्ण था। दुर्भाग्य से उसकी मृत्यु के बाद, सहारा को विभाजित कर दिया गया तथा मोरक्को और मॉरिटानिया को सौंप दिया गया।
    - **पोलिसारियो फ्रंट (Polisario Front)** वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आंदोलन की भांति सहारा क्षेत्र की स्वतंत्रता के लिए एक आंदोलन था और इसने सहारा की स्वतंत्रता के लिए विरोध करना जारी रखा। इसने 1976 में लोकतांत्रिक अरब गणराज्य सहारा (या सहरावी अरब लोकतांत्रिक गणराज्य) {Democratic Arab Republic of Sahara (or Sahrawi Arab Democratic Republic: SADR)} की घोषणा की।
    - लीबिया, अल्जीरिया और साम्यवादी गुट के देशों के साथ भारत SADR को मान्यता प्रदान करने वाले देशों में अग्रणी था। बाद में पोलिसारियो आंदोलन का समर्थन करने वाले साम्यवादी गुट के साथ सहारा, मोरक्को और मॉरिटानिया शीत युद्ध में उलझ गए।
    - **शीत युद्ध:** अल्जीरिया और लीबिया ने सैनिक दल भेजे जिसके परिणामस्वरूप मॉरिटानिया ने सहारा का अपना हिस्सा छोड़ दिया। इसी प्रकार मोरक्को हार की कगार पर था लेकिन अमेरिका ने उसे बचा लिया। अमेरिका ने सहारा को शीतयुद्ध के भाग के रूप में देखा क्योंकि सोवियत संघ ने SADR को मान्यता दी थी।
    - 1980 के दशक में युद्ध जारी रहा और मोरक्को ने मॉरिटानिया शासित सहारा पर भी कब्जा कर लिया। 1990 में, संयुक्त राष्ट्र ने यह तय करने के लिए एक जनमत संग्रह प्रस्तावित किया कि क्या लोग स्वतंत्रता चाहते हैं या मोरक्को के अंग के रूप में बने रहना चाहते हैं, लेकिन मोरक्को ने संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।
    - **SADR** की वर्तमान स्थिति यह है कि, वेस्टर्न सहारा एक विवादित क्षेत्र है। SADR 25 प्रतिशत वेस्टर्न सहारा पर नियंत्रण रखता है और बाकी मोरक्को के नियंत्रण में है। भारत SADR के अधीन एक **स्वतंत्र वेस्टर्न सहारा का समर्थन करता है** जो गुट-निरपेक्ष आंदोलन का एक अंग है और जिसकी अल्जीरिया में निर्वासित सरकार है। **पोलिसारियो फ्रंट** आज अल्जीरिया में स्थित एक राजनीतिक-सैन्य संगठन है। सबसे बुरी तरह से प्रभावित सहारा के लोग हैं, जिनमें से कई लोग अल्जीरिया के शरणार्थी शिविरों में रह रहे हैं।

48.8. अफ्रीकी महाद्वीप में पुर्तगाली साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण

अफ्रीका में पुर्तगाली उपनिवेशों में **अंगोला, मोज़ाम्बिक और पुर्तगाली गिनी** सम्मिलित थे।

- **उपनिवेशवाद का प्रभाव**
    - द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कई वर्षों तक पुर्तगालियों ने डॉ. सालाजार की दक्षिणपंथी फासीवादी सरकार के अधीन राष्ट्रवादी आंदोलनों के क्रूर दमन की नीति का पालन किया।
    - पुर्तगाली उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर थी और शिक्षा के निम्न सामाजिक संकेतकों के साथ उद्योगों का अस्तित्व नहीं था।
    - 1956 तक मोज़ाम्बिक में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त केवल 50 लोग थे।

VISION IAS

- **पुर्तगाल विफल होने लगा:** 1956 में जब सभी तीनों उपनिवेशों में राष्ट्रवादी समूहों का गठन हुआ तो परिस्थितियाँ सालाजार के विरूद्ध हो गईं। प्रारंभ में वे औपनिवेशिक शासन से बहुत कम प्राप्त कर सके लेकिन 1960 तक कई अफ्रीकी उपनिवेशों की स्वतंत्रता ने मूलनिवासी राष्ट्रवादियों का मनोबल बढ़ाया और उन्होंने अपना विरोध तीव्र कर दिया। सालाजार ने अधिक दमनकारी प्रतिकार किया और परिणामस्वरूप, 1961 में तीनों उपनिवेशों में पुर्तगालियों के विरूद्ध गुरिल्ला अभियान आरंभ हो गया।
- **अंगोला में,** गुरिल्ला युद्ध 1961 में **नेतो** (Neto) के अधीन आरंभ हुआ। **मोज़ाम्बिक** में फ्रेलिमो गुरिल्लाओं का नेतृत्व **मंडलेन** नामक नेता ने किया। इसी तरह, **कैब्रल** ने **पुर्तगाली गिनी** में गुरिल्ला बलों का नेतृत्व किया। गोरिल्ला बलों को सोवियत सहायता मिली क्योंकि वे सभी अपनी विचारधारा में मार्क्सवादी थे।
- **स्वतंत्रता:** तीन मोर्चों पर एक साथ गुरिल्ला विरोधी प्रयासों की लागत 1973 तक पुर्तगाल के राष्ट्रीय बजट के 40 प्रतिशत तक पहुँच गई। पुर्तगाली लोगों और सेना के बीच असंतोष के बावजूद, सालाजार ने धन और सैनिकों को झोंकना जारी रखा। इसके परिणामस्वरुप अंततः एक सशस्त्र तख्तापलट हुआ, जिसके द्वारा 1974 में सालाजार को सत्ता से वंचित कर दिया गया। शीघ्र ही इन तीनों उपनिवेशों को स्वतंत्रता दे दी गई। पुर्तगाली गिनी 1974 में गिनी बिसाऊ नाम से स्वतंत्र हो गया जबकि मोज़ाम्बिक और अंगोला 1975 में स्वतंत्र हो गए।
- **रंगभेद पर प्रभाव**: अफ्रीका में पुर्तगाली साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण रोडेशिया और दक्षिण अफ्रीका में श्वेत आबादी के लिए संकट का कारण बना क्योंकि ये स्वतंत्र देश अब श्वेत आबादी के वर्चस्व वाले शेष बचे केवल दो अफ्रीकी देशों में स्वतंत्रता युद्ध लड़ने वाले गुरिल्लाओं के लिए सुरक्षित शिविर बन गए थे।
- स्वतंत्रता के तुरंत बाद अंगोला पर दक्षिण अफ्रीका ने आक्रमण कर दिया और यह शीत युद्ध का एक भाग बन गया। बाद में अंगोला पर कई बार आक्रमण किया गया और 1990 के दशक तक अंगोला गृहयुद्ध में उलझा रहा।
- दक्षिण अफ्रीका ने मोज़ाम्बिक पर भी आक्रमण किया क्योंकि वह अश्वेत लोगों के फ्रेलिमो आंदोलन के विरूद्ध था। कई अफ्रीकी देशों की भांति मोज़ाम्बिक भी कई वर्षों तक बाद में हुए गृहयुद्धों से प्रभावित रहा।

48.9. अफ्रीका में इतालवी साम्राज्य का विऔपनिवेशीकरण (इथियोपिया, लीबिया, इरिट्रिया, सोमालिया)

- इटली का प्रकरण अलग था क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध में पराजय के बाद उसे अपने सभी उपनिवेश खोने पड़े। अफ्रीका में इटली के उपनिवेशों को स्वतंत्रता के लिए तैयार करने हेतु ब्रिटेन और फ्रांस को मैंडेट के रूप में सौंप दिया गया। बाद में संयुक्त राष्ट्र ने इन राष्ट्रों को वेस्ट समर्थक सरकारों के अधीन कर दिया।
- **इथियोपिया में** 1941 में इतालवी शासन समाप्त हो गया और 1951 में ब्रिटिश मैंडेट भी समाप्त हो गया। 1935 में इतालवी आक्रमण के बाद से निर्वासन में रह रहे **सम्राट सेलासी** को वापस लाया गया और पुनर्बहाल किया गया।
- 1951 में राजा इद्रिस के अधीन **लीबिया** को स्वतंत्र कर दिया गया।
- वहीं दूसरी ओर **इरिट्रिया** आंतरिक मामलों में स्वायत्तता के प्रावधान के साथ संघीय प्रणाली के अंतर्गत 1952 में इथियोपिया का भाग बन गया।
- 1960 में इतालवी सोमालीलैंड और ब्रिटिश सोमालीलैंड का विलय करके **सोमालिया** का स्वतंत्र राज्य बनाया गया।

48.9.1. स्वतंत्रता पश्चात् अशांति

- स्वतंत्रता के शीघ्र पश्चात् अलोकप्रिय शासकों के घटिया शासन के कारण इन पूर्व उपनिवेशों में शांति की स्थिति बिगड़ गई। यहां के उभरने वाले नए नेता सोवियत संघ समर्थक थे और आधुनिकीकरण के लिए सोवियत सहायता चाहते थे।
  - **लीबिया में** राजा इद्रिस घोर पश्चिम समर्थक था। हालांकि 1969 में एक समाजवादी क्रांतिकारी आंदोलन द्वारा उसे उखाड़ फेंका गया। **मुअम्मर गद्दाफी** के अनुवर्ती शासन ने लीबिया के तेल उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया और शहरीकरण की प्रक्रिया आरंभ की।
  - **इथियोपिया में** सेलेसी ने आधुनिकीकरण का कोई भी प्रयास नहीं किया। उसने इरिट्रिया की स्वायत्तता और सीमित स्वशासन से संबंधित प्रावधानों को रद्द कर दिया, जिसके परिणामस्वरुप इरिट्रिया ने इथियोपिया के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम आरंभ कर दिया। 1974 में सेलेसी की सत्ता को उखाड़ फेंका गया।
  - **इरिट्रिया में** इथियोपिया ने स्वतंत्रता की मांग पर अंकुश लगाने का प्रयत्न किया, लेकिन शीघ्र ही दो अन्य इथोपियाई प्रांत अलग होने की मांग करने लगे। अलगाववादी आंदोलन को नियंत्रित करने के लिए इथियोपियाई शासन को अपने बजट में सेना के व्यय पर अधिक धनराशि आबंटित करनी पड़ी, जबकि अकाल और गरीबी से आम आदमी त्रस्त थे। अंततोगत्वा 1993 में इरिट्रिया को स्वतंत्रता मिल गई। इरिट्रिया **हॉर्न ऑफ़ अफ्रीका** का एक भाग है, जो भयावह गरीबी से ग्रस्त है और लोग लम्पेडुसा द्वीप के माध्यम से (खतरनाक नाव यात्रा द्वारा) यूरोप भाग रहे हैं जो अफ्रीका और मध्य पूर्वी देशों से यूरोप के लिए प्रवेश बिंदु बन गया है। अनिवार्य आजीवन सैन्य भर्ती के कारण इरिट्रिया अत्यधिक सैन्यीकरण से भी ग्रस्त है।

49. अंग्रेजों द्वारा अफ्रीका के बाहर किए गए विऔपनिवेशीकरण के प्रयास

49.1. भारत

- भारत को **1947** में दो भागों, भारत और पाकिस्तान में बांट दिया गया। विऔपनिवेशीकरण शांतिपूर्ण नहीं था और विभाजन के दौरान भारी कत्लेआम हुआ। अंग्रेज नरसंहार के किसी भी उत्तरदायित्व से बचने के लिए यहाँ से बाहर निकलने की जल्दबाजी में थे।

49.2. वेस्ट इंडीज (कैरीबिया), मलाया (दक्षिण पूर्व एशिया) और साइप्रस (मध्य पूर्व)

- इन सभी क्षेत्रों में अंग्रेज अपने उपनिवेशों को एक परिसंघ (Federation) में संगठित करना चाहते थे, लेकिन उन्हें केवल आंशिक सफलता ही मिली। परिसंघ राज्यों का ऐसा समूह होता है जिसमें आंतरिक मामलों का प्रबंधन करने के लिए प्रत्येक राज्य की अपनी एक संसद (विधायिका) होती है, लेकिन घटक इकाईयां परिसंघीय सरकार (उदाहरण के लिए, यू.एस.ए., कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि) के समग्र प्राधिकार के अधीन काम करती हैं।
- **वेस्ट इंडीज:** वेस्ट इंडीज कैरिबियन क्षेत्र में द्वीपों का एक समूह है।
  - **कैरेबियाई द्वीपों के लिए परिसंघ की मांग क्यों की गई?**

▪ यहाँ प्रमुख समस्या उपनिवेशों के आकार लेकर थी। अतः यहाँ अलग-अलग इकाई के रूप में एक उपनिवेश की संकल्पना कोई व्यवहार्य विचार नहीं था। साथ ही वे आर्थिक और प्रशासनिक रूप से व्यवहार्य नहीं थे।

▪ जहां एक ओर कुछ उपनिवेशों ने परिसंघ के विचार पर आपत्ति की, वहीं उनमें से कुछ अन्य ब्रिटेन से स्वतंत्रता भी नहीं चाहते थे। फिर भी, **1958** में **वेस्ट इंडीज फेडरेशन** बनाया गया जिसमें मध्य

VISION IAS

अमेरिका की मुख्य भूमि पर स्थित ब्रिटिश होन्डुरास और दक्षिण अमेरिका की मुख्य भूमि के उत्तर-पूर्वी तट पर स्थित ब्रिटिश गुयाना को छोड़कर इस क्षेत्र के अन्य सभी ब्रिटिश उपनिवेश (जैसे कि जमैका, त्रिनिदाद, सेशेल्स, बारबाडोस, बहामास आदि) सम्मिलित थे। लेकिन **1962** तक यह विफल हो गया क्योंकि घटक सदस्य स्वतंत्र दर्जे के पक्ष में थे।

- **वेस्ट इंडीज फेडरेशन विफल क्यों हुआ?**

▪ परिसंघीय (फेडरल) संसद में प्रत्येक सदस्य के लिए सीटों की संख्या और प्रत्येक सदस्य द्वारा संघीय बजट में कितनी राशि का योगदान करना चाहिए, पर विवाद के कारण फेडरेशन विफल विफल हो गया। **1961** में जब त्रिनिदाद और जमैका इससे बाहर निकल गए तो सभी सदस्यों को **1962** में स्वतंत्रता दे दी गई।

▪ **परवर्ती संघ (Later Union):** आगे चलकर जब उन्हें आपसी सहयोग के लाभों अहसास हुआ, तो उन्होंने **1968** में कैरेबियाई मुक्त व्यापार संघ (Caribbean Free Trade Association) और **1973** में कैरेबियाई समुदाय और साझा बाजार (Caribbean Community & Common Market) का गठन किया।

- **मलाया:** यहां परिसंघ (फेडरेशन) का विचार सफल रहा। **1945** में मलाया को जापान से मुक्त कराया गया। **मलाया को फेडरेशन में संगठित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था क्योंकि:**
  - इसमें बहुनस्लीय समाज था।
  - एकल इकाई में संगठित करने के लिए यह भौगोलिक रूप से एक जटिल राष्ट्र था। जैसे कि सिंगापुर मुख्य भूमि से कुछ मील की दूरी पर स्थित द्वीप था। इसके साथ ही, मलाया अलग-अलग सुल्तानों के अधीन **9** राज्यों का एक समुच्च्य था।
  - जापान के विरूद्ध लड़ने वाले कम्युनिस्ट गुरिल्ला (मलाया के नृजातीय चीनी) अब साम्यवादी मलाया की स्थापना के लिए ब्रिटेन से लड़ रहे थे।
  - **फेडरेशन ऑफ़ मलाया:** ब्रिटेन ने **1948** में मलाया परिसंघ का गठन किया (पूर्ण स्वतंत्रता के बिना) और सिंगापुर को एक पृथक उपनिवेश के रूप में रखा गया। गुरिल्ला अभियान जारी रहा और ब्रिटेन को 1948 से आपातकाल लागू करना पड़ा। 1955 के चुनावों में नृजातीय भारतीय, चीनी और मलय चुनाव लड़ने के लिए एक साथ आए तथा उन्होंने विजय प्राप्त की। इस प्रकार एकल पार्टी के बहुमत में आने से स्थिरता के स्पष्ट संकेत मिले और अंततोगत्वा 1957 में मलाया को स्वतंत्रता दे दी गई।
  - मलाया की पहल पर एक अस्थायी मलेशियाई परिसंघ (फेडरेशन ऑफ़ मलेशिया, 1963) का गठन किया गया। इसमें सिंगापुर और ब्रुनेई को सम्मिलित करने का प्रस्ताव था। लेकिन इसमें ब्रुनेई सम्मिलित नहीं हुआ और उसे 1984 में स्वतंत्रता दे दी गई तथा वह राष्ट्रमंडल में सम्मिलित हो गया। सिंगापुर ने परिसंघ त्याग दिया और 1965 में एक स्वतंत्र इकाई बन गया।
- **साइप्रस (1960):** साइप्रस का विऔपनिवेशीकरण एक कष्टप्रद प्रक्रिया थी। यहाँ की **80%** आबादी यूनानी ईसाइयों की थी जो ग्रीस के साथ संघ (यूनियन) चाहते थे। शेष **20%** तुर्की मुसलमान थे, जो उत्तर में केंद्रित थे और तुर्की के साथ संघ चाहते थे। **1960** में इसे स्वतंत्रता प्राप्त हुई। **1963** में ईसाइयों और तुर्कों के बीच गृह-युद्ध छिड़ गया। तुर्की सैन्यदलों ने **1974** में तुर्की मुसलमानों के पक्ष में हस्तक्षेप किया और उत्तरी साइप्रस ने स्वयं को एक अलग राष्ट्र घोषित कर दिया।
  - आज भी तुर्की की सेनाएं उत्तरी साइप्रस में बनी हुई हैं, जिसकी सरकार को केवल तुर्की द्वारा मान्यता प्रदान की गई है। उत्तरी साइप्रस और साइप्रस के बीच सीमा पर शुचिता और शांति सुनिश्चित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र के बल तैनात हैं।

VISION IAS

- साइप्रस यूरोपीय संघ का एक अंग है। इसी राजनीतिक विवाद के कारण ग्रीस ने यूरोपीय संघ में तुर्की का प्रवेश अवरुद्ध कर रखा है।

- **फ़ॉकलैंड द्वीपसमूह:** फ़ॉकलैंड द्वीप समूह के आसपास का क्षेत्र तेल समृद्ध है। इसे ब्रिटेन ने छोड़ा नहीं है।
    - **इतिहास:** आरंभ में फ़ॉकलैंड द्वीप समूह फ्रांस के अधीन था। बाद में स्पेन ने फ्रांस का स्थान ले लिया। फ़ॉकलैंड द्वीप समूह का कुछ भाग अंग्रेजों के अधीन भी था। अमेरिकी स्वतंत्रता संघर्ष के बाद अंग्रेज आर्थिक दबाव में थे। अतः उन्होंने फ़ॉकलैंड द्वीप समूह को छोड़ दिया लेकिन साथ ही इसे ब्रिटिश संप्रभुता के अधीन बनाए रखने की एक घोषणा भी की। दक्षिण अमेरिका के अपने (स्पेनिश) उपनिवेशों में स्वतंत्रता आंदोलनों के कारण पीछे हटने के लिए विवश होने तक स्पेन ने 1811 तक इन द्वीपों पर शासन किया। अर्जेंटीना 1816 में स्वतंत्र हुआ तथा उसने 1833 तक फ़ॉकलैंड द्वीपसमूह पर नियंत्रण बनाए रखा। उल्लेखनीय है कि 1833 में अंग्रेजों ने फ़ॉकलैंड द्वीपसमूह पर फिर से कब्जा कर लिया। इस प्रकार 1833 से फ़ॉकलैंड द्वीपसमूह निरंतर ब्रिटेन के नियंत्रण में रहा है। समय बीतने के साथ ब्रिटिश आबादी इन द्वीपों में रहने आ गई और आज यहां की आबादी में अंग्रेज बहुमत में हैं।
    - अर्जेंटीना द्वारा फ़ॉकलैंड द्वीपसमूह पर आक्रमण करने पर मार्गरेट थैचर (1979-91 तक पीएम) के नेतृत्व में ब्रिटेन ने युद्ध आरंभ कर दिया। 1982 में ब्रिटिश विजय के बाद फ़ॉकलैंड द्वीपवासियों को 1983 में पूर्ण ब्रिटिश नागरिकता दी गई। 1983 में एक जनमत संग्रह आयोजित किया गया और भारी संख्या में लोगों ने (99%) अंग्रेजों के अधीन रहने के लिए मतदान किया।

50. हॉलैंड द्वारा विऔपनिवेशीकरण

- द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले नीदरलैंड (हॉलैंड) के उपनिवेशों में सम्मिलित थे:
    - ईस्ट इंडीज (जिसमें अन्य के साथ मुख्य रूप से सुमात्रा और जावा के द्वीप सम्मिलित थे),
    - वेस्टइंडीज में कुछ द्वीप। यहां कोई स्वतंत्रता नहीं दी गई और केवल सीमित स्व-शासन ही प्रदान की गई तथा वे आज भी हॉलैंड का भाग बने हुए हैं।
    - दक्षिण अमेरिका में सूरीनाम। यह उत्तरी अटलांटिक महासागर के तट के साथ दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पूर्व में स्थित है। इसे 1975 में स्वतंत्रता दी गई।

50.1. ईस्ट इंडीज़ में उपनिवेश और उनका विउपनिवेशिकरण

- डच वस्तुतः ईस्ट इंडीज में अपने बागानों से होने वाली निर्यात आय पर अत्यधिक निर्भर थे। बागानों के किसानों को केवल निर्यात के लिए फसलें उगाने हेतु अपनी भूमि का 1/5 भाग आरक्षित रखना पड़ता था। इन निर्यातों से होने वाली आय का हॉलैंड की सरकार द्वारा अर्जित कुल राजस्व में महत्वपूर्ण योगदान होता था।

 ©Vision IAS

- यहां सुकर्णो जैसे नेता द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले से ही राष्ट्रवादी संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे। 1930 के दशक में सुकर्णो सहित कई नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।
- **जापान की भूमिका: 1942** में ईस्ट इंडीज पर आक्रमण करने के बाद जापान ने सुकर्णो को जेल से मुक्त कर दिया और प्रशासन में मूल निवासियों को भी भगीदारी दी। जापान युद्ध के बाद स्वतंत्रता के वचन के बदले में युद्ध प्रयासों में सहायता चाहता था। सुकर्णो ने लोगों को जापान की सहायता करने के लिए लामबंद किया।
- **द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद: 1945** में जापान की हार के बाद सुकर्णो ने इंडोनेशिया को एक स्वतंत्र गणराज्य घोषित कर दिया लेकिन डच अपना उपनिवेश छोड़ने के बिल्कुल इच्छुक नहीं थे, जो उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार था। डच सेना लड़ी, विफल हुई और बातचीत हुई, क्योंकि:
    - वे गुरिल्ला प्रतिरोध से लड़ने की उच्च लागत नहीं वहन कर पा रहे थे।
    - संयुक्त राष्ट्र का दबाव।
    - अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया भी डचों पर दबाव डाल रहे थे क्योंकि वे डचों के बाहर निकलने के बाद इंडोनेशिया में निर्यात बाजार और प्रभाव चाहते थे।
    - डच ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की भांति इंडोनेशिया के साथ विशेष संबंध बनाए रखना चाह रहे थे (नव-उपनिवेशवाद)।
- **डोमिनियन स्टेटस (1949):** डचों ने यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ इंडोनशिया को मान्यता दी (पश्चिमी ईरियन को छोड़कर जो डच ईस्ट इंडीज का एक और उपनिवेश था)। बदले में सुकर्णो ने डच राजशाही के अधीन नीदरलैंड-इन्डोनेशियाई संघ {डोमिनियन स्टेटस (अधिराज्य दर्जे)} पर सहमति व्यक्त की।
- **1950 में पूर्ण स्वतंत्रता**: 1950 में सुकर्णो ने डोमिनियन स्टेटस के दर्जे को समाप्त कर दिया और डच संपत्ति जब्त करके तथा यूरोपियों को निष्कासित करके पश्चिम इरियन देने के लिए डचों पर दबाव डाला। 1963 में वह इंडोनेशिया में पश्चिमी ईरियन का समामेलन करने में सफल रहा।
- **1965 सैन्य तख्तापलट**: सुकर्णो को अमेरिका प्रायोजित तख्तापलट के माध्यम से सत्ता से हटा दिया गया क्योंकि वह कम्युनिस्ट समर्थक (चीन समर्थक) नीति पर चल रहा था। सत्ता में आने पर जनरल सुहार्तो ने कम्युनिस्टों के विरूद्ध शुद्धीकरण (purges) आरंभ किया।
- **जनरल सुहार्तो:** उसका शासन एक क्रूर सैन्य तानाशाही वाला था, लेकिन कम्युनिस्ट विरोधी रुख के कारण अमेरिका उसका समर्थन करता था। 1975 में, इंडोनेशिया ने ईस्ट तिमोर पर आक्रमण करके कब्जा कर लिया। संयुक्त राष्ट्र, सोवियत संघ और अमेरिका, सभी चुप रहे क्योंकि ईस्ट तिमोर का अमेरिका और सोवियत संघ के लिए कोई महत्व नहीं था।

51. विऔपनिवेशीकरण से संबंधित कुछ अन्य पहलू एवं विचार

- **विऔपनिवेशीकरण के प्रति अनिच्छा:** द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया क्रमिक रूप से और दशकों तक चली। ब्रिटेन इससे बेहतर ढंग से निपटा और काफी हद तक अहिंसक था। ब्रिटिश नीति यह थी कि कोई भी स्वतंत्रता को रोक नहीं सकता है बल्कि केवल इसमें देरी कर सकता है और कोई भी राष्ट्रीय चेतना को रोक नहीं सकता है बल्कि केवल उसका मार्गदर्शन कर सकता है। इसे "परिवर्तन की लहर" कहा जाने लगा। भारत में, ब्रिटेन विभाजन के दौरान हुई हिंसा रोकने में विफल रहा। इटली को छोड़कर अन्य औपनिवेशिक शक्तियां अपना औपनिवेशिक साम्राज्य न छोड़ने के लिए और अधिक कृतसंकल्प थीं तथा स्वतंत्रता संघर्ष का क्रूरतापूर्वक दमन कर रही थीं। अतः कई देशों में लोगों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हिंसक स्वतंत्रता संग्राम का आश्रय लेना पड़ा।

VISION IAS

- **लॉजिस्टिक समस्याएं:** जहां विऔपनिवेशीकरण का अर्थ विभाजन था, वहां प्रवासन से संबंधित लॉजिस्टिक समस्याएं विद्यमान थीं और साथ ही हिंसा भी हुई जैसे- भारत। कटु सांप्रदायिक प्रतिद्वंद्विता के कारण भारत के प्रकरण में यह समस्या ज्यादा बढ़ गई थी।
- **नव-उपनिवेशवाद का आरंभ:** नव स्वतंत्र राष्ट्र गरीब थे और उन्हें निवेश तथा अपने निर्यात, अधिकांशत: एकल निर्यात वस्तु, के लिए बाज़ार की आवश्यकता थी।
- **एकल निर्यात वस्तु पर अतिनिर्भरता:** कई नव स्वतंत्र राष्ट्र अपने एकल वस्तु के निर्यात पर निर्भर थे। उदाहरण के तौर पर; घाना के लिए कोकोआ, नाइजीरिया के लिए तेल, ज़ायरे (अब कांगो के नाम से जाना जाता है) के लिए तांबा और क्यूबा के लिए चीनी। इससे असंतुलित आर्थिक विकास हुआ। इन वस्तुओं की अंतर्राष्ट्रीय कीमतें गिर जाने पर इन देशों की एकल निर्यात पर निर्भर अर्थव्यवस्थाओं को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ता था।
- **खाद्य संकट:** इसके अतिरिक्त, बाहरी उधारदाताओं ने अफ्रीकी राष्ट्रों पर ऋण का भुगतान करने के लिए निरंतर दबाव बनाए रखा जिससे अफ्रीकी देशों को निर्यात पर ध्यान केंद्रित करने के लिए विवश होना पड़ा, जिसमें सामान्यत: अधिक लाभकारी तैयार माल के बजाय कच्चा माल सम्मिलित होता था। नकदी फसलों सहित कच्चे माल के निर्यात पर बल देने से, खाद्य फसलों के उत्पादन में कमी आई जिससे गृह देश में खाद्य की कमी हो गई।
- **जनसांख्यिकीय कारक:** जनसंख्या में अति वृद्धि के कारण मांग पक्ष का दबाव बढ़ गया। इससे उपभोक्ता वस्तुओं और खाद्य वस्तुओं में महँगाई आई। फलस्वरूप लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई सरकारों में जनता का विश्वास कम हुआ। कुशल जनशक्ति की कमी दूसरा जनसांख्यिकीय कारक था जिसने विकास की गति धीमी की।
- **स्वतंत्रता के लिए तैयार न होना:** खराब शिक्षा एवं सैन्य व्यवस्था और नौकरशाही के पदों को भरने के लिए अधिकारी वर्ग की कमी के कारण तथा प्रशासन के अनुभव की कमी के कारण कई नए देश स्वतंत्रता के लिए तैयार नहीं थे। **अंग्रेजों के विरूद्ध अपने निरंतर संघर्ष के माध्यम से भारतीयों द्वारा प्राप्त क्रमिक स्वशासन के कारण भारत इसका एक अपवाद था।**
- **कृत्रिम अतर्कसंगत सीमाएं:** अफ्रीका के बंटवारे (छीनाझपटी) के दौरान उपनिवेशवाद की तरह, विऔपनिवेशीकरण भी भौगोलिक दृष्टि से अतर्कसंगत था। विऔपनिवेशीकरण की प्रक्रिया में भौगोलिक निरंतरता, सांस्कृतिक समानता, आर्थिक और प्रशासनिक व्यवहार्यता जैसे कारकों के लिए कोई भी सुचिंतित व सुनियोजित राज्य पुनर्गठन की प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया। फलस्वरूप, बिलकुल अलग संस्कृतियों वाले जनजातीय समूहों ने अपने आपको एक ही देश में पाया जिसके कारण अफ्रीका जनजातियों के मध्य होने वाले गृहयुद्धों का शिकार हो गया, जिनमें से कुछ अभी भी जारी हैं।
- **कोई उद्योग न होना:** औपनिवेशिक शक्तियों ने कभी भी उपनिवेशों में स्वदेशी उद्योग के विकास पर ध्यान नहीं दिया। यह विशेष रूप से अफ्रीका के संबंध में सही है, जिसका उपयोग केवल इसके कच्चे माल का दोहन करने के लिए किया गया। कई नव स्वतंत्र राष्ट्रों में कोई स्वदेशी उद्योग नहीं था। औपनिवेशिक शासन के कारण विरासत में मिली विकास संबंधी मुख्य चुनौतियों और निम्न अर्थव्यवस्था ने अस्थिर सरकारों के उदय के साथ साथ तख्तापलट के द्वारा लोकतंत्र की विफलता का मार्ग प्रशस्त किया। **सालाज़ार** की सेना (पुर्तगाल) ने मोज़ाम्बिक से पीछे हटते समय जानबूझकर वहां की अवसंरचना को नष्ट किया।
- **घटिया प्रशासन:** अधिकांश मामलों में नई सरकारें स्थानीय लड़ाकों या स्थानीय अभिजात वर्ग समूह द्वारा चलाई जा रहीं थीं जो मानव विकास में रूचि नहीं रखते थे।
- **भारी ऋण और शीत युद्ध:** तीसरी दुनिया के देश भारी भरकम विदेशी ऋण के अधीन आ गए। जिस भी देश की सरकार ने लोगों के कल्याण के लिए समाजवादी नीतियां आरंभ की वहाँ पर वैश्विक पूंजीवादी राष्ट्रों ने सहायता रोक दी। क्योंकि अमेरिका, ब्रिटेन आदि ऐसे राष्ट्रों को सोवियत संघ के साम्यवादी सहयोगी के रूप में देखते थे। यहां तक कि पश्चिमी पूंजीवादी देश इन देशों में सैन्य हस्तक्षेप भी करते थे, उदाहरण के लिए, दक्षिण अफ्रीका द्वारा अंगोला पर आक्रमण, जो संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा समर्थित था।
- **अश्वेतों से भेदभाव:** ऐसे अफ्रीकी उपनिवेशों में बहुमत का शासन आने में देरी हुई, जहां यूरोपीय आबादी अधिक संख्या में थी। ब्रिटेन समयबद्ध तरीके से अश्वेतों के नेतृत्व में बहुमत का शासन लाने

VISION IAS

के लिए दक्षिण अफ्रीका और दक्षिण रोडेशिया पर दबाव बनाने में असफल रहा। जब ब्रिटेन ने दक्षिण अफ्रीका की श्वेत सरकार पर दबाव बनाया, तो उसने 1963 में ब्रिटेन की सहमति के बिना स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अश्वेत लोगों के प्रति भेदभाव जारी रखा। 1965 में जिम्बाब्वे ने भी ऐसा ही किया।

- **जनजातीय मतभेद:** उपनिवेशवादियों के दमनकारी शासन के विरुद्ध अलग-अलग जनजातियां एकजुट हुईं, लेकिन स्वतंत्रता के बाद, जनजातीय मतभेद फिर से उभर आए। आम आदमी, अधिकारी और राजनेता राष्ट्र की तुलना में पितृ जनजाति के प्रति अधिक निष्ठावान थे। खराब आर्थिक स्थितियों के चलते व जनजातीय कारकों ने गृहयुद्ध, जनजातीय नरसंहार और लोकतंत्र की विफलता का मार्ग प्रशस्त किया। रवांडा, बुरुंडी, ज़ायरे और नाइजीरिया में जनजातीय प्रतिद्वंद्वियों ने लोकतंत्र की असफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **नव-उपनिवेशवाद:** यह एक ऐसी नीति है जिसके द्वारा औद्योगिक देश अविकसित देश के आर्थिक और सामाजिक हितों की उपेक्षा करते हुए केवल आर्थिक लाभ (मुनाफाखोरी) के उद्देश्य से अविकसित राष्ट्र की नीतियों पर हावी रहते हैं। पूँजी की आवश्यकता ने अफ्रीका को पश्चिम पर निर्भर बना दिया। यद्यपि, पश्चिमी देशों और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) जैसे नए संस्थानों ने ऋण दिया लेकिन ऐसे ऋण कुछ शर्तों के पूरा होने से बंधे थे। इन शर्तों में अक्सर प्राप्तकर्ता राष्ट्रों से विदेशी कंपनियों के लिए अपनी अर्थव्यवस्थाएं खोलने तथा सामाजिक कल्याण और सुरक्षा के निमित्त राज्य की नीतियां त्यागने की मांग की जाती थी। IMF द्वारा बाह्य रूप से आरोपित कठोर नियमों के कारण इन देशों में भारी बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति और खाद्य की कमी के समय सामाजिक व्यय में कमी आई।
- **वैश्विक आर्थिक स्थिति का प्रभाव:** 1980 के दशक के दौरान आर्थिक मंदी से निपटने के लिए गरीब अफ्रीकी राष्ट्र तैयार नहीं थे। 1982-86 तक फसल उत्पादन में कमी और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण यह समस्या द्विगुणित हो गई। निर्यात बाजारों में मंदी से अफ्रीकी देशों के विदेशी मुद्रा अर्जन को चोट पहुंची क्योंकि विकसित विश्व में विकास का इंजन धीमा होने से अफ्रीका से तेल, तांबा, कोबाल्ट, कोकोआ इत्यादि जैसी निर्यात वस्तुओं की मांग गिर गई थी। आर्थिक मंदी के कारण निर्यात आय में कमी आई जिससे इन गरीब देशों को सबसे अधिक नुकसान हुआ। इस दौरान अफ्रीकी देशों ने IMF से कठोर शर्तों पर वित्तीय सहायता ली जिससे इन राष्ट्रों पर नव-उपनिवेशवाद की जकड़ और मजबूत हो गई।

52. पूर्ववर्ती उपनिवेशों में आज की स्थिति

52.1. अफ्रीका

- प्रारम्भ में अफ्रीका में राजनीतिक अस्थिरता थी जिसके कारण इस प्रकार थे:
    - जनजातीय मतभेद।
    - वे स्वाधीनता के लिए तैयार नहीं थे और शिक्षा की कमी से प्रभावित थे।
    - ये देश आर्थिक रूप से निर्धन थे, अतः कुशल प्रशासन प्रदान करने के अक्षम रहे, फलतः वे जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में विफल रहे। इससे राजनीतिक अस्थिरता और सैनिक तख्तापलट की घटनाएँ हुईं। कुछ मामलों में लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित सरकारें राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए तानाशाही की ओर उन्मुख हो गईं। उदाहरण, घाना में एनक्रुमाह (Nkrumah), जिसे बाद में एक सशस्त्र तख्ता पलट में सत्ताच्युत कर दिया गया।
    - **वर्तमान स्थिति**
        - **अफ्रीकन यूनियन (AU):** अफ्रीकी देश *आर्गेनाईजेशन ऑफ़ अफ्रीकन यूनिटी* (OAU, वर्तमान में अफ्रीकन यूनियन) नामक एक संगठन के तत्वाधान में एनक्रुमाह जैसे नेता के नेतृत्व में अखिल-अफ्रीका की भावना से एक साथ आ गए। इसका उद्देश्य यह था कि क्षेत्रीय दबाव के उपयोग से आंतरिक विवादों को सुलझाया जा सके और अफ्रीकियों के विकास के लिए किए जाने वाले प्रयास को सफल बनाया जा सके तथा साथ ही राजनीतिक स्थिरता एवं गृह-युद्धों की रोकथाम सुनिश्चित हो सके। इस प्रकार, अफ्रीकी

VISION IAS

मामलों में विदेशी हस्तक्षेप रोकने के लिए AU एक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है और इसका लक्ष्य अफ़्रीकी समस्याओं के समाधान के उद्देश्य से अफ़्रीकियों को एकजुट करना है।

- अफ़्रीकी अर्थव्यवस्थाओं ने तेजी से विकसित होना प्रारम्भ कर दिया है, विशेषकर वर्ष 2000 के पश्चात्।
- सामाजिक संकेतकों में सुधार हुआ है, परन्तु समग्र विकास अभी भी एक चुनौती है। घरेलू उद्योगों पर ध्यान केन्द्रित करने के आवश्यकता है।
- अफ्रीका ने 1990 के दशक में रंगभेद को सफलता पूर्वक समाप्त कर लिया और अब अश्वेत बहुमत की सत्ता है। यह अश्वेतों और यूरोपीय प्रवासियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम रहा है।
- वर्तमान में अफ्रीका भारत जैसे देशों के सहयोग से UNSC में सीट प्राप्त करने के लिए प्रयास कर रहा है।

52.2. मध्य अमेरिका

- इस क्षेत्र में कैरीबियाई देश आते हैं। प्रारम्भ में वे कैरीबियाई क्षेत्र हेतु एक फेडरेशन में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे और अपने लिए एक पृथक स्वतंत्र दर्जा चाहते थे।
- 1973 में एक साझा बाजार (कॉमन मार्केट) की स्थापना के पश्चात्, उन्होंने 2006 में एक एकल बाजार (सिंगल मार्केट) का गठन किया।

52.2.1. एकल बाजार और साझा बाजार में अंतर

- **एकल बाजार** में भौतिक (सीमाएं), तकनीकी (मानक) और वित्तीय (करों) अवरोधों को हटा दिया जाता है। यह एक व्यापार समूह (ट्रेड ब्लॉक) होता है जिसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं:
    - **मुक्त व्यापार क्षेत्र (Free Trade Area: FTA):** इसमें उत्पाद नियमों पर सामूहिक नीतियों के साथ वस्तुओं के लिए मुक्त व्यापार क्षेत्र होता है।
    - **आवागमन की स्वतंत्रता (Freedom of Movement):** पूँजी, श्रम, वस्तुओं, उद्यमों और सेवाओं के लिए आवागमन की स्वतंत्रता।
- **साझा बाजार:** एकल बाजार की ओर यह पहला चरण है। इसमें अन्य अवरोधों को हटाए बिना भी एक मुक्त व्यापार क्षेत्र (FTA) बनाया जा सकता है।
- कैरिबियाई देश भी **CELAC** (2011, लैटिन अमेरिकी और कैरिबियाई देशों का संगठन) (2011, Community of Latin American and Caribbean states) के माध्यम से लैटिन अमेरिकी देशों के साथ एक कस्टम यूनियन बनाने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।
- **कैरीबियाई देशों की वर्तमान समस्याएं निम्नलिखित हैं:**
    - बेरोजगारी और उच्च विदेशी ऋण।
    - वैश्विक और क्षेत्रीय मुक्त व्यापार समझौते।
    - कैरीबिया में छोटे छोटे द्वीपीय राष्ट्र हैं, जिनमें आधारभूत ढांचे और कुशल श्रमशक्ति का अभाव है तथा ये आर्थिक रूप से निर्धन हैं। इसलिए वे निर्यात बाजारों में चीन से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते।
    - भारत CARICOM (कैरीबियन कम्युनिटी एंड कॉमन मार्किट) के साथ सहयोग कर रहा है और ICT एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में सहायता प्रदान कर रहा है, साथ ही इस क्षेत्र की विकास परियोजनाओं का वित्त पोषण भी कर रहा है।
    - तेल, गैस एवं खनिज संसाधनों में समृद्ध होने के कारण CELAC देश अत्यधिक सामर्थ्यवान हैं।

52.3. दक्षिण-पूर्वी एशिया

- 1980 के दशक में दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों का बहुत तेजी से विकास हुआ। उन्हें टाइगर अर्थव्यवस्थाएं कहा जाता है। आज भी, ASEAN एक आर्थिक शक्ति है। भारत की पूर्व की ओर

VISION IAS

देखो नीति (लुक ईस्ट पॉलिसी) के केंद्र में ASEAN है। ASEAN का उद्देश्य यूरोपीय संघ जैसा एक समुदाय बनाना है, जिसमें लोगों और वस्तुओं का मुक्त आवागमन तथा एक सामूहिक विदेश नीति जैसी विशेषताएं शामिल होंगी। उक्त ASEAN समुदाय के तीन प्रमुख स्तम्भ होंगे:

  - राजनीतिक सुरक्षा समुदाय (Political Security Community),
  - आर्थिक समुदाय (Economic Community), तथा
  - सामाजिक-सांस्कृतिक समुदाय (Socio-Cultural Community)।

- **दक्षिण एशिया:** एशिया व्यापक असमानताओं वाला एक क्षेत्र है।
  - भारत आज दूसरी तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था है।
  - बांग्लादेश को BRICS जैसी उभरती हुई अर्थव्यस्थाओं के अगले समूह का भाग कहा जा रहा है।
  - साम्यवादी क्रान्ति के माध्यम से राजशाही को उखाड़ फेंकने के पश्चात् नेपाल में संविधान निर्माण का कार्य पूर्ण हो चूका है।
  - राजशाही के नेतृत्व में भूटान शांतिपूर्वक ढंग से लोकतंत्र की ओर बढ़ गया है।
  - हिन्द महासागर में स्थित मालदीव एक द्वीप समूह है जहाँ राजनीतिक अस्थिरता एक चुनौती बनी हुई है।
  - म्यांमार दक्षिण एशियाई देशों का निकटतम पड़ोसी है। यह सैन्य जुंटा के लम्बे शासन से लोकतंत्र की ओर बढ़ गया है। यह भारत और ASEAN के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है।
  - **सार्क (SAARC)**: दक्षिण एशिया के देशों ने भी दक्षिणी एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (South Asian Association for Regional Cooperation) के नाम से एक साथ आने का प्रयास किया है। 1985 में सार्क की स्थापना की गई जिसका मुख्यालय काठमांडू में है। सार्क देशों ने प्रशुल्क अवरोधों को कम करने के उद्देश्य से एक दूसरे को सबसे पसंदीदा राष्ट्र (Most Favored Nation: MFN) का दर्जा प्रदान करने पर सहमति व्यक्त की है। भविष्य में सार्क क्षेत्र को ऊर्जा सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक सार्क विद्युत् ग्रिड की स्थापना करना इसका लक्ष्य है।

    भारत और पाकिस्तान जैसे सदस्य देशों के बीच सीमावर्ती विवादों के कारण सार्क के समक्ष चुनौतियाँ हैं। भारत और पाकिस्तान के बीच परस्पर संदेह ने सार्क को इस क्षेत्र की एक दुर्जेय शक्ति के रूप में उभरने से रोक रखा है।
  - **दक्षिण एशिया की आज की चुनौतियों में** परस्पर शत्रुता, उग्रवाद, आतंकवाद, मानव और नशीले पदार्थों की तस्करी, बेरोजगारी, उपयुक्त शिक्षा का अभाव, वित्तीय समावेश का अभाव, राजनीतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय सम्पर्क का अभाव, युद्धों का इतिहास, परमाणु प्रसार आदि सम्मिलित हैं। इसके साथ ही इस क्षेत्र में बढ़ता हुआ चीनी प्रभाव भी क्षेत्रीय एकता को क्षति पहुंचाने में सक्षम है।

53. मध्य-पूर्व में संघर्ष (Conflicts in the Middle East)

इससे पहले कि हम मध्य-पूर्व के संघर्षों को समझने का प्रयास करें, आइए हम मध्य-पूर्व क्षेत्र की शब्दावली के संबंध में समझ प्राप्त करें।

VISION IAS

- **पारम्परिक मध्य पूर्व क्या है? (What is Traditional Middle East?):** यह 16 सदस्य देशों का एक समूह है (टर्की, साइप्रस, लेबनान, इजराइल, सीरिया, जॉर्डन, मिस्र, इराक, ईरान, कुवैत, सऊदी अरब, बहरीन, कतर, UAE, ओमान और यमन)। कई बार सूडान को भी मध्य-पूर्व में सम्मिलित किया जाता है।
- **आधुनिक मध्य पूर्व (Modern Middle East)** में पांच अरब राज्य मोरक्को, अल्जीरिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, मॉरिटानिया भी सम्मिलित हैं, जिससे इनकी संख्या 21 हो जाती है।
- **मध्य पूर्व में** ईरान, तुर्की और इजराइल **गैर-अरब राज्य** भी सम्मिलित हैं। ईरान में फारस की खाड़ी के चारों ओर अरब अल्पसंख्यक रहते हैं।
- **अरब वर्ल्ड** वस्तुतः 22 सदस्य राष्ट्रों के एक अरब लीग है। इसमें मध्य पूर्व के बाहर के भी कुछ अरब देश शामिल हैं, जैसे- जिबूती, सोमालिया, सूडान और कोमोरोस। मोरक्को एकमात्र अफ़्रीकी देश है जो पश्चिमी सहारा (SADR) में अपने विवादों के चलते AU (अफ्रीकन यूनियन) का भाग नहीं है। SADR अरब लीग का भाग नहीं है, क्योंकि अरब लीग मोरक्को का समर्थन करता है।
- **लेवान्त अर्थात् ईस्ट मेडिटरेनियन (Levant aka Eastern Mediterranean):** यह तुर्की और मिस्र के बीच के "पूर्वी भूमध्यसागरीय तट" को सम्मिलित करने वाला एक भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र है।

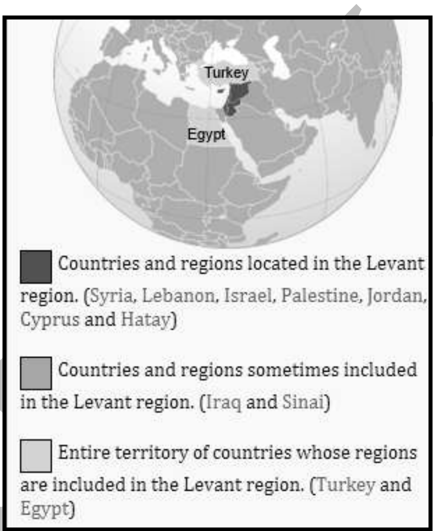

- **फर्टाइल क्रिसेंट (Fertile Crescent):** यह एक अर्ध-चन्द्राकर क्षेत्र है, जिसमें पश्चिमी एशिया की शुष्क और अर्ध-शुष्क जलवायु के विपरीत अपेक्षाकृत नम और उपजाऊ भूमि वाला क्षेत्र तथा नील नदी घाटी और पूर्वोत्तर अफ्रीका का नील डेल्टा सम्मिलित है। आधुनिक इराक, कुवैत, सीरिया, लेबनान, जॉर्डन, इजराइल, फिलिस्तीन, साईप्रस और मिस्र के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के अतिरिक्त तुर्की के दक्षिणी-पूर्वी किनारे और ईरान के पश्चिमी किनारे फर्टाइल क्रिसेंट की परिधि में आते हैं।

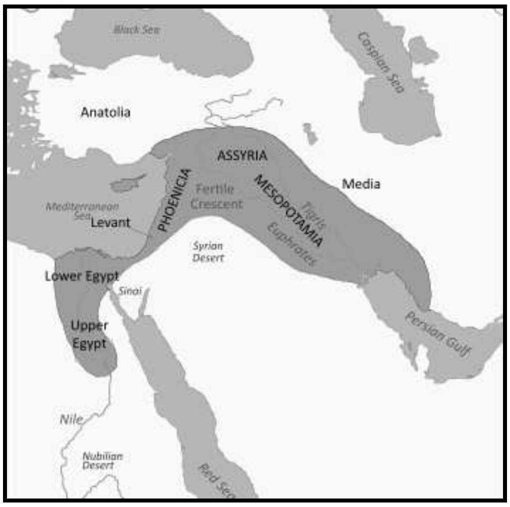

मध्य-पूर्व (मिडिल ईस्ट): 1945 से यह क्षेत्र युद्धों और गृह-युद्धों में उलझा हुआ है।

मध्य-पूर्व के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे:	
पश्चिमी हित	**अरब हित**
तेल;	इजराइल (संयुक्तराष्ट्र द्वारा 1948 में सृजित) का विनाश , 4 युद्ध 1948-49, 1956, 1967, 1973;
व्यापार सम्बन्धी सामरिक हित; और	अरबों की राजनीतिक और आर्थिक एकता; और
साम्यवाद के विरुद्ध रक्षा सम्बन्धी सामरिक हित (उदाहरण स्वेज नहर पर नियंत्रण)।	विदेशी हस्तक्षेप/नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति।

53.1. मध्य पूर्व में उपनिवेशों की समाप्ति

- ब्रिटेन ने इराक को 1932 में और जॉर्डन को 1946 में स्वाधीनता प्रदान कर दी थी, परन्तु यह दोनों ब्रिटेन के समर्थक बने रहे।
- फ़्रांस ने इस आशा के साथ सीरिया और लेबनान को 1945 में स्वाधीनता प्रदान कर दी कि वह मध्य-पूर्व में अपना कुछ प्रभाव बनाए रखेगा।

53.1.1. मध्य पूर्व में नव-उपनिवेशवाद के कारण

- **मध्य पूर्व की सामरिक स्थिति:** स्वेज नहर और फारस की खाड़ी के महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग होने के कारण इनका सामरिक महत्व है। इसके अतिरिक्त मध्य पूर्व पूंजीवादी गुट, साम्यवादी गुट और तीसरे विश्व के देशों, विशेषकर एशिया और दक्षिणी पूर्वी एशिया का सम्मिलन बिंदु भी है।
- **तेल:** ईरान, इराक, सऊदी अरब और कुवैत के तेल संसाधन विश्व की ऊर्जा सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं।

53.2. ईरान (1945 के पश्चात्)

53.2.1. भूमिका

- मध्य पूर्व का यह एकमात्र देश है जिसकी सीमाएं सोवियत संघ से मिलती थीं।
- यहाँ के 1906 के संविधान में अर्ध-निरंकुश शासन का प्रावधान था। पश्चिम में शिक्षित और US समर्थक, मोहम्मद रजा पहलवी 1941 से इरान का शाह था।

53.2.2. शीत युद्ध के समय

- 1907 में ब्रिटेन और रूस, उत्तरी ईरान को रूसी प्रभाव का क्षेत्र, दक्षिणी ईरान को ब्रिटिश प्रभाव का क्षेत्र और मध्य ईरान को दोनों प्रतिद्वन्दियों के लिए खुला क्षेत्र बनाने पर सहमत हो गए थे।
- 1945 में सोवियत संघ ने उत्तरी ईरान में साम्यवादी सरकार स्थापित करने का प्रयास किया जहाँ एक सशक्त साम्यवादी पार्टी सक्रिय थी।
- 1955 में ईरान के शाह ने **बगदाद संधि (1955)** पर हस्ताक्षर किए, जो ईरान, इराक, तुर्की, पाकिस्तान और UK के बीच एक सैन्य गठ्बन्धन था (अमेरिका ने इस संधि में प्रत्येक राष्ट्र के साथ अलग-अलग संधियों पर हस्ताक्षर किए परन्तु औपचारिक रूप से इसमें सम्मिलित नहीं हुआ, अपितु एक पर्यवेक्षक की भांति समिति की बैठकों में भाग लेता रहा)। शाह को उत्तरी ईरान में

VISION IAS

साम्यवाद को रोकने के लिए आर्थिक और सैन्य सहायता प्राप्त हो गयी। बदले में शाह ने अमेरिकी तेल कम्पनियों को ईरान के तेल भंडारों को विकसित करने के लिए रियायतें प्रदान कीं।

53.2.3. ईरान में नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति

- ईरान के राष्ट्रवादी विदेशी हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। धीरे-धीरे वे सशक्त होते गए।
- 1951 में ईरान की संसद (मजलिस) ने मोहम्मद मोसादेक को प्रधानमंत्री चुन लिया।
- 1951 में मजलिस (ईरानी संसद) ने प्रधानमंत्री मोसादेक के शासन में ब्रिटिश नियंत्रण वाली कम्पनी एंग्लो ईरानी तेल कम्पनी का राष्ट्रीयकरण कर दिया, क्योंकि उसका मानना था कि अंग्रेज बहुत अधिक लाभ अर्जित कर रहे थे।
- 1951-53, प्रधानमंत्री मोसादेक ने शाह के अर्ध-निरंकुश शासन में कमी लाकर पूर्ण लोकतंत्र लाने की मांग की।
- **ईरान के विरुद्ध प्रतिबन्ध:** राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, अधिकांश विश्व ने ईरान से तेल खरीदना बंद कर दिया।
- **तख्तापलट (1953):** 1953 में लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित प्रधानमंत्री मोसादेक को तख्तापलट की एक घटना में त्यागपत्र देने के लिए विवश किया गया। इस तख्तापलट में CIA ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसके पश्चात् एक सैन्य सरकार का गठन किया गया और शाह ने एक निरंकुश सम्राट की भांति शासन करना प्रारम्भ कर दिया।
- **1954 का ईरान-ब्रिटेन समझौता:** शाह ने ब्रिटेन के साथ एक समझौता किया, जिसके अनुसार:
    - एंग्लो-ईरानी कम्पनी में ब्रिटिश पेट्रोलियम के केवल 40% शेयर होंगे।
    - ईरान 50% लाभांश अपने पास रखेगा (जिसे बाद में शाह ने ईरान के आधुनिकीकरण और भूमि सुधारों के लिए उपयोग किया।)
- **1979 की इस्लामिक क्रांति:** शाह को अपदस्थ कर दिया गया क्योंकि:
    - उसने शिया मौलवियों से झगड़े कर लिए, जो शाह द्वारा पश्चिमी शैली में किये जा रहे ईरान के आधुनिकीकरण के विरुद्ध थे।
    - वामपंथी और कट्टरपंथी मुसलमान शाह के विरोधी थे, क्योंकि शाह अमेरिका की कठपुतली था और ये शाह की विशाल व्यक्तिगत सम्पत्ति के कारण भी नाराज थे।
    - शाह ईरान से बच कर निकल गया और ईरान को "अयातुल्लाह" (उच्च मौलवी) खामेनी के अधीन एक इस्लामिक गणराज्य घोषित कर दिया गया।

53.2.4. गुट निरपेक्ष आंदोलन (NAM) और ईरान

- 1979 में ईरान NAM का भाग बन गया क्योंकि मिस्र के नासिर की ही तरह खामेनी भी शीत युद्ध की अवधि में अपनी विदेश नीति को गुट निरपेक्ष बनाए रखना चाहते थे।

53.3. अरब एकता एक संक्षिप्त इतिहास

- अरब राष्ट्रों के मध्य सामान्य बातें:
    - बोलचाल की सामान्य भाषा अरबी है।
    - लेबनान की आधी जनसंख्या (ईसाई) के अतिरिक्त सभी मुस्लिम हैं।
    - अधिकांश अरब राष्ट्र इजराइल के विरुद्ध हैं, वे इजराइल को नष्ट करना चाहते हैं और फिलिस्तीन समर्थक हैं।
    - सभी यूरोपीय आर्थिक समुदाय जैसा कुछ आर्थिक या राजनीतिक संघ चाहते हैं।
    - **अरब राष्ट्रों के मध्य राजनीतिक या आर्थिक संघ बनाने के प्रयास:**
        - **अरब लीग:** सीरिया, इराक, जॉर्डन, मिस्र, लेबनान, यमन और सऊदी अरब द्वारा 1945 में इसका गठन किया गया था। 1980 तक इसके 20 सदस्य थे और आज इसके 22 सदस्य हैं। भारत का दर्जा एक पर्यवेक्षक का है, जबकि पाकिस्तान को ऐसा कोई दर्जा नहीं मिला है।

VISION IAS

- 1956 में स्वेज युद्ध के पश्चात् **कर्नल गमाल अब्दुल नासिर** (1970 में मृत्यु हुई) अरब एकता का एक ऐसा चेहरा बन कर उभरे जो पश्चिमी वर्चस्व के समक्ष खड़ा हो सकता था।
- **मिस्र-सीरिया संघ:** नासिर की अध्यक्षता में संयुक्त अरब गणराज्य (United Arab Republic, 1958-61) का गठन हुआ। इसका अंत नासिर के वर्चस्व के विरुद्ध सीरिया की शिकायतों से हुआ। बाद में ऐसे संघ बनाने के प्रयास विफल ही रहे।

53.3.1. अरब एकता का अभाव

- यहाँ का राष्ट्रवादी वर्ग जॉर्डन और सऊदी अरब के विरुद्ध था, क्योंकि ये देश पश्चिम समर्थक रूढ़िवादी शाही परिवारों द्वारा शासित थे। सीरिया और मिस्र के राष्ट्रवादियों के लिए यह विशेषरूप से सत्य था, क्योंकि वे समाजवादी थे।
- पुनः यहाँ के राष्ट्रवादी 1979 के कैम्प डेविड समझौते के विरुद्ध थे (मिस्र-इजराइल शांति संधि), जिसके अंतर्गत मिस्र ने इजराइल को मान्यता प्रदान की थी। शेष अरब राष्ट्र राष्ट्रपति सादात के विरुद्ध हो गये और परिणामस्वरूप मिस्र के दक्षिणपंथी राष्ट्रवादियों ने 1981 में उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया।

53.4. मध्य पूर्व में नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति

- एक एक करके ब्रिटिश समर्थक और फ़्रांसीसी समर्थक सरकारों को उन राष्ट्रवादी सरकारों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया जो गुट-निरपेक्ष बनना चाहते थे।
- **मिस्र:** 1952 में एक तख्ता पलट हुआ और 1954 में नासिर राष्ट्रपति बन गये। 1956 में मिस्र द्वारा ब्रिटेन, फ़्रांस और इजराइल के विरुद्ध स्वेज नहर पर नियंत्रण के लिए स्वेज युद्ध लड़ा गया।
- **आइजनहॉवर सिद्धांत:** स्वेज युद्ध की समाप्ति (1956) के पश्चात् अरब राष्ट्र सोवियत संघ के निकट आ गए। इसने अमेरिकी राष्ट्रपति आइजनहॉवर को आइजनहॉवर सिद्धांत का प्रस्ताव पेश करने के लिए प्रेरित किया। आइजनहॉवर सिद्धांत का लक्ष्य "अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद" को रोकने के लिए इस क्षेत्र के देशों को आर्थिक और सैन्य सहायता प्रदान करना था।
- **जॉर्डन:** 1951 में ब्रिटेन से स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात् किंग अब्दुल्ला सत्ता में था, परंतु ब्रिटिश समर्थक होने के कारण 1951 में उसकी हत्या कर दी गई। शाह हुसैन को अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटिश समर्थक दृष्टिकोण छोड़ना पड़ा और परिणामस्वरूप 1957 में उसने **जॉर्डन-ब्रिटेन समझौते** को समाप्त कर दिया जिसमें अंग्रेजों को जॉर्डन में सैनिक रखने के अनुमति दी गई थी। इसके परिणामस्वरूप सभी ब्रिटिश सेनाओं को जॉर्डन से वापस बुला लिया गया।
- **इराक:** यहाँ भी शाह फैजल और प्रधानमंत्री सईद ब्रिटिश समर्थक थे। उन्होंने **बगदाद संधि (1955)** पर हस्ताक्षर किए जो ईरान, इराक, तुर्की, पाकिस्तान और ब्रिटेन के मध्य एक सैन्य संगठन था (अमेरिका ने संधि में सम्मलित सभी राष्ट्रों के साथ अलग अलग समझौतों पर हस्ताक्षर किए, परन्तु औपचारिक रूप से इसमें सम्मिलित नहीं हुआ, अमेरिका ने एक पर्यवेक्षक के रूप में भाग लिया)।
- **इराकी क्रांति (1958):** स्वेज युद्ध (1956) में अंग्रेजों के अपमान से उत्साहित होकर राष्ट्रवादियों ने शाह फैजल तथा प्रधानमंत्री सईद की हत्या कर दी और इस प्रकार 1958 में इराक एक गणराज्य बन गया।
- **लेबनान में अमेरिकी हस्तक्षेप:** 1958 में मिस्र-सीरियाई संघ, इराकी क्रांति और लेबनान में नागरिक अशांति जैसी घटनाओं ने क्षेत्रीय स्थिरता के लिए संकट खड़ा कर दिया। इन घटनाओं के प्रत्युत्तर में अमेरिका ने लेबनान में हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए 1957 के आइजनहॉवर सिद्धांत को लागू कर दिया।
- **1959 में इराक ने बगदाद संधि को छोड़ दिया:** सिवाय इराक के बगदाद संधि के सभी सदस्यों ने अमेरिकी हस्तक्षेप का समर्थन किया, फलस्वरूप 1959 में इराक बगदाद संधि से बाहर हो गया।

VISION IAS

 ©Vision IAS

इसके कारण इस क्षेत्र में ब्रिटिश प्रभाव समाप्त हो गया। सद्दाम हुसैन 1979 में राष्ट्रपति बने (2003 तक रहे)। उसने 1968 की तख्तापलट कार्यवाही में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी जिसके परिणामस्वरूप बाथ पार्टी सत्ता में आई थी। वह अरब राष्ट्रवाद का प्रतिपादक था। उसने तेल, बैंकिंग और अन्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया था।

- **CENTO (1959-1979):** बगदाद संधि के अन्य हस्ताक्षरकर्ताओं ने सेन्ट्रल ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन (CENTO) का गठन किया। अमेरिका ने CENTO को समर्थन दिया ताकि इस क्षेत्र में उसका प्रभाव बना रहे।

54. इराक-ईरान युद्ध (1980-88)

- 1980 के दशक की प्रमुख घटनाओं में से एक ईरान-इराक युद्ध था। अतः इसे विस्तारपूर्वक समझना आवश्यक है।

1980 में इराक ने ईरान पर हमला क्यों किया?

- **इस्लामी कट्टरता का भय:** ईरान में 1979 की इस्लामी क्रांति का नेतृत्व एक उग्रवादी इस्लामी समूह द्वारा किया गया था (ईरान के कट्टरपंथी शियाओं का मानना था कि देश को इस्लामी नियमावली के अनुरूप चलाना चाहिए)। सद्दाम को ईरान से इराक में फैलते जा रहे इन उग्रवादी समूहों से खतरा था। इराक और ईरान दोनों में शिया बहुमत था, जबकि सद्दाम एक सुन्नी नेता था।
- **खुजेस्तान पर सीमा विवाद:** इराक वस्तुतः ईरान के एक सीमावर्ती प्रांत खुजेस्तान को हड़पना चाहता था जहां फारसियों के बजाय अरबों की आबादी थी। यह क्षेत्र आज भी ईरान का हिस्सा है।

- **शत-अल-अरब नामक अंतर्देशीय जलमार्ग पर विवाद:** 1975 में ईरान ने इराक को इस जलमार्ग के संयुक्त उपयोग और नियंत्रण के लिए विवश किया। यह जलमार्ग दोनों देशों के तेल निर्यात के लिए एक महत्वपूर्ण मार्ग था। यह जलमार्ग ईरान और इराक के बीच की सीमा का हिस्सा बन गया। इराक-ईरान युद्ध के समय से यह जलमार्ग इराक के नियंत्रण में है।
- सद्दाम को तत्काल जीत की आशा थी: उसे लगा कि 1979 की इस्लामी क्रांति के बाद ईरानी बल कमजोर हो गए होंगे। लेकिन वह गलत साबित हुआ और युद्ध 8 वर्ष तक चला।

यह युद्ध 8 वर्षों तक चला

- सद्दाम के पास रूसी टैंक, हेलीकॉप्टर आदि थे।
- ईरान को उत्तरी कोरिया, चीन और अमेरिका (गुप्त रूप से) से हथियार प्राप्त हो रहे थे।
- युद्ध के शिया-सुन्नी संघर्ष बनने के साथ ही सीमा विवाद पार्श्व में चला गया।

इराक-ईरान युद्ध के परिणाम

- **अरब एकता दुर्बल हुई:** इस युद्ध से अरब राष्ट्रों की एकता को बड़ा झटका लगा।

    - **इराक के समर्थक देश (Pro-Iraq):** अधिक रूढ़िवादी देश जैसे सउदी अरब, जॉर्डन और कुवैत इराक के समर्थक बन गए। इसके अतिरिक्त, सऊदी अरब की एक सामरिक रुचि भी थी। यह फारस की खाड़ी पर ईरान का कमजोर नियंत्रण देखना चाहता था।
    - **ईरान के समर्थक देश (Pro-Iran):** सीरिया, लीबिया, अल्जीरिया, दक्षिण यमन और फिलीस्तीनी मुक्ति संगठन (PLO) ईरान के समर्थक बन गए। वे इराक के विरुद्ध थे क्योंकि इराक आक्रमणकारी था और उनका मानना था कि अरब विश्व को इजराइल पर ध्यान देना चाहिए।
- **तेल संकट:** पूरे विश्व में तेल की आपूर्ति में कमी आई, क्योंकि ईरान पर इराकी आक्रमण के कारण तेल निर्यात अवरुद्ध हो गया था। तेल की कमी के कारण अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा फ्रांस के युद्धपोत इस क्षेत्र में आए जिससे तनाव और बढ़ गया। 1987 तक, सभी तेल टैंकरों को सी-माइंस का खतरा झेलना पड़ा।
- **संयुक्त राष्ट्र द्वारा युद्धविराम के लिए मध्यस्थता (1988):** संयुक्त राष्ट्र ऐसा करने में सक्षम था क्योंकि 1988 तक दोनों पक्ष थक चुके थे। लेकिन शांति शर्तों को स्वीकार करने से पहले ही इराक ने कुवैत पर आक्रमण कर दिया और यह विवाद आगे चलकर खाड़ी युद्ध (1990-91) में तब्दील हो गया।

55. खाड़ी युद्ध (1990-91)

इराक-ईरान युद्ध के दौरान अगस्त 1990 में इराक ने कुवैत पर आक्रमण कर उसपर तत्काल कब्ज़ा करने में सफल रहा।

इराक ने कुवैत पर हमला क्यों किया?

- **तेल:** इराक कुवैत के तेल भंडारों पर नियंत्रण करने के प्रयास में था क्योंकि लंबे समय तक चले इराक-ईरान युद्ध के कारण इसे नकदी के अभाव का सामना करना पड़ रहा था।
- **ऐतिहासिक दावे:** इराक का दावा था कि ऐतिहासिक रूप से कुवैत इराक का हिस्सा था। आलोचकों का तर्क था कि कुवैत का निर्माण 1899 में ब्रिटिश संरक्षित देश के रूप में किया गया था जबकि इराक का निर्माण प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश मैंडेट के रूप में ऑटोमन साम्राज्य से किया गया था।
- **सद्दाम को पश्चिमी विरोध की आशा नहीं थी:** अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देशों ने इराक-ईरान युद्ध के दौरान इराक को हथियार दिए थे। उत्तरी इराक में सद्दाम द्वारा क्रूर दमन के विरोध में जब कुर्दों ने स्वत्रंता की मांग की थी, तब भी उन्होंने आक्रामक तरीके से कार्यवाही नहीं की थी।

संयुक्त राष्ट्र का इराक के विरुद्ध कदम

- **कुर्दों की सुरक्षा में:** आक्रमण के समय सद्दाम ने उत्तरी इराक में कुर्दों का क्रूर दमन भी आरंभ कर दिया था। वे पृथकता की मांग कर रहे थे। संयुक्त राष्ट्र ने अपनी ही आबादी पर बमबारी करने से सद्दाम को रोकने के लिए उड़ान प्रतिबंधित क्षेत्र (नो फ्लाई जोन) लागू किया।
- **ऑपरेशन डेजर्ट स्टॉर्म**
    - इराक के विरुद्ध 'ऑपरेशन डेजर्ट स्टॉर्म' नामक एक सैन्य हस्तक्षेप में 30 से अधिक देशों ने हिस्सा लिया।
    - आरंभ में, संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में इराक के विरुद्ध व्यापार प्रतिबंध और तेल निर्यात प्रतिबंध लागू किए गए।

VISION IAS

- उसके पश्चात्, संयुक्त राष्ट्र ने सद्दाम को निर्धारित समय सीमा में सेना की वापसी की चेतावनी दी और कहा कि ऐसा न होने पर 'कुवैत की क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र कोई भी आवश्यक कदम उठाएगा'।

अमेरिका, फ्रांस और ब्रिटेन इराकी आक्रमण के विरोध में क्यों थे?

- क्योंकि, कुवैत पर कब्जा करने के कारण क्षेत्र के अधिकतम तेल भंडार पर सद्दाम का नियंत्रण हो गया था, जिससे मध्य पूर्व में शक्ति संतुलन को आघात पहुंच रहा था और इराक की क्षमता में बहुत वृद्धि हो गई थी।

सऊदी अरब, सीरिया और मिस्र इराकी आक्रमण के विरुद्ध क्यों थे?

- वे सद्दाम हुसैन द्वारा आक्रमण के संभावित अगले चरण को लेकर चिंतित थे, जिससे उनकी क्षेत्रीय अखंडता को भी खतरा उत्पन्न हो सकता था। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र बल के साथ-साथ अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस और इटली की भी सैन्य सहायता की थी।

बाहरी शक्तियों की आलोचना

- रूस, सीरिया और तुर्की में भी कुर्द अल्पसंख्यक थे, इसलिए जब कुर्दों का सद्दाम द्वारा क्रूरता से दमन किया गया, तो आरंभ में इन देशों द्वारा कुछ नहीं किया।
- पश्चिमी देशों ने इराक के विरुद्ध अपने तेल हितों के कारण कार्यवाही की थी। 1975 में जब इंडोनेशिया ने ईस्ट तिमोर पर आक्रमण किया था, तब उन्होंने कुछ भी नहीं किया क्योंकि उससे उनका कोई हित नहीं था।

56. अरब-इजरायल संघर्ष

56.1. 1948 में इजराइल का गठन क्यों हुआ?

- **यहूदियों की ऐतिहासिक शिकायतें**
  - **रोमन उत्पीड़न:** 71 ईस्वी में, रोम ने यहूदियों को फिलिस्तीन से बाहर खदेड़ दिया गया था और वे अमेरिका सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बस गए। धीरे-धीरे बहुत से यहूदी निर्वासन से वापस लौट आए, परंतु तब उनकी आबादी इतनी नहीं थी कि अरबों को उससे चिंता हो।
  - **वर्ल्ड जायनिस्ट ऑर्गनाइजेशन (World Zionist Organization, 1897):** इसका गठन स्विट्जरलैंड में किया गया था। जायनिस्ट का अर्थ उन लोगों से है, जो चाहते थे कि यहूदी अपनी मातृभूमि अर्थात् फिलिस्तीन वापस लौट जाएं और अपना एक यहूदी राज्य बनाएं।

समस्या यह थी कि अब फिलिस्तीन में मुख्य आबादी अरबों की थी, जिन्हें अब अपनी 'मातृभूमि' को खो देने का भय था।

- **नाजी उत्पीड़नः** इसके परिणामस्वरूप यूरोपीय यहूदी शरणार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई। ये शरणार्थी फिलिस्तीन में एक स्थायी आश्रय की खोज में थे। 1940 तक आते-आते यहूदी जनसँख्या फिलिस्तीन की आधी आबादी के बराबर हो गयी। नाजी उत्पीड़न और फिलिस्तीन की जनसांख्यिकी में परिवर्तन के साथ ही एक अलग राज्य के रूप में इजराइल की मांग की जाने लगी।

- **इजराइल का निर्माण अनिवार्य क्यों हो गया और मध्यमार्गीय समाधान विफल कैसे हुआ?**
  - **ब्रिटेनः** प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन को एक मैंडेट के रूप में फिलिस्तीन सौंपा गया। 1917 में ब्रिटेन ने कहा कि यह इजराइल के निर्माण का समर्थन करता है। इसने फिलिस्तीन में यहूदियों के आगमन को बढ़ाया जिसका अरब राज्यों ने विरोध किया क्योंकि अरब राज्य अरबों के अधीन एक स्वतंत्र संयुक्त फिलिस्तीन चाहते थे।
  - **जायनिस्ट आतंकवादः** यह द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आरंभ हुआ। अरब राष्ट्रों के दबाव में यहूदी आगमन का विरोध करने वाले अरब और अंग्रेज इसके निशाने पर थे। अमेरिका ने यहूदियों को फिलिस्तीन में प्रवेश देने के लिए ब्रिटेन पर दबाव डाला।
  - **मध्यमार्गीय प्रयास विफल रहे**
    - 1937 में अरबों ने ब्रिटेन के द्वि-राष्ट्र प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।
    - 1939 में ब्रिटेन ने इस समस्या के समाधान के तौर पर एक-राष्ट्र का प्रस्ताव रखा, जिसमें यह प्रावधान था कि अगले 10 वर्षों में फिलिस्तीन स्वतंत्र हो जाएगा और यहूदी अप्रवासन प्रति वर्ष 10,000 तक सीमित होगा। यहूदियों ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया।
    - 1946 में ब्रिटेन ने फिर से समाधान के तौर पर एक-राष्ट्र का प्रस्ताव रखा, जिसमें दो प्रांत होने थे; एक अरब और दूसरा यहूदी। ट्रूमैन ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया।
- **1948 में संयुक्त राष्ट्र ने इजराइल का निर्माण किया**
  - ब्रिटेन ने संयुक्त राष्ट्र से सहायता मांगी क्योंकि वह शांति बनाए रखने की उच्च लागत को वहन करने में असमर्थ था।
  - 1947 में संयुक्त राष्ट्र ने फिलिस्तीन को दो हिस्सों में विभाजित करने का फैसला किया। 1948 में अंग्रेज वहाँ से वापस चले गए।

56.2. 1948 अरब-इजरायल युद्ध

- इजराइल के निर्माण के तुरंत बाद इस पर सीरिया, इराक, जॉर्डन, मिस्र और लेबनान द्वारा संयुक्त रूप से इसपर आक्रमण किया गया।

परिणाम

- **मिस्रः** युद्ध से मिस्र को कोई लाभ नहीं हुआ। बल्कि, इजराइल ने मिस्र के ऐलात बंदरगाह पर कब्जा कर लिया। मिस्र ने फिलिस्तीनी शरणार्थियों की समस्या का भी सामना किया, क्योंकि युद्ध के बाद फिलिस्तीनियों के साथ इजराइल के क्रूर व्यवहार के कारण बड़ी संख्या में शरणार्थियों का प्रवासन हुआ था। 1952 में मिस्र की सेना ने राजा फारूक को अपदस्थ करने के लिए तख्तापलट किया क्योंकि उसने स्वेज नहर में ब्रिटिश सैनिकों की उपस्थिति का समर्थन किया था। कर्नल गमाल अब्दुल नासिर हुसैन 1954 में मिस्र के राष्ट्रपति बने और ब्रिटिश प्रभाव को कम करने के प्रयास में जुट गए।
- **इजराइल:** फिलिस्तीन का जितना हिस्सा इसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा दिया गया था, इसने उससे कहीं अधिक हिस्से (¾ भाग) पर कब्जा कर लिया।

VISION IAS

- **यरूशलमः** पश्चिम यरूशलम पर इजराइल और पूर्वी यरूशलम पर जॉर्डन द्वारा कब्जा कर लिया गया।
- **वेस्ट बैंक**: यह जॉर्डन नदी के पश्चिम में स्थित फिलिस्तीनी क्षेत्र है। इस पर जॉर्डन द्वारा कब्जा कर लिया गया था।
- **शरणार्थी प्रवाह:** सीरिया, इराक, जॉर्डन, मिस्र और लेबनान में।
- **फिलिस्तीनियों की दुर्दशा**: कई सारे फिलिस्तीनी वर्तमान में शरणार्थी शिविरों में रह रहे हैं। काफी लोग इजराइल और जॉर्डन के इलाके में बसे हुए हैं।

56.3. स्वेज युद्ध - 1956

- **स्वेज नहर का महत्वः** स्वेज नहर को 1869 में खोला गया था। व्यापार के लिए यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण समुद्री मार्ग था। इससे भारत जाने वाले ब्रिटिश व्यापारी जहाजों द्वारा तय की जाने वाली दूरी काफी कम हो गई थी। इसने भूमध्यसागर से हिंद महासागर को जोड़ दिया। स्वेज नहर के बिना एशिया पहुंचने के लिए जहाजों को अफ्रीका के पश्चिमी तट का पूरा चक्कर लगाकर केप ऑफ गुड होप होते हुए यात्रा करनी पड़ती थी।
- **स्वेज नहर पर आंग्ल-फ्रांसीसी नियंत्रणः** औद्योगीकरण का प्रयास करते हुए मिस्र 19वीं सदी तक दिवालिया हो गया था, जिसके कारण मिस्र के गवर्नर को स्वेज नहर का प्रबंधन करने वाली कंपनी में अपनी हिस्सेदारी ब्रिटिश सरकार को बेचनी पड़ी। इस प्रकार 1875 से नहर का नियंत्रण फ्रांस और ब्रिटेन के हाथों में था। परिणामस्वरूप, ब्रिटेन ने मिस्र को अपना उपनिवेश बना लिया। इससे इसे 1922 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई, लेकिन ब्रिटिश सैनिक नहर पर नियंत्रण बनाए रखने के लिए वहां बने रहे। ब्रिटेन मिस्र के आंतरिक मामलों में अब भी हस्तक्षेप करता रहा।
- स्वेज नहर पर विदेशी नियंत्रण का मिस्र की राष्ट्रवादी सेना ने विरोध किया।
- **स्वेज युद्ध - 1956:** कर्नल नासिर अपनी इस मांग पर अड़े हुए थे कि अंग्रेजों को स्वेज नहर छोड़ देना चाहिए। परिणामस्वरुप ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल ने 1956 में मिस्र पर आक्रमण कर दिया।

56.3.1. स्वेज युद्ध के कारण

- कर्नल नासिर की पश्चिम-विरोधी नीतियां और इजराइल के विरुद्ध उसका फिलिस्तीन-समर्थक रवैया।
- कर्नल नासिर ने इजराइल में हत्याओं और बम विस्फोटों के लिए फिदाईन हमलों को प्रोत्साहित किया।
- मिस्र ने ऐलात बंदरगाह को जाने वाले पश्चिमी जहाजों को रोकने के लिए अकाबा की खाड़ी की भी नाकेबंदी कर दी थी। 1948 के युद्ध के बाद से ऐलात बंदरगाह इजराइल के कब्जे में था।
- इसके अतिरिक्त, नासिर ने 1936 में हुई ब्रिटिश-मिस्र संधि के नवीनीकरण से इनकार कर दिया था, जिसके अंतर्गत स्वेज नहर क्षेत्र में ब्रिटेन को सैनिक रखने की अनुमति प्राप्त थी।
- नासिर ने फ्रांस के खिलाफ स्वतंत्रता की लड़ाई में अल्जीरियाई अरबों की भी सहायता की थी।
- उसने ब्रिटेन के नेतृत्व में हुए बगदाद संधि' का विरोध करने के लिए अरब राष्ट्रों को बढ़ावा दिया। बगदाद संधि का उद्देश्य उत्तरी अफ्रीका और मध्यपूर्व में ब्रिटिश प्रभाव को बनाए रखना था।
- **शीत युद्ध:**
    - कर्नल नासिर ने 1955 में चेकोस्लोवाकिया के साथ एक रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर करके अंग्रेजों से एक और दुश्मनी मोल ले ली थी। इस समझौते का उद्देश्य मिस्र की सेना को प्रशिक्षण और हथियारों की आपूर्ति एवं उपलब्धता सुनिश्चित करना था।
    - **आस्वान बांध (1956) के लिए अमेरिकी अनुदान रद्द:** अमेरिका ने रूस और मिस्र के बीच के सौहार्द को शीत युद्ध के रूप में देखा और उसे मध्यपूर्व के तेल के समृद्ध क्षेत्र में रूसी प्रवेश की आशंका होने लगी। इस साम्यवादी भय के परिणामस्वरूप, अमेरिका ने आस्वान बांध के निर्माण के लिए मिस्र को जिस अनुदान का आश्वासन दिया था, उसे उसने रद्द कर दिया।

VISION IAS

- **स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण:** आर्थिक तनाव की स्थिति और मिस्र के लिए आस्वान बांध के महत्व को देखते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अनुदान रद्द किए जाने के बाद कर्नल नासिर स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के लिए तत्पर हुए। कर्नल नासिर स्वेज नहर से होने वाली आय का उपयोग बांध के निर्माण में करना चाहते थे। स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के बदले में कर्नल नासिर ने शेयर धारकों को पर्याप्त मुआवजे का वचन दिया। उन्होंने इजराइल को छोड़कर सभी देशों को स्वेज नहर का उपयोग करने देने का भी वचन दिया।
    - इस प्रकार नासिर की नीतियों का उद्देश्य ब्रिटिश व्यापार व्यवस्था को चोट पहुँचाना नहीं था अपितु नव-उपनिवेशवाद से अपने देश को मुक्त करना और स्वेज नहर समेत अपने संसाधनों तथा बुनियादी सुविधाओं के प्रबंधन हेतु मिस्र के संप्रभु अधिकार का प्रयोग करना था।
    - लेकिन अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की मुख्य चिंता पड़ोसी राज्यों में अपने प्रभाव को बनाए रखना और नव-उपनिवेशवाद से निरंतर लाभ सुनिश्चित करना था। उन्हें अरब एकता की आशंका थी, जो इजराइल के निर्माण के बाद से ही आकार ले रहा था। पश्चिमी शक्तियों के बीच एक आशंका पनप रही थी कि मिस्र अपने नियंत्रण में 'संयुक्त अरब' के निर्माण का इच्छुक है, जो सोवियत संघ का समर्थक हो सकता है। इस तरह का संयुक्त अरब पश्चिमी देशों के आर्थिक हितों के विपरीत था, क्योंकि मध्य-पूर्व तथा उत्तरी अफ्रीका तेल के मुख्य स्रोत थे और अगर अरबों ने तेल का लाभ उठाने का निर्णय लिया तो पश्चिमी देशों पर अरब देशों का वर्चस्व बढ़ जाएगा।

56.3.2. 1956 के स्वेज युद्ध के परिणाम

- **ब्रिटिश प्रभुत्व का अंत:** द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन कमजोर हो गया था। उसे एक त्वरित विजय की आशा थी परन्तु मिस्र की सेना ने वीरता और दृढ़ता से युद्ध किया और अंगेजों की शक्ति को क्षीण कर दिया। स्वेज युद्ध मिस्र में ब्रिटिश प्रभाव के अंत को चिन्हित करता है और इसके बाद से विदेश नीति के क्षेत्र में ब्रिटेन पूर्णतः अमेरिका पर निर्भर हो गया।
- **इजराइल को लाभ:** इसने मिस्र के सिनाई प्रायद्वीप पर नियंत्रण कर लिया और शांति वार्ताओं में इसे अपने लाभ के लिए उपयोग किया। इजराइल पर होने वाले फिदाईन हमले अस्थाई रूप से समाप्त हो गए।

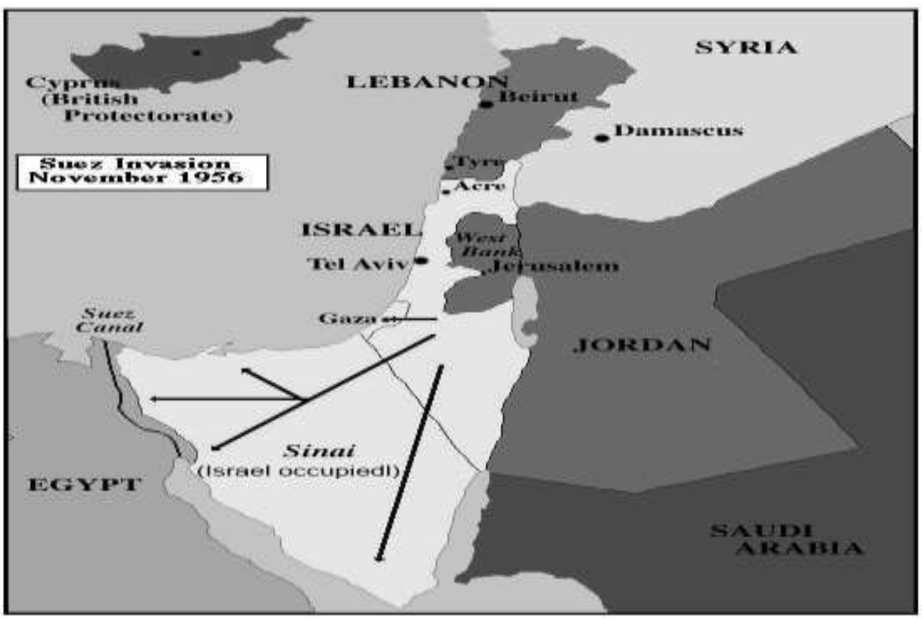

- **युद्धविराम:** अमेरिका और सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ मिल कर युद्धविराम के लिए मध्यस्थता की। इजराइल ने सिनाई प्रायद्वीप मिस्र को लौटा दिया।
- **तेल आपूर्ति प्रभावित:** ब्रिटिश और फ्रांस अपने युद्ध उद्देश्यों में विफल रहे। मिस्र ने 1957 तक स्वेज नहर को बंद कर दिया और अरब राज्यों ने यूरोपीय देशों को तेल की आपूर्ति कम कर दी।
- **रूसी प्रभुत्व:** इस क्षेत्र मे रूसी प्रभाव में वृद्धि हुई और अमेरिकी सहायता के स्थान पर रूसी सहायता मिलने लगी। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन ने एक सहयोगी के रूप में इराक को खो दिया।

 ©Vision IAS

- **इराकी क्रांति (1958):** ब्रिटेन और फ्रांस की पराजय से उत्साहित होकर, इराक के राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश समर्थक प्रधानमंत्री सईद की हत्या कर दी।
- **अल्जीरियाई स्वाधीनता संघर्ष:** स्वेज युद्ध में फ्रांस की पराजय ने स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे राष्ट्रवादियों के मनोबल में वृद्धि की और उन्होंने 1962 मे स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। नासिर ने इस संघर्ष में अल्जीरियाईयों की सहायता की थी।
- **नासिर के नेतृत्व में अरब एकता:** इस प्रकार, वर्ष 1956 में कर्नल गमाल अब्दुल नासिर के रूप में अरब एकता के एक नए चेहरे का उदय हुआ। अरब संसार के एक ऐसे ऊंचे कद के नेता के रूप में वह उभर कर आया, जो पश्चिमी प्रभुत्व के समक्ष खड़ा हो सकता था। **भारत** ने नव-उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष में मिस्र का समर्थन किया और पंडित जवाहरलाल नेहरु के कर्नल नासिर के साथ बहुत मधुर संबंध थे। इन दोनों ने घाना के एनक्रुमाह, यूगोस्लाविया के टीटो और इंडोनेशिया के सुकार्णो के साथ मिलकर 1961 मे **गुट निरपेक्ष आंदोलन (NAM)** की स्थापना की।

56.4. छह दिवसीय युद्ध (1967)

- सीरिया, इराक, जॉर्डन, मिस्र, लेबनान और अल्जीरिया (1962 से स्वतंत्र) ने सेनाओं को लामबन्दी का आदेश दिया परन्तु इसकी गति बहुत ही धीमी थी, जिससे इजराइल को पूर्व चेतावनी प्राप्त हो गई और उसने पहले ही आक्रमण कर के मिस्र के वायुयानों को नष्ट कर दिया।

56.4.1. परिणाम

VISION IAS

- **इजरायल:** यह युद्ध फिलिस्तीनी समस्या का सैन्य समाधान प्राप्त करने में विफल रहा। इजराइल ने निम्नलिखित क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया:
    - मिस्र का सिनाई प्रायद्वीप। सीरिया के गोलन हाईट्स।
    - **फिलिस्तीन में** उसने जॉर्डन से संपूर्ण यरूशलम और वेस्ट बैंक प्राप्त कर लिया। वह गाजा पट्टी प्राप्त करने में भी सफल रहा जो पहले फिलिस्तीन के पास थी।
    - इजराइल ने इन अधिकृत क्षेत्रों को वापस करने का संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रस्ताव ठुकरा दिया। उसने कहा कि वह यह सुनिश्चित करना चाहता है कि सिनाई और गोलन हाईट्स एक प्रतिरोधक का कार्य करेंगे।
- **रूस द्वारा इस क्षेत्र का सैन्यीकरण:** रूस ने मिस्र और सीरिया को आधुनिक शस्त्र देना प्रारम्भ कर दिया (वर्तमान में सीरिया अपने विद्रोहियों के विरुद्ध इसीलिए शक्तिशाली है)।
- **स्वेज की नाकेबंदी**: मिस्र ने स्वेज नहर की नाकेबंदी प्रारम्भ कर दी (जो 1975 तक चली)।

56.5. योम किप्पर युद्ध या अक्टूबर युद्ध (1973)

- रूस से प्राप्त आयुधों से प्रोत्सहित हो कर मिस्र और सीरिया ने इजराइल पर आक्रमण कर दिया। योम किप्पुर एक यहूदी त्यौहार है। मिस्र और सीरिया इसका लाभ उठाते हुए इजराइल को असावधानी की स्थिति में हराना चाहते थे।

56.5.1. युद्ध के कारण

- इजराइल से सिनाई और गोलन हाईट्स को पुन: प्राप्त करना।
- मिस्र इजराइल को फिलिस्तीन पर वार्ता के लिए विवश करना चाहता था। **मिस्र का राष्ट्रपति अनवर सादात** (1970 में नासिर की मृत्यु के बाद सत्ता में) इस बात के लिए आश्वस्त था कि इजराइल-फिलिस्तीन विवाद का कोई सैन्य समाधान नहीं हो सकता। इसलिए उसने शांति वार्ता की इच्छा प्रकट की। परन्तु अमेरिका ने शान्ति वार्ता की मध्यस्थता करने से मना कर दिया। अतः युद्ध के द्वारा मिस्र अमेरिका पर मध्यस्थता के लिए दबाव बनाना चाहता था।
- फिलिस्तीन मुक्ति संगठन (Palestinian Liberation Organization: PLO) भी कार्यवाही करने के लिए अरब राज्यों पर दबाव बना रहा था। PLO के एक चरमपंथी गुट ने 1970 मे जॉर्डन के उपर एक विमान को मार गिराया और म्यूनिख ओलंपिक (1972) में इजराइली खिलाडियों की हत्या कर दी।

56.5.2. परिणाम

- **तेल संकट (1973):** योम किप्पर युद्ध के दौरान पेट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन (OPEC) ने तेल की आपूर्ति कम कर दी। इसके परिणामस्वरूप तेल आयातक देशों में मुद्रास्फीति बढ़ गई और तेल की कमी हो गई। OPEC वस्तुतः इजराइल का समर्थन करने वाले अमेरिका और यूरोपीय देशों पर इजराइल को समर्पण करने के लिए कहने हेतु दबाव बनाना चाह रहा था। हालांकि कुछ लोगों का तर्क है कि OPEC वास्तव में अपने दुर्लभ संसाधनों के सरंक्षण के लिए चिंतित था।
- अमेरिका और सोवियत संघ ने संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से हस्तक्षेप किया और युद्ध विराम हो गया।
- **स्वेज नहर:** इजराइल ने स्वेज नहर से अपनी सेनाएं वापस बुला लीं और मिस्र 1975 में स्वेज नहर को खोलने के लिए सहमत हो गया (जो 1967 से बंद थी)। परन्तु इजराइली पोतों को अभी भी इसके उपयोग की अनुमति नहीं थी।
- इजराइल ने 1967 के युद्ध मे अधिग्रहीत किए गए सभी क्षेत्रों को अपने पास ही रखा (सिनाई, वेस्ट बैंक, गाजा और संपूर्ण यरुशलम)।
- **सादात के लिए सफलता:** मिस्र प्रतिवर्ष अक्टूबर 6 को जश्न मनाता है, क्योंकि इस दिन अक्टूबर युद्ध के पश्चात् 1979 मे कैम्प डेविड समझौतों के द्वारा सिनाई प्रायद्वीप से इजराइली सेनाओं की

VISION IAS

वापसी हुई थी। 1979 के पश्चात् सिनाई का विसैन्यीकरण किया जाना था और इसकी निगरानी अमेरिकी उपग्रहों द्वारा की जानी थी।

56.6. कैम्प डेविड समझौता या मिस्र-इजराइल शांति संधि (1979)

- 1979 में अमेरिकी राष्ट्रपति कार्टर की मध्यस्थता से मिस्र और इजरायल ने एक ऐतिहासिक शांति समझौता किया, जिसे कैम्प डेविड समझौता कहा जाता है।

कैम्प डेविड समझौते के महत्वपूर्ण बिंदु

- सिनाई से इजराइली सेना वापस बुला ली गई और इसका विसैन्यीकरण किया जाना था तथा इसकी निगरानी अमेरिकी उपग्रहों द्वारा की जानी थी। मिस्र को कुछ सीमित सैन्य बलों को यहाँ रखने की अनुमति थी। वर्तमान में सिनाई मे संयुक्त राष्ट्र का एक सैन्य बल मौजूद है।
- मिस्र ने सिनाई प्रायद्वीप में नये खोजे गए तेल क्षेत्रों से इजराइल को तेल की आपूर्ति का वादा किया।
- इजराइल और मिस्र के बीच युद्ध की स्थिति समाप्त हो गई (जो 1948 से चल रही थी)। मिस्र ने इजराइल पर फिर से हमला न करने का वचन दिया।
- मिस्र ने इजराइली पोतों को स्वेज नहर के उपयोग की अनुमति दे दी। परन्तु इजराइल और मिस्र की यह सौजन्यता सैद्धांतिक रूप से अरबों को स्वीकार्य नहीं थी और एक सार्वजनिक समारोह में राष्ट्रपति सादात की हत्या कर दी गई।

वर्तमान स्थिति

- **अवैध बस्तियां:** इजराइल ने वैध रूप से फिलिस्तीनी भूमि (वेस्ट बैंक, पूर्वी यरुशलम व गाजा) में इजराइली बस्तियों के निर्माण को बढ़ावा दिया है। वेस्ट बैंक और गाजा में अवस्थित शरणार्थी शिविरों में फिलिस्तीन ने विरोध करना जारी रखा है।
- 1980 के दशक में इजराइल ने यह घोषणा की कि वह कभी भी सीरिया को गोलन हाईट्स वापस नहीं करेगा और वेस्ट बैंक को फिलिस्तीन का भाग नहीं बनने देगा।
- **1967 से पूर्व की वह कौन सी स्थिति है जिसे फिलिस्तीनी पाना चाहते हैं और इजराइल द्वारा इस मांग का लगातार विरोध किया जाता है?**
  - फिलिस्तीन = वेस्ट बैंक, गाजा पट्टी, पूर्वी यरूशलम (Palestine = West Bank, Gaza Strip, East Jerusalem)।
  - इजराइल = पश्चिमी यरूशलम एवं गोलन हाईट्स के अतिरिक्त शेष इजराइल (गोलन हाईट्स पहले सीरिया के पास था)।
- **इजराइल और PLO के बीच ओस्लो समझौता (1993):** इस समझौते में निम्नलिखित बिंदु शामिल थे:
  - PLO द्वारा इजराइल को मान्यता दी गयी। पुनः PLO ने इजराइल के अस्तित्व के अधिकार (right to exist) को भी मान्यता दे दी।
  - PLO ने आतंकवाद को त्यागने का वचन दिया।
  - **फिलिस्तीनी प्राधिकरण (Palestinian Authority)** की स्थापना की गई।
  - इजराइल ने फिलिस्तीन को (फिलिस्तीनी प्राधिकरण के अधीन) वेस्ट बैंक और गाजा पट्टी के कुछ भागों (संपूर्ण गाजा पर नहीं) पर सीमित स्वशासन का अधिकार दिया। हालांकि PLO के कुछ चरम पंथियों ने यहूदी बस्तियों का विरोध किया क्योंकि वे पूर्ण स्वाधीनता चाहते थे।
- **1995 का द्वितीय ओस्लो समझौता:**
  - 1999 तक एक स्थायी समाधान प्राप्त किया जाना था।
  - इजराइल को वेस्ट बैंक और गाजा से वापस होना था। 1996 में हमास के आतंकवादी कृत्यों के कारण यह नहीं किया जा सका।
  - सभी वयस्क अरबों द्वारा सीधे चुनी जाने वाली **एक फिलिस्तीनी विधान परिषद (Palestinian Legislative Council)** (1993 के दौरान इसपर सहमति हुई थी) द्वारा

VISION IAS

खाली किए गए क्षेत्रों (गाजा और वेस्ट बैंक के कुछ भाग) में शासन किया जाना था। चुनाव हुए और यासर अराफात फिलिस्तीन के राष्ट्रपति बने।

- **परिणाम:**
    - इजराइली चरम पंथियों ने इसका विरोध किया और इजराइली प्रधानमंत्री की 1995 में हत्या कर दी गयी।
    - हमास (एक सुन्नी संगठन) ने आतंकवादी अभियान प्रारम्भ कर दिया।
    - हिज़बुल्लाह (दक्षिणी लेबनान का एक शिया संगठन) ने उत्तरी इजराइल पर गोलीबारी की।
    - एक दक्षिण पंथी नेता नेतान्यहू 1996 में सत्ता में आए।

- **2005 में गाजा पट्टी के अपने अधिग्रहित क्षेत्र से इजरायल ने एकपक्षीय वापसी कर ली** और फिलिस्तीनी प्राधिकरण को नियंत्रण सौंप दिया गया।
    - इसका **उद्देश्य** गाजा पट्टी के फिलिस्तीनियों को यहूदियों से अलग करना था।
    - इसका **परिणाम** यह हुआ कि हमास ने इस क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थापित कर फिलिस्तीनी प्राधिकरण का स्थान ले लिया। बाद में इसने गाजा का उपयोग इजराइल पर रॉकेट आक्रमणों के लिए किया।
- **2007 में** इजराइल द्वारा **गाजा की नाकेबंदी** कर दी गई ताकि गाजा के अंदर और बाहर वस्तुओं की आपूर्ति ना हो सके। तुर्की ने गाजा की ओर सामान ले जा रहे एक बेड़े पर इजराइल द्वारा की गई गोलीबारी की निंदा की। नाकेबंदी के परिणामस्वरूप मिस्र के साथ अवैध व्यापार बढ़ा। इन वस्तुओं को भारी कीमतों पर बेचा जा रहा था जिससे गरीब फिलिस्तीनी प्रभावित हो रहे थे।
- **2012 में फिलिस्तीन को एक “गैर-सदस्य पर्यवेक्षक इकाई” (Non-member Observer Entity) से “गैर-सदस्य पर्यवेक्षक राज्य” (Non-member Observer State) का दर्जा:** भारत ने फिलिस्तीन के दर्जे को गैर-सदस्य पर्यवेक्षक इकाई से बढाकर गैर-सदस्य पर्यवेक्षक राज्य के रूप में करने के प्रस्ताव का संयुक्त राष्ट्र महासभा में समर्थन किया था। नए दर्जे के साथ अब फिलिस्तीन की पहुंच संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न एजेंसियों तक और सम्भवतः ICC (अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय) तक भी होगी। यह अब UNGA की बैठकों में भाग लेने में सक्षम होगा। इस प्रकार यह फिलिस्तीन के प्रासंगिक क्षेत्र की एक सम्प्रभु राज्य के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता है। संक्षेप में यह फिलिस्तीन राष्ट्र की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है, जिसे 132 देशों ने पहले ही मान्यता प्रदान कर दी है।
- **वर्तमान स्थिति:**
    - गाजा - हमास के अधीन; वेस्ट बैंक - आंशिक रूप से यह फिलिस्तीनी प्राधिकरण के अधीन है और इसके शेष भाग इजराइल के नियंत्रणाधीन हैं; और पूर्वी यरूशलम - इसपर फिलिस्तीन का दावा है, परन्तु यह इजराइल के नियंत्रण में है।
    - फिलिस्तीनी एक होमलैंड की मांग करते हैं, जिसकी राजधानी पूर्वी यरूशलम हो।
    - इजराइल वेस्ट बैंक और पूर्वी यरूशलम में अपनी बस्तियों का निर्माण करता जा रहा है।
    - ईरान गाजा के हमास का समर्थन करता है।
    - सीरिया को गोलन हाईट्स वापस चाहिए।
    - भारत ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में फिलिस्तीन के लिए संयुक्त राष्ट्र की पूर्ण और समान सदस्यता के लिए समर्थन दिया है। भारत सदा ही संयुक्त राष्ट्र में फिलिस्तीन से सम्बंधित मुद्दों के पक्ष में रहा है।

57. नव-उपनिवेशवाद

- यह राजनीतिक रूप से स्वतंत्र परन्तु एक अल्प औद्योगीकृत देश के शोषण या उस पर वर्चस्व; विशेषकर आर्थिक शोषण/वर्चस्व की एक प्रक्रिया है।

 ©Vision IAS

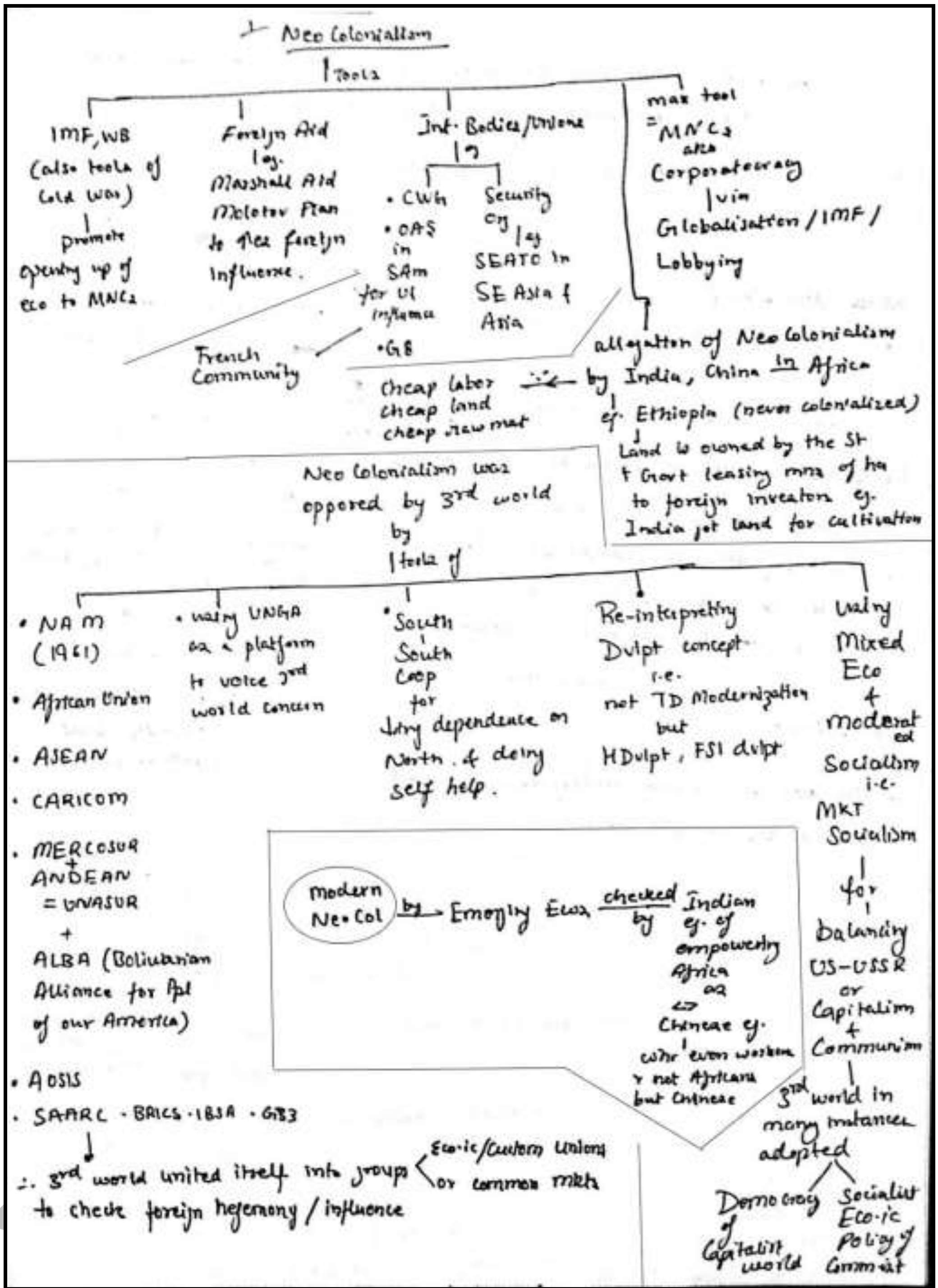

57.1. भारत में नव-उपनिवेशवाद क्यों नहीं?

- 19वीं शताब्दी के उपरांत भारत में पूंजीवाद का उदय हुआ। अंग्रेजों ने भूमि को व्यापार योग्य वस्तु बना कर और भूमिधारको से उच्च लगान वसूल कर महाजनों (धन उधार देने वाले) को प्रोत्साहित किया था, जिससे भूमिधारक महाजनों से उधार लेने के लिए विवश हो जाते थे। इसके अतिरिक्त व्यापार में लगे व्यापारियों को भी ब्रिटिश राज्य में बहुत लाभ प्राप्त हुआ।
- भारत में पूंजीपति वर्ग का पूँजी आधार भारतीय अर्थव्यवस्था से ही संबद्ध रहा है न कि दूसरे देश में स्थापित उपनिवेशों के माध्यम से उन्होंने अपना पूँजी आधार विकसित किया। FICCI की स्थापना 1930 के दशक में की गई थी और इस प्रकार पूंजीपति वर्ग ने अपने आप को सरकारी नीतियों को प्रभावित करने के लिए एक दबाव समूह के रूप में संगठित कर लिया था।

- द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पूंजीपतियों की आर्थिक विकास समिति (Economic Development Committee) ने 1944 की **बॉम्बे योजना** तैयार की थी। इसने एक मध्यम मार्ग का सुझाव दिया क्योंकि इस योजना में पूंजीवाद की आवश्यक विशेषताओं से समझौता किए बिना समाजवादी विचारों के समावेश पर भी विचार किया गया था। इसमें आंशिक राष्ट्रीयकरण और भूमि सुधारों के साथ कृषि सहकारिता तक का भी समर्थन किया गया था।
- भारत में पूंजीपति वर्ग निश्चित रूप से कट्टर समाजवाद का विरोधी था, परन्तु यह साम्राज्यवाद का समर्थक भी नहीं था। इसने काफी हद तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ तालमेल बिठाया और 1920 में असहयोग आन्दोलन का विरोध करने के पश्चात् पूंजीपतियों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-34) और उसके पश्चात् के राष्ट्रीय आन्दोलनों का समर्थन किया। पूंजीपति, यद्यपि बहुत ही रूढ़िवादी ढंग से ही सही पर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग बन गए।
- गाँधीजी की S-T-S (संघर्ष – युद्धविराम – संघर्ष/Struggle - Truce - Struggle) रणनीति का पूंजीपतियों ने समर्थन किया था, क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष का उपयोग अंग्रेजों से रियायतें लेने के लिए किया था और उसी समय युद्धविराम ने कानून व्यवस्था में स्थिरता प्रदान की, जो व्यवसाय के लिए अच्छा था। पुनः कांग्रेस के आन्दोलनों में अहिंसा पर ध्यान केन्द्रित किए जाने से घरेलू पूँजी के विकास के लिए सकारात्मक स्थितियां उत्पन्न हुईं।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक पूंजीपतियों की वित्तीय क्षेत्र पर सशक्त पकड़ बन चुकी थी।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारी उद्योगों और आधारभूत ढाँचे पर ध्यान केन्द्रित किए जाने से भारत सरकार की कम्पनियों के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्राप्त हुआ।
- भारत की एक्सपोर्ट बास्केट अफ्रीकी देशों जैसे अन्य उपनिवेशों की तुलना में अधिक विविधता पूर्ण थी, जो निर्यात की एक वस्तु पर निर्भरता के विरुद्ध प्रतिरक्षा प्रदान करती थी।
- खनिज संसाधनों और अन्य कच्चे माल के मामले में भारत समृद्ध था, जो उद्योग के लिए पर्याप्त आपूर्ति कर सकने में सक्षम हुआ।
- अंग्रेजों ने आधारभूत ढाँचे का विकास किया था और पूरे भारत में रेल-सड़क का जाल बिछा दिया था। उच्च शिक्षा पर बल दिए जाने से उच्च कौशल वाली नौकरियों के लिए कर्मियों की आपूर्ति सुनिश्चित हुई।
- खाद्य सुरक्षा एक ऐसा पक्ष था जो हमें बाहरी दुनिया पर निर्भर कर सकता था, परन्तु 1960 के दशक में अमेरिकी सहायता से हरित क्रांति ने भारत की इस बाधा को भी दूर कर दिया था।
- अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भारत ने राष्ट्रीयकरण का मार्ग अपनाया और एक अपेक्षाकृत बंद प्रारूप ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भारत में जड़ें जमाने से रोका। आयात प्रतिस्थापन की नीति ने घरेलू उद्योगों को सशक्त किया।
- गुट निरपेक्ष आन्दोलन ने भारत को शीत युद्ध से अलग रहने में सहायता की और आंतरिक मामलों में विदेशी हस्तक्षेप को रोका। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सशक्त संगठनात्मक ढांचे और अहिंसक संघर्ष के समृद्ध इतिहास ने स्थिर लोकतांत्रिक सरकारें प्रदान की हैं।
- एक सशक्त सेना ने भी किसी सैन्य संकट के विरुद्ध निवारक का कार्य किया है। इस प्रकार अपने सशक्त सारभूत तत्वों के कारण भारत स्वयं को काफी हद तक नव-उपनिवेशवाद से बचाए रखने में सक्षम रहा है।

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

विश्व इतिहास : भाग 3

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद ____ 3

1. भूमिका ____ 3

2. दक्षिण अफ्रीका में नीदरलैंड्स का स्थान ब्रिटेन ने ले लिया ____ 3

3. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध डच लोगों की शिकायतें ____ 3

4. प्रथम एवं द्वितीय बोअर युद्ध ____ 4

4.1. प्रथम बोअर युद्ध (1877-84) ____ 4

4.2. द्वितीय बोअर युद्ध (1899-1902) ____ 4

5. दक्षिण अफ़्रीकी संघ का निर्माण (Creation of Union of South Africa) ____ 4

6. 1948 से पूर्व अश्वेतों की स्थिति ____ 4

7. दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी ____ 5

7.1. गाँधी जी का संघर्ष ____ 6

8. रंगभेद (Apartheid) कानूनों की शुरुआत (1948-54) ____ 8

8.1. प्रधानमंत्री मलान ने रंगभेद (1948-54) क्यों प्रारम्भ किया? ____ 8

8.2. रंगभेद की प्रमुख विशेषताएं ____ 9

9. रंगभेद नीति-विरोधी संघर्ष ____ 10

9.1. सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण ____ 13

9.2. 1980 के बाद से रंगभेद की क्रमिक समाप्ति ____ 13

9.3. बोथा द्वारा उठाए गए कदमों पर प्रतिक्रिया ____ 14

9.4. अश्वेत बहुमत के शासन की दिशा में संक्रमण ____ 14

9.5. रंगभेद विरोधी संघर्ष में भारत का योगदान ____ 15

10. खेल में रंगभेद ____ 16

VISION IAS

दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद

1. भूमिका

- 15वीं शताब्दी के अंत में खोजी यात्राओं से एशिया, अमेरिका और तटीय अफ्रीका की नई भूमियों की खोज हुई और यह शीघ्र ही औपनिवेशिक वर्चस्व के अधीन हो गई। प्रारम्भ में अफ्रीका में उपनिवेशवाद केवल तटीय अफ्रीका तक ही सीमित था। अफ्रीका के आन्तरिक भूगोल, वहां के निवासी, उनकी भाषा और संस्कृति का ज्ञान न होने के कारण अफ्रीका के भीतरी भाग को **डार्क कंटीनेंट (अंध महाद्वीप)** कहा जाता था।
- अफ्रीका महाद्वीप के सुदूर दक्षिणी छोर पर *केप ऑफ़ गुड होप* की खोज के परिणामस्वरूप दक्षिण अफ्रीका डच (हॉलैंड) के प्रभाव में आ गया। डच व्यापारिक कम्पनी ने 1652 में केप कॉलोनी की खोज की थी। दक्षिणी अफ्रीका में जो डच बस गए उन्हें **बोअर्स** के नाम से जाना जाता था।

2. दक्षिण अफ्रीका में नीदरलैंड्स का स्थान ब्रिटेन ने ले लिया

- 1750 के दशक की औद्योगिक क्रांति के पश्चात् ब्रिटेन एक प्रमुख वाणिज्यिक शक्ति के रूप में उभरा और शीघ्र ही उसने अन्य यूरोपीय शक्तियों, जैसे- स्पेन, पुर्तगाल, नीदरलैंड्स और फ़्रांस के अधिकांश उपनिवेशों पर अधिकार कर लिया।
- अंग्रेजों ने हॉलैंड/नीदरलैंड्स/डच की केप कॉलोनी पर 1795 में अधिकार कर लिया और धीरे-धीरे उन्होंने केप कॉलोनी के डच सेटलर्स (बोअर्स) के राजनीतिक, आर्थिक और आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया। इससे डच सेटलर अप्रसन्न हो गए।

3. ब्रिटिश शासन के विरुद्ध डच लोगों की शिकायतें

- ब्रिटिश शासन में डच असहज थे। वे ब्रिटिश शासन थोपे जाने के विरुद्ध थे। अंग्रेजी भाषा को विद्यालयों में अनिवार्य बना दिया गया था जो डच लोगों की मातृ भाषा नहीं थी। प्रशासन में नौकरी प्राप्त करने के लिए या व्यापारिक लेन-देन के लिए उन्हें इसके अध्ययन के लिए विवश किया गया। 1833 में केप कॉलोनी से दास प्रथा समाप्त किये जाने से भी डच सेटलर बहुत व्यथित थे क्योंकि वे अपने खेतों पर काम कराने के लिए सस्ते श्रमिक के रूप में मूल अश्वेत अफ्रीकियों पर निर्भर थे। परिणामस्वरूप डच सेटलर्स ने केप कॉलोनी से पलायन किया और 1835 तक वे ट्रांसवाल, ऑरेंज फ्री स्टेट और नटाल में बस गये। परन्तु अंग्रेज अपने औपनिवेशिक साम्राज्य का विस्तार करना चाहते थे और उन्होंने 1843 में नटाल पर भी अधिकार कर लिया।

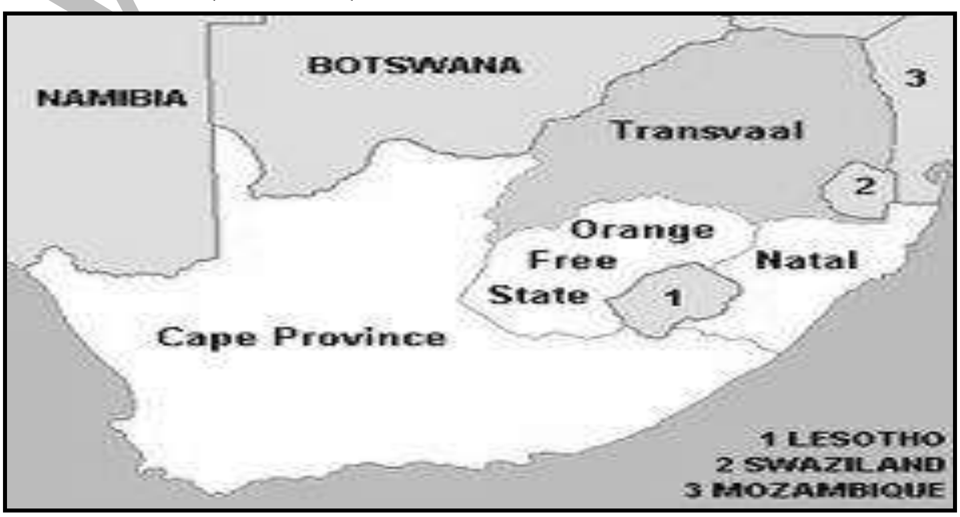

VISION IAS

4. प्रथम एवं द्वितीय बोअर युद्ध

4.1. प्रथम बोअर युद्ध (1877-84)

- जब ब्रिटेन ने 1877 में ट्रांसवाल को अपना उपनिवेश घोषित किया तो डच सेटलर्स ने इस बात का हिंसक विरोध किया। आश्चर्यजनक रूप से ब्रिटिश इस प्रकार के विद्रोह के लिए तैयार नहीं थे। विद्रोह के बाद 1884 की शांति संधि के अंतर्गत उन्हें ट्रांसवाल को एक फ्री स्टेट के रूप में घोषित करने के लिए विवश होना पड़ा।
- प्रथम बोअर युद्ध के पश्चात् यहां दो बोअर गणराज्य - ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट - अस्तित्व में थे, जबकि केप कॉलोनी और नटाल ब्रिटेन के आधीन था।

4.2. द्वितीय बोअर युद्ध (1899-1902)

- ब्रिटेन ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट को अपने नियंत्रण में लाने के लिए कटिबद्ध था। 1899 तक डचों को डर सता रहा था कि ब्रिटिश उन पर आक्रमण करेंगे। इसलिए ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट ने केप कॉलोनी और नटाल के विरुद्ध अचानक आक्रमण कर दिया। युद्ध तीन वर्षों चला और इसमें गुरिल्ला युद्ध पद्धति का भी प्रयोग किया गया। परन्तु ब्रिटिश सेना के शस्त्रों और शक्ति के समक्ष बोअर कहीं नहीं ठहरे और 1902 तक ब्रिटेन ने विजय प्राप्त कर ली।
- बोअर्स ने अपने ऊपर ब्रिटेन की सम्प्रभुता स्वीकार कर ली और बदले में ब्रिटेन ने विस्थापित बोअर्स के पुनर्वास के लिए अनुदान दिया तथा कुछ समय के उपरांत सीमित स्वायत्तता देने का वचन दिया।

5. दक्षिण अफ़्रीकी संघ का निर्माण (Creation of Union of South Africa)

- 1910 में नटाल, ट्रांसवाल, केप कॉलोनी और ऑरेंज फ्री स्टेट के क्षेत्रों को एक साथ मिला कर एक दक्षिण अफ्रीकी संघ की स्थापना हुई।
- यह संघ अश्वेतों और विभिन्न वर्ण के लोगों का एक मिश्रण था। इसमें विविध वर्ण अर्थात् वहां बसने वाले यूरोपीय और एशियाई थे जिन्हें दक्षिण अफ्रीका में ठेके के श्रमिकों के रूप लाया गया था। अश्वेतों को **बन्तू** के नाम से भी जाना जाता था।

दक्षिण अफ्रीका की जनसांख्यिकीय रूपरेखा (1910)	
अश्वेत (या बन्तू)	70%
यूरोपीय सेटलर्स	18%
मिश्रित जातियां या मिश्रित वर्ण के लोग, जो अश्वेतों और श्वेतों के साहचर्य से जन्मे थे	9%
एशियाई (जो बंधुआ श्रमिकों के रूप में लाए गये थे)	3%

6. 1948 से पूर्व अश्वेतों की स्थिति

- दक्षिणी अफ्रीका के औपनिवेशीकरण के दौरान यूरोपीय निवासी (मुख्यत: डच) अल्पसंख्यक थे। शीघ्र ही उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन पर अभिजात्य अल्पसंख्यकों की भांति हावी होना प्रारम्भ कर दिया। सत्तारूढ़ डचों द्वारा जिन नीतियों का अनुसरण किया जा रहा था, उसका परिणाम केवल आर्थिक और राजनीतिक अधीनता ही नहीं थी अपितु सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक क्षति भी थी।

VISION IAS

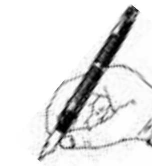

- डच सेटलर्स ने मूल अश्वेतों के साथ दासों जैसा व्यवहार किया और उन्हें अपने खेतों में श्रमिकों के रूप में नियोजित किया। उन्होंने अश्वेतों को उनकी भूमियों से वंचित कर दिया और यह सुनिश्चित किया कि अश्वेतों की शिक्षा पर अति अल्प धन व्यय किया जाये और विशेषकर उच्च शिक्षा पर श्वेतों का एकाधिकार बना रहे। भारत जैसे एशियाई उपनिवेशों से लाए गये बंधुआ श्रमिकों की स्थिति भी कुछ बेहतर नहीं थी।
- राजनीतिक रूप से अश्वेतों को मतदान का अधिकार नहीं था और शासन में उनकी किसी भी प्रकार से भागीदारी पर भी मनाही थी। ट्रांसवाल और ऑरेंज फ्री स्टेट में केवल श्वेत लोग ही मतदान कर सकते थे। नटाल और केप कॉलोनी में गैर-श्वेत लोग भी मतदान कर सकते थे, परन्तु वास्तव में इसका अर्थ कुछ भी नहीं था क्योंकि एक मतदाता को सम्पत्ति और साक्षरता की योग्यता को भी पूरा करना होता था। विधान मंडल में अश्वेतों का कोई सीधा प्रतिनिधित्व नहीं था और उनका अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व कुछ श्वेत संसद सदस्यों द्वारा किया जाता था। शासकीय नीतियों में उनके हितों की अनदेखी होती थी और उनके लिए कल्याणकारी उपायों का अभाव था।
- सांस्कृतिक रूप से स्वामी और दास के सिद्धान्तों का प्रचार किया जाता था। अश्वेत जनजातीय संस्कृति को निम्न माना जाता था और उन्हें निम्न प्रजाति के रूप में नामित किया जाता था। इसका अर्थ यह था कि इनके भाग्य में ही श्वेतों का दास बनना लिखा हुआ था क्योंकि श्वेत स्वामी जाति से थे। **डच रिफॉर्मड चर्च** (दक्षिण अफ्रीका का अधिकारिक चर्च) ने विश्व के अन्य चर्चों के विपरीत इस विचार का समर्थन किया कि श्वेत स्वामी जाति से संबंधित हैं और इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने बाइबल की भी गलत व्याख्या की। जबकि विश्व के अन्य चर्च जातीय समानता में विश्वास करते थे।
- अश्वेतों के लिए आरक्षित निवास स्थल श्वेतों के आवासीय क्षेत्रों से दूर अवस्थित होते थे। इस नीति का अनुसरण इसलिए किया गया था ताकि अश्वेतों को श्वेतों से दूर रखा जा सके। अश्वेतों द्वारा अपने आरक्षित क्षेत्रों से बाहर भूमि खरीदने पर भी प्रतिबंध था। इसके कारण अश्वेत बस्तियों में कई सारी समस्याएं व्युत्पन्न हो गयीं, क्योंकि 70% जनसंख्या दक्षिण अफ्रीका के 7% क्षेत्र में रह रही थी। स्वच्छ पेयजल की कमी, स्वच्छता के लिए उचित मलजल की व्यवस्था के अभाव और भीड़ की समस्या के कारण अश्वेतों के सामाजिक संकेतकों की स्थिति दयनीय हो गयी, जैसे- स्वास्थ्य, स्वच्छता और शिक्षा का खराब प्रदर्शन।
- श्वेत लोगों की सरकार ने अश्वेतों के आवागमन को नियंत्रित करने के लिए **पास कानून व्यवस्था (System of Pass Laws)** का उपयोग किया। उदाहरण के लिए एक अफ़्रीकी अश्वेत अपने नियोक्ता द्वारा दिए गए पास के बिना उस खेत को छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता था, जहाँ वह कार्यरत था और न ही वह किसी अन्य शहर में रह सकता था, जहाँ वह कार्य नहीं करता था।
- **अश्वेत श्रमिकों** के पास अति सीमित अधिकार थे या यह कहा जा सकता है कि उनके अधिकार न के बराबर थे। उनकी स्थिति एक दास जैसी थी। 1911 के एक कानून के अंतर्गत अश्वेत श्रमिकों को हड़ताल करने की मनाही थी और कुशल नौकरियों पर उनकी नियुक्ति प्रतिबंधित थी। कुशल नौकरियों पर प्रतिबन्ध होने से अश्वेतों के लिए शिक्षित होने का कोई अर्थ नहीं रह गया था, जिसके कारण वे केवल कम वेतन वाली नौकरियों के लिए ही उपयुक्त थे। इस कमी ने उन्हें अतिरिक्त आय अर्जित करने से रोका और उनकी सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित किया। इस प्रकार अश्वेतों को निर्धनता रेखा से नीचे बनाये रखने के लिए ऊपर से ही बहुत दबाव था।

7. दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी

- 1893 में वकील एम. के. गाँधी एक मुकदमा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका आए। दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों में मेमन मुस्लिमों की बहुलता थी। वे भारतीय व्यापारी थे, परन्तु इनमें से अधिकांश बंधुआ श्रमिक थे जिन्हें 1890 में श्वेत सेटलर्स द्वारा गन्ने के खेतों में काम करने के लिए लाया गया था। वे अशिक्षित थे, बहुत कम अंग्रेजी जानते थे और जातीय भेदभाव का सामना कर रहे थे। स्वयं गाँधी जी को भी इस भेदभाव का सामना करना पड़ा, जब उन्हें श्वेतों के साथ प्रथम श्रेणी में यात्रा करने के कारण रेल से बाहर फेंक दिया गया था।

VISION IAS

7.1. गाँधी जी का संघर्ष

- गाँधी जी को यह पता था कि जब तक भारतीय असंगठित रहेंगे, वे वंचित रहेंगे। इसलिए लोगों को सामूहिक आवाज देने के लिए उन्होंने इनको एक सामूहिक इकाई के रूप में संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने लोगों को शिक्षित करना भी प्रारम्भ कर दिया।
- न्यायालय में वाद समाप्त होने के पश्चात् उन्हें दक्षिण अफ्रीका से जाना था परन्तु भारतीयों ने उनसे वहां रुकने का अनुरोध किया और उन्होंने अपने इस नैतिक उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह किया। वे अकेले भारतीय थे जो पश्चिम में शिक्षित थे और कानून की जटिलताओं को समझते थे।
- **1894 के मताधिकार संशोधन अधिनियम** में भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने का प्रावधान था। **1895 के अप्रवासी कानून संशोधन अधिनियम** में कहा गया था कि भारतीयों को उनके अनुबंध की समाप्ति पर भारत लौटना ही होगा या उन्हें फिर से दो और वर्षों के लिए बंधुआ बनना होगा (अनुबंध द्वारा बाध्य अर्थात् बंधुआ मजदूर)। जो भी इसे नहीं मानेगा उससे प्रति वर्ष 3 पाउंड का वार्षिक कर (पोल टैक्स) लिया जायेगा। ऐसी परिस्थितियों में गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के लिए अपना संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।
- **संवैधानिक संघर्ष (1896 से 1906):** इसमें सरकार को याचिकाएं और आवेदन देने जैसे साधनों का उपयोग सम्मिलित था। गाँधी जी ने नटाल भारतीय कांग्रेस की स्थापना की और भारतीयों की स्थितियों पर प्रकाश डालने और उनमें सुधारों की आवश्यकता के लिए समर्थन जुटाने हेतु इंडियन ओपीनियन नामक एक समाचार पत्र प्रारम्भ किया।
- **संविधानेत्तर परन्तु अहिंसक संघर्ष (1906–1915):** संवैधानिक उपाय सरकार को भारतीयों के प्रति भेदभाव समाप्त करने के लिए सहमत करने में विफल रहे। गाँधी जी ने तब एक नया उपाय विकसित किया जिसे **सत्याग्रह** का नाम दिया गया। इसमें निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग, सविनय अवज्ञा आन्दोलन जैसे उपाय सम्मिलित थे। एक सत्याग्रही को सच्चा, अहिंसक और निडर होना चाहिए। उसे दुःखों को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए और बुराई करने वाले से भी प्रेम करना चाहिए। सत्याग्रही के स्वभाव में घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होनी चाहिए और बुराई करने वाले को केवल प्रेम द्वारा उसके कार्यों में निहित अन्याय का अनुभव कराके ही जीता जा सकता है।
- **कार्यकलाप में सत्याग्रह**
  - **पंजीकरण प्रमाणपत्रों के विरुद्ध सत्याग्रह (1906-1914):** 1906 में ट्रांसवाल द्वारा **एशियाई कानून संशोधन अधिनियम (Asiatic Law Amendment Act; या काला कानून)** पारित किया गया था। यह एक अपमानजनक कानून था, जो ट्रांसवाल में भारतीयों को 'रजिस्ट्रार ऑफ़ एशियाटिक्स' में शारीरिक परीक्षण, उँगलियों के निशान सहित पंजीकरण के लिए और हर समय उँगलियों के निशान वाले प्रमाणपत्र को साथ रखने के लिए विवश करता था। अन्यथा भारतीय और अन्य 'एशियाईयों' को आर्थिक दंड, कारावास या निर्वासित किया जा सकता था। गाँधी जी ने भारतीयों और अन्य एशियाईयों से इस काले कानून का उल्लंघन करने को कहा। एक निष्क्रिय प्रतिरोध एसोसिएशन का गठन किया गया। पंजीकृत भारतीयों को RC (Registration Certificate) साथ नहीं रखना था और गैर-पंजीकृत भारतीयों को पंजीकरण नहीं कराना था। शीघ्र ही जेलें अपनी क्षमता से अधिक सत्याग्रहियों से भर गईं थीं। संघर्ष के इस नए रूप से निबटने में स्वयं को असमर्थ पाते हुए सरकार ने वचन दिया कि वह इस काले कानून (ब्लैक एक्ट) को निरस्त करेगी और यदि भारतीय स्वेच्छा से अपने पंजीकरण के लिए सहमत होंगे तो सभी कैदियों को रिहा किया जायेगा। गाँधी जी ने इसे स्वीकार कर लिया और सबसे पहले अपना पंजीकरण कराया। सरकार ने स्वैच्छिक पंजीयन को स्वीकृत करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया परन्तु काले कानून को निरस्त करने से मना कर दिया। सरकार द्वारा धोखा दिए जाने के पश्चात् गाँधी जी ने सार्वजनिक रूप से प्रमाण पत्रों को प्रतिरोध और संकल्प के रूप में आग के हवाले कर दिया।

VISION IAS

- **प्रवासी कानूनों के विरुद्ध सत्याग्रह: ट्रांसवाल प्रवासी प्रतिबन्ध अधिनियम 1907 (Transvaal Immigration Restriction Act, 1907)** के तहत अन्य प्रान्तों से ट्रांसवाल में प्रवेश करने वालों पर प्रतिबन्ध आरोपित किया गया था। अधिकांश भारतीय नटाल में रहते थे परन्तु काम के बेहतर अवसरों के लिए अधिक समृद्ध प्रान्त ट्रांसवाल तक पहुंचना चाहते थे। भारतीयों ने ट्रांसवाल में स्थानांतरित होकर प्रवासी कानून का उल्लंघन किया और गिरफ्तारियां दी। ट्रांसवाल में भारतीयों ने बिना लाइसेंस के पटरी पर सामान बेचा। कई भारतीयों को बंदी बनाया गया और कइयों को ट्रांसवाल से निर्वासित किया गया। स्वयं गाँधी जी को 1908 में बंदी बनाया गया। शीघ्र ही जेल क्षमता से अधिक भर गयी थी।
- **टाल्सटॉय फार्म (1910):** एक निर्मम सरकार के विरुद्ध संघर्ष करते हुए प्रदर्शनकारी शीघ्र ही थकने लगे थे। आन्दोलन को जारी रखने के लिए और जनता का मनोबल बनाए रखने के लिए गाँधी जी ने एक जर्मन वास्तुकार हर्मन कालेनबाख की आर्थिक सहायता से टाल्सटॉय फॉर्म की स्थापना की। इस हेतु मुस्लिम लीग, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और हैदराबाद के निजाम तक ने धन भेजा था। शीघ्र हीं टाल्सटॉय फॉर्म सत्याग्रहियों का अड्डा बन गया और उन्हें कौशल विकास एवं स्वयं सहायता (self-help) द्वारा आत्मनिर्भरता प्रदान की गई। उन्हें शिक्षित किया गया और नैतिक शिक्षा भी प्रदान की गई। इस बीच टाल्सटॉय फॉर्म के भारतीयों ने बिना परमिट के ट्रांसवाल आना-जाना जारी रखा।

- **गोखले का आगमन (1912):** जो आन्दोलन एक निष्क्रिय चरण में था, उसे 1912 में गोपाल कृष्ण गोखले के आगमन से बढ़ावा मिला। सरकार ने गोखले को वादा किया कि भारतीयों के विरुद्ध भेदभाव पूर्ण कानून शीघ्र ही हटा दिए जायेंगे, परन्तु वचन का पालन नहीं किया गया और इस घटना ने 1913 में सत्याग्रह पुनः आरंभ करने के लिए ऊर्जा प्रदान की। गोखले ने गाँधी जी को परामर्श दिया कि वे काले कानून के साथ पोल टैक्स का भी विरोध करें।
- **पोल टैक्स अभियान (1913):** गांधीजी ने पोल टैक्सर (**1895 के अप्रवासी कानून संशोधन विधेयक** के अंतर्गत 3 पाऊंड का वार्षिक कर) के विरुद्ध शांतिपूर्ण अभियान प्रारम्भ किया। इस अभियान ने एक विशाल स्वरूप ले लिया क्योंकि बहुत से कार्यकर्ता इसमें सम्मिलित हो गए।
- **सर्वोच्च न्यायालय का 1913 का निर्णय:** इसने ईसाई धर्म के अनुसार संपन्न नहीं किए गए विवाहों और रजिस्ट्रार के साथ अपंजीकृत सभी विवाहों को रद्द कर दिया। इस निर्णय को भारतीयों ने धार्मिक स्वतन्त्रता पर हमला माना जिसने सभी मुस्लिम, हिन्दू और पारसी विवाहों को अवैध करार दिया था। संघर्ष के इस बिंदु पर बहुत बड़ी संख्या में महिलाएं भी इस अभियान में सम्मिलित हो गयीं।
- **अंतिम दौर (Final Countdown):** भारतीयों ने अवैध रूप से आप्रवासी कानून के विरुद्ध ट्रांसवाल पार करना प्रारम्भ कर दिया। कस्तूरबा गाँधी ने भी इसमें भाग लिया और उन्हें बंदी बना लिया गया। शीघ्र ही दक्षिण अफ्रीका में सभी श्रमिकों (खनिक, रेलवे श्रमिक आदि) से गाँधी जी ने सम्पर्क किया और उन्हें संगठित किया।
- 2000 श्रमिकों के एक समूह के साथ गांधीजी ने आप्रवासी कानून का उल्लंघन करते हुए एक मार्च का आयोजन किया। उन सब को मार्च के दौरान कई बार बंदी बनाया गया परन्तु हर बार जेल से रिहा होते ही वे फिर से आंदोलनरत हो जाते। पुलिस का दमन क्रूर था और जेलों की स्थिति भी बहुत कठोर थी (भूखे रखना, कोड़े मारना, पत्थर तोड़ना आदि)। शीघ्र ही सभी भारतीय खनिक और बागान श्रमिक हड़ताल पर चले गए।

VISION IAS

- जी. के. गोखले ने भारतीयों का समर्थन जुटाने के लिए सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। अंततः भारतीय वायसराय लार्ड हार्डिंग (1910-1916) ने दक्षिण अफ़्रीकी सरकार के कार्यों की निंदा की। इसके पश्चात् गांधीजी और दक्षिण अफ्रीका की सरकार में वार्ता हुई।
- **विजय:** सरकार ने **पोल टैक्स** और पंजीकरण प्रमाण पत्रों से जुड़ी गांधी जी की सभी प्रमुख मांगों को स्वीकार कर लिया। भारतीय विवाहों को वैध करार दिया गया और सरकार ने सहानुभूतिपूर्वक भारतीय प्रवासियों के प्रश्नों पर विचार करने के लिए सहमति प्रदान की। इसके साथ ही दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के नेतृत्व में किये गये संघर्ष का सफलतापूर्वक अंत हुआ और 1915 में उनका भारत में आगमन हुआ।
- दक्षिण अफ्रीका में **1946-48 का भारतीय निष्क्रिय प्रतिरोध अभियान (Indian passive resistance campaign)** स्मट्स सरकार के **एशियाई भूमि पट्टा कानून (Asiatic Land Tenure Act; जिस Ghetto एक्ट भी कहा जाता है)** के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था, जिसने भूमि के स्वामित्व और भूमि को अपने कब्जे में लेने के भारतीयों के अधिकार को गम्भीर रूप से प्रतिबंधित कर दिया था।

  कुछ अफ़्रीकी, मिश्रित रंग वाले और श्वेतों ने भी इस अभियान में भाग लिया और भारतीयों के साथ ही बंदी बना लिए गए। इस अभियान ने अफ़्रीकी और भारतीय संगठनों के बीच सहयोग की आधारभूत नींव का कार्य किया, विशेषकर नटाल व ट्रांसवाल भारतीय कांग्रेस और अफ़्रीकी नेशनल कांग्रेस के बीच।

8. रंगभेद (Apartheid) कानूनों की शुरुआत (1948-54)

- 'Apartheid' (अपार्टाइड' अर्थात् रंगभेद) का शाब्दिक अर्थ है 'अलगाव'। उल्लेखनीय है कि 1948 से पहले भी अश्वेतों के प्रति भेदभाव होता था परन्तु इसके पश्चात् इसे कानूनों के माध्यम से संस्थागत बना दिया गया था।

8.1. प्रधानमंत्री मलान ने रंगभेद (1948-54) क्यों प्रारम्भ किया?

- 1947 में भारत और पाकिस्तान को अश्वेत बहुमत के शासन के अंतर्गत स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। इस घटना ने दक्षिण अफ्रीका के श्वेत लोगों को बहुत असहज कर दिया था, क्योंकि उन्हें ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्य सदस्य राष्ट्रों में जातिगत समानता के प्रसारित होने का डर था। स्वाधीनता के पश्चात् भारत में बसने वाले यूरोपियों की स्थिति यहाँ के मूलनिवासियों से बेहतर नहीं रह गई। स्वतंत्रता के पश्चात् यहाँ विधि का शासन था जो प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करता था। दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों, एशियाई और अन्य वर्ण के लोगों द्वारा राजनीतिक तथा सामाजिक समानता की मांग किए जाने का भय था।
- यद्यपि अधिकांश श्वेत जातिगत समानता के विरोधी थे जिनमें विशेषकर डच शामिल थे। जातीय वर्चस्व की सबसे कट्टरपंथी समर्थक **अफ्रिकनर (Afrikaner) नेशनलिस्ट पार्टी** थी, जो "अश्वेत खतरे" को समाप्त करने के वचन से ही चुनाव में विजयी हुई थी।
- तकनीकी रूप से 1948 के पश्चात् प्रधानमंत्री मलान की नई सरकार द्वारा संसद में पारित कई कानूनों के माध्यम से रंगभेद प्रारम्भ किया गया।

VISION IAS

8.2. रंगभेद की प्रमुख विशेषताएं

- **अलगाव:** 1948 के पश्चात् **पूर्ण पृथक्करण की नीति** का यथासम्भव प्रयास किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक पृथक आरक्षित क्षेत्र बनाए गए तथा नगरों में अश्वेत श्रमिकों के लिए पृथक टाऊनशिप बनाए गए। परिवहन के साधन के रूप में अश्वेतों के लिए पृथक बसें और ट्रेनें थीं। मनोरंजन के लिए पृथक कैफे, समुद्र तट (बीच) और सिनेमाघर थे। चूंकि अश्वेतों को निम्न माना जाता था, अतः उनके लिए पृथक शौचालय थे। सामाजिक सेवाओं में भी पृथक्करण था, उदाहरण के लिए- अश्वेतों के बच्चे पृथक विद्यालयों में घटिया शिक्षा ग्रहण करते थे और उनके लिए अस्पताल भी पृथक होते थे, जहाँ आधारभूत सुविधाओं का भी अभाव पाया जाता था। पृथक्करण का धार्मिक क्षेत्र में भी अनुसरण किया गया क्योंकि अश्वेत केवल अपने लिए आरक्षित चर्चों में ही प्रार्थना कर सकते थे। परन्तु पूर्ण पृथक्करण को केवल आंशिक सफलता ही मिली क्योंकि इसे लागू करना असम्भव था। अश्वेत दक्षिण अफ्रीका की श्रमशक्ति का निर्माण करते थे और श्वेतों को उनकी आवश्यकता थी। सम्पूर्ण पृथक्करण का परिणाम आर्थिक पतन हो सकता था।
- **नस्लीय पहचान पत्र और पास कानून/नियम:** एशियाई, अश्वेत और मिश्रित नस्ल से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पहचान पत्र दिए गये थे, जिसे उन्हें सदैव अपने साथ रखना होता था। पास कानून वस्तुतः अश्वेत आंदोलनों को प्रतिबंधित करने का एक साधन था। कठोर पास कानून पारित किए गये जिसका आशय था कि अश्वेतों को अपने आरक्षित क्षेत्रों में ही तब तक रहना होता था जब तक कि उन्हें कार्य के लिए श्वेत क्षेत्र में जाने की आवश्यकता न पड़े। श्वेत क्षेत्र में जाने के लिए उन्हें पास दिए जाते थे, अन्यथा बिना पुलिस की विशेष अनुमति के श्वेत क्षेत्रों में या यहां से होकर किए जाने वाले सभी प्रकार के आवागमन प्रतिबंधित थे।
- **नस्लीय शुद्धता:** नस्लीय शुद्धता के संरक्षण के लिए कानून के माध्यम से अंतरनस्लीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाया गया तथा श्वेतों और अश्वेतों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

बंतुस्तान नीति (Bantustan Policy): 1959 में संसद ने **बंतू स्व-शासन अधिनियम, 1959** पारित किया। बंतू अश्वेत लोगों के लिए एक पर्याय था। इस अधिनियम का कथित लक्ष्य अपने आरक्षित क्षेत्रों में अश्वेत लोगों को स्व-शासन प्रदान करना था और बंतुस्तान बनाकर इसे कार्यान्वित किया जाना था। लेकिन बंतुस्तान नीति से दुनिया भर में दक्षिण अफ्रीका की निंदा हुई। ऐसा इसलिए था क्योंकि यह दुर्भावनापूर्ण आशय से किया गया एक स्वांग था। दक्षिण अफ्रीका ने नव-उपनिवेशवाद प्रकार की नीति का पालन किया जिसमें आर्थिक एवं अन्य नीतियों पर नियंत्रण बनाए रखना निहित था। इस नीति का उद्देश्य संसाधनों पर बलात अधिपत्य और सामान्यतः नव-उपनिवेशवादी हितों के लिए राष्ट्रीय हितों का दमन करना था। दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने बंतुस्तान की आर्थिक और विदेशी नीतियों को नियंत्रित कर रखा था। बंतुस्तान में अश्वेतों की बस्तियां थीं। बंतुस्तान की स्थिति के लिए कुल सात क्षेत्रों की पहचान की गई, जो दक्षिण अफ्रीका के कुल क्षेत्रफल का केवल 13 प्रतिशत था, जिसमें दक्षिण अफ्रीका के 70 प्रतिशत से अधिक लोगों को निवास करना था।

इसके अतिरिक्त बंतुस्तान आर्थिक रूप से सक्षम इकाई नहीं थी क्योंकि ऐसी बड़ी आबादी को आश्रय देने के लिए भू-संसाधन पर्याप्त नहीं थे। आर्थिक और लॉजिस्टिक संबंधी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए किसी भी तर्कसंगत मानदंड का उपयोग नहीं किया गया था। उदाहरण के लिए, बंतुस्तान की समुद्र तक पहुँच नहीं थी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बंतुस्तान को दक्षिण अफ्रीकी क्षेत्र द्वारा घेरा गया था और दो बंतुस्तानों के बीच कोई संपर्क नहीं था।

इन सभी कारणों से संयुक्त राष्ट्र ने बंतुस्तान को एक वैध राज्य मानने से इंकार कर दिया था। बावजूद इसके दक्षिण अफ्रीका आगे बढ़ा और उसने 1980 तक तीन बंतुस्तानों को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

VISION IAS

- **कोई राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं:** 1948 के बाद अश्वेत लोगों ने संसद में श्वेत सदस्यों द्वारा अपने प्रतिनिधित्व के सीमित राजनीतिक अधिकार तक को खो दिया क्योंकि अप्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व के प्रावधान को अब समाप्त कर दिया गया था।
- अश्वेत श्रमिकों का अत्यधिक दमन किया गया क्योंकि ये ही ऐसे थे जो शहरी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में निवास करते थे। वे श्वेत लोगों की समृद्धि और अश्वेतों की दयनीय स्थिति के बीच अंतर को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर सकते थे और श्वेतों की ज्यादतियों के प्रति उनका दृष्टिकोण भी स्पष्ट था। वे युवा भी थे तथा कारखानों में उत्पादन के लिए ख़तरा पैदा कर सकते थे। इस प्रकार श्वेत सरकार ने अपने लाभ के लिए शीत युद्ध के साम्यवाद विरोधी वातावरण का उपयोग करते हुए एक चतुराई भरी चाल चली। इसने **साम्यवाद दमन अधिनियम, 1950** (सप्रेस्सन ऑफ़ कम्युनिस्ट एक्ट, 1950) अधिनियमित किया और इसका प्रयोग अश्वेतों के बीच से उठने वाली किसी भी रंगभेद-विरोधी आवाज का दमन करने के लिए किया। अधिनियम का दुरूपयोग किया गया और जिसने भी इस रंगभेद नीति का विरोध किया उसे साम्यवादी घोषित किया गया और बंदी बना लिया गया। साम्यवाद दमन अधिनियम ने मजदूरों को हड़ताल करने से भी निषिद्ध रखा।

9. रंगभेद नीति-विरोधी संघर्ष

- अश्वेत दक्षिण अफ्रीकियों ने अपने अधिकारों के लिए लड़ने हेतु **साउथ अफ्रीकन नेटिव नेशनल कांग्रेस** (SANNC) का गठन करते हुए 1912 में खुद को संगठित किया। जॉन ड्यूबे और सोल प्लात्जे उस समय के प्रमुख अश्वेत नेता थे। 1923 में SANNC अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस (ANC) में परिवर्तित हो गई।
- 1948 और इसके पश्चात् जब **प्रधान मंत्री मलान** एवं अन्य दक्षिण अफ़्रीकी सरकारों ने दमनकारी क़ानून पारित किया तो अश्वेतों के मध्य असंतोष काफी बढ़ गया। भारत जैसे स्वतंत्र राष्ट्रों के उद्भव और स्व-शासन के सिद्धांतों तथा मानवाधिकारों की सुरक्षा की लोकप्रियता (जैसा नवगठित संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्थापित किया गया था) के परिणामस्वरूप रंगभेद के विरुद्ध जन आंदोलन उभरने लगा, जिसका लक्ष्य बहुसंख्यक अश्वेत शासन को स्थापित करना था।
    - प्रारंभ में अश्वेत संघर्ष महात्मा गांधी की असहयोग की रणनीति और सविनय अवज्ञा की तर्ज पर चला। ANC के **अलबर्ट लुथुली** ने कई हड़तालों का आयोजन किया और सविनय अवज्ञा आंदोलन का नेतृत्व किया जिससे अश्वेत उन क्षेत्रों में प्रवेश कर पाए जो श्वेतों के लिए आरक्षित थे।
    - 1955 में ANC ने अश्वेत, एशियाई और अन्य वर्ण के लोगों के साथ एक गठबंधन कर 'फ्रीडम चार्टर" की घोषणा की। यहीं से फ्रीडम चार्टर ANC का प्रमुख कार्यक्रम या मुद्दा बन गया। इसने सभी को मताधिकार, धर्म संबंधी आधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, रोजगार का अधिकार, क़ानून के समक्ष समानता, समान कार्य के लिए समान वेतन, निःशुल्क चिकित्सा, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, न्यूनतम मजदूरी के साथ प्रति सप्ताह चालीस घंटों का कार्य तथा बेरोजगारी भत्ता देने की मांग की।
    - जनसमूह के आवेग, दुनिया भर के देशों के दबाव और स्थानीय जागरूकता के चलते चर्च के नेताओं ने भी रंगभेद नीति के खिलाफ बोलना आरंभ कर दिया था।
    - ANC ने कई शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शन किए, जिसमें से जोहान्सबर्ग में **1957 का बस बॉयकाट कार्यक्रम** बेहद सफल रहा था। यह प्रदर्शन जोहान्सबर्ग में सरकार द्वारा बढ़ाए गए बस के किराए के विरोध में किया गया था तथा जल्द ही अन्य क्षेत्रों में भी फ़ैल गया। जोहान्सबर्ग के 80 प्रतिशत अफ़्रीकी लोग गरीबी रेखा के नीचे रहते थे और इसलिए यह वृद्धि अफ़्रीकियों के

VISION IAS

लिए वहनीय नहीं थी। बॉयकाट कार्यक्रम का लक्ष्य बस के किराए में वृद्धि के फैसले को असफल बनाना और सरकार से अफ्रीकियों के लिए उच्च मजदूरी की आवश्यकता के बारे में अध्ययन करने की मांग करना था। अश्वेत दक्षिण अफ्रीकियों ने तीन माह तक सार्वजनिक परिवहन त्याग दिया और रोज अपने कार्यस्थल तक का सफ़र पैदल तय किया। अंततः सरकार को झुकना पड़ा और उसने किराए में कटौती कर दी। यह अश्वेत लोगों के मनोबल को बढाने वाली जीत थी तथा इसने श्वेत लोगों के उत्पीड़न के विरुद्ध उनके बढ़ते प्रतिरोध को नई ऊर्जा प्रदान की।

- **1960 का शार्पविले नरसंहार:** इस घटना के बाद आंदोलन हिंसक हो गया। गैर-श्वेत लोग शार्पविले शहर में शांतिपूर्वक एकत्रित हुए और उन्होंने अपनी आवाजाही की स्वतंत्रता को सीमित करने वाले पास कानून के विरुद्ध प्रदर्शन किया। अगले दिन (21 मार्च) लगभग 8000 लोग विरोध प्रदर्शन के लिए पुलिस स्टेशन के बाहर एकत्रित हुए। लेकिन पुलिस ने शांतिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर गोली चला दी और उनमें से 69 लोग मारे गए। इस घटना के बाद अश्वेत लोगों का नेतृत्व विभक्त हो गया और नेल्सन मंडेला समेत अधिकांश नेता जो अब तक अहिंसक माध्यम से संघर्ष पर विश्वास कर रहे थे, 'फ्रीडम चार्टर" के घोषित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसक संघर्ष अपनाने की वकालत करने लगे। 21 मार्च का दिन दक्षिण अफ्रीका में मानवाधिकार संरक्षण का प्रतीक बन गया और प्रत्येक वर्ष इसे एक राष्ट्रीय अवकाश के रूप में मनाया जाता है।
- **रंगभेद नीति के विरुद्ध हिंसक आंदोलन:** शार्पविले के बाद ANC ने नेल्सन मंडेला जैसे नेताओं के नेतृत्व में हिंसक विरोध प्रदर्शन शुरू किया। कई बम हमले और पुलिसकर्मियों की श्रृंखलाबद्ध हत्याएं हुईं। 1962 में नेल्सन मंडेला को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें तोड़फोड़ व अन्य आरोपों का दोषी ठहराया गया तथा 1964 में उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। जिसमें से अधिकांश समय रोबेन द्वीप (Robben Island) पर बिताते हुए उन्होंने जेल में कुल 27 वर्ष काटे। यहां गांधीजी और नेल्सन मंडेला के बीच के अंतर पर ध्यान दिया जाना महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा गांधीजी की मूल्य प्रणाली का हिस्सा थी जबकि नेल्सन मंडेला के लिए यह एक सरकार विरोधी रणनीतिक उपकरण था। नेल्सन मंडेला को यह विश्वास हो गया था कि अफ्रीका में एशियाई लोगों जैसे छोटे अल्पसंख्यक समूह के लिए अहिंसा का मार्ग सर्वोत्तम था क्योंकि वे राज्य शक्ति के विरुद्ध हिंसक रूप से विजय हासिल करने में असफल रहते। अलबर्ट लुथुली जैसे कुछ नेताओं ने अहिंसात्मक विरोध जारी रखा, लेकिन जब 1967 में लुथुली की हत्या कर दी गई तब सर्वसम्मति से संघर्ष ने हिंसक रुख अपना लिया।
- **मंडेला के जेल में रहने के बावजूद आंदोलन जारी रहा:**
  - 1970 के दशक में ANC ने श्रमिकों द्वारा विरोध प्रदर्शन करवाया क्योंकि मजदूरी इतनी कम थी कि मुद्रास्फीति की मार झेलना मुश्किल हो रहा था। लेकिन डच अधिवासियों की श्वेत सरकार ने आंदोलन को दबाना जारी रखा।
  - 1976 में डच अधिवासियों की श्वेत सरकार ने अश्वेत स्कूलों में अफ्रीकांस भाषा (Afrikaans language) अनिवार्य कर दी। अफ्रीकांस भाषा दक्षिण अफ्रीका में निवास करने वाले डच लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी। यह अश्वेत दक्षिण अफ्रीकी लोगों की स्वदेशी भाषा नहीं थी। इसका अश्वेतों ने व्यापक विरोध किया और पुलिस ने इसके जवाब में 200 प्रदर्शनकारियों को मार दिया। इस प्रकार 200 प्रदर्शनकारियों की हत्या के परिणामस्वरूप दक्षिण अफ्रीका के सभी हिस्सों में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गए। पुलिस

VISION IAS

द्वारा इसका दमन किया जाने लगा जिससे मृतकों की संख्या में अनवरत वृद्धि होती गई। इस प्रकार यह विरोध और पुलिस की क्रूरता का दुष्चक्र बन गया। 1976 में विरोधियों के एक महत्वपूर्ण नेता स्टीव बिको को केवल इसलिए मार दिया गया क्योंकि वह चाहते थे कि अश्वेत लोग अपने काले रंग पर गर्व करें।

- **दक्षिण अफ्रीका के बाहर रंगभेद विरोधी संघर्ष:** दक्षिण अफ्रीका के बाहर भी रंगभेद नीति की आलोचना हुई।
    - **ब्रिटिश राष्ट्रमंडल:** भारत समेत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सभी सदस्यों ने रंगभेद नीति और क्रूर पुलिस की दमनकारी नीति की आलोचना की। 1960 में दक्षिण अफ्रीका को राष्ट्रमंडल की सदस्यता छोड़नी पड़ी। उसी वर्ष दक्षिण अफ्रीका ने खुद को गणतंत्र घोषित कर दिया।
    - **संयुक्त राष्ट्र संघ:** संयुक्त राष्ट्र महासभा ने रंगभेद नीति की निंदा करते हुए कई प्रस्ताव पारित किए।
    - **ऑर्गनाईजेशन ऑफ़ अफ्रीकन यूनिटी (OAU):** अफ्रीकी महाद्वीप के भीतर OAU ने रंगभेद को त्यागने और सभी दक्षिण अफ्रीकियों को मानवाधिकार प्रदान करने के लिए दक्षिण अफ्रीकी सरकार पर दवाब बढ़ाया।
    - **दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका का विऔपनिवेशीकरण/दक्षिण अफ़्रीकी सीमावर्ती युद्ध (1966-89):** नामीबिया भौगोलिक दृष्टि से अंगोला और दक्षिण अफ्रीका के मध्य अवस्थित है। 1914 में, प्रथम विश्व युद्ध के बाद मैंडेट के रूप में दक्षिण अफ्रीका को जर्मन दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका मिला, जिसे अब नामीबिया कहा जाता है। मैंडेट धुरी शक्तियों के पूर्व उपनिवेश थे जिन्हें प्रथम विश्व युद्ध में उनकी हार के बाद छीन लिया गया था और स्वतंत्रता के लिए तैयार करने हेतु इन पूर्व उपनिवेशों को लीग ऑफ़ नेशन्स के सदस्य देशों के संरक्षण में रखा गया था।

जहां तक हो सका दक्षिण अफ्रीका ने दक्षिण पश्चिम अफ्रीका के विऔपनिवेशीकरण में बिलंब किया और इसके लिए संयुक्त राष्ट्र (इसने नमीबिया पर दक्षिण अफ्रीका के कब्जे को अवैध घोषित किया), **ऑर्गनाईजेशन ऑफ़ अफ्रीकन यूनिटी** और राष्ट्रमंडल देशों ने इसकी भर्त्सना की। साउथ-वेस्ट अफ्रीका पीपुल्स ऑर्गेनाइजेशन (SWAPO) दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहा था। 1975 में अंगोला पुर्तगाल से स्वतंत्रता हो गया और मार्क्सवादी MPLA सरकार (पीपुल्स मूवमेंट फॉर द लिब्रेशन ऑफ अंगोला) सत्ता में आई। 1961-75 के दौरान MPLA ने अंगोला की स्वतंत्रता के लिए युद्ध लड़ा। 1975 के बाद से MPLA ने SWAPO गुरिल्लाओं को सुरक्षित आश्रय प्रदान किया और सोवियत

संघ ने भी आर्थिक सहायता तथा प्रशिक्षण के माध्यम से SWAPO की सहायता की – इसी कारण दक्षिण अफ्रीका ने अंगोला पर आक्रमण किया था। अंगोला पर हमला करने से दक्षिण अफ्रीका को रोकने के लिए क्यूबा ने सैनिक भेजे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी सेना को पराजित कर दिया और इसने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के अंत की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यह एक बड़ी नैतिक हार थी और इस घटना ने दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों के आंदोलन में उत्साह भरा।

रंगभेद की समाप्ति

- बढ़ते आंतरिक और बाह्य दबावों के बीच 1980 तक दक्षिण अफ्रीका की सरकार को रंगभेद की नीति को छोड़ना पड़ा।

9.1. सरकार के दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण

- **बाहरी दबाव में वृद्धि**
    - संयुक्त राष्ट्र, राष्ट्रमंडल और OAU द्वारा आलोचना में वृद्धि।
    - 1950 के दशक के दौरान उपनिवेशवादियों द्वारा महसूस की गई परिवर्तन की लहर, जिसके अनुसार अफ्रीकी राज्यों की स्वतंत्रता मे अधिक विलंब नहीं किया जा सकता है। परिणामस्वरूप अश्वेत बहुमत के शासन के अधीन अफ्रीका में स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ। इन देशों ने भी दक्षिण अफ्रीका पर दबाव डाला।
    - 1975 तक अंगोला और मोजाम्बिक पुर्तगाल से स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके थे तथा 1980 तक जिम्बाब्वे भी ब्रिटेन से स्वतंत्र हो चुका था। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका के निकट पड़ोस में 1980 तक अश्वेत बहुमत का शासन सत्ता में आ चुका था और इससे सीमाओं के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था।
    - 1970 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आंदोलन में मजबूती आई और इस कारण अमेरिकी सरकार ने दक्षिण अफ्रीका के विरूद्ध गंभीर रुख अपनाया।
- **आंतरिक दबाव**
    - सरकार के लिए ANC की अगुवाई वाला हिंसक संघर्ष नियंत्रित करना और कानून-व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखना उत्तरोत्तर कठिन होता जा रहा था।
    - बंतुस्तान (अश्वेत अफ्रीकी लोगों का निवास स्थल) की संकल्पना विफल हो चुकी थी। अत्यधिक गरीबी और भ्रष्ट शासकों के कारण यह अश्वेतों को संतुष्ट करने में विफल रहा। किसी भी विदेशी सरकार ने उन्हें वास्तविक रूप से स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता नहीं दी।

9.2. 1980 के बाद से रंगभेद की क्रमिक समाप्ति

- 1979-80 तक श्वेत सरकार को लगने लगा कि वे केवल अपनी सरकार के हिंसक तख्तापलट के जोखिम पर ही रंगभेद जारी रख सकते हैं। वे सभी बाहरी समर्थन खो चुके थे। पहले अंगोला और मोज़ाम्बिक के औपनिवेशिक शासकों तथा ज़िम्बाब्वे (रोडेशिया) की श्वेत सरकार ने दक्षिण अफ्रीकी सरकार का समर्थन किया था लेकिन अब वे अश्वेत शासन के अधीन आ चुके थे। *इस प्रकार 1979 के बाद दक्षिण अफ्रीका में श्वेत शासन को लंबा खींचने के लिए प्रधान मंत्री बोथा द्वारा रंगभेद की क्रमिक समाप्ति की नीति अपनाई गई।*
    - 1979- अश्वेतों को ट्रेड यूनियन बनाने की अनुमति दी गई और हड़ताल करने का अधिकार दिया गया।
    - 1981- अश्वेतों को अपनी स्थानीय नगर परिषदों का चुनाव करने की अनुमति दी गई। लेकिन अभी भी उनके पास राष्ट्रीय चुनावों में मतदान करने का अधिकार नहीं था।

VISION IAS

- 1984- एक नया संविधान अपनाया गया। इसके अंतर्गत संसद में तीन सदन बनाने का प्रावधान किया गया जिसमें से प्रत्येक सदन क्रमशः श्वेत, एशियाई और अन्य वर्ण वाले लोगों के लिए था, लेकिन अश्वेत अफ़्रीकियों के लिए कोई सदन नहीं था।
- 1985- अंतर्जातीय विवाह और वैवाहिक संबंधों को अपराधमुक्त कर दिया गया।
- 1986- पास कानून समाप्त कर दिए गए।

9.3. बोथा द्वारा उठाए गए कदमों पर प्रतिक्रिया

- **हिंसक विरोध प्रदर्शन और बढ़ गया** क्योंकि ANC की मांग अपूर्ण ही रह गई थी। अश्वेतों को मताधिकार एवं सरकार में भागीदारी नहीं मिली थी और 1984 के संविधान के अंतर्गत अश्वेतों के लिए कोई राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं था।
- **1980 के दशक के मध्य से बाहरी दबाव बढ़ गया:**
  - 1986- ब्रिटेन के अतिरिक्त राष्ट्रमंडल के अन्य देशों ने दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध कठोर प्रतिबंधों पर सहमति व्यक्त की। जिसके अंतर्गत दक्षिण अफ्रीकी सरकार को किसी भी तरह के ऋण, तेल की बिक्री, ICT उपकरणों के निर्यात, किसी भी तरह का परमाणु व्यापार और साथ ही सांस्कृतिक या वैज्ञानिक संपर्क पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मौद्रिक मुआवजा के सिद्धांतों का त्याग करने हेतु राजीव गांधी ने मार्गरेट थैचर की आलोचना की क्योंकि ब्रिटेन ने दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश निवेश पर केवल स्वैच्छिक प्रतिबंध के लिए सहमति व्यक्त की थी। इससे राष्ट्रमंडल के भीतर भी तनाव पैदा हो गया।
  - 1986- अमेरिकी कांग्रेस ने निम्नलिखित के पक्ष में मतदान किया:
    - दक्षिण अफ्रीका को और अधिक ऋण नहीं देने हेतु,
    - दक्षिण अफ्रीका के साथ हवाई संपर्क बाधित करने हेतु, और
    - दक्षिण अफ्रीका से आयात (लोहा, निकल, यूरेनियम, इस्पात, कोयला, वस्त्र आदि) पर प्रतिबंध लगाने हेतु।
  - आंतरिक रूप से अश्वेतों में जागरूकता और आत्मविश्वास बढ़ता जा रहा था। वे अब अशिक्षित नहीं थे और उच्च कुशलता वाली नौकरियां कर रहे थे। 1984 में डेसमंड टूटू को नोबल शांति पुरस्कार मिला।
- डच रिफार्मड चर्च अब रंगभेद विरोधी बन गया और सार्वजनिक रूप से रंगभेद की निंदा करने लगा।
- इस प्रकार स्थिति तेजी से बदल रही थी। श्वेत दक्षिण अफ़्रीकियों का बहुसंख्यक वर्ग अब मानने लगा कि राजनीतिक क्षेत्र से अश्वेतों का पूर्ण अपवर्जन असंभव था। हालांकि वे डरे हुए थे, फिर भी उन्होंने भविष्य में अश्वेत बहुमत के शासन का विचार छोड़ दिया।

9.4. अश्वेत बहुमत के शासन की दिशा में संक्रमण

एफ. डब्ल्यू. क्लार्क 1989 में राष्ट्रपति बने। उनके लिए निर्धारित कार्य अश्वेत बहुमत शासन की दिशा में शांतिपूर्ण संक्रमण सुनिश्चित करना था। उन्हें दक्षिणपंथी वर्गों से कठोर विरोध का सामना करना पड़ा, फिर भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को अश्वेत बहुमत के शासन में परिवर्तित करने की प्रक्रिया आरंभ की।

- **तैयारी:**
  - ANC के साथ संबंध सुधारने के लिए 1991 में नेल्सन मंडेला को जेल से रिहा कर दिया गया और ANC को वैध घोषित किया गया। पूरे विश्व में मंडेला की रिहाई का स्वागत किया गया और मंडेला को ANC के सदस्यों से भारी समर्थन मिला। उन्हें ANC का नेता चुना गया।

VISION IAS

- क्लार्क ने रंगभेद की व्यवस्था समाप्त करने की प्रक्रिया पूरी की और शेष बचे अधिकांश रंगभेदी कानूनों को त्याग दिया गया।

- **वार्ता:**
  - सद्भावना का माहौल बनाने के बाद क्लार्क ने 1991 में वार्ता के लिए ANC को आमंत्रित किया। वार्ता की कार्यसूची में ऐसे नए संविधान का विकास करना सम्मिलित था जो अश्वेतों को पूर्ण राजनीतिक अधिकार देता। श्वेत आबादी के बीच भारी संदेह था कि अश्वेत बहुमत वाला शासन प्रतिशोधात्मक होगा और उनके जीवन और संपत्ति के लिए खतरा पैदा होगा।
  - स्थिति को समझते हुए नेल्सन मंडेला के नेतृत्व में ANC ने अश्वेत-श्वेत सामंजस्य पर बल दिया और श्वेतों को आश्वस्त करने के लिए सकारात्मक कदम उठाया कि उन्हें समान नागरिक माना जाएगा तथा उनके साथ कोई नस्लीय भेदभाव नहीं होगा। ANC ने अपने सदस्यों से नए युग में अहिंसा को पंथ के रूप में गले लगाने के लिए कहा। बल दिया गया कि अश्वेतों को सहिष्णु होना चाहिए और सामूहिक शांतिपूर्ण समाज के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए।
  - वार्ता बहुत सुगम नहीं थी और इस प्रक्रिया को समस्याओं का सामना करना पड़ा, जो ऐतिहासिक कारकों द्वारा निर्मित परस्पर संदेह का परिणाम थी। एफ. डब्ल्यू. क्लार्क को अपनी ही नेशनलिस्ट पार्टी के भीतर विरोध का सामना करना पड़ा। अश्वेत नेतृत्व के लिए भी झगड़ा था क्योंकि ज़ुलु इंकता (Zulu Inkatha) नामक एक और अश्वेत दल ANC के साथ सत्ता संघर्ष में उलझा था।

- **गृह-युद्ध के बिना अश्वेत बहुमत का शासन प्राप्त करने में सफलता (1993):** 1993 तक नेल्सन मंडेला और एफ. डब्ल्यू. क्लार्क के नेतृत्व में वार्ता सफल रही। समझौते में अश्वेत बहुमत का शासन अपनाने की परिकल्पना की गई और चुनावों के बाद ANC, नेशनलिस्ट पार्टी और ज़ुलु इंकता की गठबंधन सरकार होती।

  ANC को आम चुनावों में विजय मिली और नेल्सन मंडेला के रूप में दक्षिण अफ्रीका के पहले अश्वेत राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के रूप में एफ.डब्ल्यू. क्लार्क के साथ गठबंधन सरकार बनी।

  बाद में 1999 में जब नया संविधान अस्तित्व में आया तो सरकार में अल्पसंख्यक दलों के लिए आरक्षण का प्रावधान हटा दिया गया, अर्थात् अनिवार्य गठबंधन वाली सरकार की व्यवस्था समाप्त कर दी गई।

9.5. रंगभेद विरोधी संघर्ष में भारत का योगदान

- 1946 में रंगभेद नीतियों का पालन करने वाली सरकार के साथ व्यापारिक संबंध समाप्त करने वाला भारत पहला देश था।
- बाद में भारत ने सभी संपर्क (राजनयिक, वाणिज्यिक, सांस्कृतिक और खेल) समाप्त कर दिए जो 1993 में पुन: बहाल हुए।
- भारत ने संयुक्त राष्ट्र, NAM और अन्य बहुपक्षीय संगठनों में रंगभेद की निंदा की और यह दक्षिण अफ्रीका के विरूद्ध लगाये जाने वाले अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों के पक्ष में अग्रणी था।
- 1960 के दशक से ही ANC का दिल्ली में एक कार्यालय था।

VISION IAS

10. खेल में रंगभेद

- 1963 में अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक समिति (IOC) ने भारत द्वारा दिए गए प्रस्ताव को अपनाया, जिसमें खेल में नस्लीय भेदभाव की दक्षिण अफ्रीकी नीति में संशोधन की मांग की गई थी। इसमें विफल रहने पर दक्षिण अफ्रीका की राष्ट्रीय ओलंपिक समिति को ओलंपिक खेलों से निष्कासन के लिए विवश किया जाना था। इस प्रकार 1964 में दक्षिण अफ्रीका को टोक्यो ओलंपिक से बाहर कर दिया गया। 1970 में दक्षिण अफ्रीका को औपचारिक रूप से IOC से निष्कासित कर दिया गया। 1968 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने सभी राष्ट्रों से "दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी शासन के साथ सांस्कृतिक, शैक्षिक, खेल और अन्य आदान-प्रदान निलंबित करने" का अनुरोध किया। भारत और कई अफ्रीकी तथा अन्य देशों ने घोषणा की कि वे 1970 के राष्ट्रमंडल खेलों में भाग नहीं लेंगे क्योंकि दक्षिण अफ्रीका इंग्लैंड का दौरा करेगा। दक्षिण अफ्रीका को दिया गया निमंत्रण वापस लेने के लिए ब्रिटेन को विवश किया गया। 1973 में अफ्रीकी राष्ट्रमंडल देशों और भारत ने खेल का बहिष्कार करने की धमकी देकर न्यूजीलैंड को दक्षिण अफ्रीका की रग्बी टीम का दौरा रोकने के लिए विवश किया।
- भारतीय में खेल से जुड़े नेताओं ने मांग की कि अंतर्राष्ट्रीय खेलों में गैर-यूरोपियों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। 1973 में दक्षिण अफ्रीकी खेल परिषद बनाई गई, जिसमें सभी गैर-नस्लीय और रंगभेद विरोधी खेल महासंघों को एकजुट किया गया। भारतीय खिलाड़ियों और खेल प्रशासकों ने इन निकायों में सक्रिय भूमिका निभाई।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

विश्व इतिहास : भाग 4

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

VISIONIAS

विषय सूची

गुट निरपेक्ष आंदोलन 3

1. गुट निरपेक्ष आंदोलन (Non-Aligned Movement: NAM) 3

2. NAM के मूल सिद्धांत 3

3. NAM क्यों? 3

4. NAM से पहले के प्रयास 4

4.1. एशियन रिलेशन कांफ्रेंस (मार्च 1947) 4

4.2. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का पंचशील सिद्धांत 4

4.3. बांडुंग सम्मेलन (1955) 5

4.4. बेलग्रेड सम्मेलन (1961) 5

5. NAM की सकारात्मकता 6

6. NAM की विफलता 8

7. NAM की आलोचना 9

8. वर्तमान में गुटनिरपेक्ष आंदोलन का महत्व 9

8.1. गुट निरपेक्ष आंदोलन आज भी प्रासंगिक है 10

9. गुटनिरपेक्ष आंदोलन के कार्य 11

10. गुट निरपेक्ष आंदोलन में किए जाने वाले संभाव्य सुधार 11

11. वर्तमान में तृतीय विश्व की स्थिति 11

VISION IAS

1. गुट निरपेक्ष आंदोलन (Non-Aligned Movement: NAM)

- द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत तृतीय विश्व के देशों की विदेश नीति को जानना आवश्यक है। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् स्वतंत्र हुए एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका तथा कुछ द्वीपीय राष्ट्रों को सामान्यतः तृतीय विश्व के रूप में जाना जाता है। अमेरिका समर्थित पूंजीवादी गुट और USSR समर्थित साम्यवादी गुट द्वारा क्रमशः प्रथम विश्व और द्वितीय विश्व का प्रतिनिधित्व किए जाने के कारण इन नवोदित देशों के लिए 'तृतीय विश्व' पद का प्रयोग किया गया।
- NAM का गठन आधिकारिक रूप से 1961 में हुआ था। इस अवधि में विऔपनिवेशीकरण प्रगति पर था। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि शीतयुद्ध के दौरान तृतीय विश्व के कुछ नव-स्वतंत्र देशों द्वारा अपनाई गई नीति को गुट निरपेक्ष आंदोलन से संबद्ध किया जाता है। इन देशों द्वारा अपनी स्वतंत्र विदेश नीति के विकास एवं संचालन तथा तत्कालीन दो गुटों से पृथक रहने हेतु गुटनिरपेक्षता का सहारा लिया गया।

2. NAM के मूल सिद्धांत

NAM के मूल सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप से वर्णित किया जा सकता है:

- राज्यों की प्रभुसत्ता की समता;
- राष्ट्रीय अखंडता का सम्मान;
- शांतिपूर्ण, समतापूर्ण और न्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था की स्थापना;
- सामाजिक-आर्थिक विकास के माध्यम से विकासशील देशों की संवृद्धि को प्रोत्साहन;
- नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना;
- साम्राज्यवाद विरोधी, उपनिवेशवाद विरोधी, नव-उपनिवेशवाद विरोधी नीति का संचालन;
- निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा देना;
- राष्ट्र हित के अनुरूप स्वतंत्र विदेश नीति का संचालन तथा
- नस्लवाद और नस्लीय भेदभाव को समाप्त करना।

3. NAM क्यों?

- **विकास पर ध्यान केंद्रित करने हेतु:** नवोदित राष्ट्रों को औपनिवेशिक शासन के कारण पिछड़ापन विरासत में मिला था तथा ये वर्तमान समय में भी अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के निर्माण की चुनौती का सामना कर रहे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् तृतीय विश्व के राष्ट्रों के समक्ष अपने सीमित संसाधनों के साथ आर्थिक विकास एवं राजनीतिक समेकन का दुरूह लक्ष्य था। ये आर्थिक और राजनीतिक रूप से कमजोर थे, अतः दोनों विश्व शक्तियों में से किसी के भी प्रभाव में आने के लिए सुभेद्य थे। अतः, इनमें से अधिकांश देशों ने विकास लक्ष्यों पर ध्यान केंद्रित करने और विदेश नीति के स्वतंत्र संचालन हेतु गुट निरपेक्ष आंदोलन को मूर्त स्वरूप प्रदान किया।

VISION IAS

- **नये स्वतंत्र हुए राष्ट्रों के संरक्षण हेतु:** NAM का उद्देश्य नव स्वतंत्र विकासशील राष्ट्रों को एक समूह के रूप में संगठित करना था, जिससे वे दोनों वैश्विक गुटों में से किसी के साथ भी गठबंधन न करके शीत युद्ध की राजनीति से पृथक रहने में सक्षम हो सकें। शीत युद्ध की प्रमुख विशेषताएँ सैन्य गठबंधन और हथियारों के दौड़ थी, जिसके कारण इसमें नव स्वतंत्र देशों की स्वतंत्रता को खतरा पहुँचाने की क्षमता थी।
- **विदेश नीति का स्वतंत्र संचालन:** NAM के देश स्वयं को सैन्य शक्ति के उपयोग से नहीं बल्कि सामूहिक मत के माध्यम से अपनी एक सुदृढ़ स्वतंत्र पहचान स्थापित करना चाहते थे।

4. NAM से पहले के प्रयास

NAM आधिकारिक रूप से युगोस्लाविया के बेलग्रेड में 1961 में अस्तित्व में आया था। किन्तु इसकी जड़ों को विभिन्न पूर्ववर्ती प्रयासों में भी देखा जा सकता है:

4.1. एशियन रिलेशन कांफ्रेंस (मार्च 1947)

- इसका आयोजन नई दिल्ली में हुआ था। इस सम्मेलन का केंद्र बिंदु स्वतंत्र विदेश नीति, पश्चिम पर निर्भरता में कमी और विश्व शांति के लिए प्रयास करना था। इस सम्मेलन के दौरान **पंडित नेहरू** ने तर्क दिया कि एशियाई राष्ट्र दीर्घकाल से पश्चिमी शक्तियों के अधीन रहें हैं और अब वह समय आ गया है जब उन्हें वैश्विक मामलों में निर्णयन की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उन्हें पश्चिम पर अपनी निर्भरता को समाप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें अपनी जनता के कल्याण के लिए एक साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है।
- युद्ध की विभीषिका को परमाणु हथियारों के विकास से जोड़ कर देखा गया, जिसने संपूर्ण मानवता को खतरे में डाल दिया था। इसलिए एशियाई राष्ट्रों का प्राथमिक उद्देश्य विश्व शांति को बनाए रखने के लिए कार्य करना होना चाहिए।

4.2. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का पंचशील सिद्धांत

- भारत और चीन ने पांच सिद्धांतों को 1954 में हस्ताक्षरित एक समझौते के आमुख (प्रस्तावना) में सम्मिलित किया था। साथ ही वे NAM का अभिन्न अंग भी बन गए। ये सिद्धांत निम्नलिखित थे:
    - सभी देशों द्वारा अन्य देशों की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना,
    - दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना,
    - दूसरे देश पर आक्रमण न करना,
    - समानता एवं परस्पर सहयोग को बढावा देना,
    - शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का पालन करना।
- यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1954 के पंचशील समझौते में तिब्बत को चीन के भाग के रूप में भारतीय मान्यता वहां हुई मानव त्रासदी के प्रति विवेक-शून्यता का संकेत नहीं थी।

VISION IAS

4.3. बांडुंग सम्मेलन (1955)

- NAM की ऐतिहासिक प्रगति में यह एक प्रमुख घटना है। इसमें भाग लेने वाले राष्ट्रों ने विश्व जनसंख्या के लगभग आधे हिस्से का प्रतिनिधित्व किया। यह एशियाई और अफ्रीकी देशों का एक सम्मेलन था जिसका आह्वान इंडोनेशिया में, वहां के तत्कालीन राष्ट्राध्यक्ष सुकर्णो द्वारा किया गया था।
- यह सम्मेलन NATO (1949) और वारसा पैक्ट (1995) के उद्भव, शीत युद्ध में तीव्रता, सोवियत संघ (USSR) और संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा हाइड्रोजन एवं परमाणु बम का विकास तथा विश्व में उत्पन्न दो प्रमुख संकटों, कोरिया और वियतनाम संकट की पृष्ठभूमि में आयोजित हुआ।
- इस सम्मेलन के महत्वपूर्ण नेताओं में मिस्र के गमाल अब्दुल नासिर, भारत से जवाहर लाल नेहरू और चीन के प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई सम्मिलित थे।

चित्र: 1955 के बांडुंग सम्मेलन में शामिल नेता

- दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (Southeast Asia Treaty Organization: SEATO, 1954) और बगदाद पैक्ट (1955) के रूप में एशिया में सैन्य गुटों का प्रसार प्रारंभ हो गया। इस सम्मेलन में अमेरिकी नेतृत्व वाले सैन्य गुट के सदस्यों, जैसे- ईरान, इराक, पाकिस्तान, थाईलैंड, तुर्की और फिलीपींस ने भाग लिया था। फलतः सम्मेलन के अंत में संयुक्त वक्तव्य में NAM के मूल सिद्धांतों का उल्लेख किया गया।

4.4. बेलग्रेड सम्मेलन (1961)

- 1960 में संयुक्त राष्ट्र में 17 नए देश शामिल हुए और विऔपनिवेशीकरण की गति में वृद्धि हुई। दिसम्बर 1960 में संयुक्त राष्ट्र ने "डिक्लरेशन ऑन ग्रांटिंग इंडिपेंडेंस टू कॉलोनियल कन्ट्रीज एंड पीपल" को अंगीकृत किया।

©Vision IAS

चित्र: बेलग्रेड सम्मेलन (1961) में शामिल विश्व के प्रमुख नेता

- इस विकास क्रम ने तृतीय विश्व के नेताओं को युगोस्लाविया में सभी गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलन का आयोजन करने हेतु प्रोत्साहित किया। स्वीकृत घोषणा में कहा गया कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धांत ही शीत युद्ध और संभावित सामान्य आपदा का एक मात्र विकल्प है तथा स्थायी शांति केवल साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और नव-उपनिवेशवाद के पूर्ण उन्मूलन से ही प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, युद्ध के जोखिम को कम करने के लिए वार्ता प्रारंभ करने के लिए एक पत्र कैनेडी और ख्रुश्चेव के पास भेजा गया।

5. NAM की सकारात्मकता

- तृतीय विश्व के देशों द्वारा किसी भी सैन्य गुट में सम्मिलित होने से इंकार करने के कारण वैश्विक शांति के निर्माण में सहायता मिली। NAM के देश NATO, वारसा पैक्ट, SEATO, बगदाद पैक्ट आदि जैसे अन्य सैन्य गुटों में सम्मिलित नहीं हुए।
- NAM ने अंतर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद एवं नस्लवाद को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **USSR और NAM:**
  - **शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व:** साम्यवादी नेता राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध के विरुद्ध थे परंतु उनका मानना था कि साम्राज्यवाद के अस्तित्व के समय तक युद्ध अनिवार्य था। स्टालिन के पश्चात् USSR ने विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रणालियों का अनुसरण करने वाले देशों के मध्य "शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व" की नीति अपनाई। शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति, भारत जैसे नए स्वतंत्र देशों द्वारा अपनाई गई गुट निरपेक्ष की नीति के मूल सिद्धांत में से एक थी। इसका तात्पर्य "युद्ध की अनिवार्यता" के सिद्धांत के त्याग से है। सोवियत नेताओं के साथ NAM के नेताओं ने विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों में शांतिपूर्ण प्रतिस्पर्धा पर बल दिया।

भारत ने पंचशील सिद्धांतों के माध्यम से अपनी विदेश नीति में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत को सम्मिलित किया। यह एक अलग विषय है कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के बावजूद, USSR ने हथियारों की स्पर्धा जारी रखी और पूर्वी यूरोप को अपने प्रभाव क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत किया (उदाहरण के लिए 1956 का हंगरी विद्रोह, चेकोस्लोवाकिया संकट 1968 आदि)।

- **NAM को सोवियत समर्थन:** सोवियत संघ द्वारा NAM की निःशस्त्रीकरण संबंधी पहलों का लगभग निरंतर समर्थन किया गया। साम्यवादियों के युद्ध विरोधी दृष्टिकोण और निकिता ख्रुश्चेव के अधीन शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर बल दिए जाने के कारण अनेक NAM नेताओं ने USSR को NAM के स्वाभाविक सहयोगी के रूप में स्वीकार किया। टीटो के शासनकाल में युगोस्लाविया (जो NAM का संस्थापक सदस्य था) सोवियत संघ से घनिष्ठ संबंधों वाला एक साम्यवादी देश था।
- **समता पर साझा ध्यान केंद्रित करना:** सोवियत संघ ने अफ्रीका सहित विभिन्न देशों को स्वतंत्रता आंदोलनों के लिए राजनीतिक और भौतिक समर्थन दिया। NAM द्वारा भी दृढ़ता से उपनिवेशवाद का विरोध किया गया। नव स्वतंत्र देशों और USSR के मध्य आर्थिक संबंध इन देशों के राष्ट्र निर्माण कार्य में भी सहायक सिद्ध हुए। NAM और USSR एक समतापूर्ण समाज के निर्माण हेतु प्रयास करने के सिद्धांत पर परस्पर सहमत थे। भारत की भाँति अन्य गुट निरपेक्ष देशों ने समाज के समाजवादी प्रतिरूप को स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया।

- **अमेरिका और NAM:** शीत युद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा एक हठधर्मी दृष्टिकोण- "यदि आप हमारे साथ नहीं हैं, तो आप हमारे विरुद्ध हैं" अपनाया गया। इस प्रकार, US ने NAM को अपने स्वाभाविक शत्रु के रूप में देखा। यहाँ तक कि वर्तमान में भी अमेरिका NAM को संदेह की दृष्टि से देखता है क्योंकि NAM ने 1991 के बाद से एक-ध्रुवीय विश्व का विरोध किया और एक बहु-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता का समर्थन किया।
- NAM ने 'विकास' को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर मुख्य एजेंडे के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया।
- **रंगभेद और NAM:** भारत ने संयुक्त राष्ट्र, NAM और अन्य बहुपक्षीय संगठनों के एजेंडे पर रंगभेद के मुद्दे को उठाने और दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध व्यापक अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंध लगाने के लिए निरंतर प्रयास किया। 1960 के दशक से ही नई दिल्ली में अफ्रीकी राष्ट्रीय कांग्रेस का एक प्रतिनिधि कार्यालय स्थापित है। भारत ने 1963 में दक्षिण अफ्रीका के साथ राजनयिक संबंध समाप्त कर लिए थे। दक्षिण अफ्रीका 1994 में NAM का 109वां सदस्य बना।
- **उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष और NAM:** NAM द्वारा उपनिवेशों के स्वतंत्रता संग्राम को व्यापक समर्थन प्रदान किया गया। SWAPO (साउथ वेस्ट अफ्रीका पीपुल्स ऑर्गनाइजेशन) ने 1978 में NAM के पूर्ण सदस्य का दर्जा प्राप्त किया। इस संगठन द्वारा दक्षिण अफ्रीका से नामीबिया की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया गया तथा नामीबिया 1990 में स्वतंत्र हुआ। 1976 में फिलिस्तीन लिबरेशन ऑर्गनाइजेशन (PLO) NAM का सदस्य बन गया।
- **भारत और NAM:**
  - भारत ने किसी भी सैन्य गठबंधन में प्रवेश न करने के NAM सिद्धांत का अनुसरण किया। हालाँकि रूस के साथ 1971 के समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत की आलोचना भी की गई। भारत ने अपने पक्ष में तर्क दिया कि इस समझौते को किसी तीसरे देश की ओर निर्देशित नहीं किया गया था।
  - भारत द्वारा सैन्य तानाशाही को छोड़कर सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने के NAM के एक अन्य सिद्धांत का भी अनुसरण किया गया है। इस सिद्धांत के अपवाद-स्वरूप,

VISION IAS

2005 में भारत ने म्यांमार के साथ संधि पर हस्ताक्षर किये, परन्तु यह संधि इस क्षेत्र में बढ़ रहे चीन के प्रभुत्व को प्रतिसंतुलित करने के लिए की गयी थी।

- **इंदिरा डॉक्ट्रिन के अनुसार** भारत अपने पड़ोसियों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त भारत के आंतरिक मामलों में किसी अन्य देश के हस्तक्षेप को भी सहन नहीं किया जाएगा। किसी भी सुरक्षा संबंधी समस्या के संदर्भ में, किसी भी सहायता के लिए इस क्षेत्र (भारतीय उपमहाद्वीप) को अपनी आंतरिक शक्ति की ओर पहले देखना चाहिए।
- **गुजराल डॉक्ट्रिन (1997-98):** पकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रखने और भारत की बिग ब्रदर की छवि को परिवर्तित करने के उद्देश्य से गुजराल सिद्धांत को प्रारंभ किया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार:
  - भारत अपने पडोसी देशों को समर्थन देगा, किन्तु आर्थिक रूप से अधिक विकसित होने के कारण उनसे समान समर्थन या सहयोग की अपेक्षा नहीं करेगा।
  - दक्षिण एशिया का कोई भी देश किसी बाह्य देश को दक्षिण एशियाई देश के विरुद्ध अपनी भूमि का प्रयोग करने की अनुमति प्रदान नहीं करेगा।
  - भारत किसी भी देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।
  - सभी देश एक-दूसरे की संप्रभुता और अखंडता का सम्मान करेंगे।
  - सभी देश अपनी समस्याओं का समाधान द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से करेंगे।

नवीन पंचशील सिद्धांत

2006-07 में चीन के राष्ट्रपति हू जिंताओ ने नवीन पंचशील सिद्धांतों का सुझाव दिया था। भारत द्वारा इन्हें स्वीकार कर लिया गया। पुराने पंचशील सिद्धांतों की स्थापना राजनीतिक मानकों पर की गई थी, जबकि नवीन पंचशील सिद्धांत आर्थिक, रक्षा और सांस्कृतिक मानकों पर आधारित हैं। ये सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

- दोनों देशों को सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ बनाना चाहिए और दोनों देशों को पारस्परिक रूप से बढ़ते हुए आपसी संबंधों को निरंतर सुदृढ़ता प्रदान करनी चाहिए।
- चीन और भारत को सामरिक संचार बनाए रखना चाहिए और द्विपक्षीय संबंधों को "सही दिशा (right track)" में निर्देशित करना चाहिए।
- दोनों देशों को एक दूसरे की मुख्य चिंताओं का समाधान करना चाहिए और दोनों देशों के मध्य विद्यमान समस्याओं तथा मतभेदों का निवारण उचित तरीके से करना चाहिए।
- दोनों देशों को एक दूसरे के तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ क्षेत्रों का लाभ प्राप्त करना चाहिए और अवसंरचनात्मक क्षेत्र, आपसी निवेश तथा अन्य क्षेत्रों में एक दूसरे के लिए लाभदायक आर्थिक सहयोग का विस्तार करना चाहिए।
- दोनों देशों को विकासशील देशों के वैध अधिकारों एवं हितों की रक्षा और वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए बहुपक्षीय मंच के माध्यम से बहुपक्षीय समन्वय एवं सहयोग का विस्तार करना चाहिए।

6. NAM की विफलता

- मिस्र के नव-उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष का समर्थन करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कर्नल नासिर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए। इन दोनों नेताओं के अतिरिक्त घाना के एन्क्रूमाह (Nkrumah), यूगोस्लाविया के टीटो और इंडोनेशिया के सुकर्णो 1961 में स्थापित **गुट निरपेक्ष आंदोलन** के संस्थापक सदस्य थे।
- परन्तु NAM अरब-इज़राइल संघर्ष का शांतिपूर्ण समाधान करने में असफल हो गया क्योंकि मिस्र, अफ्रीकी देश अल्जीरिया और अन्य मध्य-पूर्व अरब राष्ट्रों के साथ 1967 में इजरायल के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गया।

VISION IAS

7. NAM की आलोचना

- वर्तमान में गुटनिरपेक्षता की अपेक्षा विभिन्न गुटों के साथ संबद्धता की नीति प्रचलित है। उदाहरण के लिए, भारत NAM के साथ-साथ ब्रिक्स (BRICS), दक्षेस (SAARC) इत्यादि का भी सदस्य है। हालाँकि NAM द्वारा अलगाव की नीति का समर्थन नहीं किया गया है। NAM देशों ने स्वंय को किसी गुट के साथ प्रतिबद्ध नहीं करते हुए विषयों की विशिष्टता के आधार पर निर्णय लिया है। इसी प्रकार, वर्तमान में NAM के सदस्य देश, जैसे- भारत, विषय आधारित संगठन - IBSA (जलवायु वार्ता पर केंद्रित), BRICS (इसका उद्देश्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ता प्रदान करना है) आदि में शामिल हुए हैं। इसके विपरीत, भारत NATO (North Atlantic Treaty Organization) जैसे किसी सैन्य गठबंधन का सदस्य नहीं है।
- NAM का सचिवालय या संविधान जैसी कोई औपचारिक संरचना नहीं है। इसके कार्यों एवं दायित्व का निर्वहन तत्कालीन वार्षिक अध्यक्ष द्वारा किया जाता है।
- प्रत्येक सदस्य देश की समस्याएं भिन्न हैं (उदाहरण के लिए कुछ देशों में गैर-कार्यशील लोकतंत्र विद्यमान हैं), इसलिए विभिन्न मुद्दों के सर्वनिष्ट समाधान को प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
- NAM शिखर सम्मेलन मेजबान देश की विदेश नीति से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, यह संभावना व्यक्त की जा रही है कि 2019 में अजरबैजान में प्रस्तावित 18वें NAM शिखर सम्मेलन में आर्मेनिया-अजरबैजान संघर्ष का मुद्दा चर्चा के केंद्र रह सकता है।
- 1992 में युगोस्लाविया का विघटन होने से एक संस्थापक सदस्य की सदस्यता को समाप्त कर दिया गया, जबकि माल्टा और साइप्रस ने यूरोपीय संघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए NAM से अपनी सदस्यता को वापस ले लिया। अर्जेंटीना और मेक्सिको जैसे प्रमुख दक्षिण अमेरिकी देशों तथा चीन को अभी तक केवल पर्यवेक्षक का ही दर्जा प्राप्त हुआ है। यूरोप और दक्षिण अमेरिका में, विशेष रूप से शीत युद्ध के दौरान इन क्षेत्रों में गठबंधनों की भूमिका के कारण NAM की स्थिति कमजोर हुई है।
- वृहद सदस्यता के कारण NAM के सदस्यों के मध्य समन्वय एवं इसके कार्यो में सामंजस्य की समस्या बनी हुई है। NAM द्वारा सदस्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ, G77 + चीन जैसे शिखर सम्मेलनों का उपयोग किया जाता है।
- प्रत्येक NAM शिखर सम्मेलन के अंत में एक जटिल दस्तावेज़ जारी किया जाता है। ये दस्तावेज प्रायः पूर्ववर्ती की पुनरावृति होते हैं।

8. वर्तमान में गुटनिरपेक्ष आंदोलन का महत्व

- शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् गुट निरपेक्ष आंदोलन की प्रासंगिकता पर नियमित रूप से प्रश्न चिन्ह उठाए गए हैं।
- **1992 में जकार्ता में 10वें NAM शिखर सम्मेलन** में इन संदेहों पर विराम लगाने का प्रयास करते हुए कहा गया कि 'शीत युद्ध के दौरान विश्व शांति बनाए रखने में गुट निरपेक्ष आंदोलन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भी विश्व का स्वरूप सुरक्षित और न्यायोचित नहीं होने के कारण यह आज भी प्रासंगिक बना हुआ है'।

VISION IAS

- हिंसक संघर्षों की समस्या के कारण वैश्विक समाज एवं वैश्विक प्रशासनिक संस्थानों में असमानता व्याप्त है। बोस्निया‍ई गृहयुद्ध, अज़रबैजान और अर्मेनिया के मध्य युद्ध, 1992 में युगोस्लाविया का हिंसक विघटन (1980 में प्रसिद्ध नेता टीटो की मृत्यु) जैसे संघर्षों के कारण शीत-युद्धोत्तर काल में भी गुटनिरपेक्ष आंदोलन पूर्ण प्रासंगिक है।
- 1992 के पश्चात् संपूर्ण विश्व में स्थापित नई प्रवृतियों, जैसे- वैश्वीकरण, मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था, आतंकवाद का विस्तार आदि के कारण नई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं। एक ध्रुवीय विश्व के परिणामस्वरूप भी कई नई चुनौतियों का उद्भव हुआ है।
- **हवाना शिखर सम्मेलन (2006)** में अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं संयुक्त राष्ट्र चार्टर के सिद्धांतों पर आधारित एक बहुध्रुवीय और बहुपक्षवादी विश्व के निर्माण के समर्थन में तर्क दिए गए, जिससे वैश्विक शक्ति के एकपक्षवाद और वर्चस्ववादी नीति पर लगाम लग सके। **हवाना शिखर सम्मेलन में गुट निरपेक्ष आंदोलन के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांतों का निर्धारण किया गया:**
    - किसी भी राज्य या राज्यों के समूह को किसी अन्य राज्य के आंतरिक मामलों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।
    - शासन परिवर्तन (तख्तापलट आदि) करने के प्रयासों को अस्वीकृत किया जाना चाहिए।
    - आतंकवाद को इसके सभी रूपों में तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा, कहीं पर भी और किसी भी उद्देश्य हेतु किए जाने पर इसकी अस्वीकृति और विरोध होना चाहिए। परंतु राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध वैध संघर्ष को आतंकवाद के समान नहीं माना जाना चाहिए।

8.1. गुट निरपेक्ष आंदोलन आज भी प्रासंगिक है

- गुट निरपेक्ष आंदोलन में सर्वाधिक प्रतिनिधित्व अफ्रीका (53 सदस्य देशों) और तत्पश्चात एशिया (39 सदस्य देशों) और लैटिन अमेरिका (26 सदस्य देशों) द्वारा किया जाता है। इसका नकारात्मक पहलू यह है कि यूरोप के केवल दो देश - बेलारूस और अज़रबैजान ही इसके सदस्य हैं।
- इसमें दक्षिण-दक्षिण सहयोग के लिए एक मंच के रूप में कार्य करने और विकासशील देशों के हितों का समर्थन करने की क्षमता है।
- अपनी स्वतंत्रता की सुरक्षा, विदेश नीति का स्वतंत्र एवं राष्ट्रहित में संचालन तथा किसी भी वैश्विक शक्ति का प्रभुत्व स्वीकार ना करने का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सदैव प्रासंगिक बना रहेगा।
- उल्लेखनीय है कि गुट निरपेक्ष आंदोलन अपने वास्तविक शाब्दिक अर्थ के संदर्भ में एक समूह न होकर एक आंदोलन है। वर्तमान परिदृश्य में आर्थिक अशांति के कारण उत्पन्न चुनौतियों से विकासशील देशों द्वारा सामूहिक रूप से निपटने और आर्थिक मुद्दों पर विचार-विमर्श के लिए गुट निरपेक्ष आंदोलन की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।
- शीत युद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा गुट निरपेक्ष आंदोलन को अनैतिक ठहराया गया था। परन्तु वर्तमान में इसके प्रासंगिक होने के बावजूद भी पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा इसके महत्व का उपहास किया जाता है। गुट निरपेक्ष आंदोलन विकासशील देशों को एक उचित मंच प्रदान करता है। सामान्यतः विकासशील देशों की समस्याओं को विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व एवं उनके विचारों को प्रदत्त कम महत्व के कारण नजरंदाज़ कर दिया जाता है। गुट निरपेक्ष आंदोलन शिखर सम्मेलन के दौरान संयुक्त राष्ट्र महासचिव की उपस्थिति इसके महत्व को प्रदर्शित करती है। दशकों पश्चात प्रथम बार मिस्र के राष्ट्रपति ने गुट निरपेक्ष आंदोलन में भाग लिया।
- अपने संगठन के कारण, गुट निरपेक्ष आंदोलन संघर्षरत देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप किए बिना सीरिया तथा ईरान में संघर्ष जैसी अविलंबनीय समस्याओं हेतु स्थानीय समाधानों के लिए एक मंच प्रदान करने में सक्षम है। उदाहरणार्थ- NAM Troika (मिस्र, ईरान एवं वेनेजुएला) का गठन सीरिया के लिए किया गया था, हांलाकि यह निर्धारित परिणाम प्राप्त करने में असफल रहा है।

VISION IAS

9. गुटनिरपेक्ष आंदोलन के कार्य

- NAM शिखर सम्मेलन का आयोजन प्रत्येक तीन वर्ष में किया जाता है।
- NAM की अध्यक्षता के संबंध में क्षेत्रीय आवर्तन (Regional Rotation) के सिद्धांत का पालन किया जाता है। अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमेरिका का कोई भी देश रोटेशन के माध्यम से गुटनिरपेक्ष आंदोलन की अध्यक्षता प्राप्त कर सकता है। पूर्व, वर्तमान तथा आगामी अध्यक्ष को सामूहिक रूप से ट्रोइका (Troika) कहा जाता है। उदारणार्थ 2012 के सम्मेलन में मिस्र-ईरान-वेनेज़ुएला ने ट्रोइका का गठन किया था।
- 1995 के 11वें NAM शिखर सम्मेलन में इस बात पर सहमति बनी की सभी निर्णय सर्वसम्मति के बजाय परस्पर सहमति द्वारा लिए जाएंगे।
- NAM का समन्वयक ब्यूरो न्यूयॉर्क में स्थित है जो NAM के कार्य में समन्वयन स्थापित करने हेतु केंद्र बिंदु के रूप में कार्य करता है। लगातार दो NAM शिखर सम्मेलनों के मध्य नियमित रूप से इसकी बैठक होती है।
- कुछ विशिष्ट कार्यों के निपटान हेतु कई क्षेत्रीय समितियों का भी गठन किया गया है।

10. गुट निरपेक्ष आंदोलन में किए जाने वाले संभाव्य सुधार

- NAM को सुदृढ़ बनाने हेतु इसकी ट्रोइका व्यवस्था पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।
- NAM द्वारा अपने घोषणा पत्र को सीमित करने का प्रयास किया गया है, हालांकि सदस्य देशों द्वारा इसमें अपने घरेलू मुद्दों के समावेश के कारण यह संभव नहीं हो सका है।
- NAM के लक्ष्यों का पुनर्निर्धारण करना चाहिए; यह सुझाव भारत द्वारा 2012 में आयोजित NAM शिखर सम्मेलन में दिया गया था।
- NAM की आलोचना में निहित मुद्दों का समाधान करना।

11. वर्तमान में तृतीय विश्व की स्थिति

- वैश्विक संस्थाओं, जैसे- अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary fund: IMF) और विश्व बैंक पर निरंतर पश्चिमी शक्तियों का प्रभुत्व बना हुआ है। ये संस्थान विकासशील देशों को ऋण देते समय विभिन्न शर्तों को आरोपित करते हैं जो उनके राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल होती हैं। इस स्थिति के कारण विश्व आर्थिक व्यवस्था में व्यापक असमानता विद्यमान है। मुक्त व्यापार और निजीकरण संबंधी शर्तों से इन राष्ट्रों को हानि हुई है क्योंकि ना तो इनकी घरेलू अर्थव्यवस्था पश्चिमी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करने हेतु तैयार है और ना ही स्वदेशी निजी क्षेत्र निजीकरण के कारण उत्पन्न राष्ट्र निर्माण के उत्तरदायित्व संभालने में सक्षम हैं।
- वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में व्याप्त असमानता ही इन देशों के निरंतर पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारक बनी हुई है।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Join Teligram Channel ⤵

🎯 TARGETGOVTJOBS [*Https://t.me/TargetGovtJobs*]

Special :- Daily Update ☞ 📰 Newspaper, ✍ Editorial, 📅 Today's History, 📻 Air & BBC News, 🖥 RSTV, 📖 The Hindu vocabulary, ☆ Imp. NewsClips, 🖥 StudyIQ Video, 📅 Daily, Weekly & Monthly current affairs Magazine, 🔊 Dr. Vijay Agarwal Audio Lectures, 💻 Job update [Employment News Weekly], etc...

📚E BOOKS📚 [*Https://t.me/Edu_Books*]

Special :- Get all important E-Books [NCERT Books, Subject Wise Books, Hand Written notes, Coaching Classes Notes], Weekly & Monthly Current Affairs Magazine, Exam Test Series, Job update, Employment News, Other Magazine etc.... [Medium :- Hindi & English]

📰E-PAPER & MAGAZINE 📰 [*Https://t.me/NewspapersTodaY*]

Special :- Daily Update Newspaper [Hindi & English Language], Magazine, Employment News, Job update, 📻 Air & BBC News, Etc....

🙏 THANKS 🙏